नवीनतम पाठ्यक्रम पर आधारित

Navbodh
मध्यप्रदेश संस्करण

नवबोध

बी.एड. सरल अध्ययन

भारत में शिक्षा—स्थिति, समस्या एवं मुद्दे

प्रथम सेमेस्टर



पाठ्यक्रम

भारत में शिक्षा–स्थिति, समस्या एवं मुद्दे

बी. एड. प्रथम सेमेस्टर

इकाई	व्याख्या
1.	**शिक्षा की अवधारणा** • भारतीय तथा पाश्चात्य शिक्षा, शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा के कार्य। • सामाजिक नियंत्रण तथा सामाजिक परिवर्तन के एक उपकरण के रूप में शिक्षा • सांस्कृतिक विरासत तथा मूल्यों का संरक्षण • विद्यालय तथा समाज, संस्कृति तथा शिक्षा, विद्यालय सामाजिक व्यवस्था के रूप में। शिक्षा के साधन–अनौपचारिक, औपचारिक, निरोपचारिक।
2.	**प्राचीन भारतीय शिक्षा के प्रमुख लक्षण** • वैदिक शिक्षा, बौद्ध शिक्षा, मुस्लिम शिक्षा। • पारम्परिक शिक्षा। • अंग्रेजी शासनकाल में गुलाम भारत में शिक्षा के प्रमुख बिंदु–उद्देश्य, संरचना, पाठ्यक्रम व शिक्षण विधियों के दृष्टिकोण से। • राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था की प्रगति के लिए प्रयास।
3.	**माध्यमिक शिक्षा** • माध्यमिक शिक्षा के लक्ष्य, उद्देश्य तथा तन्त्र। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा। शिक्षा के संवैधानिक प्रावधान, माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952-53, शिक्षा आयोग 1964-66 , नवीन शिक्षा नीति, 1986 तथा प्रोग्राम ऑफ एक्शन 1992. • विभिन्न प्रकार के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड : सी.बी.एस.ई., आई.सी.एस.ई. तथा के.एस.ई.ई. बी. पाठ्यक्रम तथा परीक्षा प्रणाली के साथ। • माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक–शैक्षिक योग्यता, क्षमताएँ, कार्य दर्जा, नैतिक आचरण की पेशेवर संहिता। • उदीयमान भारत में माध्यमिक विद्यालय की भूमिका।
4.	**अध्यापक शिक्षा तथा माध्यमिक विद्यालय पाठ्यक्रम** • भारत में अध्यापक शिक्षा का स्तर, उद्देश्य और प्रयोजन। • एन.सी.टी.ई. एन.सी.ई.आर.टी.डी.ई.एस.आर.टी., सी.टी.ई., आई.ए.एस.ई. की भूमिका तथा दायित्व। • अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में प्रचलित संस्थाएँ व उनकी भूमिका। • राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना, 2005. • विद्यालय शिक्षक के लिए उपयोगी, सुधारात्मक व दक्षता प्रदान करने वाले कार्यक्रम।

प्रश्न-सूची

भारत में शिक्षा–स्थिति, समस्या एवं मुद्दे (म. प्र.)

बी. एड. प्रथम सेमेस्टर

प्र. क्र.	इकाई अनुसार प्रश्न	पृष्ठ सं.
	इकाई 1	
1.	शिक्षा क्या है ? संकुचित और व्यापक दृष्टिकोण से इसकी व्याख्या कैसे की जा सकती है ?	9
2.	भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षा के अर्थ को परिभाषित कीजिए। पाश्चात्य शिक्षा की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।	10
3.	"शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया है।" इस कथन का विश्लेषण करते हुए शिक्षा के विभिन्न अंगों की व्याख्या कीजिए।	12
4.	शिक्षा की प्रकृति पर प्रकाश डालिए।	13
5.	शिक्षा की आवश्यकता बताइए।	13
6.	शिक्षा का आधुनिक अर्थ बताते हुए शिक्षा के आधार बताइए।	14
7.	शिक्षा के कार्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।	15
8.	शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों को लिखिए।	18
9.	शिक्षा के बहुचर्चित उद्देश्य बताइये।	20
10.	शिक्षा के व्यक्तिगत उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।	21
11.	शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।	22
12.	शिक्षा के वैयक्तिक व सामाजिक उद्देश्यों में समन्वय स्थापित कीजिए।	22
13.	भारत में उभरते हुए लोकतंत्र में शिक्षा के उद्देश्य लिखिए।	23
14.	राष्ट्रीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारकों की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।	25
15.	सामाजिक परिवर्तन का अर्थ बताते हुए इसके घटक/कारक बताइए।	26
16.	सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।	28
17.	सामाजिक परिवर्तन का अर्थ बताते हुए शिक्षा में सामाजिक परिवर्तन की भूमिका बताइए।	29
18.	शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन में संबंध को समझाइये।	30
19.	सामाजिक परिवर्तन में विद्यालयों की भूमिका की संक्षेप में विवेचना कीजिए।	31
20.	सामाजिक परिवर्तन में शिक्षकों की भूमिका की संक्षेप में विवेचना कीजिए।	32
21.	सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति एवं दिशा की विवेचना कीजिए।	33
22.	सामाजिक परिवर्तन किसे कहते हैं ? वांछित सामाजिक परिवर्तन में शैक्षिक संचार माध्यमों की भूमिका लिखिये।	33
23.	सामाजिक नियंत्रण से आप क्या समझते हैं ? सामाजिक नियंत्रण के उद्देश्य बताइए।	34
24.	"सामाजिक परिवर्तन व सामाजिक नियंत्रण हेतु शिक्षा एक शक्तिशाली माध्यम है।" इस कथन की पुष्टि में अपने विचार लिखिये।	35
25.	सामाजिक नियंत्रण का अर्थ बताते हुए उसके प्रकार तथा विधियों का वर्णन कीजिए।	37
26.	संस्कृति का अर्थ एवं उसकी विशेषताएँ लिखिए।	39
27.	संस्कृति का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।	43
28.	संस्कृति और शिक्षा में संबंध स्पष्ट कीजिए।	44
29.	सांस्कृतिक विकास की कुछ समस्याएँ बताइए।	46

इकाई 1

शिक्षा की अवधारणा

लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. शिक्षा क्या है ? संकुचित और व्यापक दृष्टिकोण से इसकी व्याख्या कैसे की जा सकती है ?

***अथवा*, शिक्षा का अर्थ क्या है ? दो परिभाषाएँ दीजिए। शिक्षा के सामान्य तथा वैयक्तिक उद्देश्य लिखिए।** **(ग्वालियर 2016, 22; जबलपुर 21, 22; रीवा 22; भोपाल 22)**

उत्तर–शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। शिक्षा व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक निरंतर चलने वाली एक गतिशील प्रक्रिया है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है।

शिक्षा द्वारा न केवल व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को एक शिक्षा मिलती है वरन् समाज को मार्गदर्शन भी प्रदान करती है। शिक्षा, शिक्षण व समाज का एक–दूसरे के साथ अन्तर्संबंध है, जैसी हमारी शिक्षा होगी हमारे समाज का स्वरूप भी शिक्षा के माध्यम से परिलक्षित होगा और जैसा समाज होगा, शिक्षा की व्यवस्था भी उसी अनुरूप निर्धारित होगी। लेकिन समाज व शिक्षा दोनों का ही लक्ष्य समान है, वह है– "व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना"। व्यक्ति सभ्य समाज का एक सदस्य है, शिक्षा ही व्यक्ति को बनाती है, उसे सुसंस्कारित करती है। विभिन्न परिस्थितियों व विभिन्न रूपों में एक व्यक्ति द्वारा सीखना और उससे ज्ञान में वृद्धि करना ही 'शिक्षा' है।

दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि एक ओर जहाँ शिक्षा मानव को अपने जीवन के निरंतर विकास की ओर उन्मुख करते रहने की प्रक्रिया है वहीं अपने प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष व परोक्ष स्वरूप एवं साधनों के द्वारा समाज को मार्गदर्शन व गति प्रदान करने की भी एक प्रक्रिया है। जीवन में ग्रहण किये गये प्रत्येक ज्ञान व अनुभव को शिक्षा कह सकते हैं।

शिक्षा का शाब्दिक अर्थ– शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्ष्' धातु में 'अ' प्रत्यय लगने से बना है। 'शिक्ष्' का अर्थ है, सीखना और सिखाना इसलिए शिक्षा का अर्थ हुआ– 'सीखने-सिखाने की क्रिया'।

शिक्षा को अंग्रेजी भाषा में **एजूकेशन** (Education) कहते हैं। विद्वानों के अनुसार, इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन (Latin) भाषा के निम्न शब्दों से हुई है–

क्र.	शब्द (Words)	अर्थ (Meaning)
1.	एडूकेयर (Educare)	संवर्द्धन करना, पालन–पोषण करना।
2.	एडूसीयर (Educere)	विकसित करना, बाहर निकालना।
3.	एडूकेट्म (Educatum)	पढ़ाना, प्रशिक्षित करना।
4.	एडूको (Educo)	अंदर से निकालना, आंतरिक गुणों का विकास करना, आगे बढ़ना।

शिक्षा का संकुचित अर्थ–संकुचित अर्थ में शिक्षा से अभिप्राय (औपचारिक) विद्यालयी शिक्षा से है, जिसमें नियंत्रित वातावरण में बालक को बैठाकर पूर्व निर्धारित अनुभवों का ज्ञान करवाया जाता

30.	मूल्य का अर्थ बताइए। मूल्यों को परिभाषित कर मूल्यों का वर्गीकरण कीजिए।	46
31.	मूल्य की प्रकृति एवं विशेषताएँ बताइए।	48
32.	मूल्यपरक शिक्षा किसे कहते हैं ?	49
33.	मूल्यपरक शिक्षा के उद्देश्य बताइए।	50
34.	मूल्य निर्माण के स्रोत लिखिए।	51
35.	बच्चों में उचित मूल्यों के विकास में परिवार की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।	51
36.	मूल्य क्या है ? विभिन्न स्कूल विषयों के माध्यम से प्रजातांत्रिक, समाजवादी और धर्म–निरपेक्ष मूल्यों का विकास कैसे किया जा सकता है ?	52
37.	भारतीय समाज के मूल्य क्या है ? क्या शिक्षक को वर्तमान परिदृश्य में समाज का अनुसरण करना चाहिए ? स्पष्ट कीजिए।	53
38.	सांस्कृतिक विरासत का अर्थ स्पष्ट कीजिए।	55
39.	सांस्कृतिक विरासत के प्रकार बताइए।	56
40.	सांस्कृतिक विरासत एवं मूल्यों के संरक्षण पर लेख लिखिए।	57
41.	भारत में सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण पर प्रकाश डालिए।	61
42.	शिक्षा के अभिकरणों का उल्लेख कीजिए।	62
43.	"विद्यालय शिक्षा का औपचारिक सक्रिय साधन है।" स्पष्ट कीजिए एवं विद्यालयों के कार्य बताइए।	65
44.	विद्यालय को शिक्षा का प्रभावी अभिकरण बनाने के उपाय पर टिप्पणी लिखिए।	66
45.	विद्यालय समाज का आईना क्यों है ? स्पष्ट कीजिए।	67
46.	अनौपचारिक शिक्षा से क्या आशय है ? अनौपचारिक शिक्षा के अभिकरण बताइए।	71
47.	शिक्षा के औपचारिक तथा अनौपचारिक अभिकरणों में अंतर स्पष्ट कीजिए। इनमें समन्वय क्यों आवश्यक है ?	74
48.	शिक्षा के निरौपचारिक अभिकरण से क्या आशय है ?	75
49.	औपचारिक, अनौपचारिक एवं औपचारिकेत्तर (निरौपचारिक) शिक्षा में अंतर स्पष्ट कीजिए।	78
50.	शिक्षा के अभिकरण के रूप में परिवार की भूमिका का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।	79
51.	जनसंचार माध्यम का क्या अभिप्राय है ? जनसंचार माध्यम की आवश्यकता एवं महत्व को प्रतिपादित करते हुए शिक्षा के अभिकरण के रूप में जनसंचार माध्यम की भूमिका की विवेचना कीजिए।	82
52.	सामाजिक व्यवस्था का अर्थ एवं परिभाषाएँ लिखिए।	83
53.	माध्यमिक विद्यालय में 'पालक शिक्षक संघ' की उपयोगिता पर आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।	85
54.	सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को लिखिए।	86
55.	व्यक्ति संस्कृत कैसे होता है ? संक्षिप्त चर्चा कीजिए।	86
56.	शिक्षा किस प्रकार सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करने में सहायक है ?	87
57.	जॉन ड्यूवी ने शिक्षक के स्थान को किस तरह स्पष्ट किया है ?	88
58.	समाजीकरण तथा सामाजिक नियंत्रण में क्या अंतर है ? स्पष्ट कीजिए।	89
59.	विद्यालयों के प्रकारों को संक्षेप में लिखिए।	90
60.	भारतीय संस्कृति विभिन्नताओं के महासागर में अंतर्निहित एकता की धारा से संचालित होती है। व्याख्या कीजिए।	91
61.	शिक्षा के महत्व एवं प्रकारों को समझाइए।	92
62.	बुनियादी शिक्षा के आधारभूत सिद्धांतों को समझाइए।	94
63.	योग दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा कीजिए।	95
64.	सामाजिक परिवर्तन की समस्याओं को बताइए।	95

इकाई 2

1.	वैदिक साहित्य में शिक्षा से क्या अभिप्राय है ?	97
2.	वैदिक युगीन शिक्षा की विशेषताएँ बताइए।	98

3.	प्राचीन भारत में शिक्षा के उद्देश्य और आदर्श क्या थे ? आधुनिक भारत में एक प्रभावी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का निर्माण करते हुए उन्हें किस सीमा तक प्रयोग में लाया जा सकता है ? व्याख्या कीजिए।	100
4.	प्राचीन भारतीय वैदिक शिक्षा के मूल्यों का वर्णन कीजिए।	103
5.	प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का उल्लेख करें।	104
6.	वैदिक युगीन शिक्षा की व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।	106
7.	वैदिककालीन शिक्षण विधियों का उल्लेख कीजिए।	107
8.	वैदिककालीन मुख्य शिक्षा केन्द्रों का उल्लेख कीजिए।	107
9.	उत्तर वैदिक युगीन शिक्षा को स्पष्ट कीजिए।	108
10.	वैदिक शिक्षा प्रणाली के गुण–दोषों को लिखिए। वैदिक कालीन शिक्षा का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव बताइये।	112
11.	बौद्ध कालीन शिक्षा की विशेषताएँ बताइए।	115
12.	बौद्ध युगीन शिक्षा के उद्देश्य बताइए।	118
13.	बौद्धकालीन शिक्षा की व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए।	118
14.	बौद्धकालीन शिक्षा की शिक्षण विधियों का उल्लेख कीजिए।	120
15.	बौद्ध कालीन शिक्षा में शिक्षण संस्थाओं का उल्लेख कीजिए।	121
16.	बौद्धकालीन शिक्षा के अन्य क्षेत्र पर प्रकाश डालिए।	121
17.	बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली के गुण–दोषों को लिखिए। बौद्धकालीन शिक्षा का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव बताइए।	122
18.	वैदिक एवं बौद्धकालीन शिक्षा में अंतर बताइए।	125
19.	मध्यकालीन भारत की शिक्षा प्रणाली पर लेख लिखिए।	125
20.	मुस्लिम युगीन शिक्षा की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।	127
21.	मुस्लिम शिक्षा के उद्देश्य और आदर्श लिखिए।	129
22.	मुस्लिम युग में शिक्षा तथा संगठन की व्यवस्था किस प्रकार थी ? स्पष्ट करें।	131
23.	इस्लामिक/मध्यकालीन शिक्षा की शिक्षण विधियाँ बताइए।	132
24.	इस्लामिक/मध्यकालीन शिक्षा–प्रणाली का मूल्यांकन कीजिए। मध्यकालीन शिक्षा प्रणाली का आधुनिक भारतीय शिक्षा पर प्रभाव का वर्णन कीजिए।	133
25.	पारम्परिक शिक्षा की विशेषताएँ बताइए। पारम्परिक शिक्षा के लाभ तथा हानियाँ स्पष्ट कीजिए।	137
26.	औपनिवेशिक भारत में शिक्षा को स्पष्ट कीजिए।	139
27.	ईस्ट इंडिया कंपनी की प्रारंभिक शिक्षा नीति को संक्षिप्त में लिखिए।	140
28.	1813 ई. का आज्ञा पत्र पर लेख लिखिए।	142
29.	प्राच्य–पाश्चात्य विवाद पर लेख लिखिए।	143
30.	मैकाले की शिक्षा नीति पर लेख लिखिए।	143
31.	वुड के घोषणा पत्र (1854) की विवेचना कीजिए।	145
32.	वुड के घोषणा–पत्र का मूल्यांकन गुण–दोषों के आधार पर कीजिए।	147
33.	सार्जेण्ट रिपोर्ट का महत्व बताइए।	149
34.	राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन के उद्देश्य एवं कार्य लिखिए।	149
35.	भारत में राष्ट्रीय चेतना का विकास किस प्रकार हुआ ? विवेचना कीजिए।	151
36.	राष्ट्रीय व्यवस्था के विकास के लिए राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप की विवेचना कीजिए।	153
37.	वैदिक युग में शिक्षक की क्या भूमिका थी ? वर्णन कीजिए।	154
38.	प्राचीन भारतीय शिक्षा की मुख्य विशेषताओं पर चर्चा करें ।	155
39.	बौद्ध दर्शन के सामाजिक पहलू को विस्तार से समझाइए।	156
40.	शिक्षण के तरीकों के संदर्भ में औपनिवेशिक भारत में शिक्षा के ब्रिटिश सिस्टम के प्रमुख स्थलों को लिखिए।	157
41.	निम्न बिंदुओं के आधार पर वैदिक शिक्षा की विवेचना कीजिए– (i) उद्देश्य, (ii) शिक्षक एवं विद्यार्थी, (iii) पाठ्यचर्या।	158
42.	बौद्धिक शिक्षा के स्वरूप का वर्णन कीजिए।	160
43.	वैदिक कालीन तथा बौद्धिक कालीन शिक्षा में पाँच अन्तर बताइए।	161
44.	पारम्परिक शिक्षा पर टिप्पणी लिखिए।	162
45.	वैदिक शिक्षा की आधुनिक युग में प्रासंगिकता समझाइए।	163

इकाई 3

1.	माध्यमिक शिक्षा के मुख्य लक्ष्य एवं उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।	164
2.	माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रणाली को स्पष्ट कीजिए।	167
3.	माध्यमिक शिक्षा क्या है ? इसका विस्तार से वर्णन कीजिए।	170
4.	माध्यमिक शिक्षा में पाठ्यक्रम की अवधारणाओं का क्रम बताइये। माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा कोठारी आयोग के पाठ्यक्रम के क्षेत्र में हो रहे सुधारों पर प्रकाश डालिए।	172
5.	माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में परिवर्तन हेतु माध्यमिक शिक्षा आयोग एवं कोठारी आयोग के परामर्श को दर्शाइये।	174
6.	माध्यमिक शिक्षा की संरचना स्पष्ट कीजिए।	175
7.	स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा के विकास के लिये मुदालियर कमीशन की रिपोर्ट का उल्लेख करें।	177
8.	शिक्षा के लिए संवैधानिक प्रावधान स्पष्ट कीजिए।	184
9.	माध्यमिक शिक्षा आयोग का मूल्यांकन कीजिए।	186
10.	निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए— (1) C.B.S.E., (2) I.C.S.E., (3) K.S.E.E.B., (4) परीक्षा प्रणाली (Examination system).	187
11.	भारतीय शिक्षा आयोग, 1964-66 पर एक विस्तृत लेख लिखिए।	191
12.	नवीन शिक्षा नीति क्या है ? 1986 की शिक्षा नीति का उल्लेख कीजिए।	195
13.	संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1992 क्या है ? यह शिक्षा नीति क्यों संशोधित शिक्षा नीति है ? वर्णन कीजिए।	196
14.	माध्यमिक शिक्षा के अंतर्गत अध्यापक की योग्यताओं पर प्रकाश डालिए एवं उनके कार्यों का उल्लेख कीजिए।	197
15.	प्रगतिशील भारत के माध्यमिक विद्यालय के अध्यापक की भूमिका के महत्व को बताइये।	199
16.	शैक्षिक अवसरों की समानता को स्पष्ट कीजिए।	200
17.	शिक्षक का रोजगार प्रारूप।	200
18.	माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की वृत्तिक नैतिकता का वर्णन कीजिए।	201
19.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 की विस्तृत व्याख्या कीजिए।	202
20.	कोठारी आयोग के उद्देश्य एवं सिफारिशों का उल्लेख कीजिए।	204
21.	कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (1917) द्वारा दिए गए सुझावों को लिखिए।	207
22.	माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण से आप क्या समझते हैं ? व्यावसायिक शिक्षा के विकास हेतु आप क्या सुझाव देंगे ?	209
23.	वर्तमान परिदृश्य में माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।	211
24.	भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा पर टिप्पणी लिखिए।	212
25.	मुदलियार आयोग द्वारा अनुशंसित माध्यमिक शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप पर प्रकाश डालिए।	214
26.	उदीयमान भारत में शिक्षक की भूमिका पर प्रकाश डालिए।	217
27.	राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की प्रासंगिकता समझाइए।	218
28.	शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख संवैधानिक प्रावधानों को विस्तार से समझाइए।	218
29.	भारतीय जीवन मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका बताइए।	219
30.	वृत्तिक नैतिकता से आप क्या समझते हैं तथा नैतिकता के आयामों को बताइए।	221
31.	माध्यमिक शिक्षक किस प्रकार विद्यालय और समुदाय के बीच की कड़ी है ?	223
32.	प्रचलित परीक्षा प्रणाली में सुधारों की चर्चा कीजिए।	225

इकाई 4

1.	शिक्षक शिक्षा की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।	226
2.	अध्यापक शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।	226

3.	अध्यापक शिक्षा आज विभिन्न दृष्टिकोण से विचार करने पर क्यों आवश्यक मानी जाती है ? स्पष्ट कीजिए।	227
4.	प्राथमिक स्तर पर कार्यरत अध्यापकों के अध्यापक शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।	229
5.	माध्यमिक स्तर के अध्यापक शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।	229
6.	उच्चतर माध्यमिक स्तरीय अध्यापक शिक्षा के विशिष्ट उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।	230
7.	एन.सी.ई.आर.टी. (NCERT) के अनुसार अध्यापक शिक्षा के उद्देश्य का वर्णन कीजिए।	231
8.	अध्यापक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (N.C.T.E.) द्वारा निर्धारित उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।	232
9.	विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) के कार्यों का वर्णन कीजिए।	233
10.	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) के उद्देश्यों एवं कार्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।	234
11.	राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) के संगठन एवं कार्यों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।	236
12.	शिक्षक–शिक्षा कॉलेज (College of Teacher Education — CTE) पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।	237
13.	उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान (Institute of Advanced Studies in Education; IASE) पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।	238
14.	राज्य शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान (DSERT) पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।	238
15.	राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (R.M.S.A.) का संक्षिप्त परिचय दीजिए।	239
16.	राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना (2005) की रूपरेखा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।	240
17.	राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना (2005) का महत्व एवं आवश्यकता का वर्णन कीजिए।	242
18.	राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना (2005) के लक्ष्य स्पष्ट कीजिए।	243
19.	राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना, 2005 की मुख्य बाधाओं का वर्णन कीजिए।	244
20.	अध्यापक शिक्षा की मुख्य समस्याएँ क्या है ? विस्तृत वर्णन कीजिए।	245
21.	भारत में अध्यापक शिक्षा के लक्ष्य का वर्णन कीजिए।	246
22.	शिक्षक शिक्षा के प्रकार क्या है ? भारत में शिक्षक शिक्षा की वर्तमान स्थिति पर चर्चा कीजिए।	246
23.	विद्यालय शिक्षक की दक्षता एवं उत्पादकता को बढ़ाने के लिए किन्हीं दो कार्यक्रमों पर चर्चा कीजिए।	247
24.	राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के मुख्य बिंदुओं का उल्लेख कीजिए।	248
25.	अध्यापक शिक्षा की दार्शनिक आवश्यकताएँ बताइए।	251
26.	राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन को संक्षेप में समझाइए।	252
27.	राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) द्वारा पूर्व सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा के लिए कौन–कौन से गुण होने चाहिए ? लिखिए।	253
28.	विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के लक्ष्य एवं उद्देश्य क्या हैं ?	254
29.	अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।	256
30.	अध्यापक शिक्षा से आप क्या समझते हैं ? नई शिक्षा–नीति में अध्यापक–शिक्षा के सशक्तिकरण के लिए कौन–से कदम उठाए गए हैं ?	257
31.	भारत में अध्यापक शिक्षा की कुछ प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए और उसके समाधान के लिए सुझाव दीजिए।	258
32.	अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय के उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।	259
33.	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) को समझाते हुए भारत में व्यावसायिक संस्थानों का शिक्षण क्षेत्र में महत्व लिखिए।	260
34.	शिक्षक शिक्षा का अर्थ बताइए तथा शिक्षक शिक्षा के उद्देश्यों को समझाइए।	261
35.	शिक्षक शिक्षा के सन्दर्भ में स्थिति निर्धारण और विषयवस्तु सम्वर्द्धन कार्यक्रमों के बारे में चर्चा कीजिए।	263

***

है। यह शिक्षा एक निश्चित समय या उम्र से प्रारंभ होती है और एक निश्चित उम्र पर जाकर समाप्त हो जाती है। शिक्षा का एक विशेष प्रकार का पाठ्यक्रम होता है। शिक्षा के संकुचित अर्थ में बालक का स्थान गौण तथा शिक्षक का स्थान मुख्य होता है।

इस संदर्भ में विद्वानों के मत इस प्रकार हैं–

जे.एस. मेकेन्जी के अनुसार–"संकुचित अर्थ में शिक्षा का अभिप्राय हमारी शक्तियों के विकास और उन्नति के लिए चेतनापूर्वक किए गए किसी भी प्रयास से हो सकता है"।

प्रो. ड्रिवर के अनुसार– "शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसमें/जिसके द्वारा बालक के ज्ञान, चरित्र, तथा व्यवहार को एक विशेष साँचें में ढाला जाता है"

शिक्षा का व्यापक अर्थ– व्यापक दृष्टि से शिक्षा का अर्थ उन सभी अनुभवों से है, जो बालक विभिन्न परिस्थितियों में अर्जित करता है। यह सारा संसार शिक्षा क्षेत्र है। प्रत्येक व्यक्ति शिक्षार्थी है। वे सब जीवनपर्यन्त कुछ–न–कुछ सीखते हैं। अतः व्यक्ति का सारा जीवन उसका शिक्षा काल है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति जहाँ दूसरों से कुछ सीखता है वह दूसरों को भी कुछ–न–कुछ शिक्षा देता है। जीवन की छोटी–छोटी घटनाएँ भी हमें शिक्षा देती रहती हैं। इसी प्रकार शिक्षा प्राप्त करने तथा प्रदान करने का कोई निश्चित स्थान नहीं है। शिक्षा के व्यापक अर्थ का स्पष्टीकरण निम्नांकित परिभाषाओं से किया जा सकता है–

जे.एस. मेकेन्जी के अनुसार–"व्यापक दृष्टि से शिक्षा जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है और जीवन के प्रत्येक अनुभव के द्वारा इसका विकास होता है।"

प्रो. डम्विल के अनुसार–"शिक्षा के व्यापक अर्थ में सभी प्रभाव आते हैं, जो व्यक्ति को जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रभावित करते हैं।"

वर्तमान में शिक्षा के विस्तृत अर्थ को स्वीकार किया जा रहा है। शिक्षा के व्यापक अर्थ में निम्नलिखित शिक्षा के सभी रूपों का समावेश होता हैं–

1. नियमित या औपचारिक शिक्षा, 2. अनियमित या अनौपचारिक शिक्षा, 3. औपचारिकेत्तर शिक्षा, 4. प्रत्यक्ष शिक्षा, 5. परोक्ष शिक्षा, 6. सामूहिक शिक्षा, 7. सामान्य शिक्षा, 8. विशिष्ट शिक्षा, 9. सतत् शिक्षा एवं 10. वैयक्तिक शिक्षा।

शिक्षा के सामान्य एवं वैयक्तिक उद्देश्य–प्रश्न क्रमांक 8 तथा 10 देखें।

प्रश्न 2. भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षा के अर्थ को परिभाषित कीजिए। पाश्चात्य शिक्षा की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। (इंदौर 2017; ग्वालियर 21; छतरपुर 22)

***अथवा*, भारत में पश्चिमी शिक्षा क्या है ? भारतीय और पश्चिमी शिक्षा प्रणाली में क्या अंतर है ? (भोपाल 2021)**

***अथवा*, भारतीय शिक्षा के दर्शन तथा पाश्चात्य शिक्षा की समीक्षा के आधार पर शिक्षा के कार्य लिखिए। (उज्जैन 2022)**

उत्तर–पाश्चात्य दृष्टिकोण में शिक्षा का शाब्दिक अर्थ– 'शिक्षा' शब्द को अंग्रेजी भाषा के शब्द 'Education' का पर्याय माना जाता है और इस अंग्रेजी भाषा के शब्द (Education) की उत्पत्ति, लैटिन भाषा के शब्द 'एडूकेटम' से मानी जाती है जो दो शब्दों 'E' और 'DUCO' से मिलकर बना है। इन दोनों का सामान्य अर्थ में E (ए) का अर्थ है– 'अन्दर से (भीतर से)' और डूको (Duco) का अर्थ 'आगे बढ़ाना (बाहर करना)' अर्थात् विकसित करना। इस प्रकार इन दोनों शब्दों का सामान्य अर्थ हुआ 'अन्दर से बाहर की ओर निकाल कर आगे बढ़ाना'। इस प्रकार पाश्चात्य दृष्टिकोण में एजुकेशन का शाब्दिक अर्थ होता है 'व्यक्ति के आन्तरिक शक्तियों को ज्ञात कर उन्हें विकसित करना।'

परिभाषाएँ–

फ्रॉबेल के अनुसार–"शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जो बालक के आंतरिक गुणों का विकास करती है।"

प्लेटो के अनुसार– "शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास की प्रक्रिया ही शिक्षा है।"

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार– 'शिक्षा' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा से मानी जाती है जो संस्कृत भाषा में 'शिक्ष्' धातु से बना है, जिसका प्रयोग 'सीखने' अर्थात् ज्ञान ग्रहण करने के अर्थ में होता है। प्राचीन समय में 'शिक्षा' के लिए 'विद्या' शब्द भी प्रयोग में लाया जाता था जो 'विद्' धातु से बना है जिसका अर्थ 'जानना' अर्थात् 'ज्ञान'। इस प्रकार भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार, 'शिक्षा शब्द का प्रयोग 'सीखने' व 'ज्ञान' के रूप में लिया जाता है जिसकी उत्पत्ति संस्कृत की 'शिक्ष्' एवं 'विद्' धातु से मानी जाती है।

परिभाषाएँ– स्वामी विवेकानंद के अनुसार–"मनुष्य में निहित परिपूर्णता का उद्घाटन करना ही शिक्षा है। मनुष्य के भीतर ही ज्ञान है, बाहर से कोई ज्ञान नहीं दिया जा सकता है।"

महात्मा गाँधी के अनुसार– "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा में निहित सर्वोत्तम शक्तियों के उद्घाटन से हैं।"

शिक्षा के संकुचित अर्थ की विशेषताएँ– 1. शिक्षा के संकुचित अर्थ के अनुसार, 'शिक्षा का उद्देश्य' बालक का केवल मानसिक विकास होता है अर्थात् बालक के सर्वांगीण विकास पर ध्यान न देकर केवल एक पक्षीय विकास पर ध्यान दिया जाता है।

2. शिक्षा का स्थान व क्षेत्र एक निश्चित चारदीवारी तक सीमित होता है। 'विद्यालय' मुख्य रूप से वह स्थान है जहाँ पूर्व–निश्चित विद्यालय भवनों में शिक्षा प्रदान की जाती है।

3. शिक्षा का केन्द्र 'शिक्षक' होता है जो कि अपने ज्ञान को छात्रों के मस्तिष्क में बैठाने का प्रयास करता है।

4. शिक्षा की अवधि पूर्व निर्धारित होती है। वस्तुतः छात्र जीवन काल ही शिक्षा का काल होता है।

5. शिक्षा का पाठ्यक्रम, विषय, पाठ्य–पुस्तकें आदि सब पूर्व–निश्चित होते हैं।

6. संकुचित अर्थ में शिक्षा में पूर्व–निश्चित शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है।

7. सम्पूर्ण शिक्षा एकतंत्रीय होती है जिसमें शिक्षकों द्वारा दिये गए निर्देशों का पालन आवश्यक होता है।

शिक्षा के व्यापक अर्थ की विशेषताएँ– 1. व्यापक अर्थ में शिक्षा का कार्य जीवन–पर्यन्त चलता रहता है अर्थात् व्यक्ति जन्म से लेकर अंत तक कुछ–न–कुछ सीखता रहता है।

2. व्यापक अर्थ में शिक्षा के क्षेत्र के अन्तर्गत् सम्पूर्ण विश्व का समावेश होता है।

3. मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन शिक्षा अवधि होता है। वह जीवन–पर्यंत व्यक्तियों, प्राणियों तथा अन्य तत्वों के सम्पर्क में आकर कुछ–न–कुछ सीखता रहता है।

4. शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी अन्तर्निहित शक्तियों को विकसित कर संसार की परिस्थितियाँ एवं वातावरण के साथ अनुकूलन करता है और उन पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करता है। इस प्रकार शिक्षा व्यक्ति की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है।

5. शिक्षा का केन्द्र स्वयं बालक ही होता है और उसी को केन्द्र मानकर शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि आदि का निर्धारण किया जाता है।

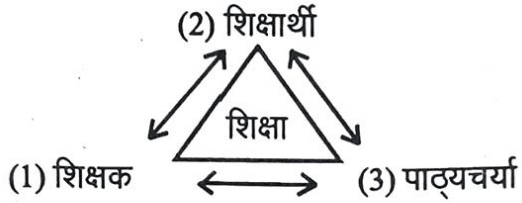
6. शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है।

प्रश्न 3. "शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया है।" इस कथन का विश्लेषण करते हुए शिक्षा के विभिन्न अंगों की व्याख्या कीजिए। **(ग्वालियर 2021)**

***अथवा*, शिक्षा की प्रक्रिया का विश्लेषण कोई चार तथ्यों के आधार पर कीजिए।**

उत्तर–(1) शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया है– रायबर्न ने शिक्षा को त्रिध्रुवीय प्रक्रिया माना है। इनके अनुसार शिक्षा के तीन ध्रुव होते हैं– शिक्षार्थी, शिक्षक और पाठ्यचर्या।

शैक्षिक तकनीकी के विकास के पूर्व तक शिक्षा के यही तीन अंग अथवा ध्रुव माने जाते रहे। इसे हम निम्नलिखित रूप में प्रकट कर सकते हैं–



शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया

1. अध्यापक या शिक्षक– जो शिक्षा प्रदान करता है।

2. विद्यार्थी या शिक्षार्थी– जो शिक्षा ग्रहण करता है।

3. पाठ्यचर्या– विद्यालय में पढ़ाए जाने वाले विषय।

एडम्स की बात डी.वी. ने भी माना है, किन्तु एक और तथ्य जोड़कर, उसने शिक्षा को द्विमुखी के बदले त्रिमुखी कहा है। इसमें शिक्षक एवं छात्र के अलावा सामाजिक तत्वों का भी भरपूर प्रभाव है और इसका महत्व उन दोनों से कम नहीं है।

(2) शिक्षा एक विकासात्मक प्रक्रिया है– पेस्टालॉजी का कहना है कि, "शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक, समरूप एवं प्रगतिशील विकास है।"

ऐसा ही विचार **रूसो** का भी था। उसने कहा था कि "शिक्षा अंदर के विकास को कहते हैं न कि बाहर की विकास को।" इसी प्रकार **गाँधीजी** ने कहा है कि, "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक तथा मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा में अन्तर्निहित सर्वोत्तम शक्तियों के सर्वांगीण विकास से हैं।"

(3) शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है–शिक्षा स्थिर नहीं, विकासोन्मुख है। इसमें परिवर्तन होता है। शिक्षा के गतिशील स्वरूप को सभी शिक्षाशास्त्री स्वीकार करते हैं। शिक्षा जीवन के लिए है। शिक्षा स्वयं जीवन है। जीवन विकास है। जीवन का अर्थ गति है। इस प्रकार शिक्षा गतिशील है। इसलिए **रेमण्ट** ने लिखा है कि, "शिक्षा विकास का वह क्रम हैं, जिसमें व्यक्ति की शैशवावस्था से प्रौढ़ावस्था तक की वे क्रियाएँ निहित हैं, जिनके द्वारा वह अपने को धीरे–धीरे विभिन्न विधियों से अपने भौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बनाता है।"

(4) शिक्षा एक परिवर्तन है–शिक्षाशास्त्रियों का विचार है कि शिक्षा एक परिवर्तन है। यह व्यक्ति के व्यवहार एवं आचार–विचार में परिवर्तन लाती है। जन्म के समय बालक असहाय, अव्यावहारिक एवं अशिक्षित होता है। शिक्षा ही उसे व्यावहारिक, शिक्षित, सभ्य, सुसंस्कृत एवं परिष्कृत बनाती है।

कनिंघम ने लिखा है कि, "व्यक्ति एवं समाज दोनों दृष्टिकोण से शिक्षा परिवर्तन लाती है।"

शिक्षा क्षमता में परिवर्तन लाती है और बालक को क्षमताशील बनाती है, अज्ञान के बदले ज्ञान का भंडार भरती है तथा विचारों, आदर्शों एवं अभिप्रेरणाओं में परिवर्तन लाती है। संसार के सभी परिवर्तन शिक्षा के माध्यम से ही आते हैं।

प्रश्न 4. शिक्षा की प्रकृति पर प्रकाश डालिए। **(छतरपुर 2022)**

उत्तर–शिक्षा की प्रकृति के संबंध में मूल रूप से दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों ने विचार किया है। इन सबके दृष्टिकोणों से शिक्षा की प्रकृति के विषय में निम्नलिखित तथ्य उजागर होते हैं–

1. शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। इसके मुख्य रूप से तीन अंग होते हैं–सिखाने वाला, सीखने वाला और सीखने–सिखाने की विषय–सामग्री अथवा क्रिया। यह बात दूसरी है कि सिखाने वाला सीखने वालों के सामने प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित रहता है या पर्दे के पीछे कार्य करता है।

2. व्यापक अर्थ में शिक्षा की प्रक्रिया किसी समाज में निरंतर चलती है, परंतु संकुचित अर्थ में यह केवल विद्यालयों में ही चलती है। हमें शिक्षा को उसके व्यापक रूप में ही लेना चाहिए। इस दृष्टि से यह एक अविरल (निरंतर) प्रक्रिया है।

3. शिक्षा साद्देश्य प्रक्रिया है, इसके उद्देश्य समाज द्वारा निश्चित होते हैं और विकासोन्मुख होते हैं। इस प्रकार शिक्षा विकास की प्रक्रिया है।

4. व्यापक अर्थ में शिक्षा की विषय–सामग्री अति व्यापक होती है, उसे सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है परंतु संकुचित अर्थ में इसकी विषय–सामग्री निश्चित पाठ्यचर्या तक सीमित होती है। इन दोनों अर्थों में व्यक्ति और समाज के विकास में सहायक होती है।

5. शिक्षा का स्वरूप समाज के धर्म–दर्शन, उसकी संरचना–संस्कृति, शासनशास्त्र, अर्थतंत्र और वैज्ञानिक प्रगति आदि पर निर्भर करता है।

6. व्यापक अर्थ में शिक्षा की विधियाँ अति व्यापक होती हैं, परंतु संकुचित अर्थ में प्रायः निश्चित होती हैं।

7. उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि किसी समाज के धर्म–दर्शन, संरचना–संस्कृति, शासनतंत्र, अर्थतंत्र और वैज्ञानिक परिवर्तनों के साथ–साथ उसकी शिक्षा के स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार शिक्षा की प्रकृति गतिशील होती है।

उपरोक्त बिंदुओं से स्पष्ट होता है, कि मानव–जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। केवल शिक्षा की ओर ध्यान केन्द्रित करने में ही शिक्षा संबंधी कार्य पूर्ण नहीं हो जाता, बल्कि हमें शिक्षा के स्वरूप को और अधिक परिष्कृत करके उसका क्रियान्वयन करना चाहिए।

प्रश्न 5. शिक्षा की आवश्यकता बताइए।

उत्तर–मानव को जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत तक शिक्षा की आवश्यकता रहती है। प्रत्येक समय उसका प्रभाव किसी–न–किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहता है। मानव का अस्तित्व बिना शिक्षा के इस प्रकार है जैसे बिना पतवार के नाव। प्रत्येक मानव के लिए हर समय एवं हर स्थान पर शिक्षा की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता।

अतः निम्नलिखित बिंदुओं से इस आवश्यकता को मानव के जीवन से जोड़ा गया है–

1. प्रत्येक प्राणी की आन्तरिक शक्तियों को समझने के लिए।
2. आन्तरिक शक्तियों के समुचित विकास के लिए।
3. प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता को समझने के लिए।
4. आधुनिक समाज की प्रकृति, आवश्यकताओं और कर्त्तव्यों के ज्ञान के लिए।
5. मानवीय गुणों के संचार के लिए।

6. अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की समुचित संतुष्टि के लिए।

7. राष्ट्रीय एकता तथा अन्तर्राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए।

8. व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए।

9. व्यक्ति में सहयोग, प्रेम, सहानुभूति, करूणा, बलिदान, न्यायप्रियता तथा समाज सेवा की भावना के विकास के लिए शिक्षा अत्यधिक आवश्यक है।

इस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। अपितु शिक्षा की ओर ध्यान आकर्षित करने से ही हमारा कार्य पूर्ण नहीं हो जाता, हमें शिक्षा के स्वरूप को परिष्कृत करके लागू करना चाहिए।

प्रश्न 6. शिक्षा का आधुनिक अर्थ बताते हुए शिक्षा के आधार बताइए। (छतरपुर 2022)

उत्तर–शिक्षा का आधुनिक अर्थ– आधुनिक अर्थ में शिक्षा समायोजन की ज्ञान–दक्षता है। यह आन्तरिक शक्तियों का विकास है और बालक की स्वाभाविक प्रेरणाओं के आधार पर उसका विकास करती है। शिक्षा का अर्थ विद्यालयों में प्रदान किया जाने वाला ज्ञान ही नहीं है, अपितु शिक्षा का आदान–प्रदान संसार में सम्पूर्ण जीवन चलता है। शिक्षा का अर्थ बालक पर ज्ञान लादना नहीं है, वरन् उसकी आंतरिक शक्तियों का विकास करना है। शिक्षा सामाजिक विकास की एक प्रक्रिया है जो व्यक्ति को सामाजिक जीवन के लिए तैयार करती है। शिक्षा–त्रिमुखी प्रक्रिया है। इसमें शिक्षक और छात्र सक्रिय रहकर शिक्षण–प्रक्रिया के माध्यम से आदान–प्रदान कर शिक्षा ग्रहण करते हैं।

शिक्षा के आधार– शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त चलती रहती है यह प्रक्रिया शिक्षक, शिक्षार्थी और शैक्षणिक वातावरण के मध्य होने वाली एक अन्तःक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षार्थी के व्यवहार में वांछित व्यवहारगत् परिवर्तन लाकर उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास किया जाता है। इस शैक्षिक प्रक्रिया के अनेक आधार हैं जो शिक्षा को निरन्तर दिशा प्रदान करते हैं। वे आधार निम्नलिखित हैं–

1. दार्शनिक आधार– शिक्षा को प्रारंभ में दर्शन का ही एक पर्याय माना जाता था परंतु आज शिक्षा का क्षेत्र दिन–प्रतिदिन विस्तृत होता जा रहा है। दार्शनिक आधार शिक्षा के उद्देश्यों और आधारों का निर्धारण करता है तथा शैक्षणिक प्रक्रिया को एक निश्चित दिशा प्रदान करता है दार्शनिक आधार शिक्षा को जीवन से संबंधित कर एक ऐसा रूप प्रदान करता है जिससे शिक्षा नैतिकता की कसौटी पर उतर सके।

किसी भी संस्कृति पर आधारित समाज व देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक स्थिति को दर्शन आधार प्रदान करता है ताकि शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके।

2. मनोवैज्ञानिक आधार– विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों ने अपने–अपने अध्ययनों के आधार पर एक विचार पर तो अपनी सर्वसम्मति व्यक्त की है कि 'शिक्षा जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त चलने वाली एक प्रक्रिया है।' शिक्षा प्रक्रिया का उद्देश्य बालक में वांछित व्यवहारगत् परिवर्तन लाना है ताकि विद्यार्थी अधिक–से–अधिक अधिगम कर सके। विद्यार्थी में यह व्यवहारगत् परिवर्तन शिक्षक एवं विद्यालय वातावरण के साथ होने वाली अन्तःक्रिया से संभव है। इस व्यवहारगत् परिवर्तन एवं अधिगम के उपरान्त ही विद्यार्थी के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास को सही दिशा मिल सकती है। शिक्षा मनोविज्ञान ही अध्ययन हेतु शैक्षिक प्रक्रिया को वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत करता है।

3. समाजशास्त्रीय आधार – शिक्षा व समाज दोनों महत्वपूर्ण रूप से अन्तर्सम्बन्धित रहते हैं शिक्षा समाज को स्थायित्व प्रदान करने का साधन है। शिक्षा समाज के उत्थान एवं परिवर्तन का

आधार प्रस्तुत करती है। शिक्षा को सामाजिक व्यवस्था एवं मूल्यों के अनुरूप होना चाहिए। समाज शिक्षा को अपने अनुकूल बनाता है। शिक्षा समाज में होने वाले परिवर्तनों से भी प्रभावित होती है और उसी के अनुरूप अपने को निरंतर गतिशील बनाये रखती है। शिक्षा का यह समाजशास्त्रीय आधार शिक्षा को सुदृढ़ दिशा प्रदान कर सकता है।

प्रश्न 7. शिक्षा के कार्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिए। **(रीवा 2022)**

***अथवा*, भारतीय शिक्षा के दर्शन तथा पाश्चात्य शिक्षा की समीक्षा के आधार पर शिक्षा के कार्य लिखिए।**

***अथवा*, राष्ट्र व समाज के प्रति शिक्षा के कार्यों की विवेचना कीजिए। उदाहरण से स्पष्ट कीजिए।**

***अथवा*, सामाजिक जीवन में शिक्षा के कार्यों की विवेचना कीजिए।** **(ग्वालियर 2022)**

उत्तर–शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है इसके द्वारा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी का विकास होता है। यह मनुष्य को वह सब प्राप्त करने में सहायता करती है जिसके वह योग्य होता है और जिसकी वह आकांक्षा करता है। इसके कार्यों को सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। यह मनुष्य के भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों से संबंधित होती है। यह उसे भूत से परिचित कराती है, वर्तमान में जीने योग्य बनाती है और भविष्य का निर्माण करने की क्षमता प्रदान करती है। दार्शनिकों की दृष्टि से यह मनुष्य को अपने जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने योग्य बनाती है।

शिक्षा के सामान्य कार्य (मानव जीवन में शिक्षा के कार्य)– शिक्षा के सामान्य कार्य निम्नलिखित हैं–

1. अनुभवों का पुनर्गठन एवं पुनर्रचना–**जॉन डी.वी** के शब्दों में, "शिक्षा का मुख्य कार्य है प्रत्येक पग पर अपने अनुभव द्वारा जीवन को समृद्ध बनाना।"

2. आवश्यकता की पूर्ति– शिक्षा के इस कार्य पर प्रकाश डालते हुए स्वामी विवेकानंद ने लिखा है, "शिक्षा का कार्य यह पता लगाना है कि जीवन की समस्याओं को कैसे सुलझाया जाये और इसी बात की ओर संसार के आधुनिक सभ्य समाज का गंभीर ध्यान पूर्णतया लगा हुआ है।"

3. आत्मनिर्भरता की प्राप्ति– स्वामी विवेकानंद के शब्दों में, "केवल पुस्तकीय ज्ञान से काम नहीं चलेगा। हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है, जिससे व्यक्ति अपने पैरों पर स्वयं खड़ा हो जाए।"

4. उत्तम नागरिकता का निर्माण– माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, "शिक्षा को ऐसे चारित्रिक गुणों, आदतों तथा दृष्टिकोणों को विकसित करना चाहिए, जिससे नागरिक अपनी प्रजातांत्रिक नागरिकता के उत्तरदायित्वों को पूरा कर सके तथा उन प्रवृत्तियों को नष्ट कर सके जो व्यापक राष्ट्रीय तथा धर्मनिरपेक्षता दृष्टिकोण के विकसित होने में बाधित हो।"

5. नैतिकता का विकास– हरबर्ट का विश्वास है कि शिक्षा बालक के आचरण को सुधार कर उसका नैतिक विकास कर सकती है। अतः उसके अनुसार, "शिक्षा के सम्पूर्ण कार्य को एक ही शब्द में प्रकट किया जा सकता है और वह शब्द है–नैतिकता।"

6. व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास– शिक्षा के इस कार्य पर **डेनियल वेबस्टर** ने बल देते हुए लिखा है कि, "शिक्षा के द्वारा भावनाओं को अनुशासित, आवेगों को नियंत्रित और अच्छी प्रेरणा को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।"

7. जन्मजात शक्तियों का विकास–प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री **फ्रॉबेल** के अनुसार, "शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियाँ बाहर की ओर प्रकट होती है।"

8. राष्ट्रीय एकता– शिक्षा के इस कार्य पर बल देते हुए **डॉ. राधाकृष्णन** ने लिखा है, "भारत में प्रजातंत्र का भविष्य अनुशासन में रहने की इच्छा तथा व्यक्तिगत बलिदान पर आधारित है। यदि भारत को स्वतंत्र, संयुक्त तथा प्रजातांत्रिक रहना है, तो शिक्षक को चाहिए कि वह लोगों को एकता के लिए न कि प्रादेशिकता के लिए, प्रजातंत्र के लिए न कि तानाशाही के लिए प्रशिक्षित करें।

9. वातावरण के अनुकूल– वातावरण शिक्षक का कार्य है– बालक को उस वातावरण के अनुकूल बनाना ताकि वह जीवित रह सके तथा अपनी मूल प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने के लिए अधिक –से–अधिक संभव अवसर प्राप्त कर सकें।"

10. संस्कृति एवं सभ्यता का संरक्षण– शिक्षा एक पीढ़ी के लोग दूसरी पीढ़ी के लोगों में संस्कृति का संक्रमण करते हैं ताकि वे उसका संरक्षण कर सकें तथा यदि संभव हो तो उसमें उन्नति कर सकें।

समाज संबंधी कार्य– प्रत्येक समाज अथवा राज्य शिक्षा की व्यवस्था व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी के उत्थान की दृष्टि से करता है। सामाजिक दृष्टि से शिक्षा के दो कार्य हैं– सामाजिक नियंत्रण और सामाजिक परिवर्तन। इन दो कार्यों को करने के लिए उसे अनेक कार्य करने होते हैं, जो कि निम्नलिखित हैं–

1. सामाजिक नियमों का ज्ञान– "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।" जिसके बिना वह एक पल भी नहीं रह सकता है, अतः मानव के लिए आवश्यक है कि उसके नियमों के जानकारी रखे, जिससे समाज में उसका सम्मानित स्थान हो। यह शिक्षा द्वारा ही संभव है।

2. प्राचीन साहित्य का ज्ञान– शिक्षा के माध्यम से होने वाला प्राचीन साहित्य का ज्ञान हमें समाज की पिछली तस्वीर से अवगत कराता है और बताता है कि आज का समाज किस प्रकृति का है? भूत तथा वर्तमान के आधार पर हम भविष्य की कल्पना आसानी से कर सकते हैं।

3. कुरीतियों के निवारण में सहायक– शिक्षा के माध्यम से आने वाली पीढ़ी को समस्याओं से अवगत कराकर उसके प्रति शीतक्रांति लायी जा सकती है; जैसे– जांतिप्रथा, प्रदेशवाद, बाल–विवाह आदि।

4. सामाजिक भावना का विकास– व्यक्ति समाज से न तो पृथक् रह सकता है और न ही उसे पृथक् किया जा सकता है। अतः उसमें प्रेम, परोपकार, दया, भाई–चारे की भावना आनी चाहिए, जैसा कि **एच. गार्डन** ने कहा है, "शिक्षक को यह जानना आवश्यक है कि वह सामाजिक प्रक्रिया को उन व्यक्तियों को समझाने की दिशा में कार्य करे जो इसे समझने में असमर्थ हैं।"

5. सामाजिक उन्नति में सहायक– शिक्षा सामाजिक क्रियाओं, तथ्यों का लेखा–जोखा साहित्य के रूप में रखती है। अतः अगली पीढ़ी उसकी कमियों को समझकर उसे दूर करने का प्रयास करती है, जिसके परिणामस्वरूप मानव से लेकर आधुनिक अवस्था तक की प्रगति है।

6. सभी धर्मों के विषय में उदार दृष्टिकोण– धार्मिक दृष्टि से देखा जाये तो अनेक वाद–विवाद धर्मों के कारण ही होते हैं। यदि निष्पक्ष भावना से देखा जाये तो कोई भी धर्म दूषित विचारों को स्थान नहीं देता है। उन सभी धर्मों के आदर्शों पर चला जाये तो सभी उन्नति के पथ पर ले जाते हैं। अतः शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन इस समस्या को दूर कर सकता है।

राष्ट्र संबंधी कार्य– राष्ट्र के विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। व्यक्ति से समाज और समाज से राष्ट्र के निर्माण की कड़ी में महत्वपूर्ण भूमिका शिक्षा की ही रहती है एवं शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका शिक्षक की ही रहती है। शिक्षक के द्वारा ही व्यक्ति राष्ट्र का सभ्य नागरिक बन सकता है। राष्ट्र से संबंधित शिक्षा के अग्रलिखित कार्य बताये जा सकते हैं–

1. नेतृत्व के लिये प्रशिक्षण– देश के विकास में विशेषकर उस देश में जहाँ की शासन व्यवस्था प्रजातांत्रिक हो वहाँ नेतृत्व के कारक की विशेष भूमिका रहती है। नेतृत्व का प्रजातंत्र के साथ गहरा संबंध होता है। विद्यालय में रहकर ही बालक में नेतृत्व के गुण विकसित हो सकते हैं। इसके लिए शिक्षा के द्वारा ही इस प्रकार के कार्यक्रमों व योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाता है जिनसे छात्रों में उचित व वांछित नेतृत्व के गुणों का विकास हो सके।

2. भावनात्मक एकता– धर्म, जाति, राज्य, भाषा, रीति–रिवाज, पहनावा को देखते हुए भारत में अनेक भिन्नताएँ पायी जाती हैं। हम अपने धर्म को अच्छा समझते हैं तथा दूसरों के धर्म को बुरा, यही कारण है कि आये दिन झगड़े होते रहते हैं। इसके निवारण का उपाय शिक्षा है, जो उनके मूलभूत सिद्धांतों को समझा सकती है।

3. राष्ट्रीय विकास– प्रत्येक राष्ट्र का विकास उसके नागरिकों पर निर्भर है, यदि देश के सभी व्यक्ति शिक्षित होंगे तो निश्चित ही राष्ट्र के नागरिक आत्मनिर्भर बनेंगे, इससे प्रत्येक नागरिक के आय में वृद्धि होगी। इस प्रकार राष्ट्रीय आर्थिक विकास दृष्टिगोचर होगा।

4. राष्ट्रीय एकता– जातिवाद, राज्य, क्षेत्र, भाषा को लेकर अनेक झगड़े खड़े हो जाते हैं। हम भारतवासी कहलाने वाले अपने को पंजाबी, बंगाली एवं गुजराती कहते हैं तथा अपनी–अपनी भाषा को प्रमुख मानते हैं, ऐसा क्यों ? शिक्षा द्वारा यह भावनाएँ दूर करके भारतीयता की भावना लायी जा सकती है।

5. सार्वजनिक हित संबंधी– आजकल मानव अत्यधिक स्वार्थी हो गया है, परंतु शिक्षा ही उनको यह समझा सकती है कि सभी का हित होगा तो उसमें कुछ अपना भी हित हो सकता है। केवल स्वयं के भले में दूसरों का तो लेशमात्र भी भला नहीं हों सकता है इसलिए स्वार्थ की भावना छोड़कर सार्वजनिक हित को ध्यान में रखना चाहिए।

6. राष्ट्रीय आय संबंधी– यदि शिक्षा को पुस्तकीय रूप न देकर व्यावसायिक शिक्षा का रूप दें तो बेरोजगार व्यक्ति स्वयं कुछ व्यवसाय कर सकते हैं जिससे देश का बोझ हल्का होने के साथ–साथ राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि हो सकती है।

7. अधिकार तथा कर्त्तव्यों का ज्ञान– शिक्षा के द्वारा देश के प्रत्येक नागरिक को उसके अधिकार तथा कर्त्तव्यों का ज्ञान कराकर देश के प्रति क्रियाशील बनाया जा सकता है तथा उसमें राष्ट्रीय तथा भावनात्मक एकता का विकास देश के हित में किया जा सकता है।

वातावरण संबंधी कार्य–

1. वातावरण समायोजन– मानव एक विवेकशील प्राणी है, अतः वह वातावरण की विषमताओं को सहन करते हुए उनसे बचने के उपाय ढूँढ़कर उनको अपने अनुकूल बनाने की कोशिश करता है। शिक्षा उसकी समस्याओं को हल करने में और अधिक सहायता करती है, जो उससे पूर्व के व्यक्तियों द्वारा किये गये समायोजन के आधार पर होता है।

2. वातावरण परिवर्तन– जब व्यक्ति वातावरण से समायोजन करने में असफल होता है तो वह वातावरण में ही सुधार की कोशिश करता है जिसमें शिक्षा अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य करती है। यह सरल हल निकाल देती है और वह उस पर अधिकार प्राप्त करने के प्रयत्न करता है।

शिक्षा के अन्तर्राष्ट्रीय कार्य– आज के युग में कोई भी राष्ट्र पृथक् रहकर न ही अपने अस्तित्व को कायम रख सका है और न ही विकास की ओर उन्मुख हो सकता है। विभिन्न राष्ट्रों के मध्य परस्पर निर्भरता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अतः वर्तमान में वही शिक्षक सफल है जो छात्रों के

अंदर अन्तर्राष्ट्रीय समझ व सद्भावना का विकास कर सके और इसके लिए शिक्षा को निम्न कार्य करने होंगे–

1. विश्व शांति के प्रति प्रेम बढ़ाना– विश्व को युद्ध, अशांति व अराजकता की परिस्थितियों से बचाना व उसमें सुव्यवस्था बनाए रखने का दायित्व भी शिक्षा पर है और इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा के द्वारा छात्रों के मध्य विश्व शांति के प्रति आस्था उत्पन्न की जाए।

2. विश्व नागरिकता की भावना उत्पन्न करना– भारतीय संस्कृति की प्राचीनकाल से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में आस्था रही है और आज के संदर्भ में जहाँ विश्व यातायात के साधनों के विकास के फलस्वरूप एक–दूसरे से बहुत ही निकट सम्पर्क स्थापित कर रहा है, शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि छात्रों के मस्तिष्क में यह भाव उत्पन्न करे कि जो प्रेम व सद्भाव वह अपने देश के प्रति रखता है वही भाव पूरे विश्व के प्रति बनाए रखे।

3. संसार की विभिन्न संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन– विश्व में विभिन्न संस्कृतियों के लोगों का निवास है और प्रत्येक संस्कृति दूसरे संस्कृति से भिन्नता लिए हुए है। शिक्षा का यह कार्य है कि वह विश्व की विभिन्न संस्कृतियों के प्रति सद्भावना उत्पन्न करें व उनका तुलनात्मक ज्ञान छात्रों को प्रदान करे जिससे छात्र सिर्फ अपनी ही संस्कृति से प्रेम व उसके प्रति ही आदर भाव व्यक्त न करे वरन् अन्य संस्कृतियों के प्रति भी प्रेम व सम्मान का भाव प्रदर्शित करे।

प्रश्न 8. शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों को लिखिए। (जबलपुर 2018; भोपाल 22)

***अथवा,* शिक्षा के चारित्रिक विकास के उद्देश्य की व्याख्या कीजिए।**

(ग्वालियर 2021; जबलपुर 21; रीवा 22)

***अथवा,* शिक्षा के किन्हीं पाँच उद्देश्यों को सोदाहरण लिखिए।**

(इंदौर 2022, 23; जबलपुर 22)

***अथवा,* शिक्षा को परिभाषित करते हुए इसके उद्देश्य बतलाइए।**

(जबलपुर 2022; ग्वालियर 22)

उत्तर– शिक्षा की परिभाषा–प्रश्न क्रमांक 1 का उत्तर देखिए।

शिक्षा के उद्देश्य– मनुष्य एक प्रगतिशील प्राणी है, वह सदैव आगे बढ़ना चाहता है, ऊँचा उठना चाहता है। वह अपने जीवन में जो कुछ प्राप्त करना चाहता है उसकी आदर्श स्थिति को **उद्देश्य** कहते हैं। इस आदर्श स्थिति को सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। उद्देश्य का अर्थ है 'उच्च दिशा का संकेत'।

शिक्षा के सामान्य उद्देश्य– शिक्षा मनुष्य के जीवन–पर्यन्त चलने वाली एक सामाजिक प्रक्रिया है। इसके द्वारा कोई अपने समाज, अपने सदस्यों को अपनी पूर्व संचित सभ्यता और संस्कृति से परिचित कराता है और उन्हें इस योग्य बनाता है कि वे अपनी सभ्यता एवं संस्कृति में निरंतर विकास कर सके। औपचारिक शिक्षा का विधान तो निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ही किया जाता है, सुनिश्चित एवं सुस्पष्ट उद्देश्यों के अभाव में इस शिक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती। निरुद्देश्य शिक्षा अपने में अर्थहीन होती है। अतः शिक्षा के सामान्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. शारीरिक विकास का उद्देश्य– वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में बालक के शारीरिक विकास से तात्पर्य उनकी मांसपेशियों को मजबूत एवं उनकी कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों के विकास पर जोर देने से हैं, जिससे वे पूर्ण रूप से स्वस्थ रहकर शिक्षा ग्रहण करे तथा देश के विकास में सहयोग कर सके। इसके लिए शिक्षा में उनके लिए उत्तम स्वास्थ्य, नियम, आसन, व्यायाम एवं खेलकूद की व्यवस्था की जाती है। शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति स्वयं तो प्रसन्न एवं सफल रहता है, इसके साथ ही अपने कार्यों के माध्यम से देश के विकास में भी सहयोग प्रदान करता है। अस्वस्थ मनुष्य प्रायः चिड़चिड़ा, निराशाग्रस्त एवं असफल रहता है। अतः प्रारंभ से ही बालकों के शारीरिक विकास को ध्यान में रखा जाता है।

2. मानसिक विकास का उद्देश्य– शारीरिक विकास के साथ–साथ ही व्यक्ति का मानसिक विकास करना भी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। मानसिक विकास का अर्थ बालक की स्मृति, कल्पना, निरीक्षण, तर्क, समझ आदि क्षमताओं के विकास से लेते हैं। वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में मानसिक विकास से तात्पर्य उसे तर्कपूर्ण, विचार, भाषा, प्रयोग एवं भौतिक जगत को जानने हेतु उसकी स्मृति, कल्पना, चिंतन, मनन, सामान्यीकरण, निर्णय आदि का विकास एवं मानसिक रोगों से बचाने तथा मानसिक प्रेरक जैसे तत्वों को विकसित करना तथा बालकों को स्वतंत्र अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करना। शिक्षा द्वारा विभिन्न विषयों का ज्ञान एवं विभिन्न क्रियाओं के प्रशिक्षण से बालकों में बौद्धिक विकास होता है। बालकों के मानसिक विकास हेतु उन्हें स्वयं करके सीखने के अवसर प्रदान किए जाते हैं।

3. सामाजिक विकास का उद्देश्य– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा समाज में रहकर ही वह अपनी समस्त क्रियाएँ करता है। उसकी मूल प्रवृत्तियाँ उसे अपने समूह में रहने के लिए प्रेरित करती हैं। उसे अपने समाज में सहयोग, प्रेम, सहानुभूति आदि के गुण प्राप्त होते हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने समाज के रहन–सहन, भाषा, रीति–रिवाज, आचार–विचार को सीखकर ही समायोजन के योग्य बनता है। शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य इन समस्त गुणों का बालक में समावेश कराना है जिससे वे अपने समाज के अनुकूल व्यवहार का प्रदर्शन कर सके। आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक विकास के द्वारा बालकों में रहन–सहन, भाषा, रीति–रिवाज, आचार–विचार सिखाकर उन्हें समाज के अनुकूल बनाना है। उन्हें सामाजिक बुराइयों से दूर करके तथा अच्छे गुणों को अपनाने की योग्यता प्रदान करना है। विद्यालयों में इनके विकास के लिए सामूहिक कार्यों का आयोजन किया जाता है जिसमें वे सहयोगपूर्ण रूप से कार्यों में सहयोग प्रदान करते हैं। बालकों का सामाजिक विकास अत्यंत आवश्यक होता है।

4. सांस्कृतिक विकास का उद्देश्य– शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके आधार पर किसी देश की संस्कृति का विकास संभव है जो शिक्षा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित की जाती है। बहुत से लोग किसी समाज की भाषा, उसके साहित्य, धर्म, दर्शन, खान–पान, रीति–रिवाज, आचार–विचार तथा कला–कौशल एवं संगीत को उस समाज की संस्कृति मानते हैं। मनुष्य शिक्षा की सहायता से समाज के विरासत को प्राप्त करता है तथा फिर अगली पीढ़ी को हस्तांतरित करता है। शिक्षा के माध्यम से ही संस्कृति को सुरक्षित रखा जाता है और नई पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है। नयी पीढ़ी आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरित कर देती है। प्रत्येक समाज की शिक्षा का एक उद्देश्य सांस्कृतिक विकास भी होना चाहिए। बच्चों को समाज की संस्कृति विशेष तथा समाज की विशेष संस्कृतियों के मूल तत्वों का ज्ञान होना चाहिए।

5. नैतिक एवं चारित्रिक विकास का उद्देश्य– प्रत्येक समाज के अपने आचार–विचार से संबंधी कुछ नियम होते हैं। उन नियमों का पालन करना ही नैतिकता है तथा इन नियमों का पालन करने की आंतरिक शक्ति चरित्र है। मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए उसका नैतिक एवं चारित्रिक विकास शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। अतः व्यक्ति के चरित्र के निर्माण में शिक्षा सर्वाधिक योगदान देती है। मानव को मानव बनकर रहना सिखाना शिक्षा का परम लक्ष्य है। यदि व्यक्ति का चरित्र ऊँचा है तो वह सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर को उच्चता के शिखर पर पहुँचा देगा।

6. व्यावसायिक विकास का उद्देश्य– अस्तित्व की रक्षा के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपनी जीविका कमाने के योग्य बने। यदि वह स्वयं को संसार में समायोजित करना चाहता है अथवा समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता है तो जीविका कमाना आवश्यक है, अन्यथा जीविका रहित मनुष्य समाज पर एक बोझ होता है। अतः शिक्षा ऐसी हो जो सभी उद्देश्यों के पूर्ति के साथ–साथ

मनुष्य को जीविका कमाने के योग्य बनाये। मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी शिक्ष सहायक होती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यावसायिक उद्देश्य को स्वीकार करना चाहिए। बिना औद्योगिक विकास के कोई राष्ट्र आर्थिक विकास नहीं कर सकता।

7. नागरिकता की शिक्षा के उद्देश्य– राष्ट्र की मान्यताओं के अनुसार नागरिकों का निर्माण करना भी शिक्षा का ही उद्देश्य है। प्रत्येक देश का संविधान अपने देश के नागरिकों को उनके अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का ज्ञान कराता है तथा उनको अनुकूल व्यवहार करने की ओर प्रेरित करता है। इससे नागरिकों में राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य बोध होता है। वे नागरिकता के उत्थान के लिए क्रियाशील होते हैं। राष्ट्रीय एकता के विकास के लिए नागरिकता की शिक्षा परमावश्यक होती है।

8. राष्ट्र की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति का उद्देश्य– संसार में अनेक राष्ट्र हैं और प्रत्येक राष्ट्र में छोटे–बड़े अनेक समाज हैं। इन समाजों एवं राष्ट्रों की कुछ अपनी विशिष्ट आवश्यकताएँ हैं। साथ ही इनकी कुछ आकांक्षाएँ भी होती हैं और ये आवश्यकताएँ एवं आकांक्षाएँ सदैव बदलती रहती हैं। शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्र की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति का अर्थ है ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना कि उससे आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति हो। उदाहरण के लिए, आज हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या पिछड़ेपन की है। इसके लिए हम वैज्ञानिक प्रवृत्ति पर बल दे रहे हैं। दूसरी बड़ी समस्या देश की बढ़ती हुई जनसंख्या है, इसके लिए जनसंख्या नियंत्रण संबंधी शिक्षा की व्यवस्था है, तीसरी बड़ी समस्या साम्प्रदायिकता, अलगाववाद एवं आतंकवाद की है इस समस्या के समाधान के लिए राष्ट्रीय एकता के विकास पर बल दिया जा रहा है जो वर्तमान समय की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

शिक्षा केवल तत्कालीन समस्याओं के समाधान एवं आकांक्षाओं तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि मानव जीवन के सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति पर भी ध्यान देना चाहिए। समस्याओं के समाधान हेतु स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण पहली आवश्यकता है। व्यवसाय एवं उद्योग द्वारा धनोपार्जन दूसरी आवश्यकता है। मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए उसका सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास करना भी आवश्यक है। अतः शिक्षा का उद्देश्य मानव को समग्र जीवन के लिए तैयार करना है।

9. आध्यात्मिक चेतना के विकास का उद्देश्य– मानव जीवन का मुख्य रूप से तीन पक्ष हैं– प्राकृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास। अतः मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष के विकास को भी ध्यान में रखना चाहिए। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य में आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत करने का प्रयास किया जा सकता है। आध्यात्मिकता बालक के विचारों में पवित्रता लाती है तथा उसकी चिंतन शक्ति का विकास करती है। आध्यात्मिकता व्यक्ति की धार्मिक प्रवृत्ति को जाग्रत करके व्यक्ति के क्रिया-कलापों पर नियंत्रण रखती है, जिससे बालक समाज–विरोधी कार्य नहीं करता और अपने व्यक्तित्व का विकास धनात्मक पक्ष में करता है। अतः मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष का विकास अवश्य होना चाहिए

शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों की व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा के अनेक उद्देश्य हैं और इन्हें सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। किसी भी उद्देश्य का अर्थ भिन्न–भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न रूप में लिया जाता है। मनुष्य जीवन के तीन पक्ष हैं– प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक शिक्षा के द्वारा उसके इन तीनों पक्षों का विकास होना चाहिए।

प्रश्न 9. शिक्षा के बहुचर्चित उद्देश्य बताइये।

उत्तर–भिन्न–भिन्न समाजों की शिक्षा के उद्देश्य भिन्न–भिन्न होते हैं तथा निरंतर परिस्थिति के परिणामस्वरूप निरंतर परिवर्तित होते रहते हैं। शिक्षा के बहुचर्चित उद्देश्यों की व्याख्या निम्नानुसार हैं–

1. समायोजन का उद्देश्य– प्रकृति का नियम है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवित रहने के लिए विभिन्न परिस्थितियों में संघर्ष करना पड़ता है। **लैमार्क** ने शिक्षा द्वारा मनुष्य को अपने प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण के साथ अनुकूलन एवं समायोजन के योग्य बनाने को महत्वपूर्ण माना है। प्रत्येक मनुष्य में पर्यावरण से समायोजन करने की स्वाभाविक क्षमता होती है, इसके लिए उसे शिक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ती है। शिक्षा द्वारा मनुष्य को अपने पर्यावरण को समझने तथा उसका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदि समस्त पक्षों का विकास किया जाता है। अतः मनुष्य के इन समस्त पक्षों का विकास होने पर वह समाज में समायोजन करने के साथ ही परिवर्तन करने में भी सक्षम होगा।

2. पूर्ण जीवन की तैयारी का उद्देश्य– जब शिक्षा व्यक्तित्व् का संपूर्ण विकास करती है तो उससे जीवन पूर्ण रूप से सुखमय तथा शांतिमय हो जाता है, यह वैज्ञानिक विचारधारा है। इस संबंध में **हरबर्ट** ने कहा है कि, शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को ऐसी पूर्णता प्रदान करना है कि वह अपने जीवन को पूर्ण रूप से चला सकें। उन्होंने इस संबंध में पाँच क्रियाओं– आत्मरक्षा, जीविकोपार्जन, वंशवृद्धि एवं शिशु रक्षा संबंधी कार्यों, सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यों के प्रशिक्षण पर बल दिया है। इसे ही उन्होंने पूर्ण जीवन की तैयारी का उद्देश्य माना है। इस संदर्भ में प्रथम उद्देश्य स्वयं अपूर्ण है तो उसे पूर्ण मानव जीवन हेतु तैयार नहीं किया जा सकता। द्वितीय रूप से हरबर्ट ने जिन कार्यों के प्रशिक्षण की, बात कही है वे पूर्ण कथित उद्देश्यों में समाहित है, अतः अलग से इसे मान्यता नहीं दी जानी चाहिए।

3. सौन्दर्यानुभूति के प्रशिक्षण का उद्देश्य– मनुष्य एक अति संवेदनशील प्राणी है। शिक्षा ही मनुष्य के समस्त पक्षों का विकास करके उसे सौन्दर्यानुभूति की शक्ति प्रदान करती है। इसे ईश्वर, कला एवं संगीत के ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्ति का साधन बताया जाता है। इसी आधार पर विश्व भारती में सौन्दर्यात्मक एवं कला की शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया गया है। सौन्दर्य की अनुभूति व्यक्ति को प्रायः प्रकृति, साहित्य, कला, संगीत एवं नृत्य तक ही सीमित नहीं है बल्कि उस प्रत्येक क्रिया में जिसे मनुष्य किसी उद्देश्य एवं आस्था के साथ करता है, सौन्दर्य की अनुभूति होती है। सत्य के द्वारा मनुष्य सत्य का दर्शन करता है और सत्य का आधार उसके मूल्य होते हैं जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास के अन्तर्गत विकसित होते हैं। अतः इसे भी शिक्षा का अलग से उद्देश्य मानने की आवश्यकता नहीं है।

4. अवकाश काल के सदुपयोग का उद्देश्य–शिक्षा का उद्देश्य होता है कि वह व्यक्ति को अवकाश काल में अध्ययन, मनन एवं चिंतन के अवसर प्रदान करें, उसका उचित प्रयोग करें। मानव जीवन में अवकाश का अत्यधिक महत्व है। अतः खाली समय में बालकों को रचनात्मक कार्यों के लिए प्रशिक्षण देना चाहिए और उनकी रुचियों को संगीत, कला, चित्रकला, नृत्य आदि की ओर मोड़ देना चाहिए।

प्रश्न 10. शिक्षा के व्यक्तिगत उद्देश्यों का वर्णन कीजिए। (जबलपुर 2021; भोपाल 22)

उत्तर–व्यक्तिगत उद्देश्य–शिक्षा के व्यक्तिगत उद्देश्य निम्न हैं–

1. आत्मानुभूति का उद्देश्य– स्वयं के गुणों का पता लगाना ही बालक के लिए आत्मानुभूति है जो शिक्षा के द्वारा ही संभव है। इससे बालक को अपने विषय में पूर्ण ज्ञान हो जाता है और वह अपनी कमियों को कम करके अपनी क्षमताओं और रुचियों को बढ़ावा देता है। इससे आध्यात्मिकता को बल मिलता है, जिससे विचारों में शुद्धता आती है और बालक में सर्वोत्तम गुणों का विकास होता है।

2. आत्माभिव्यक्ति का उद्देश्य– शिक्षा के माध्यम से बालक अपने भाषा में विचार रख सकते हैं। शिक्षा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करती है जिससे उसकी प्रवृत्ति अधिक विकसित हो जाती है।

इससे बालक को अपनी योग्यता के प्रदर्शन का अवसर प्राप्त हो जाता है। शिक्षा के माध्यम से ही आदर्श प्रदर्शन संभव है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षा एक महत्वपूर्ण तथा उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें बालक के सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया जाता है। अतः शिक्षा व्यक्ति को व्यावहारिक बनाती है, जिससे उसका पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन सम्पन्न हो सके और वह देश के स्तर को ऊँचा उठा सके।

प्रश्न 11. शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यों का वर्णन कीजिए। **(जबलपुर 2021)**

उत्तर– शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य का समाज से गहरा संबंध है, अतः व्यक्ति के साथ–साथ अप्रत्यक्ष रूप से समाज का भी विकास होता है।

शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के अन्तर्गत व्यक्ति को नहीं बल्कि समाज को अधिक महत्व दिया जाता है। सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करने वाली शिक्षा को ही पूर्ण समझा गया है। समाज ही एक ऐसा समुदाय है जो व्यक्ति के लिए आवश्यक है, अतः समाज का विकास व्यक्ति के विकास का आधार है।

समूह में वह कभी एक–दूसरे से प्रेम करता है, कभी घृणा, कभी एक–दूसरे के प्रति सहानुभूति दिखाता है, कभी द्वेष और कभी एक–दूसरे का सहयोग करता है और कभी असहयोग।

शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक विकास की बात करते हैं तो उसकी सीमा में बच्चों को समाज की भाषा, रहन–सहन की विधि, रीति–रिवाज व आचार–विचार सिखाकर उन्हें समाज में समायोजन करने योग्य बनाना, उन्हें समाज की अच्छाई–बुराई के प्रति संवेदनशील बनाना और समाज की बुराइयों को दूर करने तथा उसमें नई–नई अच्छाइयों को लाने के लिए नेतृत्व शक्ति का विकास करना आता है।

समाज में समायोजन करने में प्रेम, सहानुभूति और सहयोग का महत्व होता है और सामाजिक परिवर्तन हेतु प्रेम, सहानुभूति और सहयोग के साथ–साथ घृणा, द्वेष और असहयोग की भी आवश्यकता होती है। अतः बच्चों में इन सब भावनाओं का सापेक्षिक विकास करना आवश्यक होता है और यह भी सामाजिक विकास की सीमा में आता है। इन सबके विकास के लिए विद्यालयों में सामूहिक कार्य की विधियों का प्रयोग करना चाहिए।

अतः बच्चों का सामाजिक विकास करना अति आवश्यक है। बिना सामाजिक विकास के न तो बच्चे अपने समाज में समायोजन कर सकते हैं और न ही वे सामाजिक परिवर्तन ला सकते हैं। सामाजिक परिवर्तनों को स्वीकार करने के लिए भी मनुष्य का सामाजिक विकास आवश्यक है।

प्रश्न 12. शिक्षा के वैयक्तिक व सामाजिक उद्देश्यों में समन्वय स्थापित कीजिए।

***अथवा*, शिक्षा के वैयक्तिक और सामाजिक उद्देश्यों से आप क्या समझते हैं ? क्या दोनों में संतुलन स्थापित किया जा सकता है ?** **(जबलपुर 2021)**

उत्तर–सामाजिक तथा वैयक्तिक उद्देश्यों में संबंध–

1. समाज में व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक की सभी क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। बालक आरंभ में अत्यंत असहाय अवस्था में होता है, यदि उसको स्वयं पर निर्भर छोड़ दिया जाये तो जीवन खतरे में पड़ जाएगा। समाज ही उसे आश्रय देता है और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यदि शिक्षा द्वारा समाज का विकास न किया जाए तो वह बालक का पालन–पोषण ठीक प्रकार से नहीं कर पायेंगे। जब बालक ही शिक्षा योग्य नहीं होगा तो फिर शिक्षा की योजना किसके लिए तैयार की जाएगी ? अतः सामाजिक शिक्षा को महत्व देना ही तर्कसंगत होगा।

2. यदि व्यक्तिगत शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया गया तो व्यक्ति का विकास ठीक प्रकार से नहीं हो पायेगा और उससे संगठित समाज की रूपरेखा भी निर्बल होगी। व्यक्ति समाज की एक इकाई है अतः उस पर ध्यान देना समाज का विकास करना है। व्यक्ति पर अनावश्यक नियंत्रण भी अनेक बुरे परिणामों का कारण होता है। इस प्रकार व्यक्ति को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए।

उपरोक्त वर्णन के आधार पर व्यक्ति तथा समाज दोनों ही समान महत्व रखते हैं तथा एक की शिक्षा दूसरे के विकास पर धनात्मक प्रभाव डालती है। अतः दोनों को ही शिक्षा के उद्देश्यों में महत्व देना चाहिए। दोनों के उद्देश्यों का समन्वय भी आवश्यक है तभी किसी देश, समाज, राज्य, व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं संवेगात्मक स्तर ऊँचा उठ सकता है। अतः दोनों के लाभदायक उद्देश्यों के पहलुओं को अपनाना हितकर होगा।

व्यक्ति के स्वाभाविक तथा सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है कि सभी उद्देश्यों को प्रधानता दी जाए। किसी एक के बिना शिक्षा की प्रक्रिया महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाल सकेंगी। अतः शिक्षा के दोनों ही उद्देश्य (वैयक्तिक तथा सामाजिक) व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास के लिए उत्तरदायी हैं अर्थात् वे एक–दूसरे के पूरक हैं। **रॉस महोदय** के अनुसार, "वैयक्तिकता का विकास केवल सामाजिक वातावरण में होता है, जहाँ सामान्य रुचियों और सामान्य क्रियाओं से उसका पोषण हो सकता है।"

प्रश्न 13. भारत में उभरते हुए लोकतंत्र में शिक्षा के उद्देश्य लिखिए।

उत्तर– भारत एक लोकतांत्रिक देश है। यहाँ विभिन्न जाति, धर्म, संस्कृति के लोग निवास करते हैं परंतु इन सभी में राष्ट्र के प्रति एकता की भावना पाई जाती है। कभी–कभी इनमें संघर्ष एवं द्वेष की भावना भी जन्म ले लेती है। अतः इन समस्याओं के निवारण हेतु लोकतंत्रीय शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. शारीरिक विकास– राष्ट्र हित में मानव के शारीरिक विकास का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति ही देश की प्रगति एवं विकास में योगदान देता है। आज हमारे देश का रहन–सहन, आचार–विचार आदि प्रदूषित होते जा रहे हैं। अतः शिक्षा के द्वारा इन पक्षों का विकास तथा तद्नुरूप परीक्षण प्रदान करना होगा। इसके साथ दूषित भोजन एवं मद्यपान से संबंधित बीमारियों से सचेत करना होगा और यह कार्य जीवन के प्राथमिक स्तर से ही शिक्षा द्वारा करना होगा।

2. मानसिक विकास– शारीरिक विकास के साथ–साथ व्यक्ति का मानसिक विकास भी अत्यंत आवश्यक है एवं शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य भी यही होना चाहिए। हमारे भारत में भी शिक्षा के उद्देश्य द्वारा मानसिक विकास होना चाहिए जिसके अन्तर्गत कल्पना, शक्ति, स्मृति एवं तर्क का विकास किया जाता है। तत्पश्चात् विभिन्न विषयों के ज्ञान, सोचने–विचारने आदि की क्षमताओं का विकास करना शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होता है। हमारा देश एक विकासशील देश है जिसमें आधुनिक विज्ञानों एवं तकनीकी की शिक्षा परम आवश्यक है। अतः शिक्षा में मनोविज्ञान के प्रयोग द्वारा बालक की भय, चिंता, कुण्ठा, तनाव आदि असंतुलन से बचने के उपाय ढूँढकर उनकी समस्याओं का समाधान किया जाता है।

3. वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्य– लोकतंत्र में व्यक्ति के वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के उद्देश्यों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मनुष्य में सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति के कारण वह सदैव समूह में रहना पसंद करता है और बिना समाज के व्यक्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। चूँकि हमारा देश एक लोकतांत्रिक देश है, अतः लोकतंत्र एवं एकता की स्थापना हेतु प्रारंभ से बालकों को अपने समाज के विषय में पूर्ण जानकारी प्रदान करनी चाहिए। यह कार्य विद्यालयी शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है क्योंकि विद्यालय ही वह स्थान है जहाँ समस्त जाति, धर्म, संस्कृति

के बालक एक साथ पढ़ते हैं जिससे उनमें सहयोग, प्रेम, मित्रता, नेतृत्व एवं अन्य सामाजिक गुणों का विकास होता है। वे प्रायः अपने मित्र समूहों का नेतृत्व करते हैं जो आगे चलकर देशहित में लाभकारी होते हैं। अतः सामाजिक एवं नेतृत्व प्रदान करने का उद्देश्य शिक्षा में प्रमुख रूप से देना चाहिए।

4. सांस्कृतिक सहिष्णुता का विकास— किसी भी समाज की सबसे बड़ी विशेषता उसकी संस्कृति होती है। संस्कृति के द्वारा ही उस समाज विशेष की जीवन–शैली, खान–पान, धर्म, मूल्य एवं प्रतिमान प्रभावित होते हैं। बालक प्रायः अपने परिवार एवं समाज के द्वारा संस्कृति को सीखता है परंतु भारत एक विभिन्न समाजों एवं संस्कृति वाला देश है जिसमें बालक अपनी संस्कृति एवं जाति समूह के प्रतिमानों को सीखते हैं तथा महत्व देते हैं। अतः देश में शिक्षा द्वारा सांस्कृतिक सहिष्णुता का विकास करना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु विद्यालयों में प्रायः एक–दूसरे की संस्कृतियों का स्पष्ट ज्ञान कराएँ इसके साथ ही अन्य राज्यों, देशों का ज्ञान कराके उनके प्रति उदार भावना का विकास करें।

5. व्यावसायिक विकास— जीवन को सुखमय बनाने के लिए हमें अनेक साधनों की आवश्यकता होती है। इनकी पूर्ति करने के लिए हमें किसी भी व्यवसाय से संबंधित व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता होती है। अतः किसी भी देश की शिक्षा का एक उद्देश्य व्यावसायिक विकास होना चाहिए, हमारे वर्तमान भारत की शिक्षा की भी। विश्व के साथ कदम–से–कदम मिलाकर चलने के लिए आवश्यक है कि हम अपने देश के नागरिकों को किसी व्यवसाय की शिक्षा दें। देश में बढ़ती हुई बेरोजगारी को दूर करने के लिए भी व्यावसायिक शिक्षा की अति आवश्यकता है।

6. लोकतंत्र एवं लोकतंत्रीय नागरिकता की शिक्षा—लोकतंत्र शासन प्रणाली का मूल सिद्धांत– स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व, न्याय, समाजवाद एवं धर्म–निरपेक्षता है। वास्तविकता यह है कि हम इन सिद्धांतों को राष्ट्रीय जीवन में अब तक नहीं उतार पाए हैं जबकि इन सिद्धांतों का ज्ञान एवं इन सिद्धांतों का जीवन में पालन करने का प्रशिक्षण हमारी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। साथ–ही–साथ बच्चों को भी नागरिकता के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का ज्ञान कराना चाहिए। शिक्षा ऐसा साधन है जिसके द्वारा कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है।

7. जनसंख्या शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, देश की आधुनिकीकरण, राष्ट्रीय एकता एवं अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध की प्राप्ति—वर्तमान समय में देश के समक्ष सबसे बड़ी समस्या है, बढ़ती जनसंख्या, दूषित वातावरण, पिछड़ापन, अलगाववाद एवं स्वार्थपरकता। अतः शैक्षिक उद्देश्यों में जनसंख्या शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, विज्ञान एवं तकनीकी की शिक्षा तथा राष्ट्रीय एकता के विकास पर विशेष बल दिया जाना चाहिए तथा हमें शिक्षा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय अवरोध का विकास भी करना चाहिए।

8. धार्मिक सहिष्णुता का विकास— संसार के अधिकांश लोग मनुष्य को शरीर, मन एवं आत्मा का योग मानते हैं तथा इनके इन तीनों पक्षों के विकास की बात करते हैं। धर्म वह साधन है जिसको धारण करने से मनुष्य के तीनों पक्षों का विकास होता है। हमारे देश में अनेक धार्मिक सम्प्रदाय हैं। धर्म के वास्तविक स्वरूप को न समझने के कारण व्यक्ति का नैतिक पतन हो रहा है इसलिए धार्मिक सहिष्णुता का विकास हमारी भारतीय शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

9. नैतिक एवं चारित्रिक विकास— प्रत्येक समाज के आचरण संबंधी अपने कुछ नियम होते हैं। सामान्यतः इन नियमों के प्रति आस्था एवं उनके पालन को नैतिकता तथा इन नियमों को पालन करने की आंतरिक इच्छा एवं शक्ति को चरित्र कहते हैं।

नैतिकता एवं चरित्र मनुष्य का वह गुण है जो उसे स्वार्थ की सीमा से निकालकर समाज हित की ओर अग्रसर करता है इसलिए किसी भी देश की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का नैतिक एवं चारित्रिक विकास होना चाहिए।

प्रश्न 14. राष्ट्रीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारकों की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

***अथवा*, शैक्षिक उद्देश्यों को प्रभावित करने वाले कारकों की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।**

उत्तर– अन्य कार्यों के समान ही शिक्षा भी एक प्रक्रिया है। अतः इसके भी कुछ निश्चित उद्देश्य अवश्य होते हैं। ये उद्देश्य देश, काल, परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। इनका निर्धारण समय विशेष की आवश्यकता और शिक्षा की उपयोगिता के आधार पर होता है। वर्तमान में उद्देश्यों को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं–

1. दर्शन– शिक्षा के उद्देश्यों पर दर्शन का अधिक प्रभाव पड़ता है। अनेक दर्शनों के अध्ययन से हम यह अनुभव करते हैं कि प्रकृतिवादियों के अनुसार आत्माभिव्यक्ति, वैयक्तिकता का विकास, संबद्ध क्रियाओं का निर्माण, प्रवृत्तियों का शोधन आदि शिक्षा के उद्देश्य थे परंतु आदर्शवाद के अनुसार आत्मानुभूति, चरित्र–निर्माण, आध्यात्मिक, व्यक्तित्व का विकास आदि शिक्षा के उद्देश्य थे। इस प्रकार से यह स्पष्ट हो जाता है कि दर्शनों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य प्रभावित होते हैं।

2. जीवन दर्शन– समाज में रहने वाले व्यक्तियों के जीवन जीने के ढंग का भी शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रभाव पड़ता है। गाँधीजी के जीवन में जीवन दर्शन का शिक्षा के उद्द्रेश्यों पर प्रभाव स्पष्ट है।

3. राजनैतिक विचारधारा– शासन करने वाली सरकार ही शिक्षा व्यवस्था का कार्य भार संभालती है, अतः वह अपने अनुरूप ही शिक्षा के ढाँचे का गठन करती है। इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्यों पर तत्कालीन सरकार का प्रभाव पड़ता है।

4. सामाजिक विचारधारा– समाज की दशाओं का शिक्षा के उद्देश्यों पर काफी प्रभाव पड़ता है। भारतीय शिक्षा का उद्देश्य केवल समाज को शिक्षित करना तथा उसके जीवन–यापन के साधन जुटाना मात्र है।

5. आर्थिक दशाएँ– किसी देश का आर्थिक स्तर वहाँ की शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करता है। भारत जैसे देश में आर्थिक साधनों की कमी के कारण शिक्षा के ऊँचे उद्देश्यों को निर्धारित करके भी उचित साधनों के अभाव में प्राप्त नहीं किया जा सका है। फलस्वरूप योजना के रूप में ही रह जायेगी, व्यावहारिक रूप में नहीं अपनायी जा सकती।

6. तकनीकी उन्नति– शिक्षा के उद्देश्यों पर उस देश की तकनीकी उन्नति की अमिट छाप पड़ती है। यदि देश विकसित है तो उनकी शिक्षा में और अधिक तकनीकी को बढ़ावा देना तथा नवीन खोजों को प्रोत्साहन देना प्रमुख उद्देश्य होंगे। इसके विपरीत जो देश पिछड़े हैं वहाँ की शिक्षा का उद्देश्य दूसरे देशों की नकल करने के अलावा और कुछ भी नहीं रह गया है।

7. प्राकृतिक दशाएँ– शिक्षा के उद्देश्यों को देश का प्राकृतिक वातावरण तथा प्राकृतिक सम्पदा आदि भी प्रभावित करते हैं। वहाँ के वातावरण से समायोजन करने तथा देश के प्राकृतिक तत्वों के विषय में जानकारी देना वहाँ की शिक्षा का कार्य है।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि किसी देश की शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण वहाँ के दर्शन, व्यक्तियों के जीवन–दर्शन, सामाजिक दशा, आर्थिक दशा, राजनैतिक दशा तथा तकनीकी उन्नति और प्राकृतिक दशाओं के आधार पर ही होता है। इसके अतिरिक्त धार्मिक, संस्कृति, सभ्यता तथा अन्य देशों के लाभदायक अनुभवों का भी शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रभाव पड़ता है।

प्रश्न 15. सामाजिक परिवर्तन का अर्थ बताते हुए इसके घटक/कारक बताइए।
***अथवा*, सामाजिक परिवर्तन के लिये उत्तरदायी कारकों की व्याख्या कीजिए।**
(ग्वालियर 2021)

***अथवा*, सामाजिक परिवर्तन क्यों महत्वपूर्ण है ? सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहित करने वाले कारकों का वर्णन करें।** **(भोपाल 2021)**

उत्तर– सामाजिक परिवर्तन का अर्थ–सामाजिक का अर्थ 'समाज से संबंधित' तथा परिवर्तन का तात्पर्य पहले की स्थिति में 'भिन्नता' अथवा 'हेर–फेर' है। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन का अर्थ समाज संबंधी हेर–फेर अथवा समाज में होने वाले परिवर्तन से हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि मानव का जीवन सदैव एक–सा नहीं रहता अपितु उसके विचारों, आदर्शों तथा मूल्यों में किसी–न–किसी प्रकार का परिवर्तन सदैव होता रहता है। इस दृष्टि से यदि मानव के जीवन में परिवर्तन का होना आवश्यक है तो मानव की इकाई से बने हुए समाज में भी परिवर्तन का होना स्वाभाविक है। जिस प्रकार मनुष्य गतिशील है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य द्वारा निर्मित समाज भी गतिशील होता है।

प्रत्येक समाज की अपनी एक संरचना होती है, अपने व्यवहार प्रतिमान होते हैं और सामाजिक कार्यों को सम्पादित करने की विधियाँ होती हैं और इस संरचना, व्यवहार, प्रतिमानों तथा कार्य–विधियों में सदैव परिवर्तन होता रहता है। यह बात दूसरी है कि कुछ समाजों में यह परिवर्तन मंद गति से होता है, कुछ में सामान्य गति से और कुछ में तीव्र गति से। इस प्रक्रिया को समाजशास्त्रीय भाषा में सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

यह सत्य है कि संसार का कोई भी समाज परिवर्तन से नहीं बच सका है। यदि हम पहले और आज के भारतीय समाज पर एक दृष्टि डालें तो हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि जिन वस्तुओं का उपयोग हम आज कर रहें हैं उनके संबंध में हमारे पूर्वजों ने संभवत: कभी कल्पना भी नहीं की होगी। **जैसे**–रेडियो, मोबाईल आदि।

आधुनिक समाज में नई–नई मशीनों, आविष्कारों, यातायात के साधनों, नगरीकरण और औद्योगीकरण एवं हरित क्रांतियों के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नई–नई समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं। इन समस्याओं को सुलझाने के लिए नये–नये अनेक साधन जुटाएँ जा रहे हैं। परिणामस्वरूप पहले के समाज की अपेक्षा आज के समाज में दिन–प्रतिदिन क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों को ही हम **सामाजिक परिवर्तन** कहते हैं।

परिभाषाएँ–

गिलिन तथा **गिलिन के अनुसार**–"सामाजिक परिवर्तन जीवन की मानी हुई रीतियों में होने वाले परिवर्तन को कहते हैं। चाहे ये परिवर्तन भौगोलिक दशाओं के परिवर्तन में हुए हों अथवा सांस्कृतिक साधनों में अथवा जनसंख्या की रचना या सिद्धांतों के परिवर्तन में अथवा प्रसार से अथवा समूह के अंदर ही आविष्कारों के फलस्वरूप ही हुए हों।"

कोहेल के अनुसार–"सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य सामाजिक संरचना या सामाजिक संगठन में होने वाला परिवर्तन है।"

सामाजिक परिवर्तन घटक/कारक– किसी भी समाज में जो परिवर्तन आते हैं इनके कुछ–न–कुछ कारक होते हैं जो उन परिवर्तनों को लाते हैं। निम्न में उन कारकों का उल्लेख किया गया है जिनके परिणामस्वरूप किसी समाज में परिवर्तन घटित होते हैं–

1. प्राकृतिक कारक– सामाजिक परिवर्तन अनेक बार प्राकृतिक कारकों के परिणाम होते हैं। प्रत्येक समाज अपने चारों ओर की प्रकृति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। प्राकृतिक जलवायु पर ही किसी प्रदेश का खान–पान, रहन–सहन आदि निर्भर करते हैं। जैसे–पंजाब में गेहूँ अधिक

खाया जाता है तो चेन्नई में चावल अधिक खाए जाते हैं। कभी–कभी प्राकृतिक प्रकोप या दुर्घटनाओं के कारण भी समाज में व्यापक परिवर्तन हो जाते हैं। जैसे–किसी प्रदेश में भयंकर सूखा पड़ने से अकाल आ जाए या कोई दैवीय प्रकोप हो जाए तो उससे समाज की संपूर्ण संरचना प्रभावित हो जाती है। इसी प्रकार के अन्य अनेकानेक प्राकृतिक एवं भौगोलिक कारक सामाजिक परिवर्तनों को बढ़ावा देते हैं।

2. जनसंख्यात्मक कारक– जनसंख्या से संबंधित कुछ कारक भी सामाजिक परिवर्तन लाते हैं। कभी–कभी किन्हीं कारणों से किसी समाज की जनसंख्या में उल्लेखनीय परिवर्तन आ जाता है। **उदाहरण**–भीषण युद्ध के कारण जनसंख्या उल्लेखनीय रूप से कम हो जाती है या आर्थिक सुविधाएँ बढ़ने से जनसंख्या विस्फोट होता है, तब समाज के सामने नई समस्याएँ आती है जिनसे निपटने के लिए समाज को अपनी संरचना में परिवर्तन करना पड़ता है। समाज की जनसंख्या अधिक बढ़ जाने से मनुष्य जीवन व्यस्त व संघर्षमय हो जाता है। इस स्थिति में समाज में भ्रष्टाचार, चोरी व डकैती जैसे अनैतिक कार्य बढ़ जाते हैं। इसके विपरीत जनसंख्या बहुत कम हो जाये तो समाज में सहयोग व संबद्धता की भावना बढ़ती है।

3. आर्थिक कारक – समाज के आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन का स्पष्ट प्रभाव समाज पर पड़ता है और आर्थिक परिवर्तनों के साथ–ही–साथ सामाजिक परिवर्तन घटित होने लगते हैं। कृषि प्रधान समाजों तथा उद्योग प्रधान क्षेत्रों की अपनी–अपनी विशेषताएँ होती हैं। सम्पत्ति का स्वरूप, व्यवसाय की प्रकृति, व्यक्तियों का जीवन स्तर, सम्पत्ति का वितरण, व्यापार चक्र और उत्पादन का स्वरूप आदि सामाजिक ढाँचे को अनिवार्य रूप से प्रभावित करता है।

4. मनोवैज्ञानिक कारक–कभी–कभी समाज में कुछ घटनाओं को लेकर मानसिक चिंताएँ तथा तनाव उत्पन्न हो जाते हैं। इन चिंताओं तथा तनावों की प्रकृति बड़ी ही व्यापक होती है। जैसे–भीषण युद्ध का भय। यह समाज में उथल–पुथल पैदा कर सामाजिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

कभी–कभी समाज में प्रचलित कुछ रीतियाँ भी मानसिक तनाव का कारण बन जाती हैं। इसी प्रकार वृद्ध पुरुष किशोरों के कार्यों व व्यवहारों को देख मानसिक तनाव का अनुभव करते हैं और वे किशोरों पर सामाजिक नियंत्रण लगाना चाहते हैं इससे भी सामाजिक परिवर्तन घटित होते हैं। व्यक्ति नवीनता चाहता है और नवीनता लाने के लिए परिवर्तन आवश्यक होता है। कभी–कभी जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए व्यक्ति तरह–तरह के नये कार्य करने लगता है। नये व्यवहारों में वृद्धि हो जाने से सामाजिक परिवर्तन होना स्वाभाविक है।

5. वैज्ञानिक कारक– नये–नये वैज्ञानिक आविष्कारों/खोजें तथा अनुसंधान सामाजिक परिवर्तन लाते हैं। वैज्ञानिक उन्नति से तकनीकी का विकास होता है जिसके परिणामस्वरूप हमारे कार्य करने की प्रवृत्ति में परिवर्तन होता है। वैज्ञानिक उन्नति से व्यक्तियों के दृष्टिकोणों में भी परिवर्तन आता है। वे वैज्ञानिक उन्नति के कारण ही समाज से अनेक कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों का निराकरण हो गया है। वैज्ञानिक उन्नति से नये–नये उद्योग खुलते हैं तथा हमारे दैनिक जीवन के लिए नई–नई सुविधाजनक वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। वैज्ञानिक देन; **जैसे**–रेडियो, टेलीविजन; मशीनें, हवाई जहाज, कार आदि का सामाजिक परिवर्तन लाने में बड़ा योगदान है।

6. सांस्कृतिक कारक– संस्कृति भी सामाजिक परिवर्तन लाती है। संस्कृति तीन प्रकार की होती है– भौतिक संस्कृति, अभौतिक संस्कृति तथा समग्र संस्कृति। जब संस्कृति के किसी भी रूप में परिवर्तन होता है तो उसका स्पष्ट प्रभाव समाज पर पड़ता है। कभी–कभी सांस्कृतिक विडम्बना भी सामाजिक परिवर्तनों को प्रभावित कर सामाजिक परिवर्तन लाती है। एक समाज की संस्कृति दूसरे समाज की संस्कृति को प्रभावित कर सामाजिक परिवर्तन लाती है।

7. शैक्षिक कारक– सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षा भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सामाजिक परिवर्तनों के लिए शिक्षा की भूमिका को अब तक महत्व नहीं दिया जाता था, किन्तु आधुनिक समय में जब से शिक्षा समाजशास्त्र का उदय हुआ है यह स्वीकार किया जाने लगा है कि सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षा की भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

उपर्युक्त सभी कारक सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न करते हैं लेकिन ये सभी कारक आपस में संबंधित हैं तथा एक–दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। इन सब कारकों के अतिरिक्त सामाजिक परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण कारक यह है कि परिवर्तन स्वयं में एक गति है। समाज में परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। कोई भी समाज पूर्णतया स्थिर कभी नहीं होता उसमें धीमी या तीव्र गति से परिवर्तन निरंतर होते रहते हैं।

प्रश्न 16. सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। **(जबलपुर 2018)**

उत्तर–सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. सामाजिक परिवर्तन सामुदायिक परिवर्तन से संबंधित होता है– सामाजिक परिवर्तन का संबंध किसी व्यक्ति विशेष या समूह विशेष के जीवन में होने वाले परिवर्तनों से नहीं है, वरन् सम्पूर्ण समुदाय के जीवन में होने वाले परिवर्तनों से है। अन्य शब्दों में, जब किसी समुदाय के अधिकांश सदस्यों के संबंधों, रीति–रिवाजों, सामाजिक नियमों तथा विचार करने के तरीकों में परिवर्तन हो जाता है, तो उसे हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

2. सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक तथ्य है– सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक घटना है, क्योंकि यह सर्वव्यापी घटना है। विश्व में कोई भी ऐसा समान नहीं है जिसके किसी पक्ष में कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ हो। कोई भी समाज स्थिर नहीं होता। हाँ, इतना अवश्य है कि परिवर्तन की गति किसी समाज में तीव्र हो सकती है तो किसी में मंद। समाज की अवधारणा ही गतिशील है।

3. सामाजिक परिवर्तन की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती– सामाजिक परिवर्तन के विषय में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती अर्थात् सामाजिक परिवर्तन अनिश्चित होता है। हम समाज के किस पक्ष में कितना और कब परिवर्तन आयेगा यह नहीं बता सकते। इस अर्थ में सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति अनिश्चित है, परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि परिवर्तन का कोई अन्तर्निहित नियम नहीं होता। इसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि आकस्मिक कारणों से भी समाज में परिवर्तन होता है। इसलिए भविष्य में किस प्रकार का और कैसा परिवर्तन होगा यह हम नहीं कह सकते।

4. सामाजिक परिवर्तन अनिवार्य नियम है– परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समाज प्रकृति का ही एक अंग है, अत: समाज में परिवर्तन अवश्यंभावी है। विभिन्न समाजों में परिवर्तन की मात्रा में अंतर हो सकता है लेकिन इसके बिल्कुल न होने की संभावना व्यक्त नहीं की जा सकती है।

5. सामाजिक परिवर्तन की गति असमान होती है–सामाजिक परिवर्तन से कोई भी समाज अछूता नहीं है। परंतु परिवर्तन की गति प्रत्येक समाज में अथवा एक ही समाज के सभी पक्षों में समान नहीं होती।

6. सामाजिक परिवर्तन तुलनात्मक है– दो भिन्न समाजों में होने वाले परिवर्तनों की तुलना कर सकते हैं। जैसे– गाँवों की तुलना में शहरों में परिवर्तन की गति तीव्र होती है। इस प्रकार परिवर्तन का देश, काल एवं परिस्थितियों से घनिष्ठ संबंध होता है।

7. सामाजिक परिवर्तन एक जटिल तथ्य है– सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति गुणात्मक होती है। सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति जटिल होती है, क्योंकि उसकी माप नहीं की जा सकती। **मैकाइवर के अनुसार**–"सामाजिक परिवर्तन का अधिक संबंध गुणात्मक परिवर्तन से है और गुणात्मक तथ्यों की माप न हो सकने के कारण इनकी जटिलता भी बहुत अधिक बढ़ जाती है।" किसी भी संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों को नाप–तौल नहीं सकते। अत: ऐसे परिवर्तनों को सरलतापूर्वक समझ नहीं सकते।

प्रश्न 17. सामाजिक परिवर्तन का अर्थ बताते हुए शिक्षा में सामाजिक परिवर्तन की भूमिका बताइए। **(ग्वालियर 2021; छतरपुर 22)**

***अथवा*, "शिक्षा सामाजिक परिवर्तन लाने का शक्तिशाली साधन है।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।** **(छतरपुर 2022; छिंदवाड़ा 22)**

***अथवा*, "शिक्षा सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करती है।" कथन के पक्ष में सोदाहरण तर्क लिखिए।** **(इंदौर 2022)**

***अथवा*, सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को लिखिए।** **(उज्जैन 2021)**

उत्तर– शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक शक्तिशाली साधन है। सामाजिक परिवर्तन के जो घटक बताए गए हैं, उन सब के विकास का भी मूल कारण शिक्षा ही होती है।

शिक्षा से मनुष्य का मानसिक विकास होता है, वह अपने तथा समाज के बारे में सोचता है। शिक्षा विविध उपायों तथा प्रभावों से सामाजिक परिवर्तन लाती है तथा सामाजिक परिवर्तन की गति तीव्र होती है। शिक्षा द्वारा अनेक सामाजिक बुराइयाँ; **जैसे**–सती प्रथा, बाल विवाह, बेमेल विवाह आदि का अंत हो गया। यदि कोई समाज शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन लाना चाहता है तो उस समाज को यह ध्यान रखना होगा कि हर प्रकार की शिक्षा सामाजिक परिवर्तन नहीं ला सकती है। उस समाज को अपनी शिक्षा प्रणाली की भी पुनर्रचना करनी होगी और शिक्षा को वह रूप प्रदान करना होगा जिससे वह सामाजिक परिवर्तन लाने में अधिक सक्षम हो सके। इस कार्य के लिए ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता है जो सामान्यत: निम्न कार्य कर सके–

1. शिक्षा शाश्वत् मूल्यों को स्थायी करने वाली हो– परिवर्तनों के द्वारा समाज अवनति की ओर नहीं जाना चाहता है। परिवर्तनों के द्वारा समाज अवनति की ओर न चला जाए, इस संभावना को रोकने के लिए समाज को चाहिए कि वह ऐसी शिक्षा व्यवस्था का विकास करें जो समाज के शाश्वत् मूल्यों को स्थायी कर सके। **उदाहरण के लिए**, भारत में ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता है जो सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता जैसे शाश्वत् मूल्यों को स्थायी कर सके।

2. शिक्षा परिवर्तन हेतु प्रेरक बनें–समाज ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करे जो समाज को परिवर्तन करने हेतु प्रेरणा प्रदान करे। वह समाज को यह स्पष्ट कर सके कि परिवर्तन न केवल आवश्यक है अपितु कल्याणकारी तथा समाज के अस्तित्व के लिए भी अनिवार्य है। ऐसी शिक्षा सामाजिक परिवर्तन जल्दी लाती है जो समाज को परिवर्तन की आवश्यकता की अनुभूति करा सके। समाज जब परिवर्तन की आवश्यकता की अनुभूति कर लेता है तो परिवर्तन तीव्र हो जाता है।

3. शिक्षा जनजागरण करने वाली हो– यदि व्यक्ति जागरूक तथा चेतन है तो वह यह प्रयास करेंगे कि विश्व के अन्य समाज जिस ओर जा रहे हैं, वे भी अपने शाश्वत् मूल्यों की रक्षा करते हुए उन्नति की उसी दिशा में अग्रसर हों। समाज के सदस्यों की जागरूकता उन्हें अन्य समाजों से पिछड़ने नहीं देती है।

4. शिक्षा सामाजिक मूल्यों के निर्मात्री हो– सामाजिक परिवर्तनों के लिए जिस शिक्षा की व्यवस्था की जाये वह ऐसी हो जो समाज की संस्कृति का परिमार्जन कर सके, संस्कृति में व्याप्त बुराइयों को दूर कर सके तथा संस्कृति के उन मूल्यों का चयन कर सके जो वर्तमान समय के अनुकूल है तथा उन मूल्यों को त्याग सके जो आज अपनी उपयोगिता खो चुके हैं। शिक्षा ऐसी हो जो वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में नये–नये मूल्यों का निर्माण कर समाज को नई दिशा प्रदान कर सके।

5. शिक्षा वैज्ञानिक प्रगति का ज्ञान कराने वाली हो– समाज को परिवर्तन लाने के लिए ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जो समाज के सदस्यों को विश्व में हो रहे वैज्ञानिक आविष्कारों, खोजों तथा सत्यों का ज्ञान करा सकें। इस ज्ञान के आधार पर व्यक्ति अपने अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों का

विश्लेषण करता है ताकि समाज की कुप्रथाएँ एवं रूढ़ियाँ तथा अन्य कुरीतियाँ समाप्त हो सकें और आधुनिकीकरण की ओर समाज अग्रसर हो सकें।

6. शिक्षा सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का उचित प्रशिक्षण कराने वाली हो– शिक्षा सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षण प्रदान कर परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करने वाली हो। शिक्षा व्यवस्था में यह आवश्यक है कि चुने हुए व्यक्तियों को सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के रूप में प्रशिक्षित किया जाये। इस प्रकार शिक्षा सामाजिक नेतृत्व प्रदान करने वाली होनी चाहिए।

7. शिक्षा नागरिकों में वांछनीय गुणों का विकास करने वाली हो– सामाजिक परिवर्तन के लिए यह आवश्यक है कि समाज के व्यक्तियों में कुछ विशिष्ट गुण हो; **जैसे**– उदारता, साहस, विश्लेषण, तर्क–शक्ति, चिंतन आदि। इनके अभाव में व्यक्ति परिवर्तनों को स्वीकार नहीं कर सकता है। **उदाहरण**– साहस के अभाव में डर के कारण किसी भी नवीनता को स्वीकार नहीं करना। अतः शिक्षा को चाहिए कि वह व्यक्तियों में इस प्रकार के भी आधारभूत गुणों का विकास करें।

8. शिक्षा समाज का विकास करने वाली हो– सामाजिक परिवर्तन हेतु शिक्षा की ऐसी व्यवस्था के विकास की आवश्यकता है, जो समाज के स्वरूप, उसकी कुरीतियों तथा कुप्रथाओं की ओर व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित कर सके तथा उन्हें दूर करने के लिए प्रेरणा प्रदान कर सके।

9. संस्कृति का हस्तांतरण करने वाली हो– शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो भावी पीढ़ी को संस्कृति का हस्तांतरण करके समाज में स्थायित्व एवं निरंतरता ला सके। शिक्षा समाज को नाना प्रकार के परिवर्तनों एवं सुधारों के लिए भी प्रेरित कर सके। इस दृष्टि से शिक्षा सामाजिक परिवर्तनों की जन्मदाता, प्रवर्तक तथा निर्देशक हो एवं अविनाशी शक्ति के साथ–साथ रचनात्मक शक्ति भी होना चाहिए।

10. एकता तथा समग्रता उत्पन्न करने वाली हो–हमारे देश में जातीयता, प्रान्तीयता तथा भाषा आदि के कारण आये दिन घोर संघर्ष होता है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो समाज के विभिन्न वर्गों में आपसी मतभेद के कारण होने वाले संघर्ष को दूर करे एवं शिक्षा लोगों में ऐसे विचारों का प्रसारण करे जिससे एकता तथा समग्रता उत्पन्न हो सके।

11. परिवर्तन में बाधा दूर करने वाली हो– सामाजिक परिवर्तन को लाने में अनेक बाधाएँ आती हैं। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो परिवर्तन के महत्व को स्पष्ट करके बाधाओं को दूर कर सके।

प्रश्न 18. शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन में संबंध को समझाइये।

***अथवा*, "शिक्षा सामाजिक परिवर्तन की अनुगामी है।" इसके समर्थन में अपने तर्क प्रस्तुत कीजिए।**

***अथवा*, शिक्षा सामाजिक परिवर्तन को कहाँ तक प्रारंभ और कहाँ तक उसका अनुगमन करती है ? स्पष्ट कीजिए।**

उत्तर–शिक्षा सामाजिक परिवर्तन की अनुगामी–शिक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन का घनिष्ठ संबंध है। शिक्षा के द्वारा लोगों के मन में नवीन विचार जगाए जाते हैं। इससे वे नवीन परिवर्तनों को ग्रहण करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। शिक्षा के अनेक महत्वपूर्ण कार्यों में से एक कार्य यह है कि वह समाज के विकास, उन्नति तथा प्रगति हेतु समाज में परिवर्तनों की दिशा निर्धारित करती है। दूसरे शब्दों में, "शिक्षा सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न करती है। लेकिन इसके विपरीत शिक्षा सामाजिक परिवर्तन की अनुगामिनी भी होती है।" वह समाज में होने वाले परिवर्तनों के पीछे–पीछे चलती है। जैसा समाज का स्वरूप होता है, वैसा ही शिक्षा का स्वरूप रहा है। जब प्रविधियाँ और मूल्य परिवर्तित होते हैं तो समाज में नवीन आवश्यकताओं की पूर्ति तथा चुनौतियों का सामना करने के लिए शिक्षा का स्वरूप तद्नुरूप परिवर्तित कर देता है और नवीन शिक्षा नीति का निर्माण करता है।

निम्नलिखित तथ्यों के कारण शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के पीछे–पीछे चलती है–

1. सामाजिक आश्यकताओं के कारण– जिस समय किसी समाज के जो लक्ष्य, उद्देश्य, आदर्श तथा आवश्यकताएँ होती हैं, उन्हीं के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। **उदाहरण के लिए,** आज के भारत के कई उद्देश्य तथा आवश्यकताएँ हैं। **जैसे**–समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना, औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण, सामाजिक–आर्थिक समानता, व्यापक जन–शिक्षा आदि। इन सब उद्देश्यों तथा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार रखे गये हैं। **जैसे**– निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा, समाज शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, साक्षरता–अभियान, उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन, स्त्रियों, हरिजनों एवं जन–जातियाँ तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिए विशेष शैक्षिक सुविधाएँ, कृषि एवं उद्योगों के विकास के लिये वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा का प्रसार।

2. सामाजिक शक्तियों के कारण–समाज की कुछ शक्तियाँ होती है, **जैसे**–समाज में विद्यमान भिन्न–भिन्न प्रकार के समूह, समाज में आदर्श मूल्यों तथा आचरण प्रतिमान, समाज की आवश्यकताएँ तथा आकांक्षाएँ। जब किन्हीं कारणवश समाज की इन शक्तियों में परिवर्तन होने लगता है तब शिक्षा में आवश्यक परिवर्तन हो जाता है।

3. सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण– सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण भी शिक्षा का स्वरूप परिवर्तित होता है। संस्कृति के दो भाग होते हैं–भौतिक एवं अभौतिक। पहले परिवर्तन भौतिक क्षेत्र में होता है तथा बाद में अभौतिक संस्कृति में परिवर्तन होता है। भौतिक संस्कृति में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप शिक्षा में भी परिवर्तन हो जाते हैं। **ओटावे** के अनुसार–"सांस्कृतिक परिवर्तन के अनुकरण के कारण शैक्षिक परिवर्तन होता है।"

भौतिक संस्कृति में परिवर्तन का एक उदाहरण रेडियो का आविष्कार है। रेडियो के सामाजिक जीवन पर अनेक प्रभाव हुए हैं। **जैसे**–इसके द्वारा नवीन ज्ञान मिला है, पाठ्यक्रम निर्माण संबंधी सिद्धांतों में परिवर्तन हुआ है, शिक्षण की नवीन विधियों का प्रतिपादन हुआ है, टेक्निकल शिक्षा की माँग हुई है, टेक्निकल स्कूल व शिक्षण संस्थान खोले गये हैं, रेडियो से संबंधित ज्ञान और विज्ञान को शिक्षा का अनिवार्य भाग बनाया गया है तथा रेडियो उद्योग के लिए कुशल तकनीकियों की माँग बढ़ी है।

प्रश्न 19. सामाजिक परिवर्तन में विद्यालयों की भूमिका की संक्षेप में विवेचना कीजिए।

उत्तर– सामाजिक परिवर्तनों को उचित दिशा एवं गति प्रदान करने में विद्यालय की महती भूमिका है। विद्यालय में अच्छी साधन सुविधाएँ होनी आवश्यक है, ताकि इनका उपयोग सामाजिक परिवर्तनों में हो सके। विद्यालयों को सामाजिक परिवर्तन हेतु कुछ कार्यक्रम निर्धारित करने पड़ते हैं। तद्नुरूप नियोजित कार्यक्रम का संचालन करना पड़ता है। विद्यालय के कार्यक्रमों के नियोजन में निम्नलिखित तथ्य ध्यान में रखना चाहिए–

1. विद्यालय में सहगामी प्रवृत्तियों की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए।
2. विद्यालय सामुदायिक विद्यालय के रूप में कार्य करे।
3. विद्यालय को एक लघु समाज के रूप में मानकर समाज को उचित दिशा में मार्गदर्शन मिलना चाहिए।
4. विद्यालय में विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर समय–समय पर गोष्ठियाँ या वाद–विवाद प्रतियोगिताएँ आयोजित की जानी चाहिए।
5. विद्यालय का प्रशासन जनतांत्रिक पद्धति पर आधारित होना चाहिए।
6. विद्यालय में सामाजिक तथा सांस्कृतिक उत्सवों के आयोजन की व्यवस्था होनी चाहिए, ताकि अतीत की मान्यताओं तथा संस्कृति को सुरक्षित रखा जा सके।

7. विद्यालय को चाहिए कि वह समाज के साथ अधिक–से–अधिक घनिष्ठ संबंध स्थापित करे। अभिभावक–शिक्षक संघ द्वारा यह कार्य किया जाना चाहिए।

8. विद्यालय में ऐसे विषयों की शिक्षा की व्यवस्था हो, जो समाज की संस्कृति के हस्तांतरण, समीक्षा तथा विश्लेषण में सहायक हो।

9. विद्यालय द्वारा बालकों के सामाजिक विकास हेतु प्रयास किया जाना चाहिए ताकि वे सामाजिक जीवन की अनुभूति कर सकें।

10. विद्यालय द्वारा समाज में व्याप्त बुराइयों, कुरीतियों, कुप्रथाओं तथा आडम्बरों के प्रति अंधविश्वास की भावना दूर कर नवीनता की प्रवृत्ति का विकास करना चाहिए।

11. विद्यालय द्वारा ऐसे छात्र तैयार किये जाने चाहिए जो विवेकशील एवं साहसी हो, परिवर्तन करने में सक्षम हो तथा परिवर्तन के फलस्वरूप नवीनता को स्वीकार करने तथा उन्हें समाज तक पहुँचाने की शक्ति रखते हों।

प्रश्न 20. सामाजिक परिवर्तन में शिक्षकों की भूमिका की संक्षेप में विवेचना कीजिए।

(जबलपुर 2022)

उत्तर– शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन होता है। यदि यह शिक्षा शिक्षक से जोड़ दी जाये, तो सामाजिक परिवर्तन की गति और तीव्र हो जाती है। शिक्षक न केवल लघु समाज (विद्यालय) का नेता होता है, अपितु उसका समाज में भी नेतृत्व स्वीकार किया गया है क्योंकि अब विद्यालय को सामुदायिक विद्यालय के रूप में प्रयोग किया जाने लगा है।

प्राचीन शैक्षिक इतिहास के अवलोकन से भी ज्ञात होता है कि देश एवं विदेश के शैक्षिक चिंतकों द्वारा समाज का परिवर्तन करने में नई दिशा मिली।

ग्रामीण अंचल में आज भी शिक्षक का महत्व अधिक है क्योंकि वह अशिक्षित समाज को उपयोगी विचारों से अवगत कराता है। वह सुषुप्त ग्रामीणों में नव–चेतना तथा जन–जागरण का कार्य करता है। औपचारिक एवं अनौपचारिक माध्यमों द्वारा वह छोटे बालक से प्रौढ़ तक साक्षरता अभियान प्रारंभ करता रहा है एवं इसके फलस्वरूप समाज से परिवर्तन की अपेक्षा करता रहता है।

महाविद्यालय स्तर पर भी किशोरों की शक्ति को रचनात्मक कार्यों की ओर मोड़कर उन्हें सामाजिक प्रगति हेतु प्रेरित किया जा सकता है। शिक्षक समाज को कुशल नेतृत्व प्रदान करता है। सामाजिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया में शिक्षक के महत्व को भुलाया नहीं जा सकता। वह इस प्रक्रिया को गति प्रदान करने के लिए कुछ विशिष्ट गुणों का प्रयोग करते हुए विशिष्ट कार्य करने को उद्यत होता है। इन कार्यों में कुछ प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1. शिक्षक एक सृजनशील नेता के रूप में सामाजिक परिवर्तन की भूमिका निभाता है।

2. शिक्षक अपनी जीवन की शैली जनतांत्रिक सिद्धांतों पर लेकर चलता है, अन्य जन-साधारण भी उसी का अनुसरण करते हैं।

3. शिक्षक बालकों तथा समाज के जन–साधारण तक नवीनतम वैज्ञानिक, आविष्कारों तथा उनके उपयोग का ज्ञान देता है ताकि उन वैज्ञानिक तथ्यों को वह अपने जीवन में प्रयोग कर सके।

4. शिक्षक द्वारा ऐसा शिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए, जो बालकों में तर्क, चिंतन, मनन, विश्लेषण तथा संश्लेषण शक्ति का विकास कर सके।

5. शिक्षक द्वारा प्रतिभावन छात्रों को सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

6. शिक्षक को समाज की संस्कृति के शाश्वत् मूल्यों तथा नैतिक मान्यताओं का ज्ञान होना चाहिए, जिससे कि वह उनका हस्तांतरण आगे आने वाली पीढ़ी को कर सके और उनका शुद्धीकरण तथा समीक्षा कर उनमें से अच्छी बातों को ग्रहण कर सके।

7. शिक्षक द्वारा ऐसी शिक्षण व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे कि वह संस्कृति का संरक्षण करते हुए अन्य संस्कृतियों का भी बोध करा सके।

8. शिक्षक द्वारा समय–समय पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए।

9. अध्यापक को विद्यालय की सीमा में ही रहकर कार्य नहीं करना चाहिए अपितु समाज में संबंध स्थापित कर उसकी समस्याओं को सुनकर उनके सामाधान हेतु विचार करना चाहिए।

प्रश्न 21. सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति एवं दिशा की विवेचना कीजिए।

उत्तर–सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति तथा प्रक्रिया की गति सदा एक जैसी नहीं होती। कभी–कभी समाज में क्रांतिकारी महापुरुष पैदा होते हैं जो समाज में क्रांति उत्पन्न कर देते हैं। संसार में धार्मिक क्षेत्र में अनेक महापुरुष हुए हैं जिन्होंने समाज के विभिन्न पक्षों पर अपना प्रभाव डाला। यूरोप में मध्य युग में पुनर्जागरण **मार्टिन लूथर** के कारण हुआ था। भारत में उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी शासन के कारण और राजा राममोहन राय के ब्रम्ह समाज तथा स्वामी दयानंद के आर्य समाज के कारण सामाजिक क्रांति हुई थी। वर्तमान शताब्दी में वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण सामाजिक परिवर्तन बड़ी तीव्र गति से हो रहे हैं। भारतवर्ष में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत समाज तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। शिक्षा में परिवर्तन भी सामाजिक रूप का परिवर्तन है।

सामाजिक परिवर्तन को प्रकृति के अनुसार, **प्रो. डब्ल्यू. जे. एच. सॉफ्ट** ने मुख्यत: दो भागों में बाँटा है–

1. बाह्य परिवर्तन या भौतिक परिवर्तन– यह परिवर्तन समाज से बाहर के अभिकरणों द्वारा लाये जाते हैं, **जैसे–** बाह्य आक्रमण, उपनिवेशवाद, सांस्कृतिक सम्पर्क आदि।

2. आंतरिक परिवर्तन– प्रो. महोदय ने आंतरिक परिवर्तन को दो उपभागों में बाँटा है जो– (i) तकनीकी तथा (ii) सांस्कृतिक है। एक तो आकस्मिक परिवर्तन होते हैं जो किसी ऐसी घटना के द्वारा हो जाते हैं जिनके बारे में व्यक्तिगत स्तर पर समाज या राज्य सोच भी नहीं पाते हैं। यह अधिकतर नवीन आविष्कारों से विशिष्ट रूप से संबंधित है जो कि समाज के सम्पूर्ण जीवन को ही प्रभावित कर देती है और नवीन परिवर्तन हो जाते हैं, **जैसे–** आणविक शक्ति, लेजर किरणें, राडार आदि। परिवर्तन अच्छा है या बुरा, यह इस पर निर्भर करेगा कि समाज इन आविष्कारों का प्रयोग किस प्रकार करेगा जिससे यह निश्चित हो कि समाज की कुल प्रगति होगी अथवा पतन लेकिन परिवर्तन अवश्य आयेगा।

रचनात्मक परिवर्तन– इसके अतिरिक्त रचनात्मक परिवर्तन भी होते हैं, जो समाज सोच–विचार कर लाने का प्रयत्न करता है। यह समाज की योजनाओं पर आधारित है जो तर्कपूर्ण, संगठनात्मक एवं योजनाबद्ध तरीके से सामाजिक कल्याण के लिए राजनैतिक एवं आर्थिक जाग्रति के साथ लागू की जाती है और इनके अंत में सांस्कृतिक परिवर्तन के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन आ जाता है।

प्रश्न 22. सामाजिक परिवर्तन किसे कहते हैं ? वांछित सामाजिक परिवर्तन में शैक्षिक संचार माध्यमों की भूमिका लिखिये।

उत्तर–सामाजिक परिवर्तन– उत्तर के लिए प्रश्न क्रमांक 15 देखें।

सामाजिक परिवर्तन में शैक्षिक संचार माध्यमों की भूमिका–सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को सूचना प्रौद्योगिकी ने अनेक नई अवधारणाओं से जोड़ा है। घर बैठे टेलीविजन और कम्प्यूटर पर इंटरनेट के जरिए मनोरंजन और आमोद–प्रमोद संभव हो गया है। मल्टीमीडिया वर्चुअल रियालिटी,

डिजीटल वीडियो, ऑडियो, 3-डी ग्रॉफिक्स आदि और ऐसे ही अन्य प्रौद्योगिकी चमत्कार शिक्षा और मनोरंजन प्रदान कर रहे हैं।

किसी भी समाज में सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए सबसे अधिक उपयोगी जनसंचार के साधन होते हैं। प्राचीनकाल में प्रेस के आविष्कार से पहले टोली सम्पर्क और नाटक के माध्यमों से सामाजिक परिवर्तन लाये जाते थे। प्रेस के आविष्कार से इस क्षेत्र में पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं और समाचार–पत्रों का प्रयोग बढ़ा है। विज्ञान के बढ़ते कदमों ने हमें जनसंचार के नए–नए साधन– ग्रामोफोन, लाउडस्पीकर, रेडियो, टेपरिकॉर्डर, चलचित्र, टेलीविजन उपलब्ध कराए। आज कोई भी देश शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन के लिए इनका प्रयोग करता है। इनके माध्यम से हम बहुत कम समय में और अपेक्षाकृत बहुत कम व्यय से अपने नए विचारों को समाज के अधिक–से–अधिक व्यक्तियों तक पहुँचा देते हैं। जनसंचार के माध्यम से बच्चों, युवकों, प्रौढ़ों और शिक्षित–अशिक्षित सभी तक अपनी बात पहुँचा पाते हैं।

विद्यालय केवल भावी पीढ़ी की नींव रखते हैं परंतु जनसंचार के साधन मौजूदा और भावी दोनों पीढ़ियों को प्रभावित करते हैं।

हमारे भारतीय समाज में लड़के–लड़कियों का विवाह 20 वर्ष की उम्र के बाद करने और कम संतान पैदा करने का जो सामाजिक परिवर्तन आया है उसमें सर्वाधिक भूमिका जनसंचार के साधनों की ही रही है।

आज हम भारतीय समाज के जिस आधुनिकीकरण की बात कर रहे हैं उसमें भी सर्वाधिक प्रयोग जनसंचार के साधनों का ही लिया जा रहा है। इन जनसंचार के साधनों का ही कमाल है कि देखते–देखते भारत में विज्ञान के प्रति रुचि बढ़ी है और लोग अपने–अपने क्षेत्र में विज्ञान व तकनीकी का लाभ उठा रहे हैं। संचार के माध्यमों से न केवल शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार होगा वरन् कक्षाओं के लिए श्रेष्ठ शैक्षिक सामग्री की उपलब्धता भी सुनिश्चित होगी और प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में भी सुधार होगी। संचार माध्यमों से सूचना तकनीकी इतनी सर्वांगीण और संभावनाओं की दृष्टि से इतनी समृद्ध है कि सामाजिक जीवन के किसी भी क्षेत्र की जरूरत को पूरा कर सकती है और समूचे समाज को ऐसा रूप प्रदान कर सकती है, जो उसके लिए अपेक्षित है।

प्रश्न 23. सामाजिक नियंत्रण से आप क्या समझते हैं ? सामाजिक नियंत्रण के उद्देश्य बताइए। **(जबलपुर 2022**

उत्तर– समाज सामाजिक संबंधों का जाल है जिसकी प्रत्येक कड़ी अन्य कड़ियों से इस प्रकार से जुड़ी हुई है कि उसे अलग कर पाना अत्यंत जटिल होता है। यह संबंध समाज के साथ–साथ विकसित एवं परिवर्तित होते रहते हैं। इनमें परिवर्तन तथा स्वीकारोक्ति इत्यादि की एक निश्चित व्यवस्था रहती है। जिस पद्धति या संगठन द्वारा ये संबंध नियंत्रित होते हैं, उसे ही सामाजिक नियंत्रण कहा जाता है। सामाजिक नियंत्रण के लिए दो तत्वों की आवश्यकता होती है, एक वह जो नियंत्रित करता है। दूसरा वह जो नियंत्रित किया जाता है। समाज वास्तव में सामाजिक संबंधों की व्यवस्था है इसमें नियंत्रण के जो तत्व होते हैं उनका प्रयोग किसी–न–किसी व्यक्ति द्वारा किया जाता है, जैसे- परिवार में माता–पिता बालक के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। माता–पिता के व्यवहार का नियंत्रण समुदाय तथा अन्य लोगों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार समाज में भिन्न–भिन्न संबंधों में व्यक्ति एक–दूसरे का नियंत्रण करते हैं। इस तरह सामाजिक नियंत्रण निम्नांकित स्तरों पर कार्य करती है-

1. समूह का समूह पर नियंत्रण। 2. समूह द्वारा अपने सदस्यों पर नियंत्रण। 3. साथियों द्वारा अपने मित्रों पर नियंत्रण।

सामाजिक नियंत्रण का अर्थ एवं परिभाषाएँ– सामाजिक नियंत्रण से अभिप्राय माता–पिता, समुदाय एवं समाज इत्यादि द्वारा अमानवीय कृत्यों या व्यवहारों को करने से रोकना है। प्रत्येक समाज के अपने कुछ मूल्य, आदर्श, उद्देश्य, संस्कृति एवं परम्पराएँ होती हैं और प्रत्येक व्यक्ति को उसी के अनुरूप व्यवहार करने की आशा की जाती है। जब कोई इन सामाजिक नियंत्रणों को तोड़ने का प्रयास करता है जो समुदाय द्वारा परम्परा के नाम पर उसे रोका जाता है। यद्यपि इन परम्पराओं में परिवर्तन होता रहता है परंतु उसकी गति बहुत ही मंद होती है। शिक्षा सामाजिक नियंत्रण को कमजोर करती है तथा सामाजिक परिवर्तन की अग्रदूत बनती है।

समाजशास्त्रियों द्वारा सामाजिक नियंत्रण की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी गई हैं–

रॉस के अनुसार–"सामाजिक नियंत्रण उन पद्धतियों की व्यवस्था है जिनके द्वारा समाज अपने सदस्यों को मान्य व्यवहार प्रतिमानों के अनुरूप होता है।"

बोगार्डस के अनुसार–"समूह नियंत्रण वह ढंग है जिससे एक समूह अपने सदस्यों के व्यवहारों को नियंत्रित करता है।"

सामाजिक नियंत्रण के उद्देश्य–सामाजिक नियंत्रण के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. प्राचीन परम्पराओं की रक्षा करना। 2. प्राचीन मूल्यों एवं आदर्शों का संरक्षण। 3. मानवीय मूल्यों की स्थापना। 4. अमानवीय कृत्यों को रोकना। 5. समाज में रीति एवं स्थिरता की स्थापना करना। 6. समाज में सामंजस्य एवं विकास को बढ़ावा देना। 7. समाज में अन्याय, अत्याचार का विरोध करना। 8. युवाओं को प्राचीन मूल्यों, आदर्शों एवं परम्पराओं से परिचित कराने तथा उन्हें मानसिक रूप से सक्षम बनाना।

प्रश्न 24. "सामाजिक परिवर्तन व सामाजिक नियंत्रण हेतु शिक्षा एक शक्तिशाली माध्यम है।" इस कथन की पुष्टि में अपने विचार लिखिये। **(इंदौर 2023)**

उत्तर– सामाजिक नियंत्रण में शिक्षा की भूमिका– यह सत्य है कि समाज शिक्षा को प्रभावित करता है और शिक्षा समाज को प्रभावित करती है। सामाजिक नियंत्रण में शिक्षा की भूमिका को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. शिक्षा द्वारा सामाजिक विरासत का संरक्षण– शिक्षा संस्कृति और सभ्यता का संरक्षण करती है। प्रत्येक समाज की अपनी प्रथाएँ, परम्पराएँ, रीति–रिवाज, धर्म, विश्वास और नैतिकता होती है। समाज इन्हें प्राचीन समय से अर्जित करता चला आ रहा है। यदि शिक्षा इस सामाजिक विरासत को आने वाली पीढ़ियों को न सौंपे तो समाज का स्थायित्व ही समाप्त हो जायेगा। इस तरह शिक्षा सांस्कृतिक ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती रहती है। प्रत्येक समाज को अपनी संस्कृति पर गर्व होता है। इसी वजह से वह इसे नष्ट नहीं होने देना चाहता है। यह कार्य शिक्षा द्वारा ही पूर्ण किया जा सकता है। शिक्षा सामाजिक विरासत का संरक्षण करके समाज के अस्तित्व को बनाये रखती है।

2. बालक का शिक्षा द्वारा समाजीकरण– बालक के मानसिक और सामाजिक विकास में शिक्षा मदद करती है। शिक्षा ही उसे सामाजिक और सांस्कृतिक आदर्शों एवं मान्यताओं का ज्ञान प्रदान करती है। बालक जब अन्य बालकों के संपर्क में आता है तो बालक का समाजीकरण शुरू हो जाता है। इस तरह शिक्षा बालक को सामाजिक प्राणी और समाज का एक उपर्युक्त सदस्य बनाने में अत्यधिक कार्य करती है। शिक्षा व्यक्तियों को शिक्षित करके सामाजिक नियंत्रण का कार्य करती है।

3. शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व का विकास– **फ्रॉबेल** के अनुसार, "शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियाँ बाहर प्रकट होती हैं।" शिक्षा का उद्देश्य समाज के व्यक्तियों का सर्वांगीण विकास करना है। व्यक्तित्व के उचित विकास द्वारा ही व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि

वह समाज में अच्छा आचरण कर और एक आदर्श उपस्थित करेगा। शिक्षा ही सामाजिक आदर्शों और मूल्यों को स्थायित्व प्रदान करती है। इस प्रकार व्यक्ति का व्यवहार हमेशा नियंत्रित रहता है।

4. शिक्षा–सामाजिक विकास की प्रक्रिया– शिक्षा का तात्पर्य केवल व्यक्तिगत विकास ही नहीं है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही अपना जीवन व्यतीत करता है। शिक्षा उसका सामाजिक विकास करती है।

5. शिक्षा द्वारा नैतिक गुणों का विकास– शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य बालक के चरित्र का निर्माण और उसका नैतिक विकास करना है। सभी युगों और देशों में नैतिकता को बहुत महत्व दिया गया है। **चार्ल्स ब्रुक्स** के अनुसार, "नैतिकता में वे सभी तत्व आ जाते हैं जो व्यक्तियों के आचरण को नियमित करते हैं। **जैसे**– न्याय, संयम, परोपकार, परिश्रम, पवित्रता, सत्य से प्रेम, आज्ञापालन आदि। इस प्रकार शिक्षा व्यक्ति में प्रेम, त्याग, सहयोग, अनुशासन और कर्त्तव्यनिष्ठा के गुणों को विकसित करती है। स्पष्ट है कि शिक्षा इन नैतिक गुणों का विकास करके सामाजिक जीवन को अधिक क्रियाशील और नियंत्रित बनाये रखती है।

6. शिक्षा द्वारा आर्थिक सुरक्षा– शिक्षा का एक कार्य यह है कि वह व्यक्तियों को उन व्यवसायों और उद्योगों के लिए प्रशिक्षित करे जो न केवल उनके लिए वरन् समाज और देश के लिए उपयोगी सिद्ध हो। शिक्षा व्यक्ति में उन क्षमताओं का विकास करती है जिससे व्यक्ति अपनी जीविका कमाने में समर्थ हो सके। समाज में जब प्रत्येक व्यक्ति को जीविका के साधन उपलब्ध होते हैं तो समाज में व्यवस्था बनी रहती है। स्पष्ट है कि शिक्षा व्यक्तियों में जीविकोपार्जन के साधन का विकास करके सामाजिक नियंत्रण रखती है।

7. शिक्षा द्वारा सामाजिक नियंत्रण का ज्ञान– शिक्षा व्यक्ति को समाज में नियमों, आदर्शों और परम्पराओं का ज्ञान कराती है। व्यक्ति इन नियमों को तोड़ने के परिणामों से भी अवगत रहते हैं। यही कारण है कि शिक्षित व्यक्ति समाज में नियमों के अनुसार कार्य करना पसंद करते हैं।

8. सामाजिक कुरीतियाँ और शिक्षा– शिक्षा समाज के विभिन्न कुरीतियों, दोषों और कुप्रथाओं के विरुद्ध जनमत का निर्माण करती है। शिक्षा कुप्रथाओं को रोकती है और उन्हें समाप्त करने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार शिक्षा सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करती है।

9. शिक्षा और पर्यावरण से अनुकूलन– व्यक्ति में शिक्षा उस क्षमता को विकसित करती है, जिससे वह अपने पर्यावरण से अनुकूलन कर सके। शिक्षा के माध्यम से यह कार्य निम्नलिखित प्रकार से किया जाता है–

शिक्षा व्यक्ति में ऐसी क्षमता को उत्पन्न करती है कि वह समाज में परिस्थिति के अनुसार व्यवहार कर सके। शिक्षा पर्यावरण से अनुकूलन करने का ज्ञान देती है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने पर्यावरण से अनुकूलन करना जरूरी होता है। इस बारे में **लैंण्डिस** का कथन उल्लेखनीय है, वह लिखते हैं–"चूँकि शिक्षा जीवन के प्रारंभ से ही अपना कार्य प्रारंभ कर देती है और चूँकि यह अभिवृत्तियों तथा मूल्यों को विशेष रूप से प्रभावित करती है। अत: यह सामाजिक नियंत्रण के अन्य साधनों की तुलना में अधिक सफल होती है।"

10. शिक्षा द्वारा बौद्धिक विकास– शिक्षा द्वारा व्यक्ति का बौद्धिक विकास होता है। शिक्षा का दृष्टिकोण वैज्ञानिक होता है। व्यक्ति की जन्मजात शक्तियों का विकास शिक्षा द्वारा होता है। शिक्षा व्यक्ति में तर्क और चिंतन की क्षमता पैदा करती है। इस प्रकार व्यक्ति को इस बात की जानकारी हो जाती है कि क्या उचित है और क्या अनुचित। शिक्षा उचित और अनुचित में अंतर समझाकर सामाजिक नियंत्रण का कार्य करती है।

अत: स्पष्ट है कि शिक्षा सामाजिक नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण अभिकरण है। शिक्षा का सामाजिक संगठन और नियंत्रण की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रश्न 25. सामाजिक नियंत्रण का अर्थ बताते हुए उसके प्रकार तथा विधियों का वर्णन कीजिए। **(छतरपुर 2021, 22; इंदौर 22)**

***अथवा,* सामाजिक नियंत्रण के विभिन्न अभिकरण लिखिए।(ग्वालियर 2021; जबलपुर 21)**

उत्तर– समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज व्यक्ति को समाज के नियम, रहने–सहने का ढंग आदि सिखाता है। बचपन से व्यक्ति सीखना प्रारंभ कर देता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास ही समाजीकरण पर आधारित है। समाजीकरण की प्रक्रिया अन्तरीकरण की प्रक्रिया है। जो व्यवहार सिखाये जाते हैं, उन्हें व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का अंग बना लेता है। यही उसकी अभिवृत्तियाँ, मूल्य, आदर्श तथा दृष्टिकोण बन जाते हैं। सामाजिक नियंत्रण का कार्य वहाँ प्रारंभ होता है जहाँ समाजीकरण का कार्य समाप्त होता है। समाज के अनुरूप व्यवहार करना यदि व्यक्ति सीख लेता है तो ठीक है, वरन् सामाजिक नियंत्रण द्वारा इस प्रकार के व्यवहार को सीखने के लिए उसे बाध्य किया जाता है। इस प्रकार सामाजिक नियंत्रण एक बाह्य शक्ति के रूप में व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करता है। सामाजिक नियंत्रण बल का भी प्रयोग करता है। अतः समाजीकरण तथा सामाजिक नियंत्रण एक ही उद्देश्य को प्राप्त करने के दो भिन्न साधन हैं और एक–दूसरे के पूरक हैं।

मैकाइवर व पेज के अनुसार–"सामाजिक नियंत्रण का आशय उस ढंग से है जिसमें सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था समन्वित रहती है और स्वयं को कायम रखती है जिससे यह सम्पूर्ण व्यवस्था एक परिवर्तनशील संतुलन के रूप में क्रियाशील रहती है।"

सामाजिक नियंत्रण के प्रकार– सामाजिक नियंत्रण के प्रकारों के संबंध में समाजशास्त्रियों के अलग–अलग मत हैं। नीचे कुछ प्रमुख समाजशास्त्रियों के मतों को प्रस्तुत किया जा रहा हैं–

कार्ल मैनहीम ने सामाजिक नियंत्रण को दो भागों में विभक्त किया हैं–1. प्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण एवं 2. अप्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण।

1. प्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण– जब निकट के लोगों का व्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है तो इसे प्रत्यक्ष नियंत्रण कहते हैं। प्रायः प्राथमिक समूहों में **प्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण** पाया जाता है। **उदाहरणार्थ**– यह नियंत्रण परिवार, पड़ोस, खेल–समूह आदि में पाया जाता है। माता–पिता, शिक्षक, साथी, पड़ोसी, साथ काम करने वालों आदि के मतों का व्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है। साथ ही उनकी निंदा, प्रशंसा, सुझाव आदि से व्यक्ति के व्यवहार का नियंत्रण होता है।

2. अप्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण– यह व्यक्ति से दूर रहने वाले कारकों का व्यक्ति के व्यवहार पर नियंत्रण है। यह नियंत्रण प्राकृतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण द्वारा उत्प्रेरित होता है। द्वैतीयक समूहों द्वारा व्यक्ति का नियंत्रण **अप्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण** कहलाता है। इनमें परम्परागत संस्थाओं, प्रथाओं, स्थितियों के परिवर्तन, सामाजिक यंत्र आदि का व्यक्ति पर प्रभाव महत्वपूर्ण माना जाता है। ये नियंत्रण के साधन अप्रकट तथा सूक्ष्म होते हैं।

किम्बाल यंग ने रीतियों की दृष्टि से सामाजिक नियंत्रण के प्रकारों को विभाजित किया है। उन्होंने सामाजिक नियंत्रणाओं को दो भागों में बाँटा है–

(1) सकारात्मक नियंत्रण– किम्बाल यंग का वर्गीकरण सामाजिक नियंत्रण की विधि पर आधारित है। उन्होंने पुरस्कार पर आधारित सामाजिक नियंत्रण को सकारात्मक के अन्तर्गत रखा है।

(2) नकारात्मक नियंत्रण–दंड पर आधारित सामाजिक नियंत्रण को नकारात्मक कहा है। दण्ड के भय से व्यक्ति समाज द्वारा स्वीकृत प्रथाओं, परंपराओं, मूल्यों, आदर्शों आदि के अनुसार आचरण करने लगता है।

हेज ने सामाजिक नियंत्रणों को दो भागों में विभक्त किया है– 1. अनुमोदन द्वारा नियंत्रण व 2. समाजीकरण तथा शिक्षा द्वारा नियंत्रण।

1. अनुमोदन द्वारा नियंत्रण– इनमें अपराधी को दण्ड या पुरस्कार देकर सामाजिक नियंत्रण किया जाता है।

2. समाजीकरण तथा शिक्षा द्वारा नियंत्रण– सामाजिक नियंत्रणों के उपर्युक्त प्रकारों के अलावा औपचारिक तथा अनौपचारिक प्रकार भी माने गये हैं–

(1) औपचारिक नियंत्रण– औपचारिक नियंत्रणों में वे विधियाँ आती हैं जिनको विचार–विमर्श करके नियंत्रण करने के लिए बनाया जाता है। **उदाहरणार्थ**– वैधानिक संहिताएँ, समितीय संहिताएँ, आर्थिक संहिताएँ आदि।

(2) अनौपचारिक नियंत्रण– अनौपचारिक नियंत्रण के अन्तर्गत वे साधन या विधियाँ आती हैं जो स्वतः समाज की आवश्यकताओं के अनुसार विकसित होती हैं। ये विधियाँ अपने आप में नियंत्रण का कार्य करती रहती हैं, **उदाहरणार्थ**– जनरीतियाँ, रीति–रिवाज, रूढ़ियाँ, सामाजिक आदर्श आदि। जनमत और उपहास उड़ाना आदि ऐसे साधन हैं जो मनुष्यों पर नियंत्रण रखते हैं। आधुनिक युग में भी इनका महत्व कम नहीं हुआ है। मनुष्य के अधिकांश व्यवहारों पर ये साधन ही नियंत्रण रखते हैं।

ग्रामों में समुदाय एक प्रकार का प्राथमिक समूह होता है जहाँ पर औपचारिक नियंत्रण की अपेक्षा अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण अधिक प्रभावी होता है। प्रथाओं या रीति–रिवाजों का ग्रामवासियों पर अधिकांश आधिपत्य होता है। अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण निम्नांकित युक्तियों तथा प्रतिक्रियाओं द्वारा प्रभावी बनता है–

(क) सामाजिक विचार प्रतिपादन, (ख) अभ्यस्तता, (ग) नेतृत्व, (घ) संस्कार, (ङ) सामाजिक प्रतीक, (च) उत्सव।

सामाजिक नियंत्रण की विधियाँ, साधन तथा माध्यम–

सामाजिक नियंत्रण की विधियाँ– पुरस्कार व दंड सामाजिक नियंत्रण की प्रमुख विधियाँ हैं। प्रत्येक संस्था इन विधियों का प्रयोग करती है। पुरस्कार के विभिन्न रूप हैं– शाबाशी देना, प्रशंसा करना, सम्मान करना, इनाम देना, पीठ थपथपाना आदि। हँसी उड़ाना, मजाक उड़ाना, ताना मारना, बुरा–भला कहना, किसी वस्तु से वंचित रखना, समूह से निष्कासन, अपमान करना आदि दंड के विभिन्न रूप हैं। सामाजिक नियंत्रण की अन्य विधियाँ इस प्रकार हैं–

1. समाजीकरण, 2. विचार–प्रतिपादन, 3. प्रदर्शन, 4. अनुकरण, 5. सुझाव, 6. अनुनय, 7. शिक्षा एवं निर्देशन।

सामाजिक नियंत्रण के साधन–सामाजिक नियंत्रण के प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, अनौपचारिक बहुत से साधन है। रॉस ने सामाजिक नियंत्रण के महत्वपूर्ण साधनों में परिवार, शिक्षा–प्रणाली, विश्वास एवं धर्म, सामाजिक चिन्ह, सामाजिक आदर्श, संस्कार आदि को स्थान प्रदान किया है। गिडिंग्स ने इसके साधनों में विश्वास, सामाजिक संकेत, सामाजिक आदर्श, सामाजिक उत्सव, प्रचार, शिक्षा आदि को स्थान प्रदान किया है। अतः सामाजिक नियंत्रण के प्रमुख साधन इस प्रकार हैं–

1. विचारधाराएँ, 2. कला एवं साहित्य, 3. आर्थिक नियंत्रण, 4. धार्मिक संहिताएँ, 5. आचार-संहिताएँ, 6. सामाजिक संहिताएँ, 7. शारीरिक बल, 8. भाषा, 9. मनोरंजन, 10. जनमत, 11. नेतृत्व, 12. कानून आदि।

सामाजिक नियंत्रण के माध्यम– सामाजिक नियंत्रण के लिए हम जिन साधनों का प्रयोग करते हैं व किसी–न–किसी माध्यम के द्वारा प्रयोग किए जाते हैं। इन माध्यमों के नाम पर जो व्यक्ति कार्य करते हैं उन्हें **अभिकर्त्ता** कहा जाता है। इनमें परिवार, समूह, राज्य, समुदाय, विभिन्न समितियाँ आदि प्रमुख हैं। अतः वास्तविक नियंत्रक ये **अभिकर्त्ता** ही हैं जिन्हें माध्यम अपना कार्य सौंप देते हैं।

सामाजिक नियंत्रण के माध्यम एवं उनके अभिकर्त्ताओं को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है–

क्र.	माध्यम	अभिकर्त्ता
1.	परिवार	माता–पिता, बड़े भाई–बहन व अन्य नातेदार।
2.	नातेदार समूह	नातेदार।
3.	क्रीडा समूह	साथी।
4.	राज्य	सरकार एवं उसके विभिन्न प्रशासनिक अधिकारी।
5.	धार्मिक समितियाँ	पादरी, पुरोहित, मुल्ला आदि।
6.	शैक्षिक संस्थाएँ	प्राचार्य, शिक्षक तथा अन्य कर्मचारी।
7.	आर्थिक समितियाँ	मालिक एवं अन्य अधिकारी।
8.	समुदाय	पड़ोसी, सामुदायिक नेता आदि।

परिवार तथा सामाजिक नियंत्रण–समाज सामाजिक संबंधों का ताना–बाना है। इन संबंधों को व्यवस्थित रखने के लिए अधिकारों और कर्त्तव्यों की ऐसी व्यवस्था की जाती है जिससे समाज के सदस्यों में आपस में संघर्ष एवं कलह न हो और वे एक–दूसरे के पूरक के रूप में साथ–साथ विकसित हो सकें। अतः समाज में व्यक्ति का सामंजस्य बनाये रखने के लिए समाज व्यक्ति पर अनेक प्रकार के नियंत्रण लगाता है। इस कार्य में परिवार एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। वह बड़ों की आज्ञा मानना, छोटों से स्नेह रखना तथा अन्य लोगों से सहानुभूति करना सिखाता है। वह समाज के मूल्यों या आदर्शों को विकसित करता है। परिवार में व्यक्ति भाषा सिखता है। भाषा का मानव के सामाजीकरण में महत्वपूर्ण हाथ है। इस प्रकार संक्षेप में परिवार समाज की सभ्यता एवं संस्कृति, कर्त्तव्यों तथा अधिकारों के सदुपयोग आदि द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करता है। यह संस्था या माध्यम उसके समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

राज्य तथा सामाजिक नियंत्रण– समाज में सामाजिक नियंत्रण को कार्यरूप देने में राज्य एक महत्वपूर्ण संस्था या माध्यम है। सामाजिक नियंत्रण की दृष्टि से राज्य माध्यम है, सरकार अभिकर्त्ता और विधि साधन है। आधुनिक समाजों में राज्य विधि द्वारा सामाजिक नियंत्रण करते हैं। विधि द्वारा शारीरिक तथा वित्तीय दंडों की व्यवस्था की जाती है। आधुनिक समाजों में विधि का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। राज्य सामाजिक विधायन द्वारा कल्याणकारी राज्यों की स्थापना हेतु अग्रसर है।

शिक्षा तथा सामाजिक नियंत्रण– शिक्षा जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है। **ब्राउन** व **रोसेक** के अनुसार, "शिक्षा अनुभवों का योग है जो बच्चे तथा वयस्क की अभिवृत्तियों का निर्माण करता है और आचरण का निर्धारण करता है।" अतः शिक्षा विकास में महत्वपूर्ण भाग लेती है। शिक्षण–संस्थाएँ, व्यक्तित्व निर्माण तथा सामाजिक नियंत्रण के प्रमुख माध्यम हैं। ये बालकों की अभिवृत्तियों एवं आदतों का निर्माण, मूल्यों या आदर्शों आदि के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। ये बालक को पूर्ण मानव बनाने के लिए प्रयासरत रहते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि शिक्षा सामाजिक नियंत्रण का सशक्त साधन है तथा वह व्यक्तित्व निर्माण में मुख्य भूमिका निभाती है।

प्रश्न 26. संस्कृति का अर्थ एवं उसकी विशेषताएँ लिखिए।

(उज्जैन 2021; छिंदवाड़ा 22; ग्वालियर 22)

***अथवा*, संस्कृति की आवश्यकता एवं महत्व को समझाइए।** **(इंदौर 2018)**

***अथवा*, "शिक्षा संस्कृति और ज्ञान दोनों के लिए हो।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।**

(ग्वालियर 2021)

उत्तर– संस्कृति का अर्थ– संस्कृति शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसकी उत्पत्ति 'संस्कार' से हुई है। संस्कृति में अनेक नए–नए तत्व आकर मिलते रहते हैं। जिसमें अच्छे संस्कार हो उसके व्यवहार और आचरण को सभी लोग पसंद करते हैं और ऐसा व्यक्ति सुसंस्कृत माना जाता है। अतः संस्कृति व्यक्ति के ऊपर अच्छे संस्कार डालती है।

उसके आचरण और व्यवहार में एक प्रकार का वांछनीय एवं आकर्षक परिवर्तन लाती है जिससे वह समाज के लिए आदरणीय एवं अनुकरणीय बन जाता है। उसकी गणना समाज के सभ्य व्यक्तियों में होने लगती है। जब हम किसी समाज, राष्ट्र या देश की संस्कृति का उल्लेख करते हैं तब हमारा तात्पर्य उसके लोगों के जीवन (रहन–सहन, खान–पान, वेशभूषा, भाषा, धार्मिक, विश्वास, सामाजिक आदर्श, कला, संगीत–नृत्य आदि) से होता है। अतः संस्कृति किसी समाज, राष्ट्र या देश का पूर्ण परिचय देने वाला साधन है।

संस्कृति की परिभाषा– टायलर के अनुसार– "संस्कृति एक जटिल सम्पूर्ण अवधारणा है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कलाएँ, नीति, रीति–रिवाज, आदतें, गुण आदि (जो समाज के सदस्य के रूप में व्यक्ति ने अर्जित की हैं) सम्मिलित हैं।"

मैकाइवर तथा पेज के अनुसार– "संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार, कला साहित्य, धर्म, मनोरंजन और आनंद में पाए जाने वाले रहन–सहन और विचार के तरीकों में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।"

ओटावे के अनुसार– "संस्कृति का अर्थ है समाज की सम्पूर्ण जीवन पद्धति।"

उपर्युक्त विवेचन से हम संस्कृति को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं– संस्कृति सामाजिक विरासत है। यह मानवीय समाज की आंतरिक अभिव्यक्ति है। हम जो कुछ हैं, वह हमारी संस्कृति है।

संस्कृति के मुख्य तत्व

(1) सामूहिक व्यवहार प्रतिमान
1. पौराणिक कथाएँ
2. कल्पनाएँ
3. प्रथाएँ
4. परम्पराएँ
5. मान्यताएँ
6. नियम
7. बातचीत का ढंग
8. एक–दूसरे से बर्ताव
9. फैशन आदि।

(2) साहित्य
1. नाटक
2. काव्य
3. गद्य
4. कहानी
5. उपन्यास आदि।

(3) धर्म के तत्व
1. पूजा पद्धति
2. धार्मिक अनुष्ठान

(4) कला तथा इसके विभिन्न क्षेत्र
1. संगीत
2. नृत्य
3. मूर्तिकला
4. चित्रकला आदि।

(5) आचार शास्त्र
1. सदाचार
2. सत्य बोलना
3. धोखा न देना आदि।

(6) शिक्षा

(7) सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक संस्थाएँ

(8) भाषा

(संस्कृति के विस्तृत अर्थ में)

संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ–ये निम्न हैं–

1. संस्कृति मानव निर्मित है– संस्कृति केवल मनुष्य समाज में ही पायी जाती है। मनुष्य में कुछ ऐसी मानसिक एवं शारीरिक विशेषताएँ हैं; जैसे– विकसित मस्तिष्क, केन्द्रित की जा सकने वाली आँखें, हाथ आदि उसे अन्य प्राणियों से भिन्न बनाती हैं, इसलिए वह संस्कृति को निर्मित एवं विकसित कर सका है। अपने विकसित मस्तिष्क के कारण ही मानव नए–नए आविष्कार करता है और उन्हें मानव जाति के अनुभवों में संजोता है। संस्कृति का धनी होने के कारण ही मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है।

2. संस्कृति हस्तान्तरित है– संस्कृति चूँकि सीखी जा सकतीं है इसलिए ही नई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी के द्वारा संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करती है। इस प्रकार एक समूह से दूसरे समूह को, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संस्कृति हस्तांतरित की जाती है। मानव को अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ करने में उसकी भाषा का भी महत्वपूर्ण योगदान है। भाषा के माध्यम से ही मनुष्य अपने ज्ञान व संस्कृति को दूसरे लोगों तक पहुँचाता है। नई पीढ़ी को भाषा, लेखन एवं संकेतों के माध्यम से अपने पूर्वजों द्वारा अर्जित ज्ञान का भंडार प्राप्त होता है जिसमें वे स्वयं का अनुभव भी जोड़ते चले जाते हैं। भूतकाल के अनुभवों का लाभ आने वाली पीढ़ी द्वारा उठाया जाता है।

3. संस्कृति सीखने योग्य है– संस्कृति मानव के सीखे हुए व्यवहार–प्रतिमानों का योग है। एक मनुष्य अपने जन्म के साथ किसी संस्कृति को लेकर पैदा नहीं होता है वरन् जिस समाज में पैदा होता है, उसकी संस्कृति को धीरे–धीरे समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सीखता है। सीखने की क्षमता मानव में ही नहीं बल्कि पशुओं में भी होती है परंतु पशुओं द्वारा सीखा गया व्यवहार संस्कृति नहीं कहलाता है।

4. प्रत्येक समाज की एक विशिष्ट संस्कृति होती है– एक समाज की भौगोलिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ दूसरे समाज से भिन्न होती हैं। अतः प्रत्येक समाज में अपनी एक विशिष्ट संस्कृति पायी जाती है।

5. संस्कृति में सामाजिक गुण निहित होता है– संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष की देन न होकर संपूर्ण समाज की देन होती है। संस्कृति सामूहिक आदतों, व्यवहारों एवं अनुभवों की ही संस्कृति के अंश, **जैसे**– प्रथाएँ, जन–रीतियाँ, भाषा, आदतों, व्यवहारों एवं अनुभवों की ही संस्कृति के अंश, जैसे– प्रथाएँ, जनरीतियाँ, भाषा, परम्पराएँ, धर्म, विज्ञान, कला वंशज आदि किसी एक व्यक्ति की विशेषताओं को प्रकट नहीं करते वरन् संपूर्ण समाज की जीवन विधि का प्रतिनिधित्व करते हैं।

6. संस्कृति समूह के लिए आदर्श होती है– समूह के लोग अपनी उन्नति को आदर्श मानते हैं और वे उसके अनुसार अपने व्यवहारों एवं विचारों को ढालते हैं।

7. संस्कृति मानव आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है– यह विशेषता है कि वह मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। मानव की अनेक सामाजिक, शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताएँ हैं। उनकी पूर्ति के लिए ही मानव ने संस्कृति का निर्माण किया है।

8. संस्कृति भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार अनुकूलित होती है–संस्कृति में समय समाज एवं परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको ढालने की क्षमता होती है। परिवर्तनशीलता संस्कृति का गुण है। विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार संस्कृति अपने आपको बदलती रहती है।

9. संस्कृति मानव–व्यक्तित्व के निर्माण में मौलिक होती है– एक मनुष्य का पालन–पोषण किसी सांस्कृतिक पर्यावरण में ही होता है। जन्म के बाद बच्चा अपनी संस्कृति को सीखकर उसे आत्मसात् करता है। एक संस्कृति में पले हुए व्यक्ति का व्यक्तित्व दूसरी संस्कृति के व्यक्तित्व से भिन्न होता है। इसका कारण यह है कि संस्कृति में प्रचलित रीति–रिवाजों, धर्म, दर्शन, कला, विज्ञान, प्रथाओं एवं व्यवहारों की छाप व्यक्ति के व्यक्तित्व पर पड़ती है।

10. संस्कृति में परिवर्तनशीलता एवं अनुकूलन का गुण होता है– भारत में वर्तमान समय की संस्कृति वैदिक युग की संस्कृति से काफी भिन्न है क्योंकि समय के साथ–साथ इसने अपने आपको बदला है। सांस्कृतिक परिवर्तन की गति के धीमा होने के कारण कोई भी संस्कृति पूरी तरह से समय के साथ नहीं बदलती है।

संस्कृति की आवश्यकता एवं महत्व–सामान्यतः हम संस्कृति को दो रूपों में स्वीकार करते हैं–एक तो सार्वभौमिक संस्कृति का तात्पर्य उस संस्कृति से है जिसके आवश्यक तत्व सभी भौगोलिक देशों की संस्कृति में व्याप्त होते हैं। उपसंस्कृति किसी स्थान की देश, काल तथा आदर्शों से प्रभावित संस्कृति होती है। इस संस्कृति का जन्म व्यक्ति के एकाकी जीवन व्यतीत करने के कारण हुआ करता है। कोई भी संस्कृति हो उसके कुछ कार्य होते हैं जिसके कारण उनका महत्व आँका जाता है तथा उसकी जीवन में आवश्यकता अनुभव की जाती है। वे कार्य अग्रलिखित हैं–

1. संस्कृति सामाजिक व्यवहार की दिशा निर्धारित करती है– जब बालक अपनी संस्कृति से परिचित होता है तो वह उसके अनुकूल सामाजिक आदर्शों, मान्यताओं, विश्वासों तथा परंपराओं के अनुकूल कार्य करना प्रारंभ कर देता है। इस प्रकार बालक संस्कृति से व्यवहार करने की दिशा ग्रहण करता है।

2. संस्कृति समाज तथा राष्ट्र को पारस्परिक प्रेम और एकता में बाँधती है– विश्व के प्रत्येक देश की क्रिया अपनी संस्कृति होती है जो व्यक्ति अपने देश और समाज में रहकर सांस्कृतिक क्रिया का सम्पादन करता है, वह सभी संबंधित संस्कृतियों में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों के प्रति प्रेम का भाव रखने लगता है। सामूहिक रूप से किसी सांस्कृतिक कार्यक्रम को मानते हुए एकता के सूत्र में बँध जाते हैं।

3. संस्कृति एक भाषा का विकास करके राष्ट्रीय भाषा का स्वरूप निर्धारित करती है–एक सार्वभौमिक संस्कृति का आधार प्रचलित भाषा होती है। मुस्लिम काल में इस्लाम धर्मावलम्बियों ने अरबी, फारसी तथा उर्दू को महत्व दिया। उर्दू को काम–काज की भाषा बनाया। अंग्रेजों ने अपनी पाश्चात्य संस्कृति के विकास के लिए अंग्रेजी भाषा को भारतीयों पर लादना चाहा। आज भारत में हिन्दी को सभी समझते हैं, अधिकांश बोलते हैं और पर्याप्त लोग पढ़ते और लिखते हैं। इसे भारतीय संस्कृति का प्रसारक मानकर राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया है।

4. संस्कृति राष्ट्रीय एकता और समाकलन में योग देती है– संस्कृति पर विश्वास रखने से देश के लोगों में एकता रहती है और भावात्मक एवं सामाजिक समाकलन शीघ्रता से हो जाता है। वास्तविकता यह है कि एक संस्कृति वाले समाज को अपनी परम्पराओं और विश्वासों से मोह हो जाता है। वे उसमें इतनी दृढ़ता से आस्था रखते हैं कि उसे छोड़ना पसंद नहीं करते। यह सांस्कृतिक एकता, राष्ट्रीय एकता तथा समंजन लाने में सफल हुई। यदि आज भी भारतीय संस्कृति को समन्वित रूप में अभिव्यक्त किया जाये तो राष्ट्रीय एकता और समंजन होने में सहयोग मिल सकेगा।

5. संस्कृति व्यक्ति को अनुकूलन का पाठ पढ़ाती है– भौगोलिक दशाएँ समाज की रचना और संस्कृति के निर्माण में बहुत योग देती है। मानव अपने सुख के लिए प्रकृति को अपने अनुकूल ढालने का प्रयास करता है अथवा स्वयं उसके अनुकूल ढल जाता है। एक विकसित संस्कृति का पोषक व्यक्ति प्रकृति को अपने अनुकूल ढालने का प्रयास करता है, वह दुर्गम स्थानों पर अपने आवागमन के मार्ग प्रशस्त करता है, रहने के लिए समुचित आवास बनाता है आदि। इस प्रकार व्यक्ति प्राकृतिक वातावरण से संघर्ष लेकर उसे अपने अनुकूल ढालने का प्रयास करता है।

6. संस्कृति द्वारा नयी पीढ़ी अपने पूर्वजों के प्रति निष्ठावान बनने का प्रयास करती है– नयी पीढ़ी का व्यक्ति संस्कृति के विकास को समझकर यह भली–भाँति जान लेता है कि उसके विकास

में उसके पूर्वजों ने कितना अधिक योगदान दिया है। अतः वह उनके प्रति निष्ठावान हो जाता है। संस्कृति पुरानी पीढ़ी की सौंपी हुई धरोहर है जिसे नयी पीढ़ी सुरक्षित रखने का प्रयास करती है।

7. संस्कृति द्वारा सामाजीकरण में सरलता होती है– शिक्षा का कार्य बालक को सामाजीकृत बनाना है जिससे वह समाज के अनुकूल ढलकर समाजोपयोगी बन सके। एक समाज की संस्कृति उसकी मान्यताओं, परम्पराओं तथा विश्वासों में निहित होती है जो समाजीकरण के आधार भी होते हैं। जब बालक संस्कृति का अध्ययन करता है तो उसे समाजीकरण के आधार प्राप्त हो जाते हैं। उन सामाजिक आधारों को अंगीकृत करके वह सामाजिक व्यवहार करना सीख जाता है। इस प्रकार संस्कृति व्यक्ति को समाजीकृत करती है।

8. संस्कृति व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक है– बालक जैसे–जैसे बड़ा होता जाता है उसके समाज का क्षेत्र विस्तृत होता जाता है। पहले वह एक कुटुम्ब के संपर्क में आता है, फिर कई कुटुम्बों के संपर्क में आता है और इस प्रकार वह अपने नगर, जिले, प्रदेश, देश और विश्व के संपर्क में आता है। उसे संपर्क बढ़ने के साथ ही विशिष्ट स्वानुभव प्राप्त होते हैं जिन्हें वह अपने जीवन के अंग बना लेता है। उसके जीवन में आये अनुभव का उसके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

9. संस्कृति व्यक्ति को जीवनयापन की विधि प्रदान करती है– शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को इस योग्य बना देना है कि वह सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सके। व्यक्ति सुखपूर्वक जीवन तभी व्यतीत करता है जब उसके जीवन में संघर्ष कम आयें और उसमें अनुकूलन शक्ति विद्यमान हो। संस्कृति व्यक्ति के जीवन संघर्षों को कम करती है और उसे वातावरण के प्रति अनुकूलित होने की क्षमता प्रदान करती है। इस प्रकार संस्कृति व्यक्ति को सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने की कला सिखाती है।

प्रश्न 27. संस्कृति का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–संस्कृति का स्वरूप–

(1) चारों पुरुषार्थ–धर्म अर्थात् धार्मिक जीवन पद्धति, अर्थ अर्थात् आर्थिक पूर्णता, काम अर्थात् यौन इच्छाएँ और मोक्ष अर्थात् आत्म ज्ञान की पूर्णता के लिए शाश्वत् प्रयत्न आदि हमारी संस्कृति के मूल आधार हैं। यहाँ कर्म और पुनर्जन्म को अनिवार्य नियम माना जाता है। यह सकारात्मक है और ईश्वर को महत्व प्रदान करता है।

(2) धार्मिक विश्वास, विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हमारी प्राचीन विरासत है–वैदिक परम्परा के अनुसार– "परमपिता जिसने हमें जन्म दिया है, जो नस्लों आदि सभी वस्तुओं को जानता है वह सभी में विद्यमान है।" सत्य एक है वह हमारी धार्मिक प्रणाली की मूलमंत्र है, हमारे उदार चिंतन का प्रतीक है। विभिन्न धार्मिक मत एवं संप्रदायों के मध्य समरसता तथा सह–अस्तित्व की जीवन दृष्टि इसमें अभिव्यक्त है। कभी–कभी विरोधी मतों एवं व्यवहारों के बावजूद भी इस अवधारणा में सबका समावेश है। यह हमारी सांस्कृतिक विरासत को शक्ति तथा ऊर्जा प्रदान करती है। ये विचार स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप नास्तिक व आस्तिक साथ–साथ रह सकते हैं।

(3) 'संस्कृति' शब्द अंग्रेजी के 'Culture' शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। इसका उद्गम लैटिन भाषा के 'कल्चुरा' शब्द से हुआ है जिसका अर्थ है– 'सुधरी हुई दशा' अर्थात् शाब्दिक व्युत्पत्ति के अनुसार संस्कृति से अभिप्राय मनुष्य द्वारा सीखे गए अच्छे अनुभवों की परिणति से है। मनुष्य अपनी सुखद अनुभूतियों को सर्वदा से अपनी अगली पीढ़ी को हस्तांतरित करता रहा है। संस्कृति के माध्यम से किसी देश व समाज की विशिष्ट पहचान होती है।

(4) संस्कृति सामाजिक जीवन की सम्पूर्ण पद्धति को कहते हैं जो किसी भी समाज को स्थायित्व एवं निश्चित व्यवस्था प्रदान करती है। संस्कृति की सहायता से मनुष्य अपना विकास करता है। संस्कृति के माध्यम से वह सामाजिक सदस्य के रूप में ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, धर्म, रीति–रिवाज, परम्पराएँ, सामाजिक संगठन, आर्थिक व राजनैतिक व्यवस्था आदि को सीखता है। दूसरे शब्दों में, "संस्कृति से अभिप्राय समाज में रहने वाले व्यक्तियों की जीवन–शैली से है जिसे समाज के सदस्य एक–दूसरे को आपस में प्रदान कर देते हैं।"

प्रश्न 28. संस्कृति और शिक्षा में संबंध स्पष्ट कीजिए।

***अथवा*, "संस्कृति शिक्षा को प्रभावित करती हैं।" उपरोक्त कथन को किन्हीं पाँच बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट कीजिए।** **(इंदौर 2022; ग्वालियर 22)**

उत्तर– संस्कृति किसी समाज की पहचान होती है। यह उसके रहन–सहन एवं खान–पान की विधियाँ, व्यवहार प्रतिमानों, रीति–रिवाज, कला–कौशल, संगीत–नृत्य, भाषा–साहित्य, आदर्श–विश्वास और मूल्यों के विशिष्ट रूप में जीवित रहती है। तब किसी समाज की शिक्षा का उसकी संस्कृति पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। जिस समाज की संस्कृति आध्यात्मप्रधान होती है उस समाज में शिक्षा स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की प्राप्ति की ओर अधिक झुकी हुई होती है और जिस समाज की संस्कृति भौतिकवादी होती है उसकी शिक्षा प्रतियोगिता पर आधारित होती है और शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्ति का श्रम भौतिक उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर नियोजित होता है। दूसरी ओर कोई समाज शिक्षा के माध्यम से ही अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखता है, उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रमित करता है और उसमें परिवर्तन एवं विकास करता है। इस प्रकार संस्कृति और शिक्षा में गहरा संबंध होता है। ये एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। एक के अभाव में दूसरे के विकास की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

संस्कृति का शिक्षा पर प्रभाव– किसी भी समाज की शिक्षा उसके धर्म–दर्शन, उसके स्वरूप, उसके शासनतंत्र, उसकी अर्थव्यवस्था, मनोवैज्ञानिक खोजों और वैज्ञानिक आविष्कारों पर निर्भर करती है। समाजशास्त्रीय आधारों में सबसे अधिक प्रभावशाली तत्व समाज विशेष की संस्कृति होती है।

संस्कृति और शिक्षा के उद्देश्य– संस्कृति एक बहुत व्यापक सम्प्रत्यय है। यह किसी समाज की सम्पूर्ण जीवन–शैली का घोतक है। प्रत्येक समाज आने वाली पीढ़ी को इन सब में प्रशिक्षित कर देना चाहता है और तद्नुकूल शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करता है। धर्मप्रधान संस्कृतियों के समाजों की शिक्षा में चारित्रिक एवं नैतिक विकास पर अधिक बल दिया जाता है और भौतिक प्रधान संस्कृतियों के समाजों में व्यावसायिक विकास पर। इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी समाज की संस्कृति उस समाज की शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करती है।

संस्कृति और शिक्षा की पाठ्यचर्या– पाठ्यचर्या तो उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन होती है। जब किसी समाज की शिक्षा के उद्देश्यों पर उसकी संस्कृति का प्रभाव पड़ता है तो उसकी पाठ्यचर्या पर भी पड़ता है। किसी समाज की सामान्य एवं आधारभूत पाठ्यचर्या तो मूल रूप से उसकी संस्कृति पर ही आधारित होती है। उसमें उसी समाज की भाषा, उसी समाज का साहित्य, उसी समाज की कला–कौशल, आदि की शिक्षा को सम्मिलित किया जाता है।

संस्कृति और शिक्षण विधियाँ– जिन संस्कृतियों में जिन शिक्षण विधियों का विकास हुआ है उनमें शिक्षा के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रयोग उन्हीं विधियों का किया जाता है। उदार संस्कृतियों वाले समाजों में दूसरे समाजों में विकसित शिक्षण की नई–नई विधियों को भी स्वीकार किया जाता है।

संस्कृति और अनुशासन– धर्मप्रधान संस्कृतियों में अनुशासन का महत्व धर्मविहीन संस्कृति से अधिक होता है और तद्नुकूल उसकी शिक्षा में भी। धर्मप्रधान संस्कृति में अनुशासन को एक

आन्तरिक शक्ति के रूप में लिया जाता है और धर्मविहीन समाजों में केवल बाह्य व्यवस्था के रूप में। इस प्रकार समाज विशेष की संस्कृति उसकी शिक्षा में अनुशासन को महत्व एवं रूप दोनों को प्रभावित करती है।

संस्कृति और शिक्षक– संस्कृति शिक्षक के स्वरूप को भी निश्चित करती है, उसके महत्व को भी प्रभावित करती है। धर्म प्रधान संस्कृतियों में शिक्षक को समाज के पथ प्रदर्शक के रूप में आदर दिया जाता है और उद्योग प्रधान संस्कृतियों में उन्हें बच्चों के पथ–प्रदर्शक के रूप समझा जाता है।

संस्कृति और शिक्षार्थी–संस्कृति शिक्षार्थी के स्वरूप निश्चित करने में भी प्रभाव डालती है। आज मनोविज्ञान ने शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षार्थी को केन्द्रीय स्थान अवश्य प्रदान किया है, परंतु फिर भी भिन्न–भिन्न संस्कृतियों के समाजों में उसकी भिन्न–भिन्न स्थिति है। हर समाज में हर क्षेत्र के व्यक्तियों के लिए व्यवहार प्रतिमान निश्चित होते हैं, शिक्षार्थियों के लिए भी।

संस्कृति और विद्यालय– विद्यालय तो सामाजिक संस्थाएँ होती हैं, उन पर समाज का, समाज की संस्कृति का पूरा–पूरा प्रभाव होता है। उनके भवन समाज की संस्कृति के अनुसार बनते हैं, उनके शिक्षक और छात्र समाज की संस्कृति के अनुसार व्यवहार मानदंड अपनाते हैं, इनकी समस्त क्रियाएँ समाज की संस्कृति के अनुकूल होती हैं।

शिक्षा का संस्कृति पर प्रभाव– किसी समाज की संस्कृति का प्रभाव उसकी शिक्षा पर पड़ता है तो दूसरी ओर यह भी सत्य है कि किसी समाज की शिक्षा का प्रभाव उसकी संस्कृति पर पड़ता है। शिक्षा की संस्कृति पर प्रभाव को हम निम्नलिखित रूप से समझ सकते हैं–

शिक्षा और संस्कृति का हस्तांतरण– शिक्षा का पहला कार्य संस्कृति का हस्तांतरण है। कोई समाज अपने आने वाली पीढ़ी को संस्कृति का हस्तांतरण शिक्षा द्वारा ही करता है। बच्चों को अपनी संस्कृति का सही ज्ञान तो औपचारिक शिक्षा द्वारा ही होता है। यही कारण है कि आज प्रायः सभी समाजों की शिक्षा का एक उद्देश्य सांस्कृतिक विकास है।

शिक्षा और संस्कृति का संरक्षण– किसी स्थान की संस्कृति उसकी साधना का परिणाम होती है, इसके प्रति उसका विशेष लगाव होता है और इसे वह सुरक्षित रखना चाहता है। शिक्षा उसके इस कार्य में उसकी सहायता करती है। आज वैज्ञानिक आविष्कारों ने हम भारतीयों के जीवन को बहुत बदल दिया है परंतु फिर भी हमारी आस्था अपनी संस्कृति, भाषा संस्कृत और उसके साहित्य में बनी हुई है।

शिक्षा और संस्कृति का विकास– प्रत्येक समाज अपने संस्कृति को उसी रूप में सुरक्षित रखना चाहता है जिस रूप में वह उसे प्राप्त करता है, परंतु परिवर्तन तो प्रकृति का शाश्वत् नियम है। संस्कृति में भी परिवर्तन और विकास होता है, किसी संस्कृति में इस परिवर्तन एवं विकास की गति बहुत मंद होती है और किसी में अपेक्षाकृत कम मंद। परंतु कोई भी संस्कृति अपने मूल रूप को कभी नहीं छोड़ती। शिक्षा द्वारा एक ओर बच्चे अपने संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करते हैं और दूसरी ओर देश–विदेश की अन्य संस्कृतियों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। साथ ही उनमें विवेक शक्ति का विकास भी शिक्षा द्वारा होता है।

शिक्षा और सांस्कृतिक सहिष्णुता– संसार में भिन्न–भिन्न समाजों की भिन्न–भिन्न संस्कृतियाँ हैं और सभी समाज अपनी–अपनी संस्कृति को श्रेष्ठ समझते हैं। आज सांस्कृतिक संकीर्णता के स्थान पर सांस्कृतिक सहिष्णुता का विकास किया जाता है और यह कार्य शिक्षा द्वारा ही किया जाता है। परिवार और समुदाय के बीच बच्चे अपने समाज की संस्कृति से ही परिचित होते हैं, विद्यालयों में उन्हें देश–विदेश की विभिन्न संस्कृतियों का ज्ञान कराया जाता है। साथ ही उन्हें उन संस्कृतियों की विशेषताओं से परिचित कराया जाता है और इस प्रकार उनमें संसार की विभिन्न संस्कृतियों के प्रति उदार भाव पैदा किया जाता है।

निष्कर्ष– किसी समाज की शिक्षा मुख्य रूप से उसके दर्शन, स्वरूप, राज्यतंत्र, अर्थतंत्र, मनोवैज्ञानिक तथ्यों और वैज्ञानिक आविष्कारों पर निर्भर करती है और समाज का स्वरूप और धर्म एवं दर्शन उसकी संस्कृति के अंग होते हैं।

प्रश्न 29. सांस्कृतिक विकास की कुछ समस्याएँ बताइए।

उत्तर–प्राचीन संस्कृति के इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके आधार पर किसी देश की संस्कृति का विकास संभव हैं, जो शिक्षा के माध्यम से ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित की जाती है। गाँधीजी ने संस्कृति को अत्यंत महत्वपूर्ण बताया है। **गाँधीजी** के अनुसार, "संस्कृति मानव जीवन की आधारशिला और प्रारंभिक वस्तु है। वह आपके आचरण और व्यक्तिगत व्यवहार की छोटी–से–छोटी बातों को परिवर्तित करती है।" मनुष्य शिक्षा की सहायता से समाज के विरासत को प्राप्त करता है तथा फिर अगली पीढ़ी को हस्तांतरित करता है, शिक्षा के माध्यम से संस्कृति को सुरक्षित रखा जाता है और नयी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है। सभी देशों में शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि बालक को कलात्मक रूप से सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा दी जाए, जिससे बालक उनका समुचित अर्थ समझ सके और अपने अनुसार एक नया मोड़ दे सके।

सांस्कृतिक विकास की कुछ समस्याएँ– सांस्कृतिक विकास की कुछ समस्याएँ निम्नलिखित हैं-

1. संस्कृति की शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में परम्परागत जीवन को बढ़ावा देना है।
2. प्राचीन अनुभवों के आधार पर व्यक्ति के दृष्टिकोण में रूढ़िवादिता आ जाती है।
3. संस्कृति की शिक्षा केवल सैद्धांतिक शिक्षा का रूप है। इसमें व्यावहारिकता की कमी है।
4. इससे बालक को रटने की शक्ति को बढ़ावा मिलता है।
5. इससे मानव के विचारों में संकीर्णता आ जाती है।
6. व्यक्ति के प्रगतिशील विचारों में अवरोध उत्पन्न हो जाता है।
7. संस्कृति का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है, अतः उसका सीमांकन असंभव है।
8. सांस्कृतिक शिक्षा का प्रशिक्षण बालक के ऊपर एक बोझ है। वह उसकी इच्छानुसार नहीं दी जाती। यह आवश्यक नहीं कि सभी छात्र उसमें रुचि रखते ही हों।
9. सांस्कृतिक शिक्षा की शिक्षण विधियाँ आधुनिक विधियों के समान न होकर प्राचीन तथा व्याख्यान प्रधान है।

इस प्रकार हम यह समझ सकते हैं कि सांस्कृतिक शिक्षा बालक के लिए लाभदायक अवश्य है परंतु वर्तमान समय में अत्यधिक प्रधानता नहीं देनी चाहिए। प्राचीन संस्कृति का लाभदायक तथा व्यावहारिक ज्ञान अवश्य दिया जाना चाहिए।

प्रश्न 30. मूल्य का अर्थ बताइए। मूल्यों को परिभाषित कर मूल्यों का वर्गीकरण कीजिए।

(छिंदवाड़ा 2022)

***अथवा*, मूल्य से आपका क्या अभिप्राय है ? परिवर्तनशील एवं शाश्वत् मूल्यों में अंतर स्पष्ट कीजिए।** **(छतरपुर 2021)**

उत्तर– आज के युग में शिक्षा दिन–प्रतिदिन भौतिकवादी होती जा रही है। प्राचीन मूल्य व परम्पराएँ समाप्त होती जा रही हैं। आज इस शिक्षा पर अधिक जोर दिया जा रहा है, जो छात्रों का बौद्धिक विकास कर सके। यह हमारी शिक्षा प्रक्रिया को एकपक्षीय बना देती है जिसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति का संतुलित विकास नहीं हो पाता। भारतीय परम्परा के महान् मूल्यों, **जैसे**–नैतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को भुलाया जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति के बाहरी व भीतरी जीवन में कोई सामंजस्य दिखाई नहीं देता। साथ ही हमें यह भी देखने को मिलता है कि

व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक व धार्मिक क्षेत्रों के मूल्यों में गिरावट के कारण उसके चारित्रिक पतन का संकट भी सामने आता है।

वस्तुतः शिक्षा का प्रमुख कार्य छात्रों के व्यक्तित्व का संतुलित विकास करना है। साथ ही उनमें स्वस्थ गुणों, आदतों, मूल्यों, रुचियों एवं प्रवृत्तियों का विकास करना है तो उनके मानसिक, सामाजिक, भावात्मक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक है।

मूल्य का अर्थ– मूल्य सहित जीवन ही अर्थपूर्ण है, मूल्य रहित जीवन कुछ भी नहीं। जो मनुष्य मूल्यों को महत्व देता है, वो समाज में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ऐसा व्यक्ति समय को महत्व देता है, वह प्रत्येक पल का भरपूर आनंद लेता है एवं उसका भरपूर उपयोग करता है। अतः प्रत्येक वस्तु जिसका महत्व होता है, उसे हम मूल्य कहते हैं। समय, ईमानदारी, अच्छाई आदि मूल्य हैं जबकि झूठ, बेईमानी आदि अवमूल्य हैं।

Value शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Valere' शब्द से मानी जाती है जो किसी वस्तु की कीमत या उपयोगिता को व्यक्त करता है। भारतीय धर्म ग्रंथों में मूल्यों के लिए 'शील' शब्द अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द मूल्य का पर्याय नहीं वरन् 'समीपी' शब्द है। 'शील' सर्वत्र भूषण का कार्य करता है। कहीं–कहीं शील शब्द चरित्र के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। वस्तुतः "मूल्य एक प्रकार का मानक है। मनुष्य किसी वस्तु, क्रिया, विचार को अपनाने के पूर्व यह निर्णय करता है कि वह अपनाये या त्याग दे। जब ऐसा विचार व्यक्ति के मन में निर्णयात्मक ढंग से आता है तो वह मूल्य कहलाता है।"

'मूल्य' और 'आदर्श' ये दोनों ही चरित्र–निर्माण तथा व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। अंगीकृत या आत्मसात् किए हुए मूल्य ही जीवनादर्श बनते हैं। जब मूल्यों का स्पष्टीकरण हो जाता है, मूल्य विशेष पर निर्णय ले लिया जाता है और उसे जीवन में ग्रहण कर लिया जाता है तभी वह आदर्श बनता है।

परिभाषाएँ– ऑगबर्न के अनुसार– "मूल्य वह है जो मानव इच्छाओं की तुष्टि करे।"

ओटावे के अनुसार– "मूल्य वे विचार हैं जिनके लिए मनुष्य जीते हैं।"

मूल्यों का वर्गीकरण– मानव मूल्य एक ऐसी आचार–संहिता या सद्गुण समूह है, जिसे अपने संस्कारों तथा पर्यावरण के माध्यम से अपनाकर मनुष्य अपने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन–शैली का निर्माण करता है, अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। इसमें मनुष्य की अवधारणाएँ, विचार, विश्वास, आस्था या निष्ठा आदि समाहित होते हैं। ये मानव मूल्य एक ओर व्यक्ति के अन्तःकरण द्वारा नियंत्रित होते हैं तो दूसरी ओर उसकी संस्कृति एवं परम्परा द्वारा क्रमशः निस्सृत एवं परिपोषित होते हैं। जीवन मूल्यों को स्थूल रूप से दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है–

(i) परिवर्तन मूल्य एवं (ii) शाश्वत् मूल्य।

मानव के अपने पूर्व जन्म तथा वंशमूल, माता–पिता आदि से ग्रहण किए हुए विशेष संस्कार उसके साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े होते हैं और उन्ही संचित संस्कारों के अनुरूप मानव अपने चारों ओर फैले संसार तथा जीवन की परिस्थितियों से अपने जीवन मूल्यों के विश्व को खोजकर अपने व्यक्तित्व का निर्माण ज्ञात–अज्ञात रूप से करता है और वही उसका संसार होता है। परिवेश तथा संस्कारों की विविधता से व्यक्ति के जीवन–मूल्य भी पृथक्–पृथक् हो सकते हैं। इन जीवन–मूल्यों को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत विभक्त किया जा सकता है–

1. शैक्षिक मूल्य– शैक्षिक मूल्य शिक्षा में उपयोगिता, अभिप्राय तथा उपर्युक्तता का निरूपण करते हैं जो शिक्षक तथा छात्र को आत्मानुभूति या शिक्षार्थी को उपयुक्त अभिवृद्धि के लिए अध्ययन कार्य में संलग्न होने हेतु प्रेरित करते हैं। शैक्षिक मूल्यों के अन्तर्गत आने वाली प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं–

(i) शिक्षण में नियमितता एवं निष्ठा। (ii) मूल्यांकन में वस्तुनिष्ठता एवं निष्पक्षता। (iii) स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना। (iv) व्यवसाय के प्रति निष्ठा। (v) छात्रों की सृजनात्मकता का पोषण। (vi) मौलिकता के प्रति सद्भाव आदि।

2. नैतिक मूल्य–इनके अन्तर्गत ईमानदारी, त्याग, निष्ठा, करुणा, दया, उत्तरदायित्व की भावना, नम्रता आदि मूल्य आते हैं। देश, काल एवं अन्य परिस्थितियों में ये कभी–कभी विवादास्पद हो जाते हैं।

3. सामाजिक एवं राजनैतिक मूल्य– किसी भी समाज या देश की सामाजिक एवं राजनैतिक प्रणाली के परिलक्षण, परिष्कार एवं संवर्धन लिए इन मूल्यों का अधिक महत्व होता है। व्यक्ति समाज की अन्यतम इकाई है। व्यक्तियों से समाज का और समाज से व्यक्तियों का अस्तित्व अक्षुण्ण रहता है। व्यक्तियों के नैतिक मूल्यों का समन्वय ही सामाजिक मूल्यों की संरचना में होता है। इन मूल्यों के अन्तर्गत सामाजिक दायित्व, आदर्श नागरिकता, लोकतंत्र, मानवतावाद, सामाजिक संवेदनशीलता, राष्ट्रीय एकता आदि समाहित हैं।

4. वैश्विक मूल्य– जो मूल्य सम्पूर्ण विश्व की प्रगति एवं भलाई से संबंधित होते हैं, वे वैश्विक मूल्य कहलाते हैं। इन मूल्यों का किसी जाति, समूह या देश विशेष से संबंध नहीं होता हैं। इनमें सबके लिए स्वतंत्रता, न्याय एवं अवसर की समानता सभी प्रकार की दक्षताओं का उन्मूलन आदि मूल्यों का समावेश किया जा सकता है।

5. वैज्ञानिक मूल्य (दृष्टिकोण)– यह जीवन मूल्य एक ओर सद्विवेक बुद्धि को जागृत करके हमारी अनेक भ्रांतियों एवं अंधविश्वासों को दूर करता है, वहीं दूसरी ओर यदि इसे विवेक बुद्धि के साथ आत्मसात् न किया गया तो यह मनुष्य में अनास्था तथा अनात्मवाद को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण में, वस्तुनिष्ठता, सृजनात्मक सोच, तथ्यपरकता, तर्कयुक्तता, ज्ञान के प्रति उत्सुकता आदि समाहित हैं।

6. सांस्कृतिक मूल्य– इन मूल्यों के अंतर्गत वे सभी मूल्य आते हैं जो सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण रखने एवं उसके विकास के द्वारा राष्ट्र में सांस्कृतिक एकता का वातावरण बनाये रखने में सहायक होते हैं।

7. पर्यावरणीय मूल्य– इनके अन्तर्गत पेड़–पौधों के प्रति सरोकार, पर्यावरण–संरक्षण, पर्यावरण की शुद्धि के प्रति जागरूकता, वृक्षारोपण एवं वृक्ष रक्षण आदि मूल्य आते हैं।

8. आर्थिक मूल्य– इन मूल्यों को अन्य मूल्यों से प्राप्त करने में साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

9. शारीरिक मूल्य– ये मूल्य शारीरिक स्वास्थ्य तथा जीवन की सुन्दरता से संबंधित होते हैं।

10. मनोरंजन मूल्य– ये मूल्य खेल तथा मनोरंजन से संबंधित होते हैं।

11. सौन्दर्यात्मक मूल्य– इसके अन्तर्गत प्राकृतिक सुन्दरता एवं कलात्मक कार्य आते हैं।

12. बौद्धिक मूल्य– इसके अन्तर्गत वे मूल्य आते हैं जिनका संबंध ज्ञान एवं सत्य की खोज से होता है।

13. धार्मिक मूल्य– इनके अन्तर्गत भक्ति, पूजा, उपासना आदि कार्य आते हैं।

अधिकतर विद्वान मूल्यों का वर्गीकरण इन्हीं आयामों के आधार पर करते हैं, परंतु भिन्न–भिन्न अनुशासनों में मूल्यों का वर्गीकरण भिन्न–भिन्न रूपों में किया जाता है।

प्रश्न 31. मूल्य की प्रकृति एवं विशेषताएँ बताइए।

उत्तर– मूल्य प्रत्येक समाज के प्रतीक होते हैं और प्रत्येक समाज अपने मूल्यों की रक्षा करना चाहते हैं। समाज में मूल्यों के विस्तृत वर्णन के पश्चात् इनकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ एवं प्रकृति इस प्रकार वर्णित हैं–

1. अमूर्त सम्प्रदाय– समाज में प्रचलित मूल्यों की प्रकृति अमूर्त होती है। मूल्यों का संबंध मनुष्य की आंतरिक शक्ति, मन से होता है जो कि अमूर्त रूप में समाज में स्थापित रहते हैं।

2. दीर्घ अनुभवों का परिणाम–किसी भी समाज में स्थापित मूल्य अल्प समय में विकसित नहीं होते वरन् उनके निर्माण में दीर्घ अनुभवों की आवश्यकता होती है। दीर्घ अनुभवों के परिणामस्वरूप समाज में विभिन्न सिद्धांत, विश्वास, आदर्श, नैतिक, प्रतिमान और व्यावहारिक मानदंडों का स्थापन होता है।

3. सामाजिक स्वीकृति– मूल्य प्रायः किसी समाज में उपस्थित विभिन्न प्रतिमान हैं जिसके अन्तर्गत सामाजिक आदर्श, व्यावहारिक प्रतिमानों, नैतिक नियमों, सिद्धांतों आदि को सम्मिलित एवं स्वीकृत किया जाता है। इन मूल्यों को व्यक्ति द्वारा सामान्य स्वीकृति एवं महत्व दिया गया है।

4. व्यावहारिक निर्धारण– मूल्य ही समाज में व्यवहार निर्धारक होते हैं और प्रत्येक व्यक्ति इन्हीं मूल्यों के आधार पर समाज में व्यावहारिक क्रियाएँ करता है। मूल्य उसके व्यवहार को नियंत्रित एवं उसका मार्गदर्शन करते हैं।

5. मूल्यों का विकास– समाज में व्यक्ति विभिन्न क्रियाओं–धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक आदि में सक्रिय रूप से सम्मिलित होता है। इस सम्मिलित सहभागिता से मूल्यों का विकास होता है।

6. मूल्य प्रत्यय– मूल्यों का प्रथम चरण संज्ञानात्मक, दूसरा भावनात्मक और तीसरा क्रियात्मक चरण है। मनुष्य में मूल्यों का निर्माण तब शुरू होता है जब उसमें विवेक संज्ञान उत्पन्न होता है और वह इनके उद्देश्यों के बारे में सोचने लगता है। समाज के जिन मूल्यों से व्यक्ति प्रभावित होता है, वे उसकी भावना से जुड़ जाते हैं।

7. मूल्यों का चयन– मूल्यों का चयन प्रायः व्यक्ति की रुचि पर आधारित है क्योंकि व्यक्ति उन्हीं मूल्यों को अधिक महत्व देते हैं जो उनकी पसंद एवं समाज में प्रचलित हैं, जैसे– आदर्श, सिद्धांत, नैतिक नियम एवं व्यवहार मानदंड।

8. उचित कार्य प्रेरक– समाज में प्रचलित मूल्य व्यक्ति को उचित कार्य कराने के प्रेरक होते हैं। मूल्य व्यक्ति को उचित–अनुचित तथा सही–गलत कार्य निर्धारण में सहायक होते हैं।

9. आत्म–संतुष्टि– मूल्य व्यक्ति को निर्देशित एवं मार्गदर्शित करते हैं और व्यक्ति इन मूल्यों की रक्षा में सम्पूर्ण रूप से समर्पित रहता है। मूल्यों का पालन करने में उसे आत्मसंतुष्टि की अनुभूति होती है।

10. परिवर्तनशीलता– मूल्यों की प्रकृति परिवर्तनशील है। अलग–अलग समाजों के मूल्य अलग–अलग होते हैं। समाज की पहचान उनके मूल्यों के द्वारा ही होती है। परिस्थितियाँ नवीन मूल्यों को जन्म देती है।

11. समाज की पहचान– किसी समाज, राष्ट्र एवं व्यक्ति की पहचान उनके मूल्यों के द्वारा ही होती है।

प्रश्न 32. मूल्यपरक शिक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर– मूल्यपरक शिक्षा की अवधारणा अपेक्षाकृत आधुनिक एवं व्यापक है। परम्परागत रूप में 'धार्मिक शिक्षा', 'नैतिक शिक्षा' आदि जो प्रचलित हैं, उनसे यह भिन्न है। मूल्यपरक शिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षा से है जिसमें हमारे नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य समाहित हों। इसमें विभिन्न विषयों को मूल्यपरक बनाकर उनके माध्यम से विभिन्न मूल्यों को छात्रों के व्यक्तित्व में समाहित करने पर बल दिया जाता है जिससे उनका संतुलित एवं सर्वतोन्मुखी विकास हो सके।

'वैल्यू एजूकेशन' को दो अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। वे इस प्रकार हैं–

(i) मूल्यों की शिक्षा तथा, (ii) मूल्य समाहित या मूल्यपरक शिक्षा।

प्रथम के अन्तर्गत हम नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा इतिहास, भूगोल, जीवशास्त्र, रसायनशास्त्र, भौतिक शास्त्र आदि की शिक्षा की भाँति एक स्वतंत्र विषय के रूप में देना चाहते हैं। मूल्यपरक शिक्षा में सभी विषयों में मनोवैज्ञानिक ढंग से मूल्य समाहित करके उक्त मूल्यों के विकास पर बल देते हैं। आज के भारतीय संदर्भ में 'वैल्यू एजूकेशन' को दूसरे अर्थ में स्वीकार किया जाना चाहिए।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय शिक्षा मूल्यपरक थी। इस कारण पृथक् रूप से मूल्यों की शिक्षा देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। अंग्रेजों ने अपनी आवश्यकतानुसार भारतीयों के लिए नवीन शिक्षा की व्यवस्था की। इसके माध्यम से उन्होंने भारतीयों को तो शरीर से भारतीय बनाये रखा, परंतु उनको मन, मस्तिष्क तथा व्यवहार से अंग्रेज बना दिया।

1970 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (N.C.E.R.T.) ने एक संगोष्ठी का आयोजन किया, जिसमें मूल्यों की शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की गई। इस गोष्ठी में निम्नलिखित मूल्यों के विकास पर बल दिया–

1. श्रम का महत्व, 2. सामाजिक जागरूकता व उत्तरदायित्व की भावना का विकास, 3. दूसरे धर्मों के प्रति आदर की भावना, 4. निर्भरता, 5. सत्यवादिता, 6. पवित्रता, 7. सेवा, 8. अहिंसा।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने एक छोटी–सी पुस्तिका 'Social, moral and spiritual values' प्रकाशित की, जिसमें शासकीय स्तर पर 'Value' शब्द का प्रयोग किया गया, परंतु इसमें सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की चर्चा न होकर नैतिक शिक्षा की चर्चा है। इसमें 83 मूल्यों की एक सूची भी दी गई है।

विभिन्न शिक्षा समितियों एवं आयोगों के प्रतिवेदनों में 'मूल्यपरक शिक्षा' शब्द प्रयुक्त नहीं किया गया। यह तथ्य इस बात का द्योतक है। 'धार्मिक शिक्षा' शब्दों का प्रयोग हुआ है जो कि अंग्रेजी के 'Moral Education' एवं 'Religious Education' शब्दों का सरल एवं सीधा अनुवाद है।

प्रश्न 33. मूल्यपरक शिक्षा के उद्देश्य बताइए।

उत्तर– विद्यालयी स्तर पर मूल्यपरक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिए–

1. छात्रों में सहयोग, प्रेम एवं करुणा, शांति एवं अहिंसा, साहस, समानता, बंधुत्व, श्रम–गरिमा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, विभेदीकरण की शक्ति आदि मौलिक गुणों का विकास करना।

2. छात्रों को एक उत्तरदायी नागरिक बनने के लिए प्रशिक्षित करना।

3. राष्ट्रीय लक्ष्यों–समाजवाद, धर्म निरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता, लोकतंत्र का सही ढंग से बोध करना।

4. देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के संबंध में उन्हें जागरूक बनाना। साथ ही उन्हें उनमें वांछित सुधार लाने के लिए प्रोत्साहित करना।

5. निम्नलिखित के प्रति उनमें समुचित दृष्टिकोण विकसित करना–

(i) स्वयं एवं अपने साथियों के प्रति। (ii) स्वदेश के प्रति। (iii) मानवता के प्रति। (iv) सभी धर्मों एवं संस्कृतियों के प्रति। (v) जीवन एवं पर्यावरण के प्रति।

6. छात्रों को स्वयं को जानने के लिए प्रोत्साहित करना जिससे वे स्वयं में आस्था रखने में समर्थ हो सकें।

प्रश्न 34. मूल्य निर्माण के स्रोत लिखिए।

उत्तर–मनुष्य जीवन के मुख्य आयाम हैं–सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक। समाजशास्त्रियों की दृष्टि से ये ही मूल्य निर्माण के मुख्य स्रोत हैं।

1. समाज–मनुष्य जिस समाज में पैदा होता है, उसी के सदस्यों के साथ उसकी अन्तःक्रिया द्वारा वह उसी समाज के व्यवहार के मानदंड सीखता है, उन्हीं के प्रति उसमें आस्था पैदा होती है, उन्हीं को वह महत्व देता है और आगे चलकर वे ही उसके व्यवहार को निर्देशित एवं नियंत्रित करने लगते हैं और उसके मूल्य बन जाते हैं। इस प्रकार समाज मूल्य निर्माण का आधारभूत स्रोत होता है।

2. संस्कृति–किसी समाज की सबसे बड़ी विशेषता उसकी संस्कृति होती है। मनुष्य जिस समाज में रहता है सर्वप्रथम उसी की संस्कृति अर्थात् उसी के रहन–सहन एवं खान–पान की विधियों, व्यवहार प्रतिमानों, भाषा साहित्य, धर्म दर्शन एवं आदर्श और विश्वासों के विशिष्ट रूप को सीखता और धारण करता है, फिर धीरे–धीरे उसमें उनके प्रति आस्था उत्पन्न हो जाती है, वह उन्हें महत्व देने लगता है और उससे उसका व्यवहार निर्देशित एवं नियंत्रित होने लगता है।

3. धर्म–किसी समाज की संस्कृति का सबसे अधिक प्रभावशाली तत्व होता है– धर्म। बच्चा धर्म को मानने वाले परिवार में पैदा होता है और रहता है। वह उसी धर्म के नैतिकता को स्वीकार करता है, उन्हें ही महत्व देता है और उन्हीं के द्वारा उसका व्यवहार निर्देशित एवं नियंत्रित होने लगता है।

4. अर्थतंत्र–किसी समाज, राज्य अथवा राष्ट्र का अर्थतंत्र भी अपने मूल्य निर्माण का स्रोत होता है। जिस समाज में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था होती है उसमें दो वर्गों का निर्माण होता है– शोषक वर्ग और शोषित वर्ग। शोषित वर्ग के व्यक्तियों में शोषक वर्ग के व्यक्तियों के प्रति घृणा और द्वेष का भाव उत्पन्न होता है और दूसरी तरफ जिस समाज में समाजवादी अर्थव्यवस्था होती है उसमें योग्य का आदर होता है। सब एक–दूसरे से प्रेम करते हैं, सब एक–दूसरे के सहयोग करते हैं।

5. राज्य तंत्र– राज्य का प्रभुत्व तो प्रारंभ से ही रहा है। यह बात दूसरी है कि स्वतंत्र शासन–प्रणाली में उसका प्रभुत्व अपेक्षाकृत अधिक होता है और लोकतंत्र शासनप्रणाली में अपेक्षाकृत कम होता है तब राज्य तंत्र द्वारा निश्चित सिद्धांतों एवं आदर्शों को व्यक्ति द्वारा महत्व देना स्वाभाविक है।

प्रश्न 35. बच्चों में उचित मूल्यों के विकास में परिवार की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– परिवार बच्चे की सर्वप्रथम पाठशाला है। परिवार में बच्चा भाषा सीखता है, आचरण की विधियाँ सीखता है और अपनी संस्कृति ग्रहण करता है। परिवार में ही बच्चों में मूल्यों की नींव रखी जाती है। प्रारंभ में बच्चा अपने माता–पिता, भाई–बहन आदि का अनुकरण कर भाषा सीखता है, आचरण की विधियाँ सीखता है फिर वह अपने कार्यों के प्रति दूसरों की अनुक्रिया देखकर उनमें से सही का चुनाव करने लगता है और गलत को त्यागने लगता है। थोड़ी समझ आने पर वह अपने कार्यों का विश्लेषण करने लगता है और सत्य–असत्य और न्याय–अन्याय में भेद करने लगता है। यहीं से मूल्यों के निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। परिवार में बच्चों में उचित मूल्यों का उचित ढंग से विकास करने के लिए निम्नलिखित कार्य करने चाहिए–

1. मूल्य आधारित आचरण– मूल्य शिक्षा का स्वाभाविक क्रम है–'व्यवहार से व्यवहार की ओर'। प्रारंभ में बच्चे अपने माता–पिता, भाई–बहन आदि का अनुकरण कर व्यवहार की विधियाँ सीखते हैं। बच्चों में उचित मूल्यों के विकास के लिए मूलभूत आवश्यकता उचित सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण की होती है। परिवार के युवा, प्रौढ़ और वृद्ध सभी व्यक्तियों को बच्चों के सामने मूल्य आधारित आचरण करना चाहिए। परिवार, समुदाय और विद्यालयों की सामाजिक क्रियाओं में

भाग लेने से यह धीरे–धीरे उनके भावपक्ष से जुड़ जाता है और अंत में मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित एवं निर्देशित करने लगता है।

2. कहानी कथन–परिवार में दादी–नानी की कहानियों का बड़ा महत्व है। इनमें बच्चों की स्वाभाविक रुचि होती है, इनसे उनका मनोरंजन होता है और साथ–ही–साथ वे इनसे अनेक मानवीय गुणों और व्यवहार कौशल की शिक्षा प्राप्त करते हैं। परिवार में बच्चों को ऐसी कहानी सुनानी चाहिए जो छोटी और सरल हो। जिनके कार्य और परिणाम स्पष्ट हो, जिनसे बच्चों को प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, दया, क्षमा, वीर्य, शौर्य और राष्ट्र समर्पण के महत्व का ज्ञान हो।

3. रेडियो–टेलीविजन कार्यक्रम विश्लेषण–रेडियो और टेलीविजन पर कहानी, नाटक, धारावाहिक, वृत्त चित्र और फिल्म आदि प्रसारित होते हैं। प्रायः परिवार के अनेक सदस्य इन्हें एक साथ सुनते–देखते हैं। बच्चे इन कार्यक्रमों के प्रति अपने माता–पिता आदि की अनुक्रियाओं को बड़ी गौर से देखते हैं। यह बहुत अच्छा अवसर होता है, जब माता–पिता अपने सही अनुक्रियाओं द्वारा बच्चों को प्रभावित कर सकते हैं, उन्हें सत्य की ओर अग्रसर कर सकते हैं।

4. समाज द्वारा स्वीकृत आचरण की पुष्टि–बच्चा बड़ा होने पर समुदाय के सदस्यों के बीच जाता है। यहाँ उन्हें परिवार की अपेक्षा बहुत बड़ा व्यवहार क्षेत्र मिलता है। वे अपने व्यवहार के प्रति दूसरों की अनुक्रिया देखते, सुनते और समझते हैं। ऐसे में परिवार के सदस्यों को समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार विधियों की चर्चा करनी चाहिए। परिवार के सदस्यों को चाहिए कि बच्चों के सामने समाज द्वारा स्वीकृत आचरण की पुष्टि करें।

5. विद्यालयों के मूल्य शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों में सहयोग–विद्यालयों में मूल्य शिक्षा की व्यवस्था पर विशेष बल दिया जा रहा है। विद्यालय अपने इस कार्य में तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक परिवार उनका सहयोग नहीं करते।

6. पुरस्कार एवं दंड– परिवार के सदस्यों को चाहिए कि वे अपने बच्चों के मूल्य आधारित व्यवहार की प्रशंसा करे और मूल्य प्रतिकूल व्यवहार के प्रति अलग/दंडात्मक अनुक्रिया करे। उनके सही आचरण को सही कहे और गलत को गलत।

प्रश्न 36. मूल्य क्या है? विभिन्न स्कूल विषयों के माध्यम से प्रजातांत्रिक, समाजवादी और धर्म–निरपेक्ष मूल्यों का विकास कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर–मूल्य का अर्थ एवं परिभाषा–प्रो. ऑगबर्न ने अपनी पुस्तक 'फण्डामेण्टल ऑफ ऐथिक्स' में लिखा है कि, "मूल्य वह है जो मानव इच्छा की तृप्ति करे, जो व्यक्ति तथा उसकी जाति के संरक्षण में सहायक हो।" अंत में वे कहते हैं कि "केवल वही परम रूप से और साध्य रूप से मूल्यवान हैं जो आत्माओं को विकास या आत्म–साक्षात्कार की ओर ले जायें। इस परिभाषा में मानव की जैविक से लेकर आध्यात्मिक तक सभी आवश्यकताओं का समावेश हो जाता है। जिनका मानव जीवन के लिए महत्व है एवं जिसको पाने के लिए व्यक्ति और चेष्टा करता है, जिसके लिए वे जीवित रहते हैं तथा बड़े से बड़े त्याग करते हैं। इस प्रकार मूल्य वह सत्य है जिसके लिए व्यक्ति जीता है और आवश्यकता पड़ने पर संघर्ष करने, दुःख सहने तथा मृत्यु को भी स्वीकार करने के लिए तत्पर रहता है। कई महापुरुष, **जैसे**–सुकरात, ईसा मसीह एवं गाँधीजी के नाम इसी संदर्भ में श्रद्धा से लिए जाते हैं, क्योंकि ये मूल्य के लिए ही जिए और मूल्य के लिए ही मृत्यु का वरण (चुनाव) किया।

वस्तुतः मूल्य परिवर्तनशील समाज की वह धुरी है जिसके कारण समाज का अस्तित्व है। क्योंकि उपयोगिता या कल्याणकारिता की भावना ही समाज को स्थिर रखती है। "मूल्य ऐसी आचरण–संहिता या सद्गुण है, जिससे व्यक्ति अपने निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन

पद्धति का निर्माण करता है तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। इसमें मनुष्य की धारणाएँ, विचार, विश्वास, मनोवृत्ति, आस्था आदि समाहित हैं। ये मानव मूल्य एक ओर व्यक्ति के अन्तःकरण द्वारा नियंत्रित होते हैं तो दूसरी ओर उसकी संस्कृति एवं परम्परा द्वारा परिपोषित होते हैं।

विभिन्न विद्यालयीन विषयों के माध्यम से प्रजातांत्रिक, समाजवादी और धर्म निरपेक्ष मूल्यों का विकास–

1. भारतीय लोकतंत्र को सुदृढ़ तथा सबल बनाने के लिए विभिन्न स्कूल विषयों के माध्यम से निम्नलिखित प्रजातांत्रिक मूल्यों के विकास पर बल दिया जाना चाहिए–

(1) व्यक्तित्व की गरिमा का आदर। (2) सहनशीलता। (3) पारस्परिक सद्भाव। (4) सेवा। (5) विचार–विमर्श द्वारा परिवर्तन। (6) व्यक्तिगत तथा सामाजिक उन्नति में समन्वय। (7) त्यागपूर्ण नेतृत्व। (8) आत्मनियंत्रण।

2. समाजवादी मूल्यों के विकास के लिए पाठ्यक्रम में विभिन्न सामाजिक विषयों, विज्ञानों, क्रियाओं तथा व्यवसायों को स्थान प्रदान किया जाना चाहिए जिससे बालक अपनी क्षमता, योग्यता एवं सूची के अनुसार विषयों का चयन करने का अवसर प्राप्त कर सके।

समाजवादी मूल्यों के विकास हेतु शिक्षण में सम्मेलन, वर्कशॉप, सेमीनार, सामूहिक शिक्षा आदि पर बल दिया जाता है। बालक की स्वतंत्रता को ध्यान में रखते हुए 'अनुभव द्वारा सीखने', 'कार्य द्वारा सीखने' आदि पर बल दिया जाता है।

3. बालकों में धर्म निरपेक्ष मूल्यों के विकास हेतु स्कूलों में निम्नलिखित औपचारिक कार्य किये जाते हैं–

(1) उपयोगी एवं लाभप्रद ज्ञान द्वारा बालकों में जीवन–मूल्यों का निर्माण।

(2) सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने एवं उसे परिवर्द्धित कर आगे आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरित करना।

(3) नेतृत्व के गुणों का विकास।

(4) बालकों में चिंतन एवं तार्किक शक्ति का विकास करना।

(5) समाज के लिए स्वयं को उपयोगी बनाना तथा जीवनोपयोगी प्रशिक्षण करना।

(6) बालकों में नैतिक, चारित्रिक तथा आध्यात्मिक विकास करना।

प्रश्न 37. भारतीय समाज के मूल्य क्या है ? क्या शिक्षक को वर्तमान परिदृश्य में समाज का अनुसरण करना चाहिए ? स्पष्ट कीजिए। **(छिंदवाड़ा 2022)**

उत्तर–भारतीय समाज के मूल्य–मनुष्य समाज का एक आवश्यक अंग है। मनुष्यों में पारस्परिक संबंधों द्वारा ही समाज का निर्माण होता है। समाज गत्यात्मक है और उसमें निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। समाज के विविध पक्ष हैं–राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पक्ष आदि। समाज मनुष्य के रहन–सहन, आचार–विचार को प्रभावित करते हैं, जो मूल्य का आधार है।

मूल्यों के अर्जन एवं विकास में समाज की प्रभावी भूमिका है। मूल्यों की परिभाषा ही समाज द्वारा स्वीकृत मानदंडों के रूप में की गयी है। मूल्य सदैव ही मानव के लिए प्रमुख रहे हैं। ईसा पूर्व ग्रीक चिंतकों ने जिन मानवीय मूल्यों की स्थापना की थी वे धार्मिक मूल्य न होकर विशुद्ध सामाजिक मूल्य थे। ईसा के पश्चात् धार्मिक मूल्यों का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ने लगा। पुनर्जागरण काल के पश्चात् पुनः सामाजिक मूल्य स्थापित हुए। सामाजिक मूल्यों की स्थापना भारतीय समाज में ईसा पूर्व हो चुकी थी, किन्तु इन सामाजिक मूल्यों में समय–समय पर परिवर्तन होता रहा है। सामाजिक जीवन की शुद्धता के लिए नैतिक मूल्यों का प्रयोग में लाना आवश्यक है अर्थात् शाश्वत् मूल्यों, ज्ञान,

सौन्दर्य, धर्म एवं सत्यम् शिवम्–सुन्दरम् को समझना है। यह सुखवादी सिद्धांत के लिए आवश्यक है। सामाजिक मूल्यों की धारणा में नैतिक मूल्य एक क्रमिक रूप से व्यवस्थित मूल्य है। नैतिक मूल्य हमारे हितों तथा कर्मों के समन्वय में उच्चतम स्थान रखते हैं।

सामाजिक मूल्य एवं शिक्षा की भूमिका–सामाजिक मूल्य एवं शिक्षा की भूमिका निम्नलिखित हैं–

1. शिक्षा हर व्यक्ति को उन्नति करने का अवसर प्रदान करती है और उसमें ऐसी क्षमता उत्पन्न करती है, जिससे वह समाज का हित कर सके। **डीवी** का कथन है कि, "बालक को रस्म-रिवाज, विचार–परंपरा आदि जो एक समाज या जाति के आवश्यक गुण हैं, प्रदान करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता होती है। शिक्षा समाज के संचित ज्ञान से बालक को परिचित कराती है जिससे बालक, सामाजिक,सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक परम्परा की रक्षा कर सके और उसके विकास में अपना योगदान दे सके। इस प्रकार शिक्षा व्यक्ति को समाज के दिये हुए अधिकारों का समुचित उपयोग करना सिखाती है और उसे समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभाने के लिए प्रेरित करती है।"

2. शिक्षा सामाजिक मूल्यों को बनाये रखने तथा मानव के व्यवहार में लाने के लिए एक माध्यम है। स्वतंत्र चिंतन, निर्णय शक्ति तथा समाज के प्रति कल्याण की भावना का विकास शिक्षा के द्वारा ही संभव है। मनुष्य समाज में रहकर तथा समाज सेवा द्वारा ही आत्मानुभूति प्राप्त करता है। इसलिए **एडम्स** ने कहा है कि, "समाज सेवा द्वारा ही आत्म–बोध संभव है।" **रॉस** का कथन है कि, "जिस सामाजिक वातावरण में मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास करता है उससे पृथक् होने पर उसकी वैयक्तिकता का कोई मूल्य नहीं रह जाता है और उसका व्यक्तित्व निरर्थक हो जाता है।"

3. सामाजिक मूल्यों के विकास तथा समाज के अनुकूल चलने में शिक्षा उसकी मदद करती है और शिक्षा ही उसे समाज का प्रगतिशील प्राणी बनाने में सहायता करती है। विद्यालयों के द्वारा ही बालकों के मन में ऐसे संस्कार पड़ते हैं, जो समाज में प्रगतिशील जीवन बिताने के लिए आवश्यक होते हैं और जिस समाज के व्यक्ति जितने प्रगतिशील जीवन बिताने के लिए आवश्यक होते हैं और जिस समाज के व्यक्ति जितने प्रगतिशील होंगे उतना ही समाज उन्नत होगा।

4. शिक्षा समाज की सभ्यता तथा संस्कृति को अक्षुण्ण रखने एवं विकसित करने की प्रक्रिया है। चिरकाल से ही समाज द्वारा स्वीकृत सभ्यता तथा संस्कृति की रक्षा करना तथा उसको भावी संतति तक पहुँचाना विद्यालयों का प्रधान कर्त्तव्य समझा जाता है। समाज–संस्कृति के रूप इतने जटिल है कि बालक उन्हें सरलता से ग्रहण नहीं कर सकता। विद्यालय समाज की जटिलता को दूर कर सकते हैं और बालकों के समक्ष केवल उन्हीं तथ्यों को सरल तथा शुद्ध रूप में प्रस्तुत करते हैं जो उनके विश्वास में सहायक हो।

5. शिक्षा समाज के आदर्शों तथा क्रियाओं का विवेचन करती है। आवश्यक तथा अनावश्यक आदर्शों का निर्णय करती है। अनुपयोगी, असामाजिक तथा रूढ़िगत विचारों, परम्पराओं तथा आदर्शों से समाज की रक्षा करती है। नयी परिस्थितियों के अनुकूल समाज के समक्ष नये विचार, भाव तथा आदर्श उपस्थित करती है, जिससे समाज नयी परिस्थिति के अनुकूल अपने आपको बना सके। शिक्षा समाज के नव–निर्माण में सहायक होती है। बालकों के अंदर नवीन विचार, भाव तथा आदर्श उत्पन्न होते हैं तथा उनकी समस्त शक्तियों का विकास होता है ताकि नवीन समाज के निर्माण में उनका सहयोग किया जा सके।

6. शिक्षा के औपचारिक साधन में 'विद्यालय' द्वारा छात्रों में ऐसे संस्कार पड़ते हैं, जो समाज में एक प्रगतिशील जीवन बिताने के लिए आवश्यक होते हैं। शिक्षा द्वारा उन परिस्थितियों को प्रस्तुत किया जाता है, जिनके प्रभाव के फलस्वरूप छात्र में सामाजिक भावना का विकास होता है, अर्थात् उसकी सामाजिक भावना जाग्रत होती है। छात्र को कक्षा के सामाजिक कार्यों में भाग लेने से उसके हृदय में सहयोगिता, सहानुभूति, सहनशीलता तथा सहृदयता आदि गुणों का विकास होता है। इन गुणों के विकास से छात्र दूसरे के प्रति प्रेम तथा सहानुभूति का व्यवहार करता है और दूसरों के साथ मिलकर अपने आपको समाजोपयोगी कार्यों में लगाता है।

7. शिक्षा न केवल सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों का निर्धारण करती है अपितु उन पर चलने तथा दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करने का प्रयास करती है। शिक्षा तथा समाज एवं समाज तथा शिक्षा एक–दूसरे से इस प्रकार संबंद्ध हैं कि मानव अपने जीवन की सफलता के लिए दोनों का आवश्यकतानुसार प्रयोग करता है। समाज शिक्षा को तथा शिक्षा समाज को प्रभावित करती है। समाज की मान्यताओं, आदर्शों तथा आकांक्षाओं के आधार पर ही शिक्षा की रूपरेखा तैयार होती है। समाज के नये आदर्शों, रीति–रिवाज एवं परम्पराओं को लेकर शिक्षा आगे बढ़ती है, जो राजनैतिक दल देश में शासन करता है, वही अपने आदर्श के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करता है।

8. प्रजातांत्रिक शासन पद्धति में सामाजिक मूल्यों का विकास बालक के स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास के साथ होता है। बालक का व्यक्तित्व स्वतंत्र सामाजिक वातावरण में विकसित होता है। औद्योगिक क्रांति तथा विज्ञान ने समाज की आर्थिक दशा को परिवर्तित कर दिया है। समाज की आवश्यकताएँ भी बढ़ी हैं, उसके अनुरूप पाठ्यक्रम में परिवर्तन, शिक्षण पद्धतियों में परिवर्तन आदि की बातें भी सामने आयीं और प्रयोजना पद्धति, ह्यूरिस्टिक पद्धति, मॉन्टेसरी पद्धति आदि शिक्षण की विधियों ने सामाजिक मूल्यों को विकसित करने में प्रमुख भूमिका निभायी है।

प्रश्न 38. सांस्कृतिक विरासत का अर्थ स्पष्ट कीजिए। **(जबलपुर 2022)**

उत्तर– सांस्कृतिक विकास एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। हमारे पूर्वजों ने बहुत–सी बातें अपने पूर्वजों से सीखी हैं। समय के साथ उन्होंने अपने अनुभवों से उसमें और वृद्धि की जो आवश्यक था, उसको उन्होंने छोड़ दिया। हमने भी अपने पूर्वजों से बहुत कुछ सीखा। **उदाहरण–**जैसे–जैसे समय बीतता है, हम उनमें नए विचार, नई भावनाएँ जोड़ते हुए चले जाते हैं और इसी प्रकार, जो हम उपयोगी नहीं समझते उसे छोड़ते जाते हैं। इस प्रकार संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती जाती है। जो संस्कृति हम अपने पूर्वजों से प्राप्त करते हैं, उसे **सांस्कृतिक विरासत** कहते हैं। यह विरासत कई स्तरों पर विद्यमान होती है। मानवता ने संपूर्ण रूप में जिस संस्कृति को विरासत के रूप में अपनाया उसे मानवता की विरासत कहते हैं। एक राष्ट्र भी संस्कृति को विरासत के रूप में अपनाया उसे मानवता की विरासत कहते हैं। एक राष्ट्र भी संस्कृति को विरासत के रूप में प्राप्त करता है जिसे राष्ट्रीय सांस्कृतिक विरासत कहते हैं। सांस्कृतिक विरासत में वे सभी पक्ष या मूल्य सम्मिलित हैं जो मनुष्यों को पीढ़ी–दर–पीढ़ी अपने पूर्वजों से प्राप्त हुए हैं। वे मूल्य पूजे जाते हैं, तथा संरक्षित किए जाते हैं और अटूट निरंतरता से सुरक्षित रखे जाते हैं और आने वाली पीढ़ियाँ इस पर गर्व करती हैं।

विरासत के सम्प्रत्यय को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण सहायक सिद्ध होंगे। ताजमहल, स्वामी नारायण मंदिर, लाल किला, अमृतसर का स्वर्ण मंदिर आदि हमारी विरासत के महत्वपूर्ण स्थान हैं और ये किसी भी प्रकार संरक्षित किए जाने चाहिए।

वास्तु संबंधित इन रचनाओं, इमारतों, शिल्पकृतियों के अलावा बौद्धिक उपलब्धियाँ, दार्श ज्ञान के ग्रंथ, वैज्ञानिक आविष्कार और खोज भी विरासत का हिस्सा है। भारतीय संदर्भ में गणित, खगोल विद्या और ज्योतिष के क्षेत्र में बौधायन, आर्यभट्ट और भास्कराचार्य का योगदान, भौतिकशास्त्र के क्षेत्र में कणाद और वराहमिहिर, रसायनशास्त्र के क्षेत्र में नागार्जुन, औषधि के क्षेत्र में सुश्रुत, यो के क्षेत्र में पतंजलि हमारी भारतीय सांस्कृतिक विरासत के प्रगाढ़ खजाने हैं। संस्कृति परिवर्तनशील है लेकिन हमारी विरासत परिवर्तनशील नहीं हैं। हम प्रत्येक जो किसी संस्कृति या निश्चित समूह से संबंध रखते हैं दूसरे समुदाय के होते हैं। संस्कृति से सांस्कृतिक गुणों को ले सकते हैं लेकिन हमारा जुड़ाव, भारतीय सांस्कृतिक विरासत के साथ नहीं बदलेगा। हमारी भारतीय सांस्कृतिक विरासत हम एक–दूसरे से बाँधे रखेगी। **जैसे**–भारतीय साहित्य और धर्मग्रंथ; जैसे– वेद, उपनिषद्, गीता और योग आदि ने सभ्यता की उन्नति में सही ज्ञान, सही क्रिया, व्यवहार और अभ्यास को सभ्यता के परिपूरक के रूप में देकर योगदान किया है।

सांस्कृतिक पहचान धर्म, क्षेत्र और नृजातीयता– हमारी सांस्कृतिक पहचान विभिन्न कारकों जैसे कि धर्म, प्रांत आदि पर आधारित हैं जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक भारतीय की कई पहचान हो सकती है। इनमें से कोई एक पहचान अवसर विशेष पर अधिक महत्वपूर्ण हो सकती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संदर्भ में व्यक्ति स्वयं को किस स्थान पर पाता है। इस प्रकार हर एक व्यक्ति दूसरे के साथ अपनी कुछ समानताओं को देख सकता है, पर साथ–ही–साथ कुछ अन्य पहलुओं में विशाल असमानताएँ पा सकता है। **उदाहरण के लिए**– मान्यताओं, पूजा के स्वरूप और अनुष्ठानों के अलावा, सम्पूर्ण देश के दृष्टिकोण से उनके बीच भी बहुत कम समानताएँ हैं जो एक विशेष धर्म को मानते हैं। यहाँ तक कि पूजा और कर्मकांड के स्वरूपों में भी वर्गीय और प्रांतीय भिन्नताएँ हैं।

इस प्रकार सांस्कृतिक रूप से न तो सभी हिन्दू समान हैं, न ही सभी मुसलमान समान हैं। प्रांतीय पहचान ज्यादा गहरी और वास्तविक है। विभिन्न जाति और धर्म के लोगों में क्षेत्रीय सांस्कृतिक समानताएँ हैं, जैसे कि–भाषा, भोजन, पोशाक, मूल्यबोध और विश्व दृष्टिकोण। सैद्धांतिक रूप से भिन्न–भिन्न धार्मिक समूह भिन्न–भिन्न धार्मिक सिद्धांतों के प्रति समर्पण रखते हैं। **उदाहरण के लिए**–वेद और शास्त्र हिन्दुओं के, कुरान और हदीस मुसलमानों के तथा बाइबिल ईसाइयों के प्रेरणा स्रोत हो सकते हैं। हालाँकि कर्मकांड और जीवन पद्धति के स्तर पर भिन्न–भिन्न धर्मों के अनुयायियों में काफी अन्तर्मिश्रण प्रचलित हैं।

प्रश्न 39. सांस्कृतिक विरासत के प्रकार बताइए।

***अथवा*, भारतीय संस्कृति की भौतिक धरोहरों का उल्लेख कीजिये।** (ग्वालियर 2021)

उत्तर– सांस्कृतिक विरासत को दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है–

1. मूर्त (वास्तविक) सांस्कृतिक विरासत एवं
2. अमूर्त (अवास्तविक) सांस्कृतिक विरासत।

1. मूर्त/वास्तविक सांस्कृतिक विरासत– मूर्त सांस्कृतिक विरासत से अभिप्राय उन सांस्कृतिक धरोहर (विरासत) से है जिन्हें हम स्पष्ट रूप से स्पर्श कर सकते हैं एवं देख सकते हैं। इसके अन्तर्गत ऐतिहासिक स्थल, कलाकृतियाँ, मूर्तियाँ आदि आते हैं लेकिन सांस्कृतिक विरासत की अवधारणा इससे अधिक व्यापक हैं और इसमें धीरे–धीरे मानव रचनात्मकता और अभिव्यक्ति के सभी प्रमाण शामिल हो गए, **जैसे**– वास्तुलिपियाँ, पुस्तकें, धर्मग्रंथ, तस्वीरें और उपकरण आदि। आज शहर,

कस्बे, पानी के भीतर की विरासतें एवं प्राकृतिक वातावरण भी सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा माने जाते हैं क्योंकि समुदाय प्राकृतिक परिदृश्य के साथ स्वयं की पहचान स्थापित कर रहे हैं।

2. अमूर्त/अवास्तविक सांस्कृतिक विरासत–अमूर्त सांस्कृतिक विरासत से अभिप्राय उन सांस्कृतिक मूल्यों/धरोहरों से है जिनको हम न स्पर्श कर सकते हैं और न ही देख सकते हैं बल्कि केवल एहसास (आभास) कर सकते हैं। **जैसे**–सांस्कृतिक मूल्य, परम्पराएँ, मत, विचार, संस्कार, ज्ञान, कौशल आदि इसके अन्तर्गत सम्मिलित किए जा सकते हैं। अमूर्त सांस्कृतिक परम्पराओं में संगीत एवं अध्यापन को एक उत्कृष्ट स्थान प्राप्त है।

प्रश्न 40. सांस्कृतिक विरासत एवं मूल्यों के संरक्षण पर लेख लिखिए।

***अथवा*, आधुनिक भारतीय समाज के मूल्यों का वर्णन कीजिए।** **(ग्वालियर 2021)**

***अथवा*, सांस्कृतिक धरोहर के मूल्य क्या हैं ? सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण के महत्व को समझाइए।** **(भोपाल 2021)**

उत्तर– हमारी कला, संस्कृति, ऐतिहासिक इमारतें, साहित्य, नृत्य, संगीत और विभिन्न कलाएँ हमारी सांस्कृतिक धरोहर या विरासत हैं जिनका संरक्षण किया जाना आवश्यक है। इसके लिए हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति जागरूक रहना चाहिए तथा इसके प्रचार में योगदान देना चाहिए, क्योंकि हमारी सांस्कृतिक धरोहर हमारी राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है।

सांस्कृतिक विरासत का राष्ट्रीय एकता के लिए निम्नलिखित प्रकार से विशेष योगदान रहा हैं–

1. प्राचीन साहित्य का योगदान,
2. मध्यकालीन कला का योगदान एवं
3. साहित्य और कला का योगदान।

1. प्राचीन साहित्य का योगदान–प्राचीन साहित्य में सांस्कृतिक विरासत का योगदान निम्नलिखित हैं–

(1) फारसी साहित्य– दिल्ली के सुल्तानों के शासनकाल में साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई। दिल्ली के समस्त सुल्तानों ने अपने दरबार में फारसी लेखकों, कवियों और दार्शनिकों को आश्रय प्रदान किया। कुछ सुल्तानों ने इतिहासकारों को भी अपने दरबार में स्थान दिया। इनमें हसन निजामा, मिन्हाज, बर्नी, शम्सेसिराज, अहमद सरहिन्दी आदि के नाम विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। कवियों में अमीर खुसरो तथा अमीर हसन के नाम उल्लेखनीय हैं।

(2) संस्कृत साहित्य– दिल्ली सल्तनत काल में संस्कृत–साहित्य का दक्षिण में पर्याप्त विकास हुआ है। विजय नगर के शासकों की प्रेरणा से अनेक संस्कृत ग्रंथों की रचना हुई। इस काल में अनेक नाटकों की रचना की गयी, जिनमें जयदेव द्वारा लिखित 'हरकेलि नाटक' जयसिंह सूरी द्वारा रचित 'हम्मीर मद–मर्दन' बाणभट्ट का 'पार्वती परिणय' तथा रूप गोस्वामी का 'ललित माधव' आदि नाटक उल्लेखनीय हैं। कुछ सुल्तानों ने संस्कृत ग्रंथों का फारसी में अनुवाद कराया। इसी काल में गुजरात के प्रसिद्ध कवि हेमचंद्र ने अपनी रचनाएँ संस्कृत में लिखीं।

(3) हिन्दी साहित्य– इस युग में हिन्दी साहित्य की भी प्रगति हुई। पृथ्वीराज के दरबारी कवि चन्दबरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' की तथा 'हम्मीर काव्य' नामक काव्य ग्रंथों की रचना की। दलपति विजय ने 'खुमान रासों' की रचना की। जगनक ने आल्हा– ऊदल की प्रशंसा में 'आल्हा–खंड' नामक काव्य–ग्रंथ का प्रणयन किया। इसके अतिरिक्त हिन्दी में कबीर, नानक, रैदास, सूरदास आदि संतों ने पद्य रचना की। राजस्थान की मीराबाई हिन्दी की प्रसिद्ध कवियित्री हैं।

(4) अन्य भाषाओं के साहित्य– प्रांतीय शासन के अन्तर्गत प्रांतीय भाषाओं के साहित्य की उन्नति हुई। बंगाल में 'महाभारत' और 'रामायण' का बंगला भाषा में अनुवाद किया गया है। बंगाली विद्वानों में रघुनंदन मिश्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। नस्सी मेहता ने गुजराती में अनेक गीतों की रचना की। बाण की 'कादम्बरी', 'पंचतंत्र' तथा 'रामायण' आदि का भी गुजराती भाषा में अनुवाद किया गया। संत ज्ञानेश्वर ने अनेक गीतों की रचना की। मराठी कवियों में एकनाथ, तुकाराम, नरेन्द्र और मुकुन्दराम के नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

2. मध्यकालीन कला का योगदान– दिल्ली के सुल्तानों के शासनकाल में स्थापत्य कला की विशेष प्रगति हुई। मुसलमानों के आगमन से पूर्व भारतीय कला उन्नत अवस्था में थी, जिसकी महमूद गजनवी जैसे आक्रमणकारी ने भी प्रशंसा की थी। उसने मथुरा के मंदिरों के विषय में लिखा है कि "यदि कोई व्यक्ति इन जैसे भवन–निर्माण करना चाहे तो उसे एक हजार दीनार की एक लाख थैलियाँ व्यय करनी पड़ेगी और कुशल–से–कुशल शिल्पियों की सहायता से भी वह 20 वर्ष में पूरा नहीं होगा।" दिल्ली के सुल्तानों में अधिकांश सुल्तानों को इमारतें बनवाने का शौक था। उन्होंने अनेक मस्जिदों और इमारतों का निर्माण कराया। यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि अधिकांश मस्जिदों का निर्माण हिन्दुओं के मंदिरों का विध्वंश करके उनकी सामग्री से ही हुआ था।

(1) सुल्तानों द्वारा भवन निर्माण–कुतुबुद्दीन ऐबक ने कुतुबमीनार और एक मस्जिद का निर्माण करना प्रारंभ किया, लेकिन उसके पूर्ण होने से पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गयी। इन इमारतों को उसके उत्तराधिकारी इल्तुतमिश ने पूर्ण कराया। इसके अतिरिक्त उसने बदायूँ में एक मस्जिद का निर्माण कराया। अजमेर में बना हुआ 'अढ़ाई दिन का झोपड़ा' भी एक मस्जिद है, जिसका निर्माण कुतुबुद्दीन ऐबक ने करवाया था और इल्तुतमिश ने उसे अलंकृत किया। इल्तुतमिश की बनवाई इमारतों से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है उसके ज्येष्ठ पुत्र का मकबरा, जो **'सुल्तानगढ़ी'** के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद अलाउद्दीन खिलजी ने अनेक किलों और महलों का निर्माण कराया। किलों में सीरी–दुर्ग सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उसकी इमारतों में अलाई दरवाजा, हजार सितुन और जमैयत खान मस्जिद विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके बाद गयासुद्दीन तुगलक ने तुगलकाबाद का निर्माण कराया तथा फिरोज तुगलक ने फिरोजाबाद, फतेहाबाद, जौनपुर और हिसार आदि नगरों को बसाया। सैयद और लोदी काल में अनेक मकबरों का निर्माण हुआ। सैयद–शासकों के काल में दो मकबरे, सैयद का मकबरा और मुहम्मद साहब का मकबरा उल्लेखनीय हैं। लोदी शासकों के काल में सिकंदर का मकबरा उल्लेखनीय हैं। लोदी शासकों के काल में सिकंदर का मकबरा, मुहम्मद साहब का मकबरा, बड़े खाँ और छोटे खाँ के मकबरे तथा मोठ की मस्जिद उल्लेखनीय हैं।

(2) प्रांतीय स्थापत्य कला– प्रांतीय शासकों ने भी महलों, मस्जिदों और मकबरों का निर्माण कराया। मालवा की राजधानी माँडू में अनेक इमारतों का निर्माण हुआ, जिनमें जामा मस्जिद, हिंडोला महल, जहाज महल, बाजबहादुर और रानी रूपमती के महल विशेष उल्लेखनीय हैं। जौनपुर में शर्की सुल्तान इब्राहिम के समय की बनी हुई अटाला मस्जिद अपने सौन्दर्य के लिए विख्यात हैं। यह मस्जिद अटालादेवी के मंदिर को तोड़कर बनवाई गई थी। इसके अतिरिक्त वहाँ की जामा मस्जिद और लाल दरवाजा मस्जिद भी अपनी सुंदरता के लिए प्रसिद्ध हैं। बंगाल के शासकों ने भी अनेक इमारतों का निर्माण कराया, जिनमें हुसैनशाह का मकबरा, बड़ा सोना मस्जिद तथा कदम रसूल मस्जिद आदि सुविख्यात इमारतें हैं। गुजरात के शासकों द्वारा निर्मित अहमदाबाद तथा चम्पार की जामा मस्जिद भी दर्शनीय हैं।

(3) दक्षिण राज्य की स्थापत्य कला– दक्षिण के सुल्तानों को भी स्थापत्य कला से विशेष प्रेम था। बहमनी राज्य के शासकों ने अनेक सुंदर भवनों तथा मस्जिदों का निर्माण कराया जिनमें गुलबर्गा की जामा मस्जिद तथा बीजापुर का गोल गुम्बद देखने योग्य इमारतें हैं। विजयनगर के शासकों द्वारा निर्मित अधिकांश इमारतों को मुसलमानों ने विध्वंस कर दिया। आज केवल विट्ठल स्वामी मंदिर स्थापत्य कला का सर्वोत्कृष्ट आदर्श है।

3. साहित्य और कला का योगदान– भारत की सांस्कृतिक विरासत में साहित्य और कला का विशेष योगदान रहा है, जो निम्नलिखित प्रकार का हैं–

(1) साहित्य– भारतीय साहित्य की परम्परा भिन्न प्रकार की है। भारतीय साहित्य में इस प्रकार की धार्मिकता थी कि मानवीय हीनताओं पर कटाक्ष कम मिलता है। भारतीय साहित्य में सबसे प्राचीन वेद हैं–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद। चारों वेदों में एक तो मूल मंत्रों का संग्रह है। अन्य ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और टीकाएँ हैं। अन्य तीनों वेदों में ऋग्वेद की ही पुनरावृत्तियाँ हैं, इनमें उच्च कोटि का काव्य मिलता है। ब्राह्मण में कर्मकाण्ड की मीमांसा है, परंतु आरण्यक, उपनिषदों में तत्व ज्ञान का निचोड़ है। कहा गया है कि वेद तो गाय हैं जिनका दूध उपनिषद् है, जिसका मक्खन गीता है। इस समय दो सौ उपनिषद् प्राप्त हैं जिनमें से अठारह प्राचीन माने जाते हैं।

संहिताएँ श्रुति कहलाती हैं उन पर टीकाएँ स्मृति कहलाती हैं। प्राचीन संस्कृत साहित्य के बाद प्राकृत साहित्य आता है, जिसका प्रसार गौतम बुद्ध एवं महावीर स्वामी के समय हुआ। प्राकृतों में शोर, सैनी, पैशाची, महाराष्ट्री आदि बोलियाँ थीं, जिनका और भी बिगड़ा हुआ रूप अपभ्रंश बना। जिन प्राकृतों में साहित्य था, जैसे– पाली एवं अर्द्धमागधी से भिन्न हो गयी। पाली ग्रंथों में बुद्ध के त्रिपिटक हैं जिनके विजय पिटक, सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक हैं। **मिलिन्द** एवं **जातक** पाली के दूसरे महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं। भिक्षु एवं भिक्षुणियों की गीत रचना का संग्रह 'क्षीर गाथा' एवं 'थेरी गाथा' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(2) कला– प्राचीन युग में काव्य, कला, संगीत, वस्तु, शिल्प, चित्रकला आदि का विकास भी महत्वपूर्ण हैं। मोहनजोदड़ो से प्राप्त मूर्तियाँ, बर्तन एवं सिक्के आदि यह बताते हैं कि सिंधु तट की सभ्यता कितनी विकसित थीं। उसके पश्चात् नालंदा, राजगृह, सारनाथ, साँची आदि स्थानों पर (भूमि में) मूर्तियाँ आदि मिलती है, जिनमें प्राचीन शिल्पकला एवं वास्तुकला का परिचय मिलता है। गोमतेश्वर के बाहुबली एवं ग्वालियर के किले में उत्कीर्ण विशाल जैन मूर्तियों को लगाकर सूक्ष्म मृग मूर्तियों तक प्राचीन मूर्तिकला के सुंदर प्रमाण मिलते हैं। इस शिल्प की विशेषता न केवल उसके कोमल अंकन में है, बल्कि उसकी भव्य कल्पना और रम्य रचना में है। जैसा कि सारनाथ से प्राप्त होने वाले अशोक स्तंभ तथा बुद्धि की मूर्ति तथा मथुरा संग्रहालय में कनिष्क की मूर्ति इसके प्रमाण हैं। मिब्रदय और कांचीवरम् के मंदिर उनके आमल्लाक शिखर, बौद्धों के विहार एवं गुफाओं में उत्कीर्ण संघाराम आदि प्राचीन स्थापत्य के ऐसे नमूने हैं, जिन्हें हम कभी नहीं भुला सकते हैं। चित्रकला के क्षेत्र में यद्यपि बहुत प्राचीन प्रमाण नहीं मिलते, फिर भी अजन्ता और बाघ के गुहा मंडल, उनमें अंकित भित्ति चित्र इस बात के साक्षी हैं कि रेखा और रंग में अपनी प्रतिभा का परिचय तत्कालीन कलाकारों ने कितनी विविधता एवं सूक्ष्मता के साथ दिया है। प्राचीन भारतीय संगीत की मूल पीठिका सामवेद से है तथा उससे भी पूर्व शिव के तांडव नृत्य से विस्तृत बतायी जाती है। संगीत पर कई प्राचीन ग्रंथ मिलते हैं, जिनमें भरत का नाट्यशास्त्र, कल्हण की राजतरंगिणी प्रसिद्ध हैं। जयदेव एवं विद्यापति जैसे कवियों ने जिस कला को और आगे बढ़ाया उसका मूल रूप ध्रुपद गायन से मिलता है।

व्यक्ति हो या समाज उसकी पहचान उसके द्वारा अपनाये जाने वाले मूल्यों एवं मन में पलती आकांक्षाओं से होती है। जीवन मूल्य वे होते हैं, जो व्यक्ति या समाज की जीवन–शैली के संबंध में सही जानकारी देते हैं। मूल्य एवं आकांक्षाएँ वह दर्पण हैं जिनसे समाज का सही रूप प्रतिबिम्बित होता है। आकांक्षाएँ किसी भी समाज का क्या स्तर है, क्या सोच है, क्या बनना चाहता है ? इसका स्पष्ट आभास देती है। मूल्य यह बताते हैं कि इन आकांक्षाओं की पूर्ति कोई भी समाज किस प्रकार से जीवन–शैली अपनाकर करता है। **उदाहरण के लिए,** भारतीय समाज की यह आकांक्षा है कि वह संसार में एक सफल स्वतंत्र के रूप में उभरे तो इसके लिए उसे प्रजातांत्रिक मूल्यों को अपनाना होगा। वे मूल्य जिसमें व्यक्ति की इच्छाओं तथा मत का सम्मान हो, उसे स्वतंत्रता हो, प्रत्येक व्यक्ति के साथ समानता का व्यवहार हो, प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक न्याय मिले इत्यादि। इस प्रकार आकांक्षाओं का मूल्यों के साथ बहुत निकट का संबंध होता है। मूल्य शब्द का संबंध अर्थशास्त्र से होता है। मूल्य दो प्रकार के होते हैं–एक प्रकार का मूल्य जो परिश्रम से संबंधित है, इसे निमित्त मूल्य भी कहा जाता है। दूसरे प्रकार का मूल्य निमित्त न होकर स्वलक्ष्य होते हैं एवं आत्माश्रयी होते हैं। **उदाहरण के लिये,** सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् तीन ऐसे तुल्य हैं, जो आत्माश्रयी हैं। हम यहाँ उन मूल्यों की बात करते हैं जो निमित्त नहीं है। इन मूल्यों को जो समाज अपनाता है, वह अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अपनाता है।

उभरते भारतीय समाज के मूल्य तथा आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिये निम्नलिखित जीवन मूल्यों का संरक्षण आवश्यक हैं–

1. लोकतांत्रिक मूल्य–प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के प्रति सम्मान, उसकी स्वतंत्रता की रक्षा, असहमति का आदर, स्वतंत्र चिंतन के लिए अवसर, निष्पक्ष निर्णय लेने की क्षमता का विकास, अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का अधिकार, अनुशासन, साहस, विनम्रता, सहयोग, सहनशीलता इत्यादि लोकतांत्रिक मूल्य अपनाने होंगे।

2. आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्य–प्रत्येक व्यक्ति के प्रति प्रेम, करुणा, क्षमा, दूसरों के दुःख को अपनाना, दुःख समझना, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्य जीवन में उतारने हेतु आवश्यक हैं।

3. राजनैतिक मूल्य–स्वच्छ राजनीति करना, असत्य का सहारा न लेना, निश्चित दिशा निर्धारित कर अच्छे साधनों को अपनाना, भ्रष्टाचार एवं गंदे राजनैतिक हथकंडों से अपने आपको अलग रखना इत्यादि राजनैतिक मूल्य की श्रेणी में आते हैं।

4. आर्थिक मूल्य– एक अच्छी अर्थव्यवस्था बन सके तथा आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो सके, इस दृष्टि से श्रम के प्रति निष्ठा, उत्कृष्ट कोटि का उत्पादन, अनुचित ढंग से लाभ पाने का प्रयास नहीं करना। समय की पाबंदी, व्यवहार में ईमानदारी आदि आर्थिक मूल्य अपनाने होंगे।

5. शैक्षिक मूल्य– पूर्ण निष्ठा के साथ अध्ययन करना, अनुचित तरीके से सफल होने का प्रयास नहीं करना, विषय का गहराई के साथ अध्ययन करना, राष्ट्रीय भावना विकसित करना, अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना, भावात्मक एवं राष्ट्रीय एकता का विकास करना, ऊँच–नीच की भावना तथा छुआ–छूत की भावना से ऊपर उठना, गुरुजनों के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान की भावना रखना, अपने देश के प्रति अनन्य प्रेम आदि मूल्य अपनाने आवश्यक हैं। यदि हम भारतीय समाज की आकांक्षाओं जैसे–सबके लिए शिक्षा, नेतृत्व, राष्ट्रीय हित, लोकतंत्र में आस्था, सामाजिक

न्याय आदि से परिपूर्ण करना है, तो देश को आर्थिक दृष्टि से कमजोर लोगों को शोषण से मुक्त करना होगा। यदि हमें सही अर्थ में धर्म निरपेक्ष समाज के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करना है एवं 'सर्वजन हिताय' की भावना का विकास करना है, भारत में भावात्मक एकता स्थापित करनी है, तो इन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, क्षमा, स्वतंत्रता, समानता आदि जीवन के मूल्यों को अपनाना होगा। उभरते भारतीय समाज की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उपयुक्त शैक्षिक मूल्य ही सार्थक प्रमाणित हो सकते हैं।

प्रश्न 41. भारत में सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण पर प्रकाश डालिए।

(छतरपुर 2021; उज्जैन 21)

***अथवा*, भारतीय नागरिक होने के नाते, हम अपनी सांस्कृतिक विरासत को कैसे संरक्षित कर सकते हैं ?** **(जबलपुर 2021)**

उत्तर–भारत में सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण की जिम्मेदारी **भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण** (ए.एस.आई.) विभाग की है, जो संस्कृति विभाग के अधीन एक संलग्न कार्यालय के रूप में, पर्यटन एवं संस्कृति मंत्रालय देश की सांस्कृतिक विरासत के शोध एवं संरक्षण का मुख्य संगठन है। प्राचीन स्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल तथा अवशेष अधिनियम, 1958 द्वारा तथा पुरावशेष एवं बहुमूल्य कलाकृति अधिनियम, 1972 के प्रावधानों के अनुसार नियंत्रित एवं विनियमित किया जाता है।

प्राचीन स्मारक एवं पुरातत्वीय स्थल तथा राष्ट्रीय महत्व के अवशेषों के रख–रखाव एवं संरक्षण के लिए सम्पूर्ण देश को 24 सर्किलों में बाँटा गया है। संगठन में प्रशिक्षित, पुरातत्वविद्, संरक्षक, पुरालेखावेत्ता आदि को वृहद् स्तर पर शामिल किया गया है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की विज्ञान शाखा सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय एवं पुरातात्विक महत्व के स्मारकों के रासायनिक संरक्षण एवं उपचार के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं। इसके ऊपर लगभग 3593 स्मारकों के संरक्षण एवं उपचार, देशव्यापी खुदाई आदि की भी जिम्मेदारी है। इसने आगरा के ताजमहल की भी मरम्मत एवं उपचार किया है।

सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा का महत्व– सांस्कृतिक विरासत केवल अतीत की वस्तुओं या परम्पराओं का एक संग्रह मात्र नहीं है बल्कि यह एक चयन प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें मानव समाज लगातार विस्मरण से पूर्व ही ये सुनिश्चित करता है कि उसे आने वाली पीढ़ी को सांस्कृतिक एवं राजनैतिक मूल्यों से कौन–कौन से मूल्य देने हैं और कौन–कौन से नहीं अर्थात् किन मूल्यों एवं वस्तुओं का संरक्षण भविष्य के लिए किया जाये।

सभी लोग विश्व की संस्कृति में अपना योगदान करते हैं। यही कारण है कि लोग समस्त सांस्कृतिक विरासत की रक्षा की लिए राष्ट्रीय कानूनों एवं अन्तर्राष्ट्रीय संधियों का सम्मान करते हैं। कलाकृतियों एवं सांस्कृतिक वस्तुओं का अवैध व्यापार, पुरातात्विक स्थलों को लूटना एवं ऐतिहासिक महत्व के स्थलों को नष्ट करना एक देश की सांस्कृतिक विरासत की अपूरणीय क्षति है। इसको रोकने के लिए यूनेस्को ने सन् 1954 में सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन को बुलाया जिससे सांस्कृतिक समझ को बढ़ावा दिया जा सके तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के महत्व पर जोर दिया जा सके।

सांस्कृतिक सम्पदा का संरक्षण एक पुरानी समस्या है। सांस्कृतिक विरासत की रक्षा करने में सबसे अधिक बार आवर्ती मुद्दों में से एक व्यक्ति और समुदाय तथा निजी एवं सार्वजनिक अधिकार के मध्य संतुलन स्थापित करना अत्यधिक जटिल कार्य है।

निष्कर्ष– सांस्कृतिक विरासत हमारे जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये हमें हमारे धर्म, संस्कृति, परम्परा एवं विश्वासों आदि से जोड़कर रखता है। आज के संदर्भ में एक व्यक्ति की पहचान एक समूह या संस्कृति की पहचान से जोड़कर देखा जाता है। सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि इसे दूसरों के साथ साझा किया जाए तथा शिक्षा के माध्यम से बालकों तक पहुँचाया जाए। बालकों को उनकी संस्कृति की विशेषताएँ, लक्षण, महत्व आदि को बताया जाए। इसके साथ ही उन्हें विश्व संस्कृति का भी अध्ययन कराया जाए। इससे वे विभिन्न संस्कृतियों एवं सांस्कृतिक विरासत का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे। साथ ही उन तत्वों को आसानी से स्वीकार कर लेंगे जो समाज एवं विश्व में सामंजस्य स्थापित करने के लिए आवश्यक है।

प्रश्न 42. शिक्षा के अभिकरणों का उल्लेख कीजिए। (इंदौर 2017; छतरपुर 22; रीवा 22)

***अथवा*, शैक्षिक अभिकरणों का अर्थ क्या है ? शिक्षा के विभिन्न अभिकरणों के बारे में विस्तार से चर्चा करें।** **(भोपाल 2021)**

***अथवा*, औपचारिकेत्तर शिक्षा का क्या अभिप्राय है ? इस शिक्षा के साधनों की विवेचना कीजिए।** **(छतरपुर 2021)**

***अथवा*, शिक्षा के औपचारिक अभिकरणों का उल्लेख कीजिए।** **(ग्वालियर 2021)**

***अथवा*, शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक तथा औपचारिकेत्तर अभिकरणों की सविस्तार व्याख्या कीजिए।** **(रीवा 2022; छतरपुर 22)**

उत्तर– शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। मनुष्य जिस भी सामाजिक समूह अथवा संगठन का सदस्य होता है उसी की सामाजिक चेतना में भाग लेता है और अन्तःक्रिया के परिणामस्वरूप उसका व्यवहार प्रभावित होता है। शिक्षा की प्रक्रिया को अग्रसर करने वाले इन सामाजिक समूहों अथवा संगठनों को शिक्षा का अभिकरण कहा जाता है। 'अभिकरण' या 'साधन' अंग्रेजी भाषा के शब्द 'एजेन्सी' का हिन्दी रूपान्तरण है। एजेंसी का अर्थ है–एजेंट का कार्य। एजेन्ट से हमारा तात्पर्य उस व्यक्ति या वस्तु से होता है, जो किसी कार्य को करता है। वास्तव में शिक्षा के अभिकरण वे तत्व, कारण, स्थान या संस्थाएँ हैं जो बालक पर शैक्षिक प्रभाव डालते हैं। शिक्षा मनुष्य का सर्वांगीण विकास करती है। शिक्षा के इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समाज ने विभिन्न प्रकार की संस्थाओं का विकास किया है। विद्यालय, समुदाय, परिवार, मंदिर, चर्च, मस्जिद, राज्य, पुस्तकालय, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो, सिनेमा एवं टेलीविजन आदि। इन सभी संस्थाओं को शिक्षा के अभिकरण कहा जाता है।

शिक्षा के अभिकरणों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए **बी.डी. भाटिया** ने लिखा है कि, "समाज ने शिक्षा के कार्यों को करने के लिए अनेक विशिष्ट संस्थाओं का विकास किया है। इन्हीं संस्थाओं को शिक्षा के अभिकरण कहा जाता है।"

शिक्षा के अभिकरणों का वर्गीकरण– शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है जो जाने–अनजाने सभी सामाजिक समूहों और संगठनों में चलती रहती है। शिक्षा की दृष्टि से इन सभी समूहों और संगठनों को शिक्षा के अभिकरण कहा जाता है। ये अपने में इतने अधिक और इतने अधिक प्रकार के होते हैं कि हम इनका वर्गीकरण नहीं कर सकते। परंतु कुछ शिक्षाविदों ने शिक्षा के कुछ मुख्य अभिकरणों को दृष्टि में रखकर उनका वर्गीकरण का प्रयास किया है। शिक्षा के अभिकरणों का वर्गीकरण अग्रलिखित हैं–

शिक्षा के अभिकरण

औपचारिक अभिकरण	अनौपचारिक अभिकरण	निरौपचारिक अभिकरण
↓	↓	↓
विद्यालय	रेडियो	कम्प्यूटर
कॉलेज	टेलीविजन	रेडियो
विश्वविद्यालय	प्रेस	टेलीविजन
धार्मिक संस्थाएँ।	परिवार	मुफ्त शिक्षा आदि।
	समुदाय।	

औपचारिक शिक्षा—औपचारिक शिक्षा वह है जिसे सचेतन प्रयासों से प्रदान तथा प्राप्त किया जाता है। यहाँ शिक्षा प्रदान करने वाला भली–भाँति प्रकार से जानता है कि उसे शिक्षा प्रदान करनी है। यहाँ शिक्षक एवं बालक दोनों को ही शिक्षा के उद्देश्य ज्ञात रहते हैं तथा जिसको बालक किसी कार्यक्रम के अनुसार नियंत्रित वातावरण में रहते हुए किसी पूर्व निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निश्चित पाठ्यक्रम (ज्ञान) को निश्चित शिक्षण पद्धति के द्वारा निश्चित स्थान पर, निश्चित समय में समाप्त करके, परीक्षा देकर उपाधि ग्रहण कर लेता है। ऐसी शिक्षा को प्रदान करने के साधन विद्यालय, पुस्तकालय तथा पुस्तकें आदि हैं।

औपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ—औपचारिक शिक्षा में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं—

1. औपचारिक शिक्षा में सुनियोजित सचेष्ट प्रयासों तथा व्यवस्था की आवश्यकता होती है।
2. औपचारिक शिक्षा कृत्रिम, जटिल तथा अप्राकृतिक होती है, जिसे प्राप्त तथा प्रदान करने के लिए सुनियोजित क्रियाओं तथा कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।
3. यह शिक्षा मूलतः विद्यालयों द्वारा प्रदान की जाती है।
4. सामान्यतः औपचारिक शिक्षा का एक सुनिश्चित पाठ्यक्रम होता है, जिसे एक सुनिर्धारित समय में पूरा करना होता है।
5. यह अत्यंत कष्टसाध्य है तथा परिश्रम चाहती है।
6. इस प्रकार की शिक्षा जीवन–पर्यन्त नहीं चलती है। जब तक बालक विद्यालय जाता है, यह शिक्षा तब तक चलती है।
7. औपचारिक शिक्षा मुख्यतः भौतिक होती है, जो हमें एक भौतिक साधन जुटाने की योग्यता प्रदान करती है।
8. औपचारिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक को इस योग्य बनाना है कि वह एक निश्चित परीक्षा उत्तीर्ण कर प्रमाण पत्र प्राप्त कर ले या किन्हीं निश्चित विषयों की विषय–वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर ले।
9. औपचारिक शिक्षा उद्देश्य केन्द्रित होती है अर्थात् औपचारिक शिक्षा के सुनिश्चित उद्देश्य होते हैं।

शिक्षा के औपचारिक अभिकरण— शिक्षा के औपचारिक अभिकरण में सामाजिक समूह तथा संगठन है जिनका निर्माण कोई समाज सोच–समझकर शिक्षा के लिए करता है। जैसे–सरकार का शिक्षा विभाग और शिक्षण संस्थाएँ (विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय)। इन अभिकरणों द्वारा जिस शिक्षा की व्यवस्था की जाती है उसके उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियाँ सब कुछ निश्चित होते हैं। यहाँ शिक्षार्थी शिक्षकों की देख–रेख एवं निर्देशन में शिक्षा प्राप्त करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि इन अभिकरणों में शिक्षा बड़े नियोजित ढंग से चलती है।

समाज अथवा राज्य अपने उद्देश्यों की प्राप्ति इन्हीं अभिकरणों के द्वारा करते हैं। ये अभिकरण बच्चों से वह सब सीखने में सहायता करते हैं जो वे अनौपचारिक अभिकरणों के माध्यम से नहीं सीख पाते। अनौपचारिक अभिकरणों द्वारा प्राप्त ज्ञान एवं आचरण को व्यवस्थित करने एवं उसे उचित दिशा देने के लिए इनकी आवश्यकता होती है।

औपचारिक अभिकरणों की आवश्यकता– प्राचीन समय में विद्यालय नहीं थे, तब विद्यालय की कोई आवश्यकता भी नहीं थी। बालक अपने माँ–बाप के साथ रहकर जीवन–यापन करना सीख जाता था। जीवन की सभी बातें वह प्रत्यक्ष देखता था और वातावरण के प्रत्यक्ष सम्पर्क में रहता था। जीवन भी बड़ा सरल था। आवश्यकताएँ भी सीमित थीं। उन्हें आसानी से पूरा किया जा सकता था। कंद–मूल फल से ही व्यक्ति को संतुष्टि मिल जाती थीं। तालाबों से पानी पी लेता था। पेड़ों की छालों को वस्त्र के रूप में पहन लेता था। ज्यों–ज्यों सभ्यता व संस्कृति का विकास होता गया, त्यों–त्यों व्यक्ति यह सोचने लगा कि उसके अनुभव विस्तृत होते जा रहे हैं। वह सोचने लगा कि मानवता की कुछ भूलें की हैं। भूलों व प्रयत्नों के परिणामस्वरूप वह नये–नये अनुभव ग्रहण कर रहा था। वह चाहता था कि नयी पीढ़ी मानव की त्रुटियों को पुनः न दोहराए। वह यह भी चाहता था कि जहाँ तक उसने विकास कर लिया है, सभ्यता का विकास उसके आगे भी हो। व्यक्ति यदि प्रारंभ से चलता रहेगा तो वह छोटे से जीवन में अधिक मार्ग तय नहीं कर सकता और सभ्यता को आगे नहीं बढ़ा सकेगा। इसलिए उसने सोचा कि मानव के पूर्व अनुभवों से नयी पीढ़ी को शीघ्र ही परिचित करा दिया जाए तो अच्छा रहेगा। इसलिए उसने पूर्व अनुभवों को बच्चों तक पहुँचाने के लिए निश्चित विधि, निश्चित पाठ्यक्रम, निश्चित शिक्षा, समय, स्थान आदि की सहायता ली। इसी प्रकार विद्यालय का जन्म हुआ। अब हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि विद्यालयों के अभाव में सभ्यता एवं संस्कृति का क्या होगा ? विद्यालय, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय सभ्यता व संस्कृति के संरक्षक हैं।

बालक विद्यालय में जाकर विद्या अध्ययन करता है। वह शिक्षा प्राप्त करता है। यद्यपि उसे बाहर शिक्षा भी मिलती रहती है किन्तु वहाँ पर वह एक निश्चित पाठ्यक्रम के अनुसार चलता है। इससे शक्ति का अपव्यय नहीं होता और समय की बचत होती है।

औपचारिक शिक्षा के अभिकरण के रूप में विद्यालय–विद्यालय एक प्रमुख सामाजिक संस्था है। शिक्षा की प्रक्रिया सामाजिक होने के कारण विद्यालय सामुदायिक जीवन का वह स्वरूप है, जिसमें समाज की निरंतरता और विकास के लिए सभी प्रभावपूर्ण साधन केन्द्रित होते हैं।

विद्यालय के इसी महत्व के कारण **टी. पी. नन** ने लिखा है, "विद्यालय को समस्त संसार का नहीं, वरन् समस्त मानव समाज का आदर्श लघु रूप होना चाहिए।"

विद्यालय शिक्षा के औपचारिक अभिकरण होते हैं। School शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द 'Schola' या 'Skhole' से हुई है। जिसका अर्थ होता है– अवकाश (Leisure)। विद्यालय का निर्माण बालकों को शिक्षा देने हेतु किया जाता है। इसमें शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या एवं शिक्षण–विधियाँ पहले से ही सुनिश्चित होती है।

रॉस के अनुसार–"विद्यालय वे संस्थाएँ हैं, जिनको सभ्य मनुष्य द्वारा इस उद्देश्य से स्थापित किया जाता है कि समाज में सुव्यवस्थित और योग्य सदस्यता के लिए बालकों की तैयारी में सहायता मिले।"

जॉन ड्यूवी के अनुसार–"विद्यालय एक ऐसा विशिष्ट वातावरण है, जहाँ जीवन के कुछ गुणों और कुछ विशेष प्रकार की क्रियाओं तथा व्यवसायों की शिक्षा इस उद्देश्य से दी जाती है कि बालक का विकास वांछित दिशा में हो।"

'विद्यालय' घर की अपेक्षा शिक्षा का उत्तम स्थान है। विद्यालय में विभिन्न आदतों, रुचियों और दृष्टिकोणों के बालक आते हैं। अत: परस्पर सम्पर्क के कारण बालक उन बातों को सीखते हैं जिन्हें वे घर की चारदीवारी के अंदर नहीं सीख सकते हैं। यदि बालकों को निष्पक्षता और सहयोग के महत्व को बताना है, तो उसे घर से बाहर विद्यालय में भेजना अनिवार्य है।

विद्यालय ही एकमात्र वह साधन है, जिसके द्वारा शिक्षित नागरिकों का निर्माण किया जा सकता है। यदि एक देश के समस्त बालकों को एक निश्चित आयु तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जाती है तो वे स्थायी रूप से साक्षर हो जाते हैं। साक्षर होने के साथ–साथ उनमें धैर्य, सहयोग, उत्तरदायित्व आदि गुणों का विकास होता है।

विद्यालय का महत्व– औपचारिक शिक्षा के साधन में विद्यालय का अपना ही महत्व है, क्योंकि इस अभिकरण के अन्तर्गत हम शिक्षा की व्यवस्था बालकों को समाज के उद्देश्यों की प्राप्ति व सर्वांगीण विकास हेतु सुचारु रूप से करते हैं।

1. मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि हेतु किसी–न–किसी व्यवसाय में लग जाता है। इसके लिए उसे शिक्षित होना आवश्यक है। आज विशिष्ट शिक्षा के साथ–साथ सामान्य शिक्षा में भी शिशु शिक्षा तक की व्यवस्था के लिए विद्यालयों का महत्व है।

2. बालकों में शिष्टाचार और सहानुभूति तथा निष्पक्ष दृष्टिकोण को उत्पन्न करने के लिए घर की अपेक्षा, विद्यालय ज्यादा उत्तम स्थान है। बालक घर की चारदीवारी के अंदर इन दृष्टिकोणों को नहीं सीख सकता।

3. विद्यालय एकमात्र वह साधन है जहाँ शिक्षित नागरिकों का निर्माण होता है। विद्यालय बालकों को साक्षर बनाने के साथ उनमें सहयोग, उत्तरदायित्व एवं धैर्य इत्यादि भावनाओं को भी विकसित करता है।

4. विद्यालय, बालकों के व्यक्तित्व के विकास हेतु हर संभव प्रयास करता है तथा उसके लिए पाठ्यक्रम का निर्धारण करता है। साथ ही पाठ्य–सहगामी क्रियाओं का भी आयोजन कराता है। जिससे उनका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक व चारित्रिक विकास होता है।

5. विद्यालय, समाज अथवा राष्ट्र के उद्देश्यों की प्राप्ति करता है। समाज के द्वारा ये उद्देश्य भी निरंतर परिवर्तित होते रहते हैं। अत: इन बदली हुई आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की प्राप्ति हम विद्यालय द्वारा ही करते हैं।

6. विद्यालय राज्य के आदर्शों, विचारधाराओं एवं मान्यताओं का प्रसार करने का अत्यंत महत्वपूर्ण साधन है इसलिए सभी प्रकार के राज्यों में विद्यालय का अपना ही स्थान है।

7. विद्यालय ही शिक्षा का वह एकमात्र साधन है जो बालकों को विशिष्ट वातावरण प्रदान करता है, यह वातावरण शुद्ध, सरल व स्वास्थ्यप्रद होना चाहिए।

8. विद्यालय, बालकों को लोकतंत्र के मूल सिद्धांत (स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व, न्याय, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता) के साथ–साथ नागरिकता की भी शिक्षा देता है।

प्रश्न 43. "विद्यालय शिक्षा का औपचारिक सक्रिय साधन है।" स्पष्ट कीजिए एवं विद्यालयों के कार्य बताइए। **(इंदौर 2016)**

***अथवा*, विद्यालय शिक्षा के एक अभिकरण के रूप में लिखिए।** **(ग्वालियर 2021)**

उत्तर– विद्यालय अपने पारम्परिक तथा संकुचित रूप में शिक्षा का औपचारिक एवं सक्रिय साधन है। यह औपचारिक इस रूप में है कि इसका अपना निश्चित उद्देश्य, निश्चित कार्य, निश्चित कार्यक्रम, निश्चित स्थान, निश्चित कर्मचारीगण आदि होते हैं। आधुनिक स्वरूप में इसके स्वरूप

और कार्यों में बदलाव आया है। इस कारण भी इसे पारम्परिक एवं संकुचित कहा जाता है। जब यह साधन (विद्यालय) सामुदायिक केन्द्र के रूप में कार्य करता है तब यह औपचारिकेत्तर शिक्षा का महत्वपूर्ण साधन बन जाता है।

विद्यालयों के औपचारिक कार्य–इनके निम्न कार्य हैं–

1. चरित्र निर्माण और आध्यात्मिक स्वतंत्रता का प्रशिक्षण देना।

2. अतीत की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखना और इसे अधिक मूल्यवान बनाकर आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरित करना।

3. छात्रों में सोचने और निर्णय करने की शक्तियों का विकास करना जिससे कि वे अपनी स्वतंत्र विचार–शक्ति को सोचने, समझने और कार्य करने के लिए प्रयोग कर सकें।

4. छात्रों में कार्य को प्रारंभ करने और नेतृत्व के गुणों का विकास करना जिससे कि वे प्रजातंत्र के अच्छे नागरिकों के रूप में अपने कर्त्तव्यों को कुशलतापूर्वक कर सकें।

5. छात्रों को ऐसा प्रशिक्षण देना जिससे कि वे समाज और अन्य व्यक्तियों पर भार बने बिना सम्मानपूर्ण ढंग से अपनी जीविका की समस्या को हल कर सकें।

6. छात्रों को ऐसा लाभप्रद ज्ञान देना जो साध्य नहीं है, वरन् साध्य को प्राप्त करने का साधन है। ज्ञान का साध्य, गतिशील और संतुलित मस्तिष्क का विकास करना है। ऐसे मस्तिष्क वाला व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में सूझ–बूझ वाला और साहसी होता है। साथ ही वह अज्ञात भविष्य के मूल्यों का निर्माण कर सकता है।

विद्यालयों के अनौपचारिक कार्य–इसके निम्न कार्य हैं–

1. शारीरिक प्रशिक्षण–विद्यालय के द्वारा खेल–कूद, स्कॉउटिंग, सैनिक–शिक्षा, स्वास्थ्य कार्य आदि की व्यवस्था करके छात्रों को शारीरिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

2. भावात्मक प्रशिक्षण–विद्यालय के द्वारा वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन करके बालक–बालिकाओं को भावात्मक प्रशिक्षण दिया जाता है। इस उद्देश्य के लिए विद्यालय के द्वारा संगीत सम्मेलनों तथा नाटकों का भी आयोजन किया जाता है।

3. सामाजिक प्रशिक्षण–विद्यालय के द्वारा समाज सेवा, सामाजिक उत्सवों आदि का आयोजन करके छात्रों को सामाजिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

4. रचनात्मक कार्यों को प्रोत्साहित करना– विद्यालय के द्वारा ऐसा वातावरण तैयार किया जाता है जिनमें बालकों को रचनात्मक कार्यों को करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। बालकों के लिए ऐसी क्रियाओं का आयोजन किया जाता है जो उनके लिए रुचिकर हों।

5. जीवन के लिए उच्च आदर्शों की शिक्षा– पहले बालकों को चारित्रिक तथा धार्मिक शिक्षा परिवार तथा देवालयों में दी जाती थी, परंतु अब इसका उत्तरदायित्व विद्यालय ने ले लिया है। विद्यालय बालकों को सत्यम्, शिवम् तथा सुंदरम् का ज्ञान कराता है।

प्रश्न 44. विद्यालय को शिक्षा का प्रभावी अभिकरण बनाने के उपाय पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर– विद्यालय को शिक्षा का प्रभावी अभिकरण बनाने के उपाय–इसके उपाय, निम्नलिखित हैं–

1. बालकों को ऐसा ज्ञान प्रदान करना जो उनके जीवन के लिए उपयोगी हो।

2. बालकों में उन क्षमताओं का विकास करना जिससे वे स्वतंत्र रूप से चिंतन कर सकें और निर्णय ले सकें। इस प्रकार बालकों की मानसिक शक्तियों का विकास होता है।

3. बालकों में नेतृत्व के गुणों का विकास करना जिससे वे देश के सच्चे नागरिक बनकर अपने कर्त्तव्यों का पालन कर सकें।

4. सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखना तथा उसमें वृद्धि करना और उसे अगली पीढ़ी को बढ़ाना। विद्यालय सांस्कृतिक परम्पराओं का रक्षक होता है।

5. बालकों को राष्ट्रीय आदर्श प्राप्त करने में सहायता करना।

6. बालकों में सामाजिक दक्षता उत्पन्न करना।

7. छात्रों को ऐसी शिक्षा देना कि वे समाज पर भार न बनें।

8. बालकों को समाज सेवा के लिए तैयार करना।

9. बालकों को भावात्मक प्रशिक्षण देना जिससे उनमें भावात्मकता स्थापित हो सके।

10. बालकों को ऐसी शिक्षा देना कि वे सामाजिक बुराइयों को दूर करने में समर्थ हो सके।

11. बालकों में आध्यात्मिक भावना का विकास करना।

12. बालकों को जीवनयापन के विभिन्न साधनों से परिचित कराना।

प्रश्न 45. विद्यालय समाज का आईना क्यों है ? स्पष्ट कीजिए।

***अथवा*, "विद्यालय सामाजिक व्यवस्था का एक छोटा रूप है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?** (छतरपुर 2021; इंदौर 23)

***अथवा*, समाज तथा विद्यालय की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।** (रीवा 2022; छतरपुर 22)

***अथवा*, विद्यालय और समाज के बीच अंतर्संबंध स्पष्ट कीजिए।**

उत्तर– विद्यालय का शाब्दिक अर्थ है विद्या का आलय अर्थात् 'विद्या का घर' अर्थात् वे स्थान जहाँ विद्या (शिक्षा) की व्यवस्था होती है। अंग्रेजी में इसके लिए 'स्कूल' (School) शब्द का प्रयोग होता है। स्कूल शब्द की उत्पत्ति एक ग्रीक शब्द से हुई है जिसका अर्थ 'अवकाश' होता है। प्रारंभ में ग्रीक देश में ऐसे स्थानों को जहाँ अवकाश के समय विचार–विमर्श अथवा वाद–विवाद होता था, स्कूल कहा जाता था। परंतु आगे चलकर ये स्कूल सुनियोजित ढंग से शिक्षा प्रदान करने वाले केन्द्रों के रूप में बदल गए। आज विद्यालयों का रूप एवं उनके कार्य पहले से भिन्न हैं। आज विद्यालयों का निर्माण कोई समाज अथवा राज्य अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करता है। विभिन्न विद्वानों ने विद्यालय की परिभाषाएँ निम्नलिखित प्रकार से दी हैं–

टी.पी. नन के अनुसार–"विद्यालय को प्रमुख रूप से ऐसा स्थल नहीं समझना चाहिए, जहाँ कुछ निश्चित ज्ञान सीखा जाता है बल्कि बालकों की निश्चित क्रियाओं तथा अनुशासन का ज्ञान प्रदान करने का स्थल विद्यालय है, जिसका इस विस्तृत विश्व में अत्यधिक स्थायी तथा महानतम् महत्व है।"

रॉस के अनुसार–"विद्यालय वे संस्थाएँ हैं, जिनको सभ्य मनुष्य के द्वारा इस उद्देश्य से स्थापित किया जाता है कि समाज में सुव्यवस्थित और योग्य सदस्यता के लिए बालकों को तैयारी में सहायता मिले।"

विद्यालय शिक्षा के केन्द्र हैं, समाज में इनकी आवश्यकता और महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा समझा जा सकता हैं–

1. व्यक्तित्व का विकास– विद्यालय का प्रमुख उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना होता है, जिसकी सीखने में अत्यंत आवश्यकता है। केवल विद्यालय की सीमा के अन्तर्गत ही उसे विकास के अनुकूल वातावरण मिल पाता है जिसमें नियोजित रूप से बालक का क्रमबद्ध शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक विकास किया जाता है। बालक अपने

शिक्षक, साथियों, पुस्तकों तथा स्वयं के अनुभवों के आधार पर स्वयं का विकास करता है तथा उनसे कुछ-न-कुछ सीखता है।

2. संस्कृति का विकास तथा हस्तांतरण– विद्यालय एक ऐसी संस्था है जो शिक्षा के आधार पर समाज की बुराइयों, अंधविश्वासों एवं कुरीतियों आदि को समाप्त करता है तथा संस्कृति का स्पष्ट रूप बालक के सम्मुख रखता है। बालक अपने चिंतन तथा कल्पना के आधार पर अपना योगदान देता है। अतः संस्कृति का विकास होता है, प्रचलित संस्कृति के स्वरूप को आने वाली पीढ़ी तक पहुँचाने का कार्य शिक्षा करती है और संस्कृति क्या है ? को सिखाने का कार्य विद्यालय करता है।

3. सामाजिक वातावरण की व्यवस्था– बालक विद्यालय में सामाजिक वातावरण के द्वारा स्वयं को समाज से अलग अनुभव नहीं करता। वह अपना विकास समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप करता है। वह समाज के कर्त्तव्यों को निभाने के योग्य बनता है। अन्य समाजों के ज्ञान के आधार पर उनका प्रयोग स्वयं करता है, अतः विद्यालय में बालक में भाईचारे, त्याग, परोपकार, बलिदान तथा सहयोग आदि की भावना के सीखने का विकास होता है।

4. मानवीय गुणों का विकास– विद्यालय में बालकों में मानवीय गुणों के विकास पर बल दिया जाता है तथा इसमें समाजोपयोगी आदतों का निर्माण किया जाता है जिससे वह अपने व्यावहारिक जीवन में सफलता प्राप्त कर सके तथा अन्य व्यक्तियों, धर्मों, भाषाओं, जातियों, ग्रंथों एवं मान्यताओं के प्रति उदार दृष्टिकोण रख सके। इन सभी गुणों के बिना मनुष्य समाज में समायोजित नहीं हो सकता है। अतः विद्यालय में इन गुणों को सिखाया जाता है।

5. वसुधैव कुटुम्बकम् का विकास– विद्यालय के अन्तर्गत विविध विषयों का ज्ञान प्रदान किया जाता है जिसमें अनेक देशों, समाजों, धर्मों, भाषाओं, मनुष्यों, वातावरणों, प्राकृतिक दशाओं, वनस्पतियों एवं जलवायु के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। अतः बालक अन्य सभी के विषय में बिना वहाँ घूमे तथा देखे ज्ञान प्राप्त कर लेता है। अतः वह उनको अपने से ही संबंधित तथा निकट समझने लगता है। वह दूसरे देशों के व्यक्तियों के अनुभवों तथा त्याग को स्वयं व्यवहार में लाकर सीखने का कार्य करता है।

6. नागरिकता हेतु शिक्षा– विद्यालय, समाज तथा राज्य का लघु रूप है। उसके अपने कानून, नियम तथा सीमाएँ होती हैं। जब तक बालक उसकी सीमाओं में रहता है, स्वयं को उसका एक सदस्य समझता है तथा उसके नियमों का पालन करता हैं। इस प्रकार की आदत बन जाने से बालक समाज तथा राज्य के नियमों का भी पालन करने लगता है। दूसरे बालक के राज्य, देश एवं समाज के विषय में विस्तृत ज्ञान प्रदान करते हैं तथा उसे व्यवहार में लाने के लिए सहायक बनते हैं। इस प्रकार छात्र नागरिकता की शिक्षा प्राप्त करता है।

7. सांस्कृतिक चेतना का विकास– विद्यालय का वातावरण वहाँ की संस्कृति से अवश्य प्रभावित होता है और बालक उन प्रभावों से प्रभावित होता है क्योंकि विद्यालय में विभिन्न सामुदायों, धर्मों, जातियों, परिवारों एवं संस्कृतियों के बालक पढ़ने के लिए आते हैं। अतः उनकी भाषा, व्यवहार, कार्य का ढंग, पहनावा तथा रहन-सहन आदि के संबंध में विद्यालय बालकों को प्रभावित करता है तथा सीखने हेतु प्रेरित भी करता है।

8. जटिल समस्याओं का समाधान– विद्यालय में बालक ज्ञान, अनुभवों एवं सहयोग आदि के आधार पर जीवन की अनेक समस्याओं से अवगत होता है तथा उनको सुलझाने का प्रयत्न सीखता है। इस प्रकार वह अपने जीवन में भी समस्याओं का समाधान इसी ज्ञान के आधार पर सरलतापूर्वक

कर लेता है। समस्याओं की संख्या भी अत्यधिक है, जिनके समाधान के लिए विद्यालय बालक को सिखाने का कार्य करता है।

9. विशिष्ट वातावरण– बालक का घर पर अध्ययन ठीक प्रकार से नहीं हो सकता है। अनेक प्रकार के शोरगुल, कामकाज तथा समस्याओं के कारण वह शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता और न ही माता–पिता उसे उचित शिक्षा प्रदान कर सकते हैं। अतः अध्ययन के लिए विद्यालय का वातावरण उचित रहता है। वह अन्य बालकों को देखकर स्वयं के अध्ययन के लिए प्रेरित होता है। बालकों को मनोवैज्ञानिक विधियों द्वारा शिक्षा विद्यालय में ही दी जा सकती है। इसके लिए बालक को विशिष्ट परिस्थितियों में डालकर उससे समाधान कराया जाता है जिससे उसकी आंतरिक शक्तियों का विकास होता है तथा बालक के सीखने की गति सरल होती है।

10. आदर्श समाज का निर्माण– जब विद्यालय के वातावरण को बालक के विकास तथा समाज के वातावरण के अनुकूल बनाया जायेगा तो बालक समाज में पहुँचकर संकोच नहीं करेगा, अपितु स्वाभाविक रूप से सामाजिक प्रक्रियाओं में भाग लेगा। आदर्श व्यक्ति का जीवन व्यतीत कर वह एक आदर्श समाज की स्थापना करेगा। अतः विद्यालय में बालक आदर्शता का पाठ सीखता है।

11. व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना– प्राचीन काल में या तो पूर्णतः पुस्तकीय ज्ञान पर बल दिया जाता था अथवा पूर्णतः स्वाभाविक ज्ञान प्रदान किया जाता था जिसमें ज्ञान व्यवस्थित तथा उद्देश्यपूर्ण नहीं होता था। आधुनिक काल में तो ऐसे विद्यालयों की आवश्यकता है, जो बालक को उपयोगी सैद्धांतिक ज्ञान का व्यावहारिक रूप प्रदान कर सकें जिसका उपयोग बालक अपने व्यावहारिक जीवन में आवश्यकता पड़ने पर कर सकता है।

इस प्रकार विद्यालय का शिक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक महत्व है। यह शिक्षा का विकास ही नहीं बल्कि व्यक्ति समाज, सभ्यता, रहन–सहन तथा राष्ट्र सभी की उन्नति में सहायक है। अतः विद्यालय में सबसे अधिक ध्यान सीखने के तत्वों पर दिया जाना चाहिए।

समुदाय–शिक्षा के क्षेत्र में हम एक समाज और समुदाय दोनों का प्रयोग प्रायः एक ही अर्थ में करते हैं। हम जानते हैं कि किसी समुदाय का संगठन समुदाय के व्यक्तियों की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है। इन सामान्य आवश्यकताओं में शिक्षा भी होती है। इस दृष्टि से समुदाय शिक्षा का अनौपचारिक अभिकरण होता है।

समुदाय का जन्म अंग्रेजी के 'Community' शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ–"To serve together" अर्थात् मिलकर सेवा करना या एक साथ सेवा के अधिकारों और कर्त्तव्यों को निभाना। यदि कुछ मनुष्यों का एक समूह एक साथ संगठित रूप से किसी विशेष उद्देश्य के लिए नहीं वरन् पूरा जीवन उसी में व्यतीत करने के लिए रहता है तो ऐसे समूह को 'समुदाय' कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, "एक निश्चित स्थान में सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जो समूह संगठित होता है, उसे समुदाय कहते हैं।" नगर, ग्राम तथा राष्ट्र समुदाय के उदाहरण हैं।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से समुदाय वह वृहत् सामाजिक समूह होता है जिसमें रहकर उस समूह के व्यक्तियों की सामान्य आवश्यकताएँ (सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक) पूरी होती हैं। इस समूह की अपनी भौगोलिक, सामाजिक और राजनैतिक सीमाएँ होती हैं। समुदाय की आधारभूत कसौटी यह है कि उसके अन्तर्गत उसके सदस्यों का सामान्य जीवन व्यतीत होता है।

परिभाषाएँ– बोगार्डस के अनुसार–"समुदाय एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसमें कुछ मात्रा में हम की भावना होती है और वह एक क्षेत्र विशेष में रहता है।"

मैकाइवर तथा पेज के अनुसार–"जब कभी किसी छोटे अथवा बड़े समूह के सदस्य इस प्रकार मिल–जुलकर रहते हैं कि वे एक–दूसरे के विशिष्ट कार्यों में ही हाथ नहीं बँटाते, अपितु सामान्य जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं की भी पूर्ति करते हैं तो हम उस समूह को समुदाय कहते हैं।"

समुदाय के शैक्षिक कार्य– समुदाय के प्रमुख शैक्षिक कार्य इस प्रकार हैं–

1. शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण– समुदाय शिक्षा के वर्तमान उद्देश्यों की समीक्षा करता है। प्राचीन उद्देश्यों की समीक्षा करके यह नए उद्देश्यों को निर्धारित करता है। समुदाय शिक्षा के विषय में अपने विचार प्रकट करता है तथा शिक्षा के अन्य उद्देश्यों की संभावनाओं पर भी विचार करता है। समुदाय शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

2. पाठ्यक्रम के निर्माण में योगदान– समुदाय पाठ्यक्रम के निर्माण में सहायता करता है। समुदाय इस बात की समीक्षा करता है कि प्रचलित पाठ्यक्रम में क्या दोष है और उन दोषों को किस प्रकार से दूर किया जा सकता है। यह पाठ्यक्रम में सुधार करने के लिए आवश्यक जनमत तैयार करता है। कभी–कभी समुदाय पाठ्यक्रम निर्माण का कार्य स्वयं करता है।

3. व्यावहारिक ज्ञान (शिक्षा) की व्यवस्था–समुदाय तकनीकी तथा औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था करता है। इस प्रकार समुदाय सदस्यों के लिए व्यावहारिक शिक्षा की व्यवस्था करता है। अतः बालक के लिए उपयोगी शिक्षा प्राप्त हो जाती है।

4. प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था– समुदाय समाज में रहने वाले प्रौढ़ों के लिए प्रौढ़ शिक्षा व्यवस्था करता है। इसके लिए समुदाय शिविरों, कार्यक्रमों तथा केन्द्रों की व्यवस्था करता है।

5. शिक्षा पर नियंत्रण–समुदाय विद्यालयों की व्यवस्था करता है। उनके लिए वित्तीय साधनों की व्यवस्था करता है। समुदाय शिक्षा पर नियंत्रण रखता है।

6. शिक्षा के अनौपचारिक साधनों की व्यवस्था–समुदाय शिक्षा के अनौपचारिक साधनों की व्यवस्था करके समाज में शिक्षा का प्रसार करता है।

समुदाय का बालक की शिक्षा में विशेष महत्व है। समुदाय के अनुरूप ही समाज का निर्माण होता है। समाज का प्रभाव परिवार पर पड़ता है। इस प्रकार बालक के मानसिक विकास पर समुदाय का विशेष प्रभाव पड़ता है। बालक की आदतों तथा मनोवृत्तियों पर भी समुदाय का प्रभाव पड़ता है। बालक के व्यवहार पर भी समुदाय का प्रभाव पड़ता है। यदि बालक के समुदाय का वातावरण दूषित है तो बालक पर भी दूषित प्रभाव पड़ेगा। यदि बालक के समुदाय का वातावरण अपेक्षाकृत अच्छा है तो बालक सुसंस्कृत बनेगा।

बालक समुदाय से अनेक बातें सीखता है। बालक की भाषा, उच्चारण तथा आचार–विचार पर समुदाय का प्रभाव पड़ता है। समुदाय के सदस्य जिस प्रकार का व्यवहार करते हैं, बालक भी उसी प्रकार का व्यवहार करने लगता है। बालक अनुकरण से सीखता है। उसकी शैक्षिक प्रगति पर समुदाय का प्रभाव पड़ता है।

समुदाय को शिक्षा का प्रभावी साधन बनाने के उपाय– समुदाय को शिक्षा का प्रभावी साधन निम्नलिखित प्रकार से बनाया जा सकता हैं–

1. विद्यालय में नेताओं और नागरिकों में सहयोग की भावना उत्पन्न की जानी चाहिए।
2. समुदाय के नेताओं को विद्यालय के आधारभूत पाठ्यक्रम तथा संगठन की रूपरेखा निश्चित करनी चाहिए।
3. समुदाय की संस्कृति का सम्मान किया जाना चाहिए।
4. समुदाय को लोकतंत्रीय विचारों का समर्थन करना चाहिए।

विद्यालय और समाज के बीच अंतर्संबंध – शिक्षा जीवनपर्यन्त चलने वाली अनवरत् क्रिया है। विकास के लिए शिक्षा जीवन का महत्वपूर्ण पहलू है। जो व्यक्ति शिक्षा नहीं प्राप्त कर पाते, वे जीवन के दौड़ में बहुत पीछे रह जाते हैं। अतः शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य है। शिक्षा कैसे तथा कहाँ पर प्राप्त करे? शिक्षा के लिए आधार, साधन या अभिकरणों की आवश्यकता होती है। अतः शिक्षा में विद्यालय, घर तथा समुदाय अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वहन करते हैं। इनकी शिक्षा में प्रभावी उपयोगिता है। इनके बिना शिक्षा का कार्य दुग्रति प्राप्त नहीं कर सकता है और न ही इनके अभाव में सीखने का कार्य पूरा हो सकता है। अतः घर, विद्यालय तथा समुदाय शिक्षा के प्रभावी कारक तथा मुख्य अभिकरण हैं। साधारण लोग उस भवन अथवा स्थल को विद्यालय की संज्ञा देते हैं, जहाँ पर शिक्षा की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। यह दृष्टिकोण कुछ संकुचित–सा प्रतीत होता है, क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि बालक विद्यालय में ही अधिगम प्राप्त करे। आजकल यह दृष्टिकोण अधिक व्यापक हो गया है क्योंकि सीखना जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। व्यक्ति की शिक्षा तथा सीखना किसी निश्चित समय तथा स्थान तक सीमित नहीं है अपितु सम्पूर्ण विश्व ही मानव के लिए सीखने का विद्यालय है। वह घर, समाज एवं प्रकृति आदि से भी अधिगम ग्रहण करता रहता है।

आरंभ में तो मानव की शिक्षा के लिए कोई विद्यालय ही नहीं थे तब भी बालक जीने का ढंग तथा कार्य करने के तरीकों को सीख लेता था। विद्यालय की आवश्यकता तो बहुत समय उपरांत आकर अनुभव हुई, जबकि समाज ने बालक की क्रमिक शिक्षा के लिए बालक को उचित एवं अनुकूल वातावरण देना चाहा। जनसंख्या की वृद्धि ने सीखने के लिए विद्यालयों के विकास को जन्म दिया। दूसरा कारण है कि सभी परिवार इतने सक्षम नहीं हो सकते कि बालक को उचित ज्ञान दिया जा सके। इसलिए बालकों को क्रमबद्ध ज्ञान प्रदान करने के लिए विद्यालयों का निर्माण हुआ है। वर्तमान समय में विद्यालय सीखने के लिए प्रभावी स्थान है। संक्षेप में कह सकते हैं कि "सीखने के लिए ज्ञान का क्रमबद्ध तथा प्रगतिशील केन्द्र ही विद्यालय है।"

शिक्षा द्वारा एक ओर जहाँ समाज एवं मानव की आकांक्षा की पूर्ति की जाती है वहीं दूसरी ओर शिक्षा के माध्यम से सर्वांगीण विकास भी संभव होता है। प्राचीन समय से आधुनिक समय की शिक्षा की तुलना की जाये तो पहले शिक्षा का स्वरूप सीमित होता था, क्योंकि आज के समान पहले विद्यालय नहीं थे, लेकिन जैसे–जैसे मनुष्य भौतिकवाद और वैज्ञानिक प्रगति की ओर अग्रसर हुआ उसे शिक्षा की एक व्यवस्थित पद्धति का अनुभव हुआ। अपने इसी प्रयोजन हेतु हमने विद्यालयों की अवधारणा का विकास किया जिससे शिक्षा को व्यवस्थित रूप दिया जा सके। आज शिक्षा और विद्यालयी शिक्षा आपस में घनिष्ठ रूप से गुँथे हुए हैं। विद्यालयी शिक्षा मानवीय शिक्षा की ही घोतक है क्योंकि विद्यालयों में वही शिक्षा प्रदान की जाती है जो मानवीय मूल्यों पर आधारित है। मानवीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से विद्यालयीन शिक्षा संबंधित हैं।

प्रश्न 46. अनौपचारिक शिक्षा से क्या आशय है ? अनौपचारिक शिक्षा के अभिकरण बताइए।

उत्तर–अनौपचारिक शिक्षा से आशय– अनौपचारिक शिक्षा में अनौपचारिक शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है जो शिक्षा की विशेषता बतलाता है। अनौपचारिक शब्द दो शब्दों की संधि से बना है– अन् + उपचारिक। अन् का अर्थ 'नहीं' तथा उपचारिक का शब्द 'उपचार' से बना है। उपचार का अर्थ इलाज, चिकित्सा या व्यवस्था है। इस प्रकार अनौपचार का अर्थ है 'व्यवस्थाहीन' अर्थात् जिसके लिए कोई चिकित्सा या प्रयत्न या चेष्टा न की जाए। इस प्रकार अनौपचारिक शिक्षा वह है जिसे व्यक्ति बिना किसी व्यवस्थित साधनों अथवा प्रयासों के स्वतः ही प्राप्त कर लेता है। जीवन में मनुष्य अनेक साधनों तथा माध्यमों से अनुभव प्राप्त करता है। इन साधनों तथा माध्यमों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं–

1. वे साधन व माध्यम जिनकी जान–बूझकर इसलिए व्यवस्था की जाती है कि हम उनसे अनुभव व शिक्षा प्राप्त करें।

2. वे साधन या माध्यम जिनका जान–बूझकर आयोजन नहीं किया है, किन्तु अपने मूल रूप में ही रहकर अनुभव प्राप्त करते हैं।

हम अपने भौतिक तथा सामाजिक वातावरण में करोड़ों ऐसे साधन व माध्यम पाते हैं जो हमें प्रतिदिन अनेक अनुभव प्रदान करते हैं। ये साधन शिक्षा के अनौपचारिक साधन हैं जो हमें अनौपचारिक शिक्षा प्रदान करते हैं। परिवार, समुदाय, धर्म, राज्य, रेडियो, टेलीविजन तथा समाचार–पत्र आदि अनौपचारिक शिक्षा के प्रमुख साधन हैं।

प्रो. जे.एस.रॉस के अनुसार– "अनौपचारिक शिक्षा बालक के द्वारा सभी प्रभाव ग्रहण करना और उसे अपनी प्रकृति से उत्तेजित कर पूर्णतया विकास करना सिखाती है।" सरल शब्दों में, "अनौपचारिक शिक्षा जीवन से संबंधित वे अनुभव है, जिन्हें हम बिना किसी व्यवस्थित प्रयास, संस्था तथा साधन के स्वाभाविक स्थिति से प्राप्त करते हैं। इस प्रकार की शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से जीवन से संबंधित होती है तथा जीवन–पर्यन्त चलती है।"

अनौपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ– अनौपचारिक शिक्षा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

1. अनौपचारिक शिक्षा के लिए किन्हीं सचेष्ट प्रयासों तथा व्यवस्था की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इस शिक्षा को हम जीवन के लिए किए गए संघर्षों से स्वतः ही प्राप्त कर लेते हैं। जीवन के लिए हम जितना विस्तृत सामाजिक तथा भौगोलिक वातावरण प्राप्त करेंगे हमारे अनुभव उतने ही अधिक विस्तृत होंगे और उतनी ही अच्छी शिक्षा होगी।

2. अनौपचारिक शिक्षा स्वाभाविक जीवन से संबंधित, सरल तथा प्राकृतिक रूप में होती है।

3. अनौपचारिक शिक्षा व्यक्ति की मूल–प्रवृत्तियों तथा उसकी रुचि पर निर्भर करती है।

4. अनौपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अपने चारों ओर के वातावरण, परिवार, पड़ोस एवं समाज आदि पर मूल रूप से निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि ये ही अनौपचारिक शिक्षा के मुख्य स्रोत हैं।

5. अनौपचारिक शिक्षा मनुष्य की अपने अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता पर निर्भर करती है।

6. अनौपचारिक शिक्षा कष्टसाध्य तथा श्रम साध्य नहीं होती है। अनौपचारिक शिक्षा सुखद तथा मनोरंजनकारी होती है।

7. अनौपचारिक शिक्षा जीवन–पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है क्योंकि व्यक्ति जीवन भर अनुभव प्राप्त करता रहता है।

8. अनौपचारिक शिक्षा अभौतिक, मानवीय, भावनात्मक तथा संस्कृति प्रधान होती है। इस कारण अनौपचारिक शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण व्यक्तित्व तथा जीवन को कहीं अधिक प्रभावित करती है।

अनौपचारिक शिक्षा के उद्देश्य–अनौपचारिक शिक्षा का आयोजन तथा संगठन किसी–न–किसी उद्देश्य को लेकर किया जाता है। शैक्षिक तकनीकी से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि औपचारिक शिक्षा दिन–प्रतिदिन उद्देश्य केन्द्रित होती जा रही है।

इसके विपरीत, अनौपचारिक शिक्षा उद्देश्य रहित होती है किन्तु सही अर्थों में ऐसा नहीं है। सिर्फ अंतर इतना है कि औपचारिक शिक्षा के उद्देश्य सचेष्ट रूप से निर्धारित किये जाते हैं इसलिए हम औपचारिक शिक्षा के उद्देश्यों को सरलता के साथ उल्लेख कर देते हैं लेकिन अनौपचारिक शिक्षा में कोई पूर्व निश्चित उद्देश्य न होने के कारण हम उसके उद्देश्य नहीं बता पाते हैं और यह कह देते हैं कि वह उद्देश्यविहीन हैं।

वास्तव में, अनौपचारिक शिक्षा के उद्देश्य अत्यंत व्यापक तथा सामान्यीकृत होते हैं उनको कुछ शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। संक्षेप में, अनौपचारिक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य अंकित किये जा सकते हैं–

(1) व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में समन्वय स्थापित करना।

(2) जीवनोपयोगी ज्ञान तथा अनुभव प्रदान करना।

(3) सफल जीवन व्यतीत करने की योग्यता का विकास करना।

(4) व्यक्ति के व्यक्तित्व के सभी आयामों, पहलुओं तथा क्षेत्रों को प्रभावित कर उन्हें एक निश्चित दिशा प्रदान करना।

अनौपचारिक शिक्षा के अभिकरण– अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था में शिक्षा का कोई उद्देश्य निश्चित नहीं होता है। इसमें बालकों, युवकों तथा प्रौढ़ों को अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा प्राप्त होती है। अनौपचारिक अभिकरण का कोई निर्धारित कार्यक्रम सुनिश्चित नहीं होता। इनके नियम भी निश्चित नहीं होते। साथ ही इसके द्वारा बालकों के आचरण को अप्रत्यक्ष व आकस्मिक ढंग से शिक्षा दी जाती हैं।

डी.वी. ने अनौपचारिक शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "बालक दूसरों के साथ रहकर अनौपचारिक ढंग से शिक्षा प्राप्त करता है और साथ रहने की प्रक्रिया भी शिक्षा देने का कार्य करती है। यह प्रक्रिया अनुभव को विस्तृत करती है और कल्याण की प्रेरणा देती है। यह कथन और विचार में शुद्धता और सजीवता लाती है।"

अनौपचारिक शिक्षा के साधन–अनौपचारिक शिक्षा के प्रमुख साधन इस प्रकार हैं–

1. परिवार–परिवार को बालक का प्रथम विद्यालय कहा जाता है। परिवार में प्राप्त शिक्षा बालक को उसके सम्पूर्ण शिक्षा का आधार प्रदान करती है। परिवार के महत्व को विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों ने भी स्वीकार किया है इसलिए विद्यालय में परिवार जैसा वातावरण बनाने की बात पर बल दिया है। **मॉण्टेसरी** एवं **फ्रोबेल** के किण्डरगार्टन की अवधारणा इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

फ्रोबेल के अनुसार–"कक्षाएँ आदर्श अध्यापिकाएँ हैं और घर द्वारा दी गयी औपचारिकेत्तर शिक्षा सर्वाधिक प्रभावशाली और स्वाभाविक होती है।"

2. समुदाय–परिवार के बाद बालक की शिक्षा की द्वितीय सीढ़ी समुदाय होता है। बालक समुदाय के सम्पर्क में आकर अनेक बातों को सीखता है। शिक्षा के साधन के रूप में समुदाय विद्यालयों की स्थापना करता है व शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करता है।

बोगार्डस के अनुसार–"समुदाय एक ऐसा सामाजिक समूह है, जिसमें कुछ मात्रा में हम की भावना होती है और वह एक क्षेत्र विशेष में रहता है।

3. राज्य– राज्य शिक्षा का अनौपचारिक साधन है। शिक्षा का समुचित प्रबंध करना राज्य का प्रमुख कर्त्तव्य है क्योंकि अच्छी शिक्षा द्वारा ही एक अच्छे राज्य का निर्माण किया जा सकता है। इस संबंध में **अरस्तू** ने अपनी पुस्तक Republic में कहा है–"उचित शिक्षा राज्य पर निर्भर है और एक उपयुक्त राज्य की स्थापना उचित प्रकार की शिक्षा द्वारा हो सकती है।" परिवार, समुदाय की तरह बालक राज्य से भी अनौपचारिक रूप से कुछ–न–कुछ सीखता रहता है।

4. धर्म–धार्मिक संस्थाएँ एवं विभिन्न धर्म भी हमारी शिक्षा को प्रभावित करते हैं। ये शिक्षा के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करते हैं। धर्म के माध्यम से बालकों में नैतिक मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

जिस्बर्ट के अनुसार– "धर्म, ईश्वर व देवताओं के प्रति जिनके ऊपर मनुष्य अपने को निर्भर अनुभव करता है, गतिशील विश्वास और आत्मसमर्पण हैं।"

5. पुस्तकालय एवं वाचनालय–पुस्तकालय एवं वाचनालय अनौपचारिक शिक्षा के प्रमुख साधन हैं। ये संचित ज्ञान के भंडार के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इनमें उपलब्ध पुस्तकों के माध्यम से मनुष्य अथाह ज्ञान को ग्रहण कर सकता है और अपने ज्ञानकोष में वृद्धि कर सकता है। इनमें उपलब्ध विभिन्न पुस्तकों, पत्रिकाओं, उपन्यासों आदि का अध्ययन करके व्यक्ति अपना शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक विकास हेतु ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

6. दूरदर्शन– दूरदर्शन, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथ–साथ शिक्षा का भी महत्वपूर्ण साधन है। वर्तमान में दूरदर्शन में ऐसे अनेक कार्यक्रम प्रसारित किये जा रहे हैं, जिनके माध्यम से शिक्षा प्रदान की जा रही हैं। इनमें औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा शामिल होती हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग राष्ट्रीय नेटवर्क पर प्रसारण द्वारा देशभर में अपनी कक्षा चलाती है।

अनौपचारिक शिक्षा का महत्व– जनसंख्या का विशाल रूप बढ़ता हुआ शिक्षा व्यय तथा औपचारिक शिक्षा की असफलता ने विश्व के शिक्षाशास्त्रियों को यह सोचने पर विवश कर दिया है कि वर्तमान औपचारिक शिक्षा के स्थान पर शिक्षा की किसी अन्य व्यवस्था की खोज की जाए। इसी कारण से अनौपचारिक शिक्षा पर उनकी दृष्टि पड़ी। औपचारिक शिक्षा से कहीं अधिक अनौपचारिक शिक्षा महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह हमें इतने अनुभव प्रदान करती है कि वह मनुष्य के जीवन को ही एक शैली तथा दर्शन प्रदान कर देती है।

औपचारिक शिक्षा केवल कुछ ज्ञान प्रदान करती है जबकि अनौपचारिक शिक्षा हमें जीवन के हर क्षेत्र से संबंधित हर प्रकार का ज्ञान प्रदान करती है। अनौपचारिक शिक्षा हमें वह ज्ञान तथा अनुभव प्रदान करती है जो हमारे जीवन में वास्तविक रूप से काम आता है। इसके अतिरिक्त हमें औपचारिक शिक्षा जीवन के कुछ वर्षों तक ही (सामान्यतया विद्यार्थी जीवन तक ही) प्राप्त करते हैं जबकि अनौपचारिक शिक्षा जीवनपर्यन्त चलती है। अनौपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए आर्थिक साधनों की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इस कारण इसमें शिक्षा व्यय कम होता है।

प्रश्न 47. शिक्षा के औपचारिक तथा अनौपचारिक अभिकरणों में अंतर स्पष्ट कीजिए। इनमें समन्वय क्यों आवश्यक है ? **(उज्जैन 2015; इंदौर 23; छिंदवाड़ा 22)**

उत्तर– हैण्डरसन ने इन दोनों प्रकार के अभिकरणों के अंतर को इस प्रकार से स्पष्ट किया है– "जब बालक व्यक्तियों के कार्यों को देखता है, उनका अनुकरण करता है और उनमें भाग लेता है तब वह अनौपचारिक रूप से शिक्षित होता है। जब उसको सचेत करके जान–बूझकर पढ़ाया जाता है तब वह औपचारिक रूप से शिक्षा प्राप्त करता है।" इन अभिकरणों के अंतर को निम्न तालिका द्वारा और अधिक स्पष्ट किया जा रहा है–

क्र.	औपचारिक अभिकरण	अनौपचारिक अभिकरण
1.	औपचारिक अभिकरणों के द्वारा बालक के आचरण को परिवर्तित करने के लिए जान–बूझकर व्यवस्थित रूप में कार्य किया जाता है। इस कारण ये व्यवस्थित अभिकरण हैं।	अनौपचारिक अभिकरणों के द्वारा बालक के आचरण को अप्रत्यक्ष एवं आकस्मिक ढंग से परिवर्तित किया जाता है। इस कारण ये अव्यव–स्थित अभिकरण हैं।
2.	इन अभिकरणों को निश्चित ढाँचे के अनु–सार पहले से ही निर्धारित किया जाता है।	ये अभिकरण पूर्व–निर्धारित नहीं होते हैं। अतः ये बालक के आचरण के परिवर्तन एवं नियंत्रण

	अतः ये बालक के आचरण को सचेत होकर परिवर्तित एवं नियंत्रित करते हैं। अतः ये सचेत अभिकरण हैं।	के संबंध में सचेत होकर कार्य नहीं करते हैं। अतः ये अचेतन साधन हैं।
3.	ये अभिकरण पूर्व–नियोजित होते हैं और इनके अपने नियम एवं निर्धारित कार्यक्रम होते हैं।	इन अभिकरणों के निश्चित कार्यक्रम नहीं होते हैं और न ही इनके अपने नियम होते हैं, जिसके अनुसार वे बालक के आचरण को रूपान्तरित करने के लिए बाध्य होंगे।
4.	ये अभिकरण प्रत्यक्ष रूप से बालक के आचरण को रूपान्तरित करते हैं। अतः ये प्रत्यक्ष अभिकरण कहलाते हैं।	ये अभिकरण अप्रत्यक्ष रूप से बालक के आचरण को रूपान्तरित करते हैं। अतः ये अप्रत्यक्ष अभिकरण कहलाते हैं।
5.	ये अभिकरण बालक की स्वतंत्रता को नियंत्रित करने के लिए दंड, विधान तथा शक्ति का प्रयोग करते हैं। अतः ये कृत्रिम एवं अस्वाभाविक अभिकरण हैं।	ये अभिकरण बालक की स्वतंत्रता को नियंत्रित नहीं करते हैं। अतः ये स्वाभाविक एवं रोचक अभिकरण हैं।

बच्चे के विकास में शिक्षा के औपचारिक, निरौपचारिक और अनौपचारिक तीनों प्रकार के अभिकरणों का बड़ा महत्व होता है। बच्चों की शिक्षा उनके अपने घर से प्रारंभ होती है। शिक्षा की ये संस्थाएँ बच्चे की शिक्षा में बड़ा महत्व रखती है और शिक्षा के औपचारिक अभिकरणों के निर्माण का श्रेय भी इन्हीं को होता है।

दूसरी ओर आज हमारा सामाजिक विकास एक जटिल स्थिति को प्राप्त हो चुका है। हमने प्रायः सभी क्षेत्रों में आशातीत उन्नति की है। इन सबको समझने के लिए हमें व्यवस्थित शिक्षा की आवश्यकता होती है। व्यवस्थित शिक्षा का प्रबंध औपचारिक अभिकरणों और विशेषकर विद्यालयों में ही किया जाता है। विद्यालयों के बच्चों को अपनी रुचि, रुझान एवं आवश्यकताओं के अनुसार विकास करने के समान अवसर देने चाहिए।

कई प्रयत्न करने के बाद भी कुछ बच्चे औपचारिक शिक्षा का लाभ नहीं उठा पाते। आज ऐसे बच्चों को साक्षर बनाने और उन्हें अपने–अपने कार्यक्षेत्र में दक्ष करने के लिए प्रत्येक देश में निरौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था की जाती है।

परंतु औपचारिक तथा निरौपचारिक अभिकरण अपने कार्यों में तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक उन्हें शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरणों का सहयोग प्राप्त नहीं होता। घर और विद्यालयों की मान्यताएँ समान होनी चाहिए। भिन्न मान्यताओं के बीच बच्चे उचित निर्णय लेने में असमर्थ रहते हैं। विद्यालयों में किए जाने वाले कार्यों की यदि घर और समुदायों में आवृत्ति नहीं होती तो बच्चों में अच्छी आदतें और उचित स्थायी भावों का निर्माण नहीं किया जा सकता है। आज के युग में औपचारिक, निरौपचारिक और अनौपचारिक तीनों प्रकार के अभिकरणों का अपना–अपना महत्व है। तीनों की सफलता एक–दूसरे पर निर्भर करती है। उन्हें आपस में सहयोग के साथ कार्य करना चाहिए। यदि औपचारिक, निरौपचारिक और अनौपचारिक अभिकरण एक–दूसरे का सहयोग करेंगे तो हमारी शिक्षा व्यवस्था निश्चित रूप से बड़ी प्रभावशाली एवं लाभदायक होगी।

प्रश्न 48. शिक्षा के निरौपचारिक अभिकरण से क्या आशय है ?

उत्तर– शिक्षा के निरौपचारिक अभिकरण वे सामाजिक समूह अथवा संगठन हैं जो बच्चों, युवकों अथवा प्रौढ़ों की निरौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था करते हैं। इन अभिकरणों के द्वारा जो शिक्षा चलती है, उसके भी उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियाँ आदि सब निश्चित होते हैं।

जो बच्चे औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते और जो निरक्षर प्रौढ़ पढ़ना चाहते हैं, उनकी शिक्षा की व्यवस्था करने में इन औपचारिक अभिकरणों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। शिक्षित युवकों एवं प्रौढ़ों को अपने–अपने कार्यक्षेत्रों की अद्यतन जानकारी कराने में भी इनका बड़ा सहयोग रहता है। जन–शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा और सतत् शिक्षा की व्यवस्था इन अनौपचारिक अभिकरणों द्वारा ही होती है।

परंतु इन अभिकरणों के द्वारा उतनी सुव्यवस्थित शिक्षा की आशा नहीं कर सकते हैं जितनी औपचारिक अभिकरणों द्वारा होती है। विशिष्ट शिक्षा के लिए हमें औपचारिक अभिकरणों–विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों की आवश्यकता होती है।

शिक्षा स्वरूप के दो विषम रूप–औपचारिक तथा अनौपचारिक है। इनमें औपचारिक स्वरूप पूर्ण नियंत्रणवादी है जिसमें शिक्षा के हर पहलू पर नियंत्रण होता है। इसमें कक्षा–कक्ष प्रवेश, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, अनुशासन आदि सभी नियंत्रित होते हैं। शिक्षा का दूसरा रूप अनौपचारिक शिक्षा है जिसमें सभी कुछ पूर्ण रूप से अनियंत्रित है। इसमें न कक्षा–कक्ष, न पाठ्यक्रम, न परीक्षा और न ही अनुशासन आदि होते हैं। वर्तमान में इन पूर्ण नियंत्रित तथा अनियंत्रित स्वरूपों के बीच एक नया रूप शिक्षाविदों ने विकसित किया है। शिक्षा के इस नए स्वरूप को निरौपचारिक शिक्षा के नाम से जाना जाता है।

निरौपचारिक शिक्षा के अभिकरण–प्रौढ़ शिक्षा, जन–शिक्षा एवं सतत् शिक्षा की व्यवस्था निरौपचारिक शिक्षा के द्वारा की जाती है। ये वे साधन हैं जो इन युवकों व प्रौढ़ों के लिए वरदान सिद्ध हुए हैं। जो शिक्षा के वास्तविक रूप से निर्धारित की गई आयु में अपनी शिक्षा को पूरा न कर पाए हों, अत: वे व्यक्ति जो औपचारिक शिक्षा प्राप्त न कर पाए हों और साक्षर होना चाहते हों उनके लिए शिक्षा की व्यवस्था करते हैं। निरौपचारिक शिक्षा के साधन निम्नलिखित हैं–

1. दूरवर्ती शिक्षा,
2. मुक्त विद्यालय तथा मुक्त विश्वविद्यालय,
3. शैक्षिक रेडियो,
4. शैक्षिक दूरदर्शन।

1. दूरवर्ती शिक्षा– दूरवर्ती शिक्षा एक गैर–पारम्परिक विधि के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत विद्यार्थियों को विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने नहीं आना पड़ता है बल्कि वह अपने स्थान पर रहकर ही शिक्षा ग्रहण कर सकता है।

बोर्ग होमवर्ग (1981) के अनुसार–"शिक्षा के सभी स्तरों पर अध्ययन के विभिन्न प्रकार जो शिक्षक के निरंतर तत्कालीन निरीक्षण में नहीं हैं, उन्हें दूरवर्ती शिक्षा कहते हैं।" दूरवर्ती शिक्षा एक ऐसा अधिगम अवसर है जिसमें शिक्षार्थी और शिक्षा प्रदान करने वाली संख्या के मध्य की भौतिक दूरी को एक कृत्रिम निर्देशक के द्वारा दूर कर दिया जाता है।

दूरवर्ती शिक्षा के अन्य नाम भी संचालित हैं–दूरवर्ती शिक्षा के नाम निम्नलिखित हैं–

(1) पत्राचार शिक्षा। (2) गृह अध्ययन। (3) बाह्य अध्ययन। (4) दूरस्थ शिक्षा। (5) परिसर से बाहर अध्ययन। (6) मुक्त अधिगम। (7) स्वतंत्र अध्ययन। (8) बहु–माध्यम शिक्षा।

दूरवर्ती शिक्षा के कार्य–दूरवर्ती शिक्षा के कार्य निम्नलिखित हैं–

(1) नौकरी में लगे व्यक्तियों के लिए आत्म–संतुष्टि तथा व्यावसायिक प्रगति हेतु। (2) स्वाध्याय की प्रवृत्ति के विकास हेतु। (3) ज्ञान के उन्नयन के लिए अतिरिक्त प्रशिक्षण।

2. मुक्त विद्यालय तथा मुक्त विश्वविद्यालय–1962 में **डॉ. एस. कोठारी** की अध्यक्षता में तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष के सहयोग से भारत में मुक्त विश्वविद्यालय की

संकल्पना प्रस्तुत की गई। इस संकल्पना को लिखित रूप में हैराल्ड विल्सन ने सन् 1963 में प्रस्तुत किया। अतः प्रथम **मुक्त विश्वविद्यालय** की स्थापना लंदन में हुई।

मुक्त विद्यालय व मुक्त विश्वविद्यालय की विशेषताएँ– मुक्त विद्यालय एवं मुक्त विश्वविद्यालय की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) इसमें आयु सीमा व शैक्षिक अर्हताओं का कोई बंधन नहीं होता है।

(2) ट्यूटर मार्क्ड असाइनमेंट (Tutor Marked Assignment; T.M.A.) के द्वारा अनवरत् मूल्यांकन की व्यवस्था।

(3) इसके साथ ही छात्रों की सहायता के लिए पर्सनल कॉन्टेक्ट प्रोग्राम (Personal Contact Programme; P.C.P.) आयोजित किये जाते हैं।

(4) भारत या इसके बाहर के क्षेत्रों के लिए भी इसके द्वार खुले हुए हैं।

(5) शिक्षण के तरीकों में विविधता व खुलापन होता है।

3. शैक्षिक रेडियो–भारत में रेडियो की सहायता से शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण कलकत्ता रेडियो केन्द्र द्वारा 1937 ई. में प्रारंभ हुआ। शैक्षिक प्रसारण तथा विचार–विनिमय का यह एक सशक्त साधन है तथा व्यापक रूप से शिक्षा के प्रति उचित वातावरण के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

शैक्षिक रेडियो के विकासात्मक पक्ष इस प्रकार हैं–

(1) प्रसारण नेटवर्क की स्थापना।

(2) विशिष्ट शैक्षिक कार्यक्रमों की तैयारी व निर्माण।

शैक्षिक कार्यक्रम–शैक्षिक रेडियो के कार्यक्रम निम्न हैं–

(1) विद्यालयी प्रसार। (2) विश्वविद्यालयी प्रसार। (3) कृषि एवं घरेलू प्रसारण। (4) प्रौढ़ शिक्षा एवं सामुदायिक विकास परियोजना। (5) भाषा अधिगम परियोजना।

4. शैक्षिक दूरदर्शन– यह संचार का एक सशक्त साधन है। यह अभिकरण शिक्षा को वास्तविक रूप में आजीवन शिक्षा से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहा है। यह जन–सामान्य को कानूनी शिक्षा, पर्यावरण की शिक्षा आदि की जानकारी देने में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

शैक्षिक दूरदर्शन की निर्माण प्रक्रिया निम्नवत् होती हैं–

(1) नियोजन। (2) निर्माण पूर्व की तैयारियाँ। (3) कार्यक्रम का वास्तविक निर्माण। (4) मूल्यांकन।

निरौपचारिक शिक्षा के लाभ– निरौपचारिक शिक्षा के पक्षधर निरौपचारिक शिक्षा के लाभों का उल्लेख इस प्रकार करते हैं–

(1) निरौपचारिक शिक्षा बढ़ती हुई जनसंख्या की शिक्षा संबंधी बढ़ती हुई माँग को सरलता के साथ पूरा कर सकती है।

(2) निरौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा के घुटनपूर्ण तथा बंधनयुक्त वातावरण से विद्यार्थी को मुक्ति दिलाती है।

(3) निरौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा पर बढ़ते हुए राजकीय व्यय तथा प्रति छात्र व्यय को कम करने में सहायक है।

(4) निरौपचारिक शिक्षा का निश्चित उद्देश्य होता है।

(5) निरौपचारिक शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा के समान मापन के अयोग्य नहीं है। इसका मापन किया जा सकता है।

(6) निरौपचारिक शिक्षा में परीक्षा की व्यवस्था के कारण शिक्षार्थी शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरणा प्राप्त करते रहते हैं।

(7) निरौपचारिक शिक्षा में भी एक निश्चित पाठ्यक्रम होता है। इस कारण छात्र व्यवहारों में वांछित परिवर्तन लाने में समर्थ रहता है।

(8) निरौपचारिक शिक्षा का स्वरूप अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित होता है।

(9) इस शिक्षा में आयु, स्थान, जाति, लिंग, धर्म, योग्यताएँ आदि का बंधन न होने से शिक्षा ग्रहण करने में सुविधा रहती हैं।

(10) इससे उन दुरूह, निर्गम तथा जटिल स्थानों में रहने वाले भी सरलता से शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, जहाँ अनेक कारणों से औपचारिक शिक्षा ग्रहण करना संभव नहीं होता है।

प्रश्न 49. औपचारिक, अनौपचारिक एवं औपचारिकेत्तर (निरौपचारिक) शिक्षा में अंतर स्पष्ट कीजिए। **(उज्जैन 2019; इंदौर 22; भोपाल 22)**

उत्तर—औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरौपचारिक शिक्षा में अंतर—

क्र.	आधार	औपचारिक शिक्षा	अनौपचारिक शिक्षा	निरौपचारिक शिक्षा
1.	**उद्देश्य**	बौद्धिक विकास	सर्वांगीण विकास	व्यावहारिक एवं बौद्धिक पक्ष का विकास
2.	**अभिकरण**	समस्त शैक्षिक संस्थाएँ	परिवार, समुदाय, धर्म, मीडिया, आकस्मिक वार्तालाप आदि।	सरकारी व गैर–सरकारी खुले विश्वविद्यालय
3.	**कार्यक्रम**	पूर्व निर्धारित निश्चित, अंशकालिक (वर्तमान समय में) व पूर्णकालिक	आकस्मिक, अनिश्चित	पूर्व निर्धारित, अंशकालिक
4.	**वातावरण**	कृत्रिम	स्वाभाविक व प्राकृतिक	कृत्रिम व स्वाभाविक
5.	**अनुशासन**	प्रायः कठोर एवं दम–	प्रायः लचीला	लचीला
6.	**अवधि**	नात्मक विद्यालय व महाविद्यालय में बालक जब तक पढ़ना चाहे	कोई अवधि नहीं	सुविधाजनक एवं आवश्यकतानुसार पाठ्य–क्रमानुसार
7.	**स्थान**	शैक्षिक संस्थाएँ	सम्पूर्ण विश्व/समाज	सुविधाजनक प्रायः निश्चित व कम स्थान
8.	**पाठ्यक्रम**	निर्धारित	अनिर्धारित	निर्धारित किंतु सुविधा–नुसार
9.	**शिक्षण विधियाँ**	अध्यापक का भाषण, वार्तालाप, प्रश्नोत्तर व अन्य कक्षोपयोगी विधियाँ	कोई निश्चित विधि नहीं	निर्धारित किंतु सुविधा–नुसार, पत्राचार, टी.वी. कैसेट्स आदि।
10.	**संगठन**	स्थायी संगठन द्वारा संस्था का संचालन किया जाता है।	इसके पीछे कोई संगठन नहीं होता।	स्थायी अथवा अस्थायी संगठनों द्वारा संचालन होता है।

11.	**प्रवेश**	प्रवेश बिंदु होता है।	कोई प्रवेश बिंदु नहीं होता है।	प्रवेश बिंदु लचीला होता है।
12.	**पाठ्य–पुस्तकें**	निश्चित पाठ्य–पुस्तकें होती हैं।	कोई पाठ्य–पुस्तक नहीं होती। शिक्षाप्रद पुस्तकें व समाचार पत्र–पत्रिकाएँ काएँ हो सकती हैं।	अधिकांशत: कोर्स में पाठ्य–पुस्तकें व संस्था की भिन्न–भिन्न पुस्तकें व पाठ्य–सामग्री होती है व किसी में नहीं भी।
13.	**प्रयास**	छात्रों द्वारा अधिक प्रयास व शिक्षक की भी प्रभावी भूमिका।	स्वाभाविक रूप से प्रयास किये जाते हैं।	कम प्रयास करने पड़ते हैं।
14.	**मानसिक स्थिति**	मानसिक तनाव बना रहता है।	कोई तनाव नहीं रहता।	बहुत कम तनाव की स्थिति रहती है।
15.	**समय–तालिका**	पूर्ण रूप से निश्चित	अनिश्चित	निश्चित व अनिश्चित दोनों।
16.	**मूल्यांकन**	लिखित, मौखिक तथा प्रयोगात्मक	कोई परीक्षा नहीं	सुविधानुसार परीक्षा की व्यवस्था व पाठ्य क्रमानुसार परीक्षा की व्यवस्था।
17.	**व्यय**	व्यय का प्रमुख स्थान हैं।	कोई तय नहीं	अपेक्षाकृत कम व्यय।
18.	**प्रमाण–पत्र**	प्रमाण–पत्र व उपाधि प्रदान की जाती है।	कोई उपाधि या प्रमाण–पत्र नहीं।	प्रमाण–पत्र व उपाधि कुछ परीक्षा में प्राप्त होते हैं व कुछ में नहीं।
19.	**अन्तर्क्रिया**	छात्र–छात्र व अध्यापक –छात्र के मध्य होती है।	स्थिति पर निर्भर करती है।	बहुत कम अन्तर्क्रिया होती है।
20.	**सामाजि–कता**	सामाजिकता रहती है।	समाज में ही क्रिया होती है।	सामाजिकता बहुत कम होती है।
21.	**नियोजन**	इसमें नियोजन का बहुत महत्व है। इसके बिना शिक्षा व्यवस्था सुचारू रूप से संभव नहीं हो सकती और न ही उसके उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है।	नियोजन की आवश्य–कता नहीं होती।	नियोजन का अपेक्षाकृत कम महत्व है।

प्रश्न 50. शिक्षा के अभिकरण के रूप में परिवार की भूमिका का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
(इंदौर 2019)

***अथवा*, परिवार के शैक्षिक प्रभाव पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।**

***अथवा*, परिवार को शिक्षा का प्रभावी अभिकरण बनाने के लिए किन उपायों को प्रयोग में लाया जाना चाहिए ?**
(छिंदवाड़ा 2022)

उत्तर– परिवार बच्चे की सबसे पहली शिक्षा संस्था है और माँ उसकी सबसे पहली शिक्षिका। बच्चे के जन्म के कुछ दिन बाद ही उसके माता–पिता एवं परिवार के अन्य सदस्य उसे सुनना और बोलना सिखाने लगते हैं। जब वह कुछ बड़ा होता है तो वे उसे उठने–बैठने, चलने–फिरने, खाने–पीने तथा सामाजिक आचरण की विधियाँ सिखाते हैं। परिवार में बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक, चारित्रिक एवं नैतिक और धार्मिक एवं आध्यात्मिक सभी प्रकार के विकास की शुरुआत हो जाती है। बच्चों के व्यक्तित्व के निर्माण में सर्वाधिक भूमिका परिवारों की रहती है। परिवार की सबसे बड़ी विशेषता है–प्रेम, सहानुभूति और सहयोगपूर्ण पर्यावरण। इस पर्यावरण में बच्चों का स्वाभाविक विकास होता है।

फ्रोबेल भी बच्चों की शिक्षा में परिवार के महत्व को स्वीकार करते थे। उनके शब्दों में, माताएँ आदर्श शिक्षिकाएँ होती हैं और परिवारों में दी जाने वाली अनौपचारिक शिक्षा बहुत प्रभावशाली और स्वाभाविक होती है।

औपचारिकेत्तर अभिकरणों में परिवार का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जब विद्यालय स्थापित नहीं हुए थे उस समय बालक की शिक्षा का भार माता–पिता पर था। माता–पिता परिवार की धुरी है। उन्हीं के इर्द–गिर्द सम्पूर्ण परिवार संगठित रहता है। प्रेम, स्नेह और सौहार्द्र परिवार का आधार है।

बालक की शिक्षा में परिवार का महत्व– लॉरी ने लिखा है कि, "शैक्षिक इतिहास के सभी स्तरों पर परिवार बालक की शिक्षा का प्रमुख साधन है।"

परिवार बालक की शिक्षा में निम्नलिखित प्रकार से सहयोग प्रदान करता हैं–

1. घर या परिवार प्रथम स्थान है, जहाँ बालक बहुत–सी बातें सीखता है।
2. परिवार ही बालक को प्रेम, स्नेह तथा सहानुभूति की शिक्षा देता है।
3. परिवार ही बालक को सहयोग की शिक्षा प्रदान करता है।
4. परिवार ही बालक को नैतिक तथा सामाजिक रूप से प्रशिक्षित करता है।
5. बालक को कर्त्तव्य पालन की शिक्षा परिवार ही प्रदान करता है।
6. बालक दूसरों से अनुकूलन करने का पहला पाठ घर में ही सीखता है।
7. बालक परिवार के समाजिक जीवन से जो अनुभव प्राप्त करता है वही भविष्य में उसके सामाजिक व्यवहार का आधार होता है।
8. घर का प्रभाव बालक में कुछ मूल्यों और आदतों का विकास करता है।
9. बालक में अच्छी व बुरी आदतें घर से ही आती हैं।
10. परिवार में बालक के पसंद और रुचियों का विकास होता है।
11. घर का वातावरण बालक में मानसिक और भावात्मक प्रवृत्ति का निर्माण करता है।
12. बालक की वैयक्तिकता का विकास घर में होता है। उसके प्रति उसकी माँ का दृष्टिकोण पूर्ण रूप से व्यक्तिगत होता है।
13. बालक को परिवार में विभिन्न प्रकार की व्यावहारिक शिक्षा मिलती है।

परिवारों की वर्तमान स्थिति– परिवार बालक का सबसे पहला विद्यालय है, अतः इसके महत्व को कम नहीं किया जा सकता। परिवारों में बच्चों की स्वाभाविक एवं प्रभावशाली शिक्षा तभी संभव है जब उनके सदस्यों के बीच प्रेम, सहानुभूति और सहयोग हो, वे साक्षर एवं शिक्षित हों, सभ्य, सुसंस्कृत एवं चरित्रवान हों। उनका अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरूक होना तो मूलभूत आवश्यकता है।

आज हमारे देश में परिवारों की दशा में भारी परिवर्तन हो रहा है। उनके सदस्यों के बीच वह प्रेम, सहानुभूति और सहयोग नहीं है जो एक परिवार में होना चाहिए। तब इनमें बच्चों की स्वाभाविक शिक्षा स्वाभाविक ढंग से कैसे चल सकती है ?

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में साक्षरता प्रतिशत बढ़ा है परंतु अभी भी अधिकतर परिवारों के अधिकतर सदस्य अशिक्षित हैं। बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक, व्यावसायिक और आध्यात्मिक विकास आदि की शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति में भी इन परिवारों का वह योगदान नहीं है जिसकी इनसे अपेक्षा की जाती है। कुछ परिवार आर्थिक दृष्टि से इतने पिछड़े हुए हैं कि वे अपने बच्चों को विद्यालयी शिक्षा भी सुलभ नहीं करा पाते हैं।

परंतु ऐसी बात नहीं है कि देश के सभी परिवार ऐसे हैं। कुछ परिवार ऐसे भी हैं जो अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति बहुत जागरूक हैं। उनका स्वयं का पर्यावरण बच्चों की स्वाभाविक शिक्षा के अनुकूल हैं वे अपने बच्चों को अच्छी से अच्छी विद्यालयी शिक्षा भी सुलभ करते हैं और विद्यालयों के कार्यों में सहयोग भी करते हैं।

सुधार के लिए सुझाव (उपाय)– परिवार का मूलभूत लक्षण है–उसके सदस्यों के बीच प्रेम, सहानुभूति और सहयोग की भावना। यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता होती है। ईर्ष्या और द्वेष के इस युग में भी परिवार के सदस्यों के बीच यह भावना किसी–न–किसी सीमा में पायी जाती है, इसके अभाव में परिवार की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आज यह केवल पति–पत्नी और उनकी संतान के बीच ही देखने को मिलती है, जबकि हमारे देश में आज भी संयुक्त परिवार अधिक है।

परिवार बच्चे की पहली पाठशाला होती है और उसके माता–पिता और परिवार के अन्य बड़े सदस्य उसके पहले शिक्षक होते हैं। तब परिवार के इन सदस्यों का साक्षर एवं शिक्षित होना पहली आवश्यकता है। इनमें भी माँ का शिक्षित होना सबसे अधिक आवश्यक होता है, क्योंकि बच्चे पर सबसे अधिक प्रभाव उसकी माँ का ही पड़ता है। माँ के शिक्षित होने का अर्थ है, सब बच्चों की शिक्षा की गारंटी। यह कार्य जन, शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा और स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था द्वारा ही किया जा सकता है। सरकार को प्रयत्न करना चाहिए।

परिवार में बच्चे प्रायः अनुकरण द्वारा सीखते हैं, वे अपने बड़ों को अपना आदर्श मानते हैं और जैसा वे आचरण करते हैं वैसा ही वे करते हैं। अतः यदि माता–पिता अपने बच्चों में प्रारंभ से ही अच्छी आदतों का निर्माण करना चाहते हैं, उनमें उचित संस्कार डालना चाहते हैं तो उन्हें परिवार में यथा आदर्श प्रस्तुत करने होंगे।

बच्चों के चरित्र निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि परिवार के सदस्य चरित्रवान हों। यदि आप अपने बच्चों को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाना चाहते हैं तो पहले आप सभ्य एवं सुसंस्कृत बनिए। बच्चों के आध्यात्मिक विकास के लिए परिवार का पर्यावरण धार्मिक होना चाहिए।

जब तक परिवारों की आर्थिक दशा नहीं सुधरती तब तक उनमें किसी प्रकार का सुधार संभव नहीं है। अतः सरकार को एक परिवार में एक सदस्य को रोजगार देने की गारण्टी करनी चाहिए। तभी हमारे देश के सभी परिवार समृद्ध एवं सुखी हो सकते हैं, तभी वे अपने बच्चों को विद्यालयी शिक्षा सुलभ करा सकते हैं।

यदि और बारीकी से देखा जाए तो इस समस्या का हल औपचारिक शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है। शिक्षा और समाज एक–दूसरे पर निर्भर करते हैं। अतः राज्य को विकास की आधारशिला शिक्षा पर और अधिक धन व्यय करना चाहिए और कम–से–कम प्रथम 10 वर्ष की शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क करनी चाहिए।

प्रश्न 51. जनसंचार माध्यम का क्या अभिप्राय है ? जनसंचार माध्यम की आवश्यकता एवं महत्व को प्रतिपादित करते हुए शिक्षा के अभिकरण के रूप में जनसंचार माध्यम की भूमिका की विवेचना कीजिए।

***अथवा*, जनसंचार के विभिन्न प्रकार क्या–क्या हैं ? एक राष्ट्र के शैक्षिक विकास में जनसंचार के योगदान की विवेचना कीजिए।**

उत्तर– प्रत्येक समाज, राज्य अथवा राष्ट्र के अपने कुछ विश्वास, आदर्श और मूल्य होते है, कुछ लक्ष्य और लक्ष्य प्राप्ति की योजनाएँ होती हैं। वह इन सबको जन–जन तक पहँचाने का प्रयत्न करता है। वे साधन जिनके माध्यम से कोई समाज यह कार्य करता है उन्हें जनसंचार के साधन कहते हैं; **जैसे**–समाचार, पत्र–पत्रिकाएँ, रेडियो और टेलीविजन। इन्हीं साधनों के माध्यम से जन–चेतना जाग्रत की जाती है और जनमत तैयार किया जाता है। आज तो ये विज्ञापन के भी मुख्य साधन बन गए हैं। शैक्षिक दृष्टि से भी इनका बड़ा महत्व है। इन साधनों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनके माध्यम से बहुत कम समय में एक साथ बहुत अधिक लोगों को प्रभावित किया जा सकता है।

जनसंचार साधनों के प्रकार एवं उनका योगदान–जनसंचार साधनों के शैक्षिक उपयोग में निम्नलिखित साधनों का उपयोग किया जाता हैं–

1. यंत्रीकृत साधन– इंजीनियरिंग सिद्धांत के प्रयोग की ओर संकेत करता है। इसके अन्तर्गत स्लाइड प्रोजेक्ट, टेप रिकॉर्डर, गति–चित्र, कम्प्यूटर्स, टी.वी. या क्लोज्ड सर्किट टेलीविजन, फिल्म, प्रोजेक्टर्स आदि शिक्षण सहायक सामग्री शामिल रहती है। इन सामग्रियों का प्रयोग किसी भी प्रकार के शिक्षण में सीखने की प्रक्रिया की तकनीकी को लागू नहीं करता अर्थात् यह शिक्षण में सीखने के सिद्धांत पर निर्भर नहीं होता।

2. यंत्रोतर साधन– दूसरी तरफ शैक्षिक तकनीकी का यंत्रोतर तथ्य सीखने के सिद्धांत के प्रयोग (जिसका आधार मनोविज्ञान है) पर आधारित होता है। इसके अन्तर्गत सामाचार–पत्र, पुस्तकें, मैग्जीन, शैक्षिक खेल, फ्लैशकार्ड्स एवं चित्र आदि शिक्षण सहायक सामग्री सम्मिलित रहती हैं। "सॉफ्टवेयर" तरीका सीखने की प्रक्रिया की वैज्ञानिक विधियों, जैसे लक्ष्यों के समीप पहुँचना प्रति उत्तेजना सिद्धांत, अनुचित व्यवहार को दूर करना आदि के नियंत्रण एवं निर्धारण पर आधारित हैं। 'सॉफ्टवेयर विधि' वास्तव में "अभिक्रमित अधिगम" तथा सीखना केन्द्र निर्देश–विधि से संबंधित है।

इसी प्रकार सॉफ्टवेयर प्रक्रिया के अन्तर्गत सामग्री का प्रयोग सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर प्रक्रिया का उद्देश्य है, कम शिक्षण और अधिक सीखना। यही आज के शैक्षिक जगत् की उपलब्धि है, यही शिक्षा की वास्तविकता है। इससे शिक्षण सिद्धांत और प्रयोग के मध्य जो खाई रहती है, वह भी समाप्त हो जाती है। आज शिक्षा जगत में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान को एक–दूसरे तक पहुँचाना मात्र ही होता है। शैक्षिक तकनीकी के इन माध्यमों के द्वारा बालक को इस योग्य बनाया जाता है कि वह ज्ञान को धारण करे, समझे तथा संचित करे।

इस प्रकार 'हार्डवेयर' तथा 'सॉफ्टवेयर' दोनों घटक एक–दूसरे से सह–संबंधित हैं। शैक्षिक तकनीकी इस संपूर्ण घटक का एक नया भाग है। इस प्रकार हम शैक्षिक तकनीकी के जन–संचार माध्यमों का प्रयोग शिक्षा जगत में करके शिक्षा के अंतिम लक्ष्य, सर्वांगीण विकास तथा व्यावहारिक ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं।

आजकल देश में हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर का उपयोग उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। सॉफ्टवेयर के अन्तर्गत बालकों के शैक्षिक व्यवहार का परिमार्जन करके वांछनीय परिवर्तन लाये जाते हैं। ये सिद्धांत मनोविज्ञान एवं उसके अधिगम शिक्षण संबंधी नियमों का अनुसरण करते हैं।

हार्डवेयर उपागमों के अन्तर्गत दूरदर्शन, वी.सी.आर., टेप रिकॉर्डर, फिल्म प्रोजेक्टर, ओवरहैड प्रोजेक्ट आदि वैज्ञानिक एवं प्रक्षेपी यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। शिक्षण अनुदेशन की इस व्यवस्था को कम्प्यूटर के प्रयोगों द्वारा पूर्णरूपेण परिवर्तित कर दिया गया है। कम्प्यूटर राज्य स्तर की मॉडल इंस्टीट्यूशन तथा नवोदय विद्यालय, पब्लिक विद्यालयों की कक्षाओं में छा गये हैं।

यद्यपि ये साधन अत्यधिक महँगे, वैज्ञानिक रूप से क्लिष्ट तथा उपयोग के लिए कठिन कौशलों की अपेक्षा करते हैं, किन्तु राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के अन्तर्गत अध्यापकों के प्रशिक्षण हार्डवेयर अनुदानों आदि की व्यवस्था कर इन्हें बहुत अधिक महत्व प्रदान किया जा रहा है।

प्रश्न 52. सामाजिक व्यवस्था का अर्थ एवं परिभाषाएँ लिखिए।

उत्तर–सामाजिक व्यवस्था– प्रत्येक क्रिया किसी–न–किसी नियम के अनुसार चलती है। यह नियम (व्यवस्था) क्रिया को सुचारू रूप से चलाती है। ऐसी ही स्थिति वस्तुतः हमारे समाज की भी होती है। समाज के समस्त क्रियाकलापों को नियंत्रित करने के लिए बनाई गई व्यवस्था को **सामाजिक व्यवस्था** कहा जाता है।

प्रत्येक समाज के अपने कुछ–न–कुछ रीति–रिवाज होते ही हैं। इन विभिन्न रीति–रिवाजों का संबंध मानव के सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं से होता है; **जैसे**–भोजन, वस्त्र, त्यौहार, व्यवहार एवं विवाह आदि। इन्हीं से मानव व्यवहार निर्देशित होता है। प्रत्येक समाज की इन्हीं रीति–रिवाजों के समाज जो सर्वमान्य कार्य–प्रणालियाँ होती हैं उन्हें ही सामाजिक व्यवस्था के नाम से जाना जाता है।

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार– "समाज रीति–रिवाज, कार्य प्रणालियों, पारस्परिक सहयोगों, नियंत्रण एवं स्वाधीनता आदि की व्यवस्था है।"

जोन्स के अनुसार–"सामाजिक व्यवस्था वह पद्धति है जिससे कि समाज के विविध भाग एक–दूसरे के साथ एवं सम्पूर्ण समाज के साथ सार्थक ढंग से संबद्ध रहते हैं।"

पारसंस के अनुसार– "सामाजिक व्यवस्था सामाजिक क्रियाओं के भीतरी संबंधों में बनती है। समाज की ये अन्तःक्रियाएँ सामाजिक व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण इकाई होती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि हर समाज में दो प्रकार की शक्तियाँ क्रियाशील रहती हैं–

1. संगठनात्मक शक्तियाँ एवं 2. विघटनात्मक शक्तियाँ।

जहाँ एक ओर संगठनात्मक शक्तियाँ समाज को एकसूत्र में बाँधती हैं एवं समाज की स्थिरता में वृद्धि करती हैं, वहीं दूसरी ओर विघटनात्मक शक्तियाँ समाज की एकता एवं स्थिरता को छिन्न–भिन्न अर्थात् विघटित करती हैं परंतु ऐसा कोई भी समाज नहीं है, जहाँ पर मात्र एक ही प्रकार की शक्ति कार्य करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक समाज में दोनों प्रकार की ही शक्तियाँ कार्य करती है एवं इन दोनों के मध्य संतुलन बना रहता है। इस संतुलन की स्थिति को ही सामाजिक व्यवस्था की संज्ञा दी जाती है।

सामाजिक व्यवस्था की विशेषताएँ–सामाजिक व्यवस्था की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. आदर्श लक्ष्यों का समावेश– उन्हीं अन्तर्क्रियाओं से सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है जो समाज के द्वारा स्वीकृत कुछ आदर्श लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए की जाती है। इसके फलस्वरूप समाज में जिस आदर्श संतुलन का निर्माण होता है, उसे ही सामाजिक व्यवस्था कहते हैं।

2. एकता का होना–जिस प्रकार एक मशीन के समस्त पुर्जे मिलकर किसी मशीन को चलाते हैं एवं वस्तु का उत्पादन करते हैं, ठीक उसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न घटक अपने

उद्देश्य तक पहुँचाने में सहायता करते हैं। अतः यह कह सकते हैं कि समाज के विभिन्न घटक मिलकर ही सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करते हैं। अतः व्यवस्था में एकता स्थापित होना आवश्यक है।

3. अन्तर्क्रियाओं की व्यवस्था—सामाजिक व्यवस्था का कोई भौतिक स्वरूप नहीं होता। इसका कारण बहुत से कर्त्तव्यों की अन्तर्क्रियाओं से होने के कारण सामाजिक व्यवस्था अमूर्त होती है।

4. सांस्कृतिक नियंत्रण— सामाजिक व्यवस्था में अनेक सांस्कृतिक नियंत्रणों का समावेश होता है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था अपने सदस्यों को अनेक सांस्कृतिक मानदंडों, मूल्यों एवं प्रतीकों के अनुसार अन्तर्क्रियाएँ करने को बाध्य करती है या प्रोत्साहित करती है। सामाजिक व्यवस्था का यह संस्थात्मक पक्ष होता है।

5. परिवर्तनशीलता—कोई भी व्यवस्था सदैव एक–सी स्थिति में नहीं रह सकती, उसमें परिवर्तनशीलता एवं गतिशीलता का गुण होना आवश्यक है। इसी परिवर्तनशीलता के कारण व्यवस्था की उपयोगिता सदैव बनी रहती है। बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित होकर सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन होता है।

6. सामाजिक एकीकरण—सामाजिक व्यवस्था का सर्वप्रमुख उद्देश्य व्यक्तियों को उनकी योग्यता एवं कुशलता के आधार पर अनेक श्रेणियों में बाँटकर प्रस्थिति एवं भूमिका का निर्धारण करना होता है। इसी से पारस्परिक सहयोग एवं एकीकरण में वृद्धि होती है। वास्तव में, सामाजिक एकीकरण सामाजिक व्यवस्था का मापदंड है। किसी समाज की सामाजिक व्यवस्था जितनी अधिक प्रभावशाली होती है, वहाँ सामाजिक एकीकरण की मात्रा भी उतनी ही अधिक होती है।

7. क्रमबद्धता—जिस प्रकार मात्र सीमेन्ट, मिट्टी अथवा ईंटों को ही भवन की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। भवन निर्माण के लिए इन वस्तुओं के मध्य आपसी सहयोग एवं एक क्रम भी अवश्य होना चाहिए उसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था के लिए भी क्रमबद्धता अवश्य होनी चाहिए।

8. सामाजिक परिस्थिति— प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था एक–दूसरे से किसी–न–किसी प्रकार से भिन्न होता है क्योंकि प्रत्येक समाज की सामाजिक परिस्थितियाँ या सामाजिक पर्यावरण एक-दूसरे से भिन्न होता है। व्यक्तियों की अन्तःक्रियाएँ अपने सामाजिक पर्यावरण से ही प्रभावित होती है, अतः किसी भी सामाजिक व्यवस्था को दूसरी व्यवस्था के बिलकुल समान नहीं पाया जा सकता है।

विद्यालय–सामाजिक व्यवस्था के रूप में—सामाजिक व्यवस्था के विषय में जान लेने के पश्चात् यह समस्या हमारे सामने उत्पन्न होती है कि सामाजिक व्यवस्था में विद्यालय में क्या स्थिति है ? या एक विद्यालय किस प्रकार से सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में सहायक है ? जैसा कि यह सर्वविदित है कि विद्यालय का उद्भव ही समाज की कल्याणकारी क्रियाओं को पूर्ण करने के लिए हुआ है। समाज के समस्त आदर्श, मान्यताएँ, परम्पराएँ, संरचनाएँ लघु रूप में विद्यालय में विद्यमान रहते हैं। अतएव विद्यालय स्वयं में एक समाज है। इस संदर्भ में **ड्यूवी** कहते हैं कि, "विद्यालय स्वयं में एक लघु समाज है एवं इसमें वे समस्त क्रियाएँ लघु रूप में होती हैं जो समाज में बड़े रूप में होती हैं।"

सामाजिक व्यवस्था हेतु विद्यालय के कार्य—समाज के पारस्परिक संबंधों को विद्यालय बढ़ावा देता है। साथ ही सामाजिक व्यवस्था के स्थायीकरण के लिए निम्नलिखित कार्य करता हैं—

1. बालक का सामाजीकरण—सामाजिक व्यवस्था के संरचनात्मक पक्ष के रूप में विद्यालय बालक का शारीरिक, बौद्धिक तथा नैतिक विकास करता है। इसके साथ–ही–साथ वह (विद्यालय) बालक के सामाजीकरण में भी सहायक होता है। सामाजीकरण के द्वारा बालक को सामाजीकरण

व्यवस्था के अस्तित्व का ज्ञान होता है, जिसके कारण वह समाज की भलाई के लिए एवं सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने हेतु समाज हित के कार्य करते हैं।

2. सामुदायिक भावना का विकास–बालकों में सामुदायिक भावना का विकास सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने से ही होता है एवं बालक को सामाजिक संदर्भ में समाज के रीति–रिवाज, भाषा, मान्यताएँ, सामाजिक अभिवृत्तियाँ, आदर्श, नैतिक मूल्य आदि का ज्ञान प्राप्त होता है एवं यही ज्ञान सामाजिक व्यवस्था के स्पष्टीकरण में सहायक होता है।

3. शिक्षा संबंधी विचारधाराएँ–सामुदायिक विकास में शिक्षा एवं विद्यालय दोनों ही सहायता करते हैं। इन दोनों की संरचना में भी बहुत समानता व्याप्त हैं। शिक्षा की व्यवस्था समुदाय की प्रकृति, रूढ़ि एवं विश्वास के अनुसार ही होती है।

4. सामुदायिक पृष्ठभूमि–बालक की विभिन्न आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं का अध्ययन विद्यालय में किया जाता है। साथ–ही–साथ बालक की भावनात्मक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि समाज एवं समुदाय की सम्पूर्ण व्यवस्था के लिए विद्यालय पृष्ठभूमि तैयार करता है।

5. लोचशीलता–विद्यालय समुदाय एवं सामाजिक व्यवस्था के मध्य लोचपूर्ण पारस्परिक संबंध होने चाहिए। लोचशीलता समायोजन की क्षमता में वृद्धि करती है।

6. सभ्यता एवं संस्कृति का पोषण तथा संरक्षण–समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का पोषण तथा संरक्षण में विद्यालय सहायक होता है। यदि विद्यालय के द्वारा इनका संरक्षण नहीं किया जाता है तो समाज की प्रगति बाधित हो (रुक) जाती है एवं सामाजिक व्यवस्था का संतुलन बिगड़ जाता है। इस प्रकार सभ्यता एवं संस्कृति के संरक्षण द्वारा विद्यालय सामाजिक व्यवस्था के स्थायीकरण में सहायक होता है।

7. विद्यालय के कार्यक्रम–सामाजिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय द्वारा कुछ इस प्रकार के कार्यक्रम चलाए जाएँ जिससे समुदाय को वांछित अनुभव एवं विकास प्राप्त हो। इस प्रकार के कार्यक्रम बनाए जाने चाहिए ताकि समाज के सभी वर्ग एवं अवस्था के लोग इसके द्वारा शिक्षा प्राप्त कर सकें। ऐसा होने पर सम्पूर्ण समुदाय के लोग विद्यालय के प्रति सद्भाव रखेंगे एवं सभी विद्यालय एवं समाज में संबंध स्थापित हो सकेगा।

प्रश्न 53. माध्यमिक विद्यालय में 'पालक शिक्षक संघ' की उपयोगिता पर आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। **(छतरपुर 2021)**

उत्तर–शिक्षा का प्रभावशाली साधन बनाने के लिए विद्यालय को घर से सहयोग करना चाहिए। माता–पिता को अपने बच्चों की आदतों, रुचियों, गुणों और अवगुणों को शिक्षकों को बताकर सहयोग देना चाहिए। इन बातों को जानकर शिक्षक अच्छी प्रकार से छात्रों का पथ–प्रदर्शन कर सकते हैं। दूसरी ओर, माता–पिता भी अपने बच्चों के बारे में शिक्षकों के विचारों से लाभ उठा सकते हैं।

कोई भी विद्यालय अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह तब तक नहीं कर सकता जब तक उसे अपने छात्रों के परिवारों अर्थात् अभिभावकों का सहयोग प्राप्त नहीं होता। परिवार बच्चों को विद्यालयों में प्रवेश कराते हैं। उनके लिए पुस्तक–पुस्तिकाओं आदि की व्यवस्था करते हैं पर इतने भर से उनका शैक्षिक उत्तरदायित्व पूरा नहीं हो जाता। उन्हें यह भी देखना होगा कि बच्चों को विद्यालय में जो कुछ सिखाया जाता है, उसकी आवृत्ति एवं अभ्यास के लिए परिवारों में पूरा–पूरा अवसर मिले। यह भी आवश्यक है कि वे अपने बच्चों को स्वाध्याय और गृह कार्य पूरा करने के लिए सुविधा प्रदान करें।

शिक्षकों और अभिभावकों में निकट सम्पर्क स्थापित करने के लिए पालक–शिक्षक संघ स्थापित किया जाना चाहिए ताकि अभिभावकों और शिक्षकों को एक–दूसरे के सम्पर्क में लाया जा सके। इस संघ की बैठके सत्रारम्भ और सत्रान्त के समय अवश्य होनी चाहिए। इन बैठकों में शिक्षक एवं अभिभावक एक–दूसरे की समस्याएँ समझ सकते हैं। अपने–अपने शैक्षिक उत्तरदायित्वों के प्रति सजग हो सकते हैं। इन बैठकों में प्रधानाचार्यों को चाहिए कि वे अभिभावकों को विद्यालयों की योजनाओं से अवगत कराएँ।

यह देखा गया है कि अधिकतर अभिभावक अपने बच्चों की प्रगति रिपोर्ट देखते ही नहीं। इस कारण उन्हें बच्चों की समस्याएँ ज्ञात करने का अवसर नहीं मिलता। विद्यालयों को प्रत्येक छात्र की प्रगति का लेखा–जोखा तैयार करना चाहिए और उनकी इस प्रगति रिपोर्ट को उनके अभिभावकों के पास अवलोकन हेतु भेजनी चाहिए।

पालक शिक्षक संघ के द्वारा अभिभावकों और शिक्षकों में बच्चों की शिक्षा के बारे में विचार-विमर्श, नई शिक्षण विधियों की व्याख्या या प्रदर्शन। शिक्षा में नई प्रवृत्तियों पर भाषण आदि आयोजित किए जा सकते हैं। इन सब बातों से अभिभावकों के ज्ञान में वृद्धि होगी और वे शिक्षकों को महत्वपूर्ण सहयोग दे सकेंगे।

प्रश्न 54. सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को लिखिए। **(उज्जैन 2021)**

उत्तर– सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति तथा प्रक्रिया की गति सदा एक जैसी नहीं होती। कभी–कभी समाज में क्रांतिकारी महापुरुष पैदा होते हैं जो समाज में क्रांति उत्पन्न कर देते हैं। संसार में धार्मिक क्षेत्र में अनेक महापुरुष हुए है जिन्होंने समाज के विभिन्न पक्षों पर अपना प्रभाव डाला। यूरोप के मध्य युग में पुनर्जागरण **मार्टिन लूथर** के कारण हुआ था। भारत में उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी शासन के कारण और राजा राममोहन राय के ब्रह्म समाज तथा स्वामी दयानंद सरस्वती के आर्य समाज के कारण सामाजिक क्रांति हुई थी। अठारहवीं शताब्दी में पहले इंग्लैण्ड में और बाद में यूरोप में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप सामाजिक परिवर्तन हुए। वर्तमान शताब्दी में वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण सामाजिक परिवर्तन बड़ी तीव्र गति से हो रहे हैं। इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। शिक्षा में परिवर्तन भी सामाजिक रूप का परिवर्तन है।

प्रश्न 55. व्यक्ति संस्कृत कैसे होता है ? संक्षिप्त चर्चा कीजिए। **(उज्जैन 2021)**

उत्तर–बाल्यकाल से ही व्यक्ति में संस्कृत होने की क्रिया प्रारंभ हो जाती है। संस्कृत होने की तीन दशाएँ हैं–

1. अनुकरण की दशा–बालक अपने वातावरण में बड़े व्यक्तियों के जैसा व्यवहार देखता है वैसा ही अनुकरण करने का प्रयास करता है। इस प्रकार परिवार और समाज में रहकर वह हँसता है, बोलता है एवं समाजानुकूल कार्य करता है।

2. कल्पना की दशा–पहले बालक व्यक्तिगत खेल खेलता है परंतु जब वह बड़ा हो जाता है तो सामूहिक खेलों में डॉक्टर, वकील, चोर, न्यायाधीश, अध्यापक आदि बनकर कल्पनात्मक खेल खेलने लगता है और सामाजिक व्यवहार सीख लेता है।

3. अनुकूलन की दशा–बड़ा होकर बालक ऐसे व्यवहार करने लगता है तथा खेल खेलने लगता है जिनसे उसे सामाजिक आदर्शों के अनुरूप ढलना पड़े। उसकी यह संयम की दशा उसे अनुकूलन का पाठ पढ़ाती है और बालक संस्कृत हो जाता है।

प्रश्न 56. शिक्षा किस प्रकार सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करने में सहायक है ?

(इंदौर 2023)

***अथवा*, संस्कृति की अवधारणा दीजिए तथा शिक्षा का संस्कृति पर मुख्य प्रभाव बताइए।**

(ग्वालियर 2022)

उत्तर–भारतीय विद्यालयी व्यवस्था एवं विद्यालयी पाठ्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय संस्कृति निर्माण होता है। इसमें विद्यालयी पाठ्यक्रम में उन विषयों को सम्मिलित किया जाता है, जो राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण करने में सहायता करते हैं, इसलिए विद्यालयी व्यवस्था में संस्कृति के उन तत्वों के विकास को महत्व प्रदान किया जाता है जो सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किए जाते हैं। जैसे– भारतीय राष्ट्रीय संस्कृति का मूल तत्व धर्म निरपेक्षता है, इसलिए विद्यालयी पाठ्यक्रम में किसी भी धर्म की बुराई नहीं की जाती तथा सरकारी विद्यालयों में किसी धर्म विशेष की शिक्षा नहीं दी जाती। इस प्रकार की व्यवस्था में एक ओर छात्रों में धर्म की संकीर्ण परिभाषा का समावेश नहीं होता वहीं दूसरी ओर विद्यालयी पाठ्यक्रम के माध्यम से राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण होता है। राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माणकारी तत्वों को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है जो शिक्षा एवं विद्यालयी पाठ्यक्रम से संबंधित है–

(1) परम्पराओं का समावेश (Inclusion of traditions)–विद्यालयी पाठ्यक्रम में उन परम्पराओं का समावेश किया जाता है जो स्वस्थ राष्ट्र एवं समाज के विकास में सहायक होती हैं तथा उन रूढ़ियों एवं परम्पराओं को दूर करने का प्रयास किया जाता है जो समाज के लिए घातक होती हैं, **जैसे**–भारतीय विद्यालयी पाठ्यक्रमों में दहेज प्रथा, जाति प्रथा एवं धार्मिक संकीर्णता को दूर करने के लिए अनेक प्रसंग सम्मिलित होते हैं जिससे कि भारतीय संस्कृति का निर्माण सम्भव होता है तथा सामाजिक विकास सम्भव होता है।

(2) लोकगीतों का समावेश (Inclusion of folk songs)–लोकगीतों का समावेश भी हिन्दी भाषा से सम्बन्धित पाठ्यक्रम में पाया जाता है। इन लोकगीतों का समावेश स्थानीय विशेषताओं के आधार पर पाया जाता है। जैसे–छत्तीसगढ़ के पाठ्यक्रम में छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का समावेश हो सकता है परन्तु अनेक गीत ऐसे होते हैं जो राष्ट्रीय स्तर पर गाए जाते हैं। जैसे–देशभक्ति गीत, समाज–सुधार सम्बन्धी गीत एवं स्वस्थ परम्पराओं सम्बन्धी गीत आदि। इन सभी में राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण सफलता मिलती है।

(3) सृजनात्मक कलाओं का समावेश (Inclusion of creative arts)–राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण में सृजनात्मक कलाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। सृजनात्मक कलाओं की दृष्टि से विद्यालयी पाठ्यक्रम में मूर्तिकला, काष्ठकला एवं चित्रकला आदि का समावेश किया जाता है। बालकों में मिट्टी के खिलौने बनाने की रूचि विकसित की जाती है। जिससे वह उन मूर्तियों एवं खिलौनों का निर्माण करते हैं, जो वह अपने घर परिवार में देखते हैं। इसमें एक ओर सृजनात्मकता का विकास होता है तथा दूसरी ओर वे राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण करने में सहायता करते हैं।

(4) लोकनाट्यों का समावेश (Inclusion of folk drama)–पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के माध्यम से विद्यालय में विभिन्न प्रकार के नाटकों का आयोजन होता है। इन नाटकों में विभिन्न प्रकार के राष्ट्रीय संस्कृति से जुड़े पक्षों का मंचन किया जाता है। जैसे–देश की सीमा की रक्षा करते समय सभी सिपाही अपने धर्म एवं जातिगत भेद को भुलाकर आतंकवादियों से मुकाबला करते हैं या समाज में गरीब एवं दलितों के प्रति सवर्णों एवं सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा सहृदयता का परिचय दिया जाता है।

(5) सामाजिक मूल्यों का समावेश (Inclusion of social values)—समाज एवं संस्कृति एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हैं। प्रत्येक सांस्कृतिक मूल्य का संबंध प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से समाज से होता है तथा सामाजिक मूल्य का संबंध संस्कृति से होता है। जैसे—मानवता एवं नैतिकता भारतीय संस्कृति एवं समाज का प्रमुख मूल्य है। इस प्रकार के मूल्यों के विकास हेतु विभिन्न प्रकार की पाठ्य–सामग्री का समावेश विद्यालयी पाठ्यक्रम में किया जाता है।

(6) जनतांत्रिक मूल्यों का समावेश (Inclusion of democratic values)—भारतीय राष्ट्रीय संस्कृति जनतांत्रिक मूल्यों पर आधारित है। भारत में किसी भी नागरिक के साथ जाति एवं धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता। इसलिए विद्यालयों में उन क्रियाओं को पाठ्यक्रम का अंग बनाया जाता है जो कि छात्रों में समानता, स्वतंत्रता एवं सामाजिक न्याय संबंधी मूल्यों का विकास करती है। इस प्रकार जनतांत्रिक मूल्यों का विकास राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण में सहायता करता है।

(7) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का समावेश (Inclusion of co-curricular activities)—वर्तमान समय में प्रत्येक विद्यालयी पाठ्यक्रम को उस अवस्था में ही पूर्ण माना जाता है जब उसमें पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का समावेश होता है। विभिन्न प्रकार की पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के माध्यम से छात्रों में राष्ट्रीय संस्कृति का विकास सम्भव होता है। प्रमुख पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का वर्णन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है जो राष्ट्रीय संस्कृति का विकास करती है—

(i) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के अन्तर्गत बाल सभा में संस्कृति एवं सभ्यता के ऊपर छात्रों को बोलने के अवसर मिलने चाहिए जिससे कि छात्रों द्वारा समय–समय पर राष्ट्रीय संस्कृति का ज्ञान हो तथा इसके निर्माण में वे उचित रूप से सहायता कर सकें।

(ii) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के माध्यम से छात्रों को विभिन्न प्रकार के लोकगीत गायन का अवसर प्राप्त होता है जिससे वे भारतीय संस्कृति के विभिन्न रूपों से परिचित होते हैं तथा निर्माण करते हैं।

(iii) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के माध्यम से छात्रों द्वारा विभिन्न प्रकार की चित्रकला के माध्यम से संस्कृति स्वरूप का वर्णन किया जाता है तथा संस्कृति निर्माण में योगदान दिया जाता है।

(iv) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के माध्यम से छात्रों में नृत्य कला का विकास किया जाता है। जिससे छात्र देश में प्रचलित विभिन्न प्रकार के नृत्यों से परिचित होता है तथा राष्ट्रीय संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करता है।

(v) पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के माध्यम से ही छात्रों में विभिन्न प्रकार के गुणों का विकास सम्भव होता है। परिणामस्वरूप छात्रों में राष्ट्र के प्रति समर्पण एवं प्रेम की भावना का विकास सम्भव होता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्यालयी पाठ्यक्रम के माध्यम से बालकों को राष्ट्रीय संस्कृति एवं सभ्यता के स्वरूप का ज्ञान होता है तथा वह किस प्रकार इसमें सहयोग कर सकते हैं ? इसकी प्रक्रिया भी विद्यालय में शैक्षिक एवं अशैक्षिक गतिविधियों के माध्यम से बनायी जाती है।

प्रश्न 57. जॉन ड्यूवी ने शिक्षक के स्थान को किस तरह स्पष्ट किया है ? (उज्जैन 2022)

उत्तर—मूलवादी शिक्षा योजना में शिक्षक को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। शिक्षक समाज का सेवक है। उसे विद्यालय में ऐसे वातावरण का निर्माण करना है, जिसमें रहकर बालक के सामाजिक व्यक्तित्व का विकास हो सके और वह जनतंत्र का योग्य नागरिक बन सके। ड्यूवी ने शिक्षक को

विशेष महत्व देते हुए उसे समाज में ईश्वर का प्रतिनिधि कहा है। शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में ड्यूवी ने महत्वपूर्ण विचार उपस्थित किये हैं। विद्यालय में शिक्षक को जिस प्रकार व्यवहार करना चाहिए। इस विषय में ड्यूवी ने शिक्षा मनोविज्ञान और जनतंत्रीय मूल्यों को निर्देशन माना है।

विद्यालय में स्वतंत्र और समानता के मूल्य को बनाए रखने के लिए शिक्षक को स्वयं को बालकों से बड़ा नहीं समझना चाहिए। उसे आज्ञाओं और उपदेशों के द्वारा अपने विचारों और प्रवृत्तियों को बालक पर लादने का प्रयास नहीं करना चाहिए। उसे बालकों का निरीक्षण करके उनकी रुचियों, योग्यताओं और गतिविधियों को समझकर उनके अनुरूप कार्यों में लगाना चाहिए। इस प्रकार विद्यालय में शिक्षा बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। इससे विद्यालय के संचालन में कठिनाई बहुत कम हो जाती है।

शिक्षक को चाहिए कि बालकों को ऐसी क्रियाओं में प्रवृत्त करे कि उनमें सोचने–विचारने की योग्यता विकसित हो।

कक्षा के अन्दर शिक्षण सम्बन्धित सभी निर्देश, प्रक्रिया, उत्प्रेरणा आदि का कार्य जो करता है वह अध्यापक ही है। इसमें शिक्षण को गतिशील एवं प्रभावी बनाने की प्रक्रिया पूर्ण होती है। अध्यापक के अभाव में शिक्षा में भावनात्मक सम्बन्ध (भावात्मक पक्ष) प्रबल नहीं बन पाते।

शिक्षक के कार्य–एक शिक्षक के निम्नलिखित कार्य होते हैं–

(1) शिक्षक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य बालक में रुचि उत्पन्न कर उसे अभिप्रेरणा/उत्प्रेरणा प्रदान करना।

(2) बालक के संवेगों को प्रशिक्षित करना।

(3) छात्र को क्रियाशील बनाने का अवसर देना।

(4) एक सूचनादाता के रूप में शिक्षक की भूमिका।

(5) शिक्षा एक त्रिभुजी प्रक्रिया है। बालक, शिक्षक तथा विषय इस क्रिया के केन्द्र बिन्दु हैं। शिक्षण के द्वारा इन तीनों के मध्य सम्बन्धों का स्थापन होता है और इस प्रक्रिया को शिक्षक महत्वपूर्ण रूप से निभाता है।

प्रश्न 58. समाजीकरण तथा सामाजिक नियंत्रण में क्या अंतर है ? स्पष्ट कीजिए।

(उज्जैन 2022)

उत्तर–समाजीकरण–समाजीकरण का अर्थ है किसी की संस्कृति को सीखने की प्रक्रिया और उसके भीतर कैसे रहना है।

सामाजिक नियंत्रण सिद्धांत–सामाजिक नियंत्रण सिद्धांत का प्रस्ताव है कि लोगों के रिश्ते, प्रतिबद्धताएँ, मूल्य, मानदण्ड और विश्वास उन्हें कानून न तोड़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से मनुष्य समाज के विभिन्न व्यवहार, रीति–रिवाज, गतिविधियाँ इत्यादि सीखता है। जैविक अस्तित्व से सामाजिक अस्तित्व में मनुष्य का रूपांतरण भी समाजीकरण के माध्यम से ही होता है। समाजीकरण के माध्यम से ही वह संस्कृति को आत्मसात करता है।

समाजीकरण व्यक्ति को सामाजिक रूप से क्रियाशील बनाता है। इसी के माध्यम से संस्कृति के अनुरूप आचरण करने का विवेक विकसित होता है। इसके लिए व्यक्ति द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों का विकास होता है।

समाजीकरण में प्रशंसा एवं पुरस्कार जैसे सकारात्मक साधनों को अपनाया जाता है। इसके विपरीत सामाजिक नियंत्रण में कठोर दण्ड एवं कारावास जैसे नकारात्मक साधनों को भी अपनाया जाता है। प्रकार्यवादियों का दावा है कि समाज में व्यवस्था आंशिक रूप से सदस्यों को स्वीकृत मूल्यों और मानदंडों में समाजीकृत करने के माध्यम से हासिल की जाती है। समाजीकरण वह साधन है जिसके द्वारा मूल्य चेतना (समझौता) लाया जाता है और यह मानदंडों के आंतरिककरण के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। हम समाजीकरण के माध्यम से दूसरे की अपेक्षाओं को सीखते हैं और उनके अनुरूप बनने की इच्छा विकसित करते हैं।

किसी दिए गए समाज में सदस्य जो बुनियादी मूल्य सीखते हैं वे आमतौर पर उन्हें अनुरूप बनाने के लिए प्रेरित करेंगे और इसलिए व्यवस्थित तरीके से व्यवहार करेंगे। जो लोग सफलतापूर्वक समाजीकरण नहीं कर पाते और पथभ्रष्ट हो जाते हैं उन्हें पुलिस जैसे अधिक सशक्त तरीकों से नियंत्रित किया जा सकता है। समाजीकरण के माध्यम से सामाजिक नियंत्रण वास्तव में प्रभावी हो जाता है।

समाजीकरण की विभिन्न एजेंसियाँ जैसे—परिवार, पड़ोस, समुदाय, स्कूल, कार्यस्थल, सहकर्मी समूह आदि भी समाजीकरण की एजेंसियाँ या साधन हैं। वे व्यक्तियों के व्यवहार पर नियामक प्रभाव डालते हैं।

परिवार जो सामाजिक नियंत्रण की सबसे महत्वपूर्ण एजेंसी हुआ करती थी। अब, सामाजिक नियंत्रण की लड़ाई में, विशेषकर शहरी क्षेत्रों में, अपना सदियों पुराना सार्वजनिक समर्थन खो चुकी है। सामूहिक समाज में जहाँ व्यक्तियों के बीच संबंध अवैयक्तिक होते हैं। प्राथमिक समूह या पारिवारिक नियंत्रण अधिक प्रभावी नहीं होते हैं। ऐसे समाजों में नियंत्रण राज्य, कानून और सरकार जैसी संस्थाओं के माध्यम से किया जाता है।

प्रश्न 59. विद्यालयों के प्रकारों को संक्षेप में लिखिए। **(उज्जैन 2022)**

उत्तर—विद्यालय के प्रकार—

(1) पूर्व प्राथमिक विद्यालय—पूर्व प्राथमिक चरण या शिक्षा की अवधि को प्री—विद्यालय चरण भी कहा जाता है। पूर्व प्राथमिक शिक्षा ढाई साल या तीन साल की उम्र में शुरू होती है और पाँच या साढ़े पाँच साल की उम्र तक जारी रहती है। शिक्षा के इस चरण को या तो प्री—प्राइमरी, नर्सरी, किंडरगार्टन या शिक्षा के प्रारंभिक चरण के रूप में नामित किया जाता है।

(2) प्राथमिक विद्यालय—इस चरण में अध्ययन की अवधि 4-5 वर्ष है। सामान्य विषयों में अंग्रेजी, हिन्दी, गणित, पर्यावरण, विज्ञान और सामान्य ज्ञान है। कभी—कभी इसे प्राथमिक शिक्षा भी कहा जाता है।

(3) माध्यमिक विद्यालय—यह 8वीं—10वीं कक्षा में शुरू होते हैं। जिसमें 14-16 साल के बीच के छात्र शामिल होते हैं।

(4) केन्द्रीय विद्यालय—यह भारत के केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के लिए शुरू की गई थी। जो पूरे देश में तैनात है। सरकार ने 1965 में केन्द्रीय विद्यालय शुरू की, जिसमें कर्मचारियों के परिवारों को स्थानांतरित किये जाने के स्थान पर समान गति से समान पाठ्यक्रम का पालन करने वाली संस्थाओं में समान शिक्षा प्रदान करने के लिए व्यवस्था की गई।

(5) पब्लिक स्कूल—पब्लिक स्कूल सरकार द्वारा वित्त पोषित है। वे राज्य द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करते हैं। छात्रों का सालाना मूल्यांकन किया जाता है और उनके प्रदर्शन का मूल्यांकन करने के लिए स्कोर दिया जाता है। पब्लिक स्कूल सार्वभौमिक है। जिसका अर्थ है कि वे सभी के लिए है।

(6) नवोदय विद्यालय–शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति की सिफारिशों के अनुसार नवोदय विद्यालय स्थापित किए गए थे। देश की स्वतंत्रता के बाद शिक्षा पर यह दूसरी राष्ट्रीय नीति है। जिसे नई शिक्षा नीति 1986 के रूप में जाना जाता है।

(7) ओपन विद्यालय–ओपन सिस्टम की अवधारणा और दूरस्थ शिक्षा ने इस नई अवधारणा को विकसित किया है। आप देखिए, जब भी पत्राचार पाठ्यक्रमों के माध्यम से स्कूली शिक्षा जरूरतमंद व्यक्तियों को प्रदान की जाती है। उसे ओपन विद्यालय कहा जाता है।

(8) होम स्कूलिंग–होम स्कूलिंग भारत में कानूनी तौर पर की जाती है, हालांकि यह कम खोजा गया विकल्प है। इस मुद्दे पर भारत सरकार का रुख है कि माता–पिता अपने बच्चों को घर पर पढ़ाने के लिए स्वतंत्र है, यदि वे चाहते हैं और उनके पास साधन हैं।

प्रश्न 60. भारतीय संस्कृति विभिन्नताओं के महासागर में अंतर्निहित एकता की धारा से संचालित होती है। व्याख्या कीजिए। **(उज्जैन 2022)**

उत्तर–जो संस्कृति अत्यधिक व्यापक, सार्थक और प्रभावशाली होती है वह अन्य संस्कृति को अपने में समा लेती है। संस्कृति समंजन को समाजशास्त्री 'एकल्चरेशन' नामक शब्द से संबोधित करते हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति आदिकाल में व्यापक थी परन्तु काल, आदर्श और जीवन–लक्ष्यों के अनुरूप इसमें परिवर्तन होता चला गया। वैदिक काल के पश्चात् पुराणकाल में प्राचीन संस्कृति का महत्व घटने लगा था। कुछ स्वार्थी और वेद विमुख लोगों ने इस युग में ऐसी परम्पराओं का श्रीगणेश किया जो वैदिक संस्कारों को भूलकर अन्य परम्पराओं पर उतर आए। ब्राम्हणों के वेद विरुद्ध आचरणों ने पौराणिक काल में ऐसी परम्पराएँ स्थापित की जिनमें मानवता को क्लेश पहुँचने लगा और थोथे आडम्बर अपनाये जाने लगे। इसी के विरोध में बौद्ध–धर्म तथा जैन मत प्रचलित हुए। इन धर्मों ने वैदिक धर्म को जिसे विदेशियों ने हिंदू धर्म के नाम से सम्बोधित कर प्रभावित किया। इस प्रभाव से भारतीय संस्कृति के स्वरूप में भारी परिवर्तन आया। आगे चलकर शंकराचार्य ने वैदिक धर्म की स्थापना में बहुत योगदान दिया और भारतीय संस्कृति को विकासशील दिशा प्रदान की।

भारतीय संस्कृति पर विदेशी आक्रमणों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। जब दो संस्कृतियाँ सम्पर्क में आती हैं तो वे एक–दूसरे को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में अवश्य प्रभावित करती हैं, जो संस्कृति भारतीय संस्कृति अपनी प्रबल महाप्रणिता के कारण ऋग्वेद के समय से आज तक भारत की भौगोलिक सीमाओं को लाँघकर उत्तरोत्तर मानव मात्र में विकसित होती हुई दिखाई पड़ती है। यद्यपि भारत में आज तथाकथित प्रगतिवादी बुद्धिजीवी वर्ग संस्कृति को दकियानूसीपन, रूढ़िवादिता और पिछड़ापन मानता है तथा भारतीय संस्कृति का अर्थ पूजा–पाठ, छुआछूत और अवैज्ञानिक दृष्टिकोण अथवा कोरी आध्यात्मिकता मात्र मानता है। अपने इन्हीं उथले विचारों के कारण आज के वैज्ञानिक युग में संस्कृति या संस्कृत की कोई खास आवश्यकता नहीं समझी जाती। यदि कुछ आवश्यकता है तो यही कि उसे अजायबघर में प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री के रूप में एक कोने में सुरक्षित रखा जा सकता है। स्वतंत्र भारत का जनमानस अमेरिका की विचारधारा से जितना आज प्रभावित है, उतना ही वह अपनी परतन्त्रता में अपने महाप्रभुओं के विचारों में भी प्रभावित नहीं था। आश्चर्य है कि कुछ लोग उन मनोवैज्ञानिकों की बात नहीं सुनते हैं जो यह बताते हैं कि व्यक्ति का विकास भौगोलिक परिस्थितियों तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं के बीच में घात–प्रतिघात और समायोजन की प्रक्रिया द्वारा होता है। यदि शिक्षा के अनेक उद्देश्यों में मानव के व्यक्तित्व का संगठन तथा समायोजित व्यक्तित्व का निर्माण–एक उद्देश्य माना जाता है तो सांस्कृतिक विरासत की उपेक्षा करना विकास के क्रम को शिथिल कर देना है।

व्यक्तित्व की विशिष्टता एवं महानता इसी में है कि वह अपनी संस्कृति का एक परमाणु रूप है संस्कृति ही मानव की श्रेष्ठ कृति है, जिसके आधार पर वह समाज को निरन्तर गत्यात्मकता तथा अपने समय से भी अच्छा बनने का आधार प्रदान करता है। भारतीय संस्कृति मानव मात्र को पूर्णाभिष्ट का संदेश देकर देशकाल की सीमाओं का अतिक्रमण कर विश्व–बन्धुत्व की सार्वभौम संस्कृति बन गई थी। उसका स्वरूप स्थान है–कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा, बाली, बोर्नियो, तिब्बत, नेपाल, चीन, बर्मा, कम्बोज आदि देशों के साहित्य मन्दिरों और स्तूपों की कलाकृतियों, लोकवार्ताओं, अनुश्रुतियों, रीति–रिवाजों, धार्मिक विश्वासों तथा खान–पान में पाया जाता है।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता का मुख्य आधार संस्कृत भाषा है। भारतीय मनीषियों ने मानव-जीवन के वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक जीवन तथा राष्ट्रीय जीवन के सभी अंगों में संगठन एवं सामंजस्य स्थापित करने के लिए तथा उसके पोषण एवं परिष्करण के लिए जो पद्धति एवं संस्कार प्रक्रिया तथा जीवन की अभीष्टतम उपलब्धि निर्धारित की वही भारतीय संस्कृति है और उसका मुख्य वाहन संस्कृत है। समाज के शरीर को उसकी संस्कृति ही चेतनता तथा प्राणवत्ता प्रदान करती है। उसकी अभिव्यक्ति सक्षम भाषा (संस्कृत) के माध्यम से कला और साहित्य में होती है। जिस साहित्य, कला, और शिल्प में संस्कृति की जितनी अधिक छाप होगी वह उतना ही जीवन्त तथा चिरस्थायी होगा। संस्कृत, संस्कार और संस्कृति एक ही धातु 'कृ' (अर्थ 'करना') से बने हैं। संस्कार बाह्य पल्लव है। संस्कृत भाषा वृक्ष में प्रवाहित होने वाली चेतना है तथा संस्कृति वृक्ष की जड़ है। वृक्ष रूपी सभ्यता वृक्ष के सतत्–परिवर्तन का प्रतीक रूप है। वृक्ष पर कभी पतझड़, कभी बसन्त, कभी हरीतिमा, कभी पीतिमा, कभी कुसुम, कभी फल आते हैं और वृक्ष के जीवन को सूचित करते रहते हैं। उसी प्रकार सभ्यता के बदलते रूप युग की वृत्तियों के ऋतु प्रभाव के अर्थों की भाँति नूतनता के द्योतक हैं। संस्कृति की वे विकृतियाँ नहीं है। संस्कृति रूपी वृक्ष तभी समृद्ध होता है, जब वह अपने बाह्य परिवर्तन, पल्लवन द्वारा अधिक–से–अधिक पोषण प्राप्त कर अपनी जड़ों को अधोअधः प्रसारित कर काल के प्रवाह से जूझने और झंझावातों में अडिग रहने की शक्ति प्रदान करता है। भारतीय संस्कृति के सभी अंग तथा उपांग केवल दिवास्वप्न नहीं है अपितु जीवन की वे क्रियाएँ हैं, जिनसे जीवन उत्तरोत्तर विकासशील है।

प्रश्न 61. शिक्षा के महत्व एवं प्रकारों को समझाइए। **(छिंदवाड़ा 2022)**

उत्तर–शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति अपने जन्म से मृत्यु तक जो कुछ सीखता और अनुभव करता है। वह सब शिक्षा के व्यापक अर्थ के अन्तर्गत आता है। उसके सीखने और अनुभव करने का परिणाम यह होता है कि वह धीरे–धीरे विभिन्न प्रकार से अपने भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण से अपना सामंजस्य स्थापित करता है।

शिक्षा के प्रकार–(1) नियमित/औपचारिक व अनियमित/अनौपचारिक शिक्षा ।

(अ) नियमित शिक्षा (Formal education)–नियमित शिक्षा वह है जो जान–बूझकर और विचारपूर्वक दी जाती है। इस शिक्षा को बालक भी जान–बूझकर प्राप्त करता है। इस शिक्षा की योजना पहले ही बना ली जाती है और इसका ध्येय भी निश्चित कर लिया जाता है। यह शिक्षा विशेष प्रकार की संस्थाओं में दी जाती है। इसका प्रारम्भ अनियमित शिक्षा के बाद होता है।

(ब) अनियमित शिक्षा (Informal education)–हिन्दू संस्कृति के अनुसार यह शिक्षा बालक के जन्म से कुछ मास पहले ही प्रारम्भ हो जाती है। इसीलिए होने वाली माताओं से आशा की जाती है कि वे अपने आचरण को अच्छा बनाएँ। अनियमित शिक्षा बालक को अनायास और आकस्मिक रूप में प्राप्त होती है। यह शिक्षा जीवन भर चलती रहती है। इसे बालक घर में, घर से बाहर, खेल के मैदान में, अपने मित्रों के साथ बातचीत करने में, उठते, बैठते, खेलते, कूदते, हर समय, किसी–न–किसी रूप में प्राप्त करता है। वह अपने माता–पिता, भाई–बहिनों, मित्रों, शिक्षक आदि को कुछ करते हुए देखता है और उनका अनुसरण करता है।

(2) प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष शिक्षा–**(अ) प्रत्यक्ष शिक्षा** (Direct education)–इस शिक्षा को वैयक्तिक शिक्षा भी कहा जाता है। यह शिक्षा अध्यापक और छात्र के बीच होती रहती है। अध्यापक अपने ज्ञान, आदर्शों और उद्देश्यों से छात्र के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।

(ब) अप्रत्यक्ष शिक्षा (Indirect education)–इस शिक्षा को वैयक्तिक शिक्षा भी कहा जाता है। जब छात्र पर अध्यापक के उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ता है तब वह विभिन्न प्रकार के अप्रत्यक्ष साधनों को अपनाकर छात्र के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।

हम 'प्रत्यक्ष' और 'अप्रत्यक्ष' विधियों के अन्तर को उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। मान लीजिए, शिक्षक बच्चों में समय, तत्परता और नियमबद्ध की आदतों का विकास करना चाहता है।

(3) वैयक्तिक और सामूहिक शिक्षा–**(अ) वैयक्तिक शिक्षा**–वैयक्तिक शिक्षा का संबंध केवल एक बालक से होता है। यह शिक्षा उसको व्यक्तिगत रूप में और अकेले दी जाती है। शिक्षा देते समय उसकी रुचि, प्रकृति, योग्यता और व्यक्तिगत विभिन्नता का पूरा–पूरा ध्यान रखा जाता है।

(ब) सामूहिक शिक्षा (Collective education)–सामूहिक शिक्षा का संबंध एक बालक में न होकर बालकों के समूह से होता है। बहुत से बालकों के एक समूह की कक्षा में एक साथ शिक्षा दी जाती है। इस शिक्षा में बालकों की व्यक्तिगत रुचियों, प्रवृत्तियों, योग्यताओं और विभिन्नताओं की ओर कोई स्थान नहीं दिया जाता है। आजकल सभी देशों के सभी प्रकार के स्कूलों में शिक्षा का यही स्वरूप प्रचलित है।

(4) सामान्य व विशिष्ट शिक्षा (General and Specific education)–सामान्य शिक्षा को उदार शिक्षा भी कहते हैं। आजकल के भारतीय हाई और हायर सेकेण्डरी स्कूलों में इसी प्रकार की शिक्षा दी जाती है। इस शिक्षा का कोई विशेष उद्देश्य नहीं होता है।

विशिष्ट शिक्षा किसी विशेष लक्ष्य को ध्यान में रखकर दी जाती है। इसका उद्देश्य बालकों को किसी विशेष व्यवसाय या निश्चित कार्य के लिए तैयार करना होता है।

(5) गैर–औपचारिक शिक्षा (Non-formal education)–गैर–औपचारिक शिक्षा औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा का मिला–जुला रूप है। यह पूर्णतया औपचारिकता विहीन नहीं है। इसमें औपचारिकता रहती है परन्तु गौण रूप में। इसमें प्रतिबन्ध तो है परन्तु वे ढीले व लचीले होते हैं। वे इतने दृढ़ नहीं होते जितने औपचारिक शिक्षा में होते हैं। यह शिक्षा इस तथ्य पर आधारित होती है कि बालक जो सीखना चाहे सीखे, जब सीखना चाहे सीखे तथा जिस स्थान पर सीखना चाहे सीखे। अतः इसमें गैर–औपचारिक शिक्षा का अस्तित्व हवा में और हवा के साथ है। इस शिक्षा को कोई भी व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। इसके लिए किसी शैक्षिक संस्था में नाम लिखाना तथा वहाँ तक जाना भी आवश्यक नहीं। यह काम में व्यस्त व्यक्ति को भी शिक्षा पहुँचाती है। अतः यह शिक्षा 'शिक्षा को छात्र तक पहुँचाने का प्रयास है।'

(6) दूरवर्ती शिक्षा या दूरस्थ शिक्षा (Distance education)–इसका अभिप्राय है–दूर से दी जाने वाली शिक्षा। इसमें सीखने वाला (छात्र) तथा सिखाने वाला (शिक्षक) आमने–सामने नहीं होते हैं। ये दोनों एक–दूसरे से दूर होते हैं। इसमें छात्र स्थान, पढ़ने के समय आदि की औपचारिकताओं से मुक्त रहते हैं। इसमें सीखना व सिखाना बिना किसी बाधा के लगातार चलता रहता है। जबकि शिक्षक एवं छात्र एक–दूसरे से दूर रहते हैं। इसमें छात्र अपनी सुविधा तथा प्राप्त समय के अनुसार अपनी गति से शिक्षा प्राप्त करता चलता है।

(7) सतत् शिक्षा (Continuing education)–सतत् शिक्षा की अवधारणा को विभिन्न शिक्षाविदों ने विभिन्न पदों से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। जिनमें प्रौढ़ शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, गैर–अनौपचारिक शिक्षा, आगे की शिक्षा आदि प्रमुख है। परन्तु इन पदों का स्वेच्छापूर्वक प्रयोग भ्रम

उत्पन्न करता है। इन पदों का अर्थ विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न हो जाता है। वस्तुतः सतत् शिक्षा इस बुनियादी सिद्धांत पर आधारित है कि किसी व्यक्ति की शिक्षा उसी दिन समाप्त नहीं हो जाती जिस दिन वह विद्यालय या कॉलेज या विश्वविद्यालय से प्रमाण–पत्र या उपाधि प्राप्त कर लेता है। उसकी शिक्षा सतत् चलती रहनी चाहिए। इस अवधारणा की पूर्ण अभिव्यक्ति आजीवन शिक्षा होती है। अतः सतत् शिक्षा या आजीवन शिक्षा वह शैक्षिक प्रयास है जिसका सीधा सम्बन्ध ऐसे ज्ञान एवं कौशलों की प्राप्ति से है जो शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं से जुड़े हैं। साथ ही उसकी प्रगति के लिए आवश्यक पथ प्रशस्त करते हैं।

शिक्षा का महत्व–(1) शिक्षा हम सभी के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

(2) शिक्षा हमें शिक्षित करती है कि क्या बोलना है, क्या जानना है और क्या लिखना है।

(3) शिक्षा सामाजिक असमानता को समाप्त करती है और समान विकास में मदद करती है।

(4) शिक्षा हम विभिन्न तरीकों से प्राप्त कर सकते हैं, जैसे शिक्षण, प्रशिक्षण और अनुसंधान गतिविधियाँ।

(5) शिक्षा के बिना मानव का मानसिक विकास और समझ सीमित होता है।

(6) प्रेरक कहानियाँ सुनने से हमें अच्छी शिक्षा प्राप्त होती है।

(7) शिक्षा से हमारा सामाजिक विकास होता है और स्तर भी बढ़ता है।

(8) शिक्षा से हमें जीविका का साधन प्राप्त होता है और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने में सहायता मिलती है।

(9) शिक्षा वेतन बढ़ाने और जरूरतों को कम करके मौद्रिक उन्नति में एक अनिवार्य भूमिका निभाती है।

(10) शिक्षा गरीब और अमीर के बीच बाधा को दूर करने में सहायता करती है।

प्रश्न 62. बुनियादी शिक्षा के आधारभूत सिद्धांतों को समझाइए। **(छिंदवाड़ा 2022)**

उत्तर–बुनियादी शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

(1) 7 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए।

(2) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

(3) सम्पूर्ण शिक्षा किसी आधारभूत शिल्प अथवा उद्योग पर आधारित हो।

(4) शिल्प का चुनाव बच्चों की योग्यता और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के आधार पर किया जाए।

(5) बच्चों द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपयोग हो और उनसे आर्थिक लाभ दिया जाए, स्कूलों का कार्य पूरा किया जाए।

(6) शिल्पों की शिक्षा में आर्थिक महत्व के साथ–साथ उसके सामाजिक एवं वैज्ञानिक महत्व को भी स्थान दिया जाए।

(7) **ज्ञान को एक इकाई के रूप में विकसित करने का सिद्धांत**–यदि भौतिक दृष्टि से देखें तो शिक्षा का एक ही लक्ष्य होता है–मनुष्य को वास्तविक जीवन के लिए तैयार करना। तब पाठ्यचर्या के समस्त विषयों एवं क्रियाओं का सम्बन्ध मनुष्य के वास्तविक जीवन से होना चाहिए। इसी दृष्टि से गाँधी जी ने ज्ञान को पूर्ण इकाई के रूप में विकसित करने पर बल दिया था। उनके इसी विचार ने शिक्षा की सहसम्बन्ध विधि को जन्म दिया।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी ज्ञान पूर्ण इकाई का होता है, उसे पूर्ण इकाई के रूप में ही विकसित करना चाहिए।

प्रश्न 63. योग दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा कीजिए। (ग्वालियर 2022)

उत्तर–योग दर्शन छः आस्तिक दर्शनों (षड्दर्शन) में एक है। इसके प्रणेता पतंजलि मुनि हैं और यह दर्शन सांख्य दर्शन के पूरक दर्शन के नाम से प्रसिद्ध है। यह भी ध्यान रहे कि इस दर्शन का प्रमुख लक्ष्य मनुष्य को वह मार्ग दिखाना है जिस पर चलकर वह जीवन के परम लक्ष्य (मोक्ष) की प्राप्ति कर सके।

योग दर्शन 'चित्तवृत्ति' के निरोध का दर्शन है। चित्त के सत्व, रज और तमस तीन गुण होते हैं जो मनुष्य के व्यवहार में प्रकट होते हैं। मनुष्य की दस इंद्रियाँ (ज्ञान व कर्मन्द्रिय) और मन द्वारा जो अनुभव होते हैं उन्हें पाँच प्रकार का कहा गया है। यथार्थ–संज्ञान, अयथार्थ संज्ञान, कल्पना, समाधि और स्मृति आत्म–शिक्षण के द्वारा इन पर अंकुश लगाया जाता है।

योग दर्शन में शिक्षा के संदर्भ में स्वतंत्र रूप से कोई विचार नहीं किया गया है परन्तु उसकी तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा और आचार मीमांसा में शिक्षा संबंधी अनेक तथ्यों की जानकारी होती है। मनुष्य के अन्तःकरण (मन, अहंकार और बुद्धि) का वैज्ञानिक विश्लेषण योग दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता है। यहाँ हम योग दर्शन के शिक्षा संबंधी विचारों को क्रमबद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

शिक्षा का आधार है जिस पर मानव जाति का संम्पूर्ण विकास टिका हुआ है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान व कला कौशल में वृद्धि व व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। दृष्टिकोण दार्शनिकों का विचार केन्द्र मनुष्य होता है। ये मनुष्य के वास्तविक स्वरूप को जानने तथा उसके जीवन का अंतिम उद्देश्य निश्चित करने का प्रयत्न करते हैं। मानव जीवन के अंतिम उद्देश्य की प्राप्ति का साधन मार्ग निश्चित करने में भी दार्शनिकों की रूचि होती है और इन सबके ज्ञान एवं प्रशिक्षण के लिए वे शिक्षा को आवश्यक मानते हैं। इस प्रकार दार्शनिकों की दृष्टि में शिक्षा मनुष्य जीवन के अंतिम उद्देश्य की प्राप्ति का साधन होती है।

शिक्षा वह है जो मनुष्य को सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने योग्य बनाती है। आध्यात्मवादी दार्शनिक मनुष्य के लौकिक जीवन की अपेक्षा उसके परलौकिक जीवन को अधिक महत्वशाली मानते हैं। वेदांती तो इस लौकिक जीवन से सदा–सदा के लिए छुटकारा चाहते हैं।

प्रश्न 64. सामाजिक परिवर्तन की समस्याओं को बताइए। (ग्वालियर 2022)

उत्तर–मानव–जीवन की प्रमुख विशेषता है उसका सदा एक समान न रहना। अन्य शब्दों में, मानव के जीवन में सदैव कुछ–न–कुछ परिवर्तन होते रहते हैं। मनुष्य समाज की इकाई है अतः उसमें होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव समाज पर भी पड़ता है। अन्य शब्दों में, मानव जीवन में होने वाले परिवर्तन समाज में भी परिवर्तन लाते हैं। इसी कारण आज जो समाज का रूप है, युगों पूर्व उसका यह रूप नहीं था। संक्षेप में, परिवर्तन एक सर्वव्यापी नियम है। मानव समाज का कोई ऐसा अंग नहीं जिसमें सदैव कुछ–न–कुछ परिवर्तन न होते रहते हो। कोई भी समाज जड़ या स्थिर नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है किसी समाज में यह परिवर्तन बड़ी तीव्रता के साथ होते हैं या किसी समाज में मन्द गति से परिवर्तन होता हो। हम किसी भी ऐसे समाज की कल्पना नहीं कर सकते, जिसमें न तो कोई परिवर्तन होता है, और न ही उसमें कोई गतिशीलता होती है। वास्तव में संसार की प्रकृति परिवर्तनशील है। समाज का जो ढाँचा सौ वर्ष पहले था वह आज नहीं है और जो आज है वह कल नहीं रहेगा। परिवर्तन की प्रक्रिया संसार की समस्त वस्तुओं को निरन्तर प्रभावित करती रहती है और समाज भी इसमें बच नहीं पाता। अन्य शब्दों में, समाज की सभी संस्थाएँ, संस्कृतियाँ, सभ्यताएँ, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, समितियाँ आदि परिवर्तन की प्रक्रिया से प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए– भारत की वैदिककालीन सामाजिक व्यवस्था और आज की व्यवस्था में पर्याप्त अन्तर मिलेगा।

सामाजिक परिवर्तन के प्रभावकारी तत्व या कारक–

1. प्रौद्योगिक कारक (Technical factors)–आधुनिक युग को प्रौद्योगिक युग कहा जाता है अतः प्रौद्योगिकीय कारक वर्तमान काल में सामाजिक परिवर्तन में सबसे महत्वपूर्ण कारक है। कोई भी नवीन आविष्कार या यन्त्र आविष्कृत होता है तो वह हमारे सामाजिक जीवन को अवश्य प्रभावित करता है। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप विशाल नगरों का विकास होता है तथा नगरों की जनसंख्या जैसे–जैसे बढ़ती जाती है, वैसे–वैसे व्यक्तिगत सम्बन्धों में शिथिलता आती जाती है परिणामस्वरूप सामुदायिक जीवन का ह्रास होता जाता है। बड़े नगरों में अपराध तथा व्यभिचार बड़ी तीव्रता से फैलते हैं। उद्योग धन्धों के विकास के कारण गाँवों से लोग नगरों में आकर बसने लग जाते हैं।

2. सांस्कृतिक कारक (Cultural factors) –वास्तव में संस्कृति सामाजिक संगठन को सुसंगठित बनाये रखने वाली शक्ति है। सोरोकिन ने संस्कृति की विशेषताओं में होने वाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख कारक माना है। यथार्थ में हमारा सामाजिक जीवन हमारे विश्वास, धर्म, प्रथाओं, संस्थाओं, रूढ़ियों आदि पर निर्भर होता है, इनमें कोई भी परिवर्तन होता है तो वह सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन लाता है। सांस्कृतिक कारक सामाजिक परिवर्तन के लिए अधिक प्रभावशाली सिद्ध होते हैं।

3. भौगोलिक कारक (Cimatic factors)–आज के युग में मानव ने विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति कर ली है। परन्तु वह प्रकृति या भौगोलिक दशाओं पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त नहीं कर पाया है। इसी कारण भौगोलिक दशाएँ अपने ढंग से सामाजिक परिवर्तन का एक कारक बन जाती हैं। अन्य शब्दों में, गर्मी, ठण्डक, वर्षा, आर्द्रता, तापक्रम, प्रकाश, मिट्टी की विशेषता, भूमि की बनावट, प्राकृतिक आपदा, भूकम्प आदि विभिन्न भौगोलिक तथा प्राकृतिक शक्तियाँ व्यक्तियों के विचारों और क्रियाओं को प्रभावित करती है।

4. जनसंख्यात्मक कारक (Demographic factor) –सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में जनसंख्या कम कारक विशेष रूप में प्रभावशाली सिद्ध होते हैं। अन्य शब्दों में, जनसंख्या की विशेषताएँ विभिन्न प्रकार के सामाजिक परिवर्तनों को उत्पन्न करती है। किसी देश की जनसंख्या अत्यधिक हो जाती है तो वहाँ के समाज में अनेक प्रकार के परिवर्तन जन्म लेते हैं।

5. मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological factors)–यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो हमें ज्ञात होगा कि समाज में परिवर्तन इस कारण भी हो रहा है कि सभ्यता की प्रगति और दिखावटी सम्बन्धों के मध्य व्यक्ति के मस्तिष्क में अनेक संघर्ष जन्म लेने लग जाते हैं। उदाहरण के लिये–पुरातन पन्थी वृद्ध व्यक्ति प्राचीन परम्पराओं की रक्षा का प्रयास करते हैं जबकि युवक नवीन सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति अपना उत्साह प्रकट करते हैं। इस प्रकार की अवस्था में दोनों वर्गों में मानसिक तनाव बढ़ जाता है तथा नवीन सामाजिक मूल्यों का जन्म होता है।

6. आर्थिक कारक (Economical factors)–आर्थिक कारक भी सामाजिक परिवर्तन का एक प्रभावशाली कारक है। सम्पत्ति का रूप व्यवसाय की प्रकृति, व्यक्तियों का जीवन–स्तर, सम्पत्ति का वितरण, वर्ग संघर्ष तथा उत्पादन का स्वरूप आदि ऐसे कुछ प्रकरण आर्थिक कारक है जो पर्याप्त सीमा तक सामाजिक जीवन को प्रभावित करते हैं। इनमें किसी भी स्थिति में होने वाला परिवर्तन सामाजिक स्थिति में भी परिवर्तन ला देता है।

7. राजनैतिक कारक (Political factors)–सामाजिक कारकों के बाद सर्वाधिक परिवर्तन का कार्य राजनैतिक स्तर पर होता है। देश का जनसमूह किसी–न–किसी राजनैतिक दल अथवा सदस्यों में जुड़ा होता है जो उस देश के रहने वालों को अपनी विचारधारा से जोड़ते तथा मोड़ते हैं। राजनैतिक लोग अपने भाषणों तथा व्याख्यानों से वहाँ के निवासियों का मानसिक परिवर्तन कर देते हैं।

●●

इकाई 2

प्राचीन भारतीय शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ

लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. वैदिक साहित्य में शिक्षा से क्या अभिप्राय है ? **(उज्जैन 2017)**

उत्तर– इतिहासकारों ने वैदिककाल का समय 2500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक माना है। वैदिक काल को भी दो उपकालों में विभाजित किया गया है– प्रारंभिक वैदिक काल और उत्तर वैदिक काल। वैदिक शिक्षा ही भारत की सर्वप्रथम शिक्षा व्यवस्था का रूप रही है। इसके विकास में वेदों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है क्योंकि वेद का अर्थ होता है– 'ज्ञान'।

चारों वेदों में क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद पर प्रकाश डाला जाए तो इनमें से ऋग्वेद को सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। इसके महत्व को पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी स्वीकार किया और कहा, "वेदों में प्रथम 'ऋग्वेद' संभवतः वह प्राचीनतम् पुस्तक है, जिसमें मानवता समाहित है।" इसमें मनुष्य के चारों आश्रम–ब्रम्हचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास का विस्तृत रूप में वर्णन मिलता है। उस समय जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्म को प्रधान माना जाता था।

वैदिक साहित्य में शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषाएँ (उज्जैन 2022)– वैदिक साहित्य में शिक्षा से तात्पर्य विद्या, ज्ञान, बोध और विनय से होता था अर्थात् वेदों के अनुसार, शिक्षा का अर्थ ज्ञान या विद्या की प्राप्ति करना था एवं शिक्षा का उद्देश्य आत्मानुभूति एवं आत्मबोध करना था।

प्राचीन भारतीयों ने भी शिक्षा शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया है–

1. सीमित संदर्भ में– सीमित या संकुचित अर्थ में शिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षा से है जो व्यक्ति को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने से पूर्व शिष्य रूप में अपने गुरु से प्राप्त होती थी।

व्यापक संदर्भ में– व्यापक अर्थ में शिक्षा से तात्पर्य व्यक्ति को सभ्य और उन्नत बनाना था। अतः इस दृष्टि से शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया थी।

आर. के. मुखर्जी के अनुसार–"प्राचीनतम् वैदिककाल के जन्म से ही भारतीय साहित्य पूर्णरूपेण धर्म से प्रभावित दिखता है।"

वैदिक युग में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को जीवन का प्रमुख आधार माना जाता था तथा जीवन का एकमात्र उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति था। वैदिककाल में जीवन दो प्रकार की विधाओं–परा एवं अपरा में बाँटा गया था।

परा का अर्थ– ब्रम्ह प्राप्ति अर्थात् ज्ञान, कर्म व उपासना द्वारा ब्रम्ह अथवा मोक्ष की प्राप्ति करना। इसमें अन्तर्मुखी साधना पर बल दिया जाता था।

अपरा का अर्थ– सामाजिक ज्ञान अर्थात् एक संगठित व नियोजित सामाजिक व्यवस्थाओं को चलाने संबंधी शिक्षा।

अतः परा में पारलौकिक व अपरा में बौद्धिक, सामाजिक शक्तियों के विकास पर बल दिया जाता था। सामाजिक ज्ञान का अर्थ उस काल में शिक्षा केवल किताबों के ज्ञान तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि सामाजिकता से संबंधित ज्ञान भी दिया जाता था जिससे एक नियोजित एवं संगठित सामाजिक व्यवस्था शिक्षा द्वारा कर सकें।

डॉ. एफ. डब्ल्यू. थॉमस के अनुसार– "भारत में शिक्षा कोई नई बात नहीं है। संसार में कोई भी ऐसा देश नहीं है जहाँ पर ज्ञान के प्रेम की परम्परा भारत से अधिक प्राचीन एवं शक्तिशाली हो।"

भर्तृहरि के अनुसार– "विद्या के अभाव में व्यक्ति पशु के समान है। पशु में बुद्धि का अभाव होता है तथा बुद्धि एवं विवेक के अभाव में व्यक्ति भी पशु बन जाता है।"

वैदिक काल में आर्यों का परम लक्ष्य "मोक्ष को प्राप्त करना था"। शिक्षा, कला, धर्म इत्यादि क्षेत्रों में आर्यों द्वारा किये गये प्रयासों का प्रभाव आज भी दिखाई पड़ता है।

हमारे देश के प्राचीन भारतीयों की ज्ञान के प्रति, उत्कृष्ट शिक्षा के प्रति श्रद्धापरक भावना रखने का ही परिणाम है कि अनेक दृष्टियों से आज भी भारत की शिक्षा प्रणाली के मूल आधार समस्त विश्व की शिक्षा पद्धति में आदर्श रूप में स्वीकार किये जाते रहे हैं। वैदिक युग से लेकर अब तक भारतवासियों के लिए शिक्षा का अभिप्राय यह है कि यह प्रकाश का एक स्रोत है जो जीवन के विविध क्षेत्रों में हमारा मार्गदर्शन करती है।

प्रश्न 2. वैदिक युगीन शिक्षा की विशेषताएँ बताइए।

(उज्जैन 2017, 22; रीवा 22; जबलपुर 22)

उत्तर– वैदिक युगीन शिक्षा के लिए विद्या, ज्ञान, प्रबोध तथा विनय आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। प्राचीनकाल में, ग्रंथों में अशिक्षित मनुष्य को विद्याविहीन पशु कहा गया है। शिक्षा को प्रकाश का स्रोत माना गया है। प्राचीनकाल में शिक्षा की विशेषताएँ निम्नलिखित थीं–

1. ज्ञान तीसरा नेत्र है– शिक्षा ज्ञान है और वह मनुष्य का तीसरा नेत्र है। ज्ञान से मनुष्य के अंतः चक्षु खुल जाते हैं। उसे आध्यात्मिक एवं अलौकिक प्रकाश मिलता है जो जीवन का लक्ष्य है। शिक्षा के द्वारा समस्त मानव जीवन का विकास संभव है। विद्या माता की तरह रक्षा करती है, पिता की तरह सद्मार्ग का अनुकरण करने की प्रेरणा देती है और पत्नी के समान सुख देती है। शिक्षा से व्यक्तित्व का विकास होता है। वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है और इसका अर्थ है ज्ञान। **सायण** ने वेद को सुख की प्राप्ति तथा अनिष्ट को दूर करने वाला बताया है। चारों वेदों को सुख की श्रुति, स्मृति आदि के अध्ययन से अनेक नवीन ज्ञान प्राप्त कर व्यक्ति के मस्तिष्क के कपाट खुलते थे। ज्ञान प्राप्ति सरल नहीं थी। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान तथा अनुभव को आत्मसात् करना था।

2. शिक्षा के उद्देश्य– वेदों के युग में शिक्षा का स्वरूप आदर्शवादी या ईश्वर भक्ति, धार्मिकता, आध्यात्मिकता, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, संस्कृति, राष्ट्र तथा समाज के विकास के प्रति अभिवृत्ति विकसित करने पर आचार्यजन द्वारा बल दिया जाना, इस प्रकार का था। **डॉ. अल्केतर** ने इसी संदर्भ में कहा है– "ईश्वर भक्ति, धार्मिकता की भावना, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिकता तथा सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की अभिवृद्धि, राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण तथा प्रसार प्राचीन भारत में शिक्षा के उद्देश्य थे। वैदिक युग में शिक्षा के उद्देश्य एवं आदर्श मानव को उसके आत्मिक विकास की ओर ले जाते थे।

3. शिक्षा प्रणाली– वैदिक काल में छात्र माता–पिता से अलग गुरु के घर अर्थात् गुरुकुल में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरु मौखिक प्रवचन द्वारा शिक्षा प्रदान करते थे और छात्र सुनने के पश्चात् मनन तथा चिंतन करते थे। उस समय में मौखिक पद्धति का प्रचलन हुआ करता था। कभी-कभी वाद–विवाद करना तथा प्रणाली का प्रयोग, गृहकार्य देना आदि का प्रयोग भी किया जाता था।

4. शिक्षण संस्थाएँ– शिक्षण प्रदान करने का कार्य गुरुकुल या ऋषि आश्रम में किया जाता था। वैदिक काल में गुरुकुल प्रणाली ही प्रचलित होती थी। गुरुकुल प्रायः शांत वातावरण में स्थित होते थे इसलिए नगरों से दूर शांत एवं स्वच्छ वातावरण में बनाये जाते थे। गुरु को छात्र का आध्यात्मिक पिता माना जाता था। गुरुकुलों के अतिरिक्त परिषद् सम्मेलन तथा ऋषि आश्रमों में भी शिक्षा दी जाती

थी। परिषद् उच्च शिक्षा के केन्द्र थे। राजाओं के द्वारा सम्मेलन सम्पन्न कराये जाते थे, जिनमें वाद–विवाद का आयोजन किया जाता था। आज भी गुरुकुल प्रणाली, गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार, विश्व–भारती जैसे अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्रों में देखने को मिलती है।

5. पाठ्यक्रम– पाठ्यक्रम में राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष एवं तर्क विज्ञान को शामिल किया जाता था। नृत्य, कला, संगीत व अभिनय आदि को भी स्थान दिया गया था। स्वास्थ्य शिक्षा का पाठ्यक्रम में विशेष स्थान होता था। वैदिककालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य आध्यात्मिक विकास करना था किन्तु कर्म की भी उपेक्षा नहीं की गई थी। वेदों में आध्यात्मिक तथा लौकिक दोनों ही प्रकार के ज्ञान का वर्णन है जहाँ पर परा तथा अपरा दोनों ही प्रकार की विधाओं का वर्णन पाते हैं।

6. अनुशासन–छात्र अपने गुरु के आश्रम पर निवास करते थे, फलतः उसे गुरु आश्रम की समस्त परम्पराओं को निभाना पड़ता था। प्रत्येक आश्रम की अपनी–अपनी परम्पराएँ थीं। उस समय ब्रम्ह मुहूर्त को अध्ययन हेतु सर्वोत्तम समझा जाता था। गुरुकुल में छात्र पिता–पुत्र की तरह रहते थे इसलिए छात्र आत्म–अनुशासित होते थे। दंड केवल छात्रों को प्रायश्चित स्वरूप दिया जाता था। 'स्व–अनुशासन' की प्रथा थी। छात्र गुरु के प्रति आज्ञाकारी व विनम्र होते थे।

7. शिक्षा अवधि– शिक्षा अवधि का निर्धारण साधारणतया पाठ्य–विषयों पर निर्भर था। एक वेद के अध्ययन हेतु प्रायः 12 वर्ष के समय की आवश्यकता होती थी। यदि छात्र एक ही वेद का अध्ययन करता था तो उसकी शिक्षा 12 वर्ष तक चलती थी। दो वेदों का अध्ययन करने वालों को 24 वर्षों तक गुरु के पास रहना पड़ता था। इसी क्रम में तीन तथा चार वेदों का अध्ययन करना पड़ता था। एक, दो, तीन तथा चार वेदों का अध्ययन करने वाले छात्र क्रमशः स्नातक, वसु, रूद्र तथा आदित्य कहलाते थे। अधिकांश छात्र 24 वर्ष की आयु में शिक्षा समाप्त करके गृहस्थाश्रम जीवन में प्रवेश करते थे।

8. परीक्षा प्रणाली– प्राचीनकाल में गुरुकुलों में परीक्षा–विहीन प्रणाली थी। वैदिककालीन आश्रमों में किसी भी प्रकार की परीक्षा नहीं ली जाती थी, क्योंकि तत्कालीन शिक्षा–प्रणाली में इसकी कोई भी आवश्यकता नहीं थी। गुरु नया पाठ तभी आरंभ करते थे जब छात्र प्रस्तुत पाठ को पूर्णरूपेण तैयार कर लेता था और गुरु छात्र की तैयारी से संतुष्ट हो जाते थे। शिक्षा–प्रणाली पूर्णतया व्यक्तिगत विभिन्नता के सिद्धांत पर आधारित थी। व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर ही छात्रों से श्रवण, मनन तथा चिंतन कराया जाता था।

9. नारी शिक्षा– वैदिक काल में कन्याओं का भी उपनयन होता था, किन्तु बालकों के समान उनके लिए पृथक् से गुरुकुल न थे फिर भी उस समय नारी शिक्षा प्रचलित थी। वैदिक युग में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। वे बिना किसी भेद–भाव के शिक्षा ग्रहण कर सकती थीं। उन्हें भी पुरुषों के समान समस्त शिक्षा के अधिकार प्राप्त थे।

10. गुरु–शिष्य संबंध– वैदिक काल में गुरु–शिष्य संबंध अत्यंत मधुर थे। शिष्य अपने अध्ययन काल में पूर्णरूपेण गुरु के संरक्षण में रहता था। गुरु, शिष्य का आध्यात्मिक पिता माना जाता था। गुरु शिष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास का प्रयास करता था। गुरु अपने शिष्यों में अच्छी आदतों का निर्माण करता था। गुरु का प्रयास अपने शिष्यों का शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास करना रहता था। शिष्य गुरु का बहुत सम्मान तथा आदर करते थे। गुरु व शिष्य का संबंध अत्यंत निकटता व घनिष्ठता का होता था। दोनों एक परिवार के सदस्य के रूप में रहते थे। गुरु की आज्ञा का पालन करना, सेवा करना, दैनिक कार्य करना, आश्रम की व्यवस्था संबंधी कार्यों में गुरु की सहायता करना छात्रों के प्रमुख कर्त्तव्य माने जाते थे।

डॉ. ए.एस. अल्तेकर के अनुसार– "छात्र तथा अध्यापक के मध्य संबंध किसी संस्था के माध्यम से नहीं अपितु सीधे उन्हीं के बीच था।"

11. शिक्षण शुल्क– इस काल में छात्र को किसी भी प्रकार का शिक्षण शुल्क नहीं देना पड़ता था, शिक्षा पूर्णतया निःशुल्क थी। छात्रों से शुल्क माँगना अत्यंत निन्दनीय कार्य समझा जाता था क्योंकि शिक्षा प्रदान करना ब्राह्मणों का धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता था। छात्र शिक्षोपरान्त गुरु को अपनी श्रद्धा तथा सामर्थ्यानुसार दक्षिणा प्रदान किया करते थे।

12. नियंत्रण मुक्ति– इन आश्रमों तथा गुरुकुलों पर केवल आचार्य का ही नियंत्रण रहता था। ये आश्रम तथा गुरुकुल बाह्य नियंत्रण तथा हस्तक्षेप से पूर्णरूपेण स्वतंत्र रहते थे। किसी विशेष व्यक्ति, दल, समूह, राज्य तथा सरकार के नियंत्रण तथा हस्तक्षेप से सदैव दूर रहते थे। प्रत्येक आचार्य अपने आश्रम अथवा गुरुकुल का सर्वेसर्वा होता था।

13. अपरा विद्या– वैदिक काल में परा विद्या का बोलबाला था किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उस युग में अपरा विद्या की पूर्ण अवहेलना तथा उपेक्षा की गई हो। इस युग में अनेक अपरा विधाएँ अपने चरमोत्कर्ष पर थी। **उदाहरण के लिए,** उस समय चिकित्सा शास्त्र की पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी।

प्रश्न 3. प्राचीन भारत में शिक्षा के उद्देश्य और आदर्श क्या थे ? आधुनिक भारत में एक प्रभावी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का निर्माण करते हुए उन्हें किस सीमा तक प्रयोग में लाया जा सकता है ? व्याख्या कीजिए।

***अथवा,* वैदिक शिक्षा के उद्देश्य बताइए। बौद्धिक शिक्षा के प्रमुख केन्द्रों की चर्चा कीजिए।**

(ग्वालियर 2022)

उत्तर– प्राचीन शिक्षा का एक सुसंगठित एवं सुनियोजित स्वरूप भारत में वैदिक शिक्षा के रूप में हुआ क्योंकि इस युग में शिक्षा को व्यवस्थित, परिमार्जित तथा सांस्कृतिक स्वरूप प्रदान किया गया। शिक्षा के विभिन्न आयामों को तराशा गया तथा उसे समाजोनुकूलित, धर्मोनुकूलित एवं समसामयिक राजनीति के परिपेक्ष्य में समंजित किया गया है।

यही कारण है कि शिक्षा को अनेक रूपों में आँका–परखा गया। उसे "विद्या", ज्ञान, विवेक, बुद्धि चातुर्य बोध, विनय एवं पात्रता जैसे विशेषणों से विभूषित किया गया। विद्या के अपेक्षित गुणों को परिभाषित किया गया है।

वैदिक शिक्षा के समक्ष दो वृहद् चुनौतियाँ थीं, एक तो मानव को सामाजिक, धार्मिक संचेतना के अनुकूल बनाना ताकि वह सुनिश्चित तरीके से जीवनयापन कर सके। दूसरा उसे पारलौकिक विद्या में पारंगत करना ताकि वे भौतिक संसार की परिधि से बाहर निकलकर जीवन के चरम आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

वैदिकयुगीन शिक्षा के उद्देश्य– प्राचीन शिक्षा का स्वरूप अत्यंत व्यापक था। यह शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए प्रयासरत थी। अतः इसका वृहद् उद्देश्य था, सम्पूर्ण तथा बहुआयामी व्यक्तित्व का विकास करना। अतः शिक्षा वर्तमान जीवन की श्रेष्ठता हेतु कार्य न करके आगामी जीवन की तैयारी के रूप में प्रदान की जाती थी।

प्राचीन शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य थे–

1. पवित्रता की भावना का विकास करना– प्राचीनकालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों में पवित्रता की भावना का विकास करना होता था, जिससे वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर सकें।

2. चरित्र निर्माण में सहायक– प्राचीनकालीन शिक्षा छात्रों के चरित्र निर्माण में सहायक होती थी जिससे छात्र अपने भावी जीवन में सामाजिक प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकें।

3. व्यक्तित्व के विकास में सहायक– प्राचीनकालीन शिक्षा छात्रों के व्यक्तित्व का विकास करने में सहायक होती थी, साथ ही छात्रों के व्यक्तित्व का चहुँमुखी विकास करती थी।

4. अच्छे नागरिकों के गुणों के विकास– प्राचीनकालीन शिक्षा से छात्रों को अपने अंदर अच्छे नागरिक के गुणों का विकास करने में सहायता मिलती थी।

5. सामाजिक भावना का विकास– छात्र गुरुकुलों में परस्पर सहयोग के साथ रहते थे। इससे उनके अंदर सामाजिक भावना का विकास होता था। सामाजिक कुशलता से तात्पर्य है, कि मनुष्य ने जिस समाज में रहकर अपनी–अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति की है, उस समाज के लिए अपेक्षित योगदान देना।

6. ईश्वर की भक्ति व धार्मिक भावना का विकास– वैदिक शिक्षा धर्म प्रधान थी। वैदिक समाज में प्रायः ब्राह्मण एवं पुरोहित ही अनौपचारिक रूप से शिक्षा प्रदान करने का कार्य करते थे, जिनका संबंध शिक्षा के माध्यम से ईश्वरीय ज्ञान एवं भक्ति की अनुभूति कराना था। यही कारण है कि तात्कालिक शिक्षा को दो स्वरूपों में विभाजित किया गया था–

(अ) अपरा विद्या, (ब) परा विद्या।

(अ) अपरा विद्या– इसके अन्तर्गत समस्त वेदों का अध्ययन निहित था। इसे "त्रयी स्वाध्याय" नाम दिया गया था। इसके अतिरिक्त छात्र को लौकिक साहित्य, जैसे– व्याकरण, ध्वनि विज्ञान, वृत्त, दण्डनीति, धनुर्विद्या, इतिहास, तर्कशास्त्र, दर्शन, ज्योतिषशास्त्र, चिकित्सा विज्ञान एवं ललितकलाओं आदि का ज्ञान प्रदान किया जाता था।

यह विद्या मनुष्य को सांसारिक जीवन की कुशलताओं में पूर्ण करके उसे जीवनयापन में मदद करती थी, किन्तु वैदिक शिक्षा का दीर्घगामी लक्ष्य था। मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन की तैयारी जिसके लिए उसे "परा विद्या" का अध्ययन करना होता था।

(ब) परा विद्या– परा विद्या वह विद्या है जो कि मानव का परम सत्य से साक्षात्कार कराती है। इसे सर्वविद्या प्रतिष्ठा के पद पर भी आसीन किया गया था। इसे वैदिक ज्ञान का केन्द्र बिन्दु माना गया था, जिसमें समस्त अपरा विद्याओं का सूक्ष्म चिंतन एवं विश्लेषण सम्मिलित किया गया था।

7. मोक्ष प्राप्त करने पर बल–प्राचीनकाल में शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य अध्ययन के द्वारा मोक्ष प्राप्त करना था। धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन द्वारा छात्रों को मोक्ष प्राप्त करने की शिक्षा दी जाती थी।

8. भावी जीवन जीने की शिक्षा– छात्रों को पशुपालन तथा कृषि आदि की शिक्षा दी जाती थी। जिससे छात्र शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपने भावी जीवन में रोजगार प्राप्त कर गृहस्थ जीवन का निर्वाह कर सके।

इस प्रकार वैदिक शिक्षा कर्म एवं पूजा का अद्वितीय संगम स्थल की तरह से है जिसे ईश अनुकम्पा द्वारा ही प्राप्त करना संभव है। यह शिक्षा इसी माध्यम से मानव की शक्तियों तथा योग्यताओं को विकसित करती है।

बौद्धकालीन मुख्य वैदिक शिक्षा–केन्द्र–बौद्ध काल में, बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली के साथ–साथ वैदिक शिक्षा प्रणाली भी समान्तर रूप से चल रही थी। इस काल में वैदिक शिक्षा के प्रमुख केन्द्र–केकय, मिथिला, तक्षशिला, काशी, प्रयाग आदि में वैदिक शिक्षा भी दी जा रही थी।

बौद्धकालीन शिक्षा के मुख्य केन्द्र निम्नलिखित थे–

1. विक्रमशिला विश्वविद्यालय–यह विश्वविद्यालय मगध में गंगा तट पर एक पहाड़ी के ऊप सिथत था तथा इसका निर्माण पालवंश के राजा धर्मपाल ने 8वीं शताब्दी के मध्य में कराया था

(i) भवन एवं पुस्तकालय–इस विश्वविद्यालय में बड़े–बड़े कक्षाकक्ष, सभाभवन, शिक्षक निवा और छात्रावास थे। विश्वविद्यालय भवन के केन्द्र में महाबोधि की मूर्ति स्थापित थी और उसके चा ओर 108 मन्दिर थे। इस विश्वविद्यालय के चारों ओर पक्की चार–दीवारी थी जिसमें 6 द्वार थे। इ विश्वविद्यालय में एक विशाल पुस्तकालय था जिसमें हजारों पुस्तकें थीं और सैकड़ों लेखक उन्ह प्रतिलिपियाँ तैयार करने और अनुवाद कार्य में लगे हुए थे। यहाँ के अनुवादकों ने अनेक बौद्ध ग्रन्थ का अनुवाद चीन भाषा में किया था।

(ii) छात्रों का प्रवेश–विश्वविद्यालय के 6 द्वारों पर भिन्न–भिन्न विषय के विद्वान रहते थे छात्र जिस विषय में प्रवेश चाहता था, वह उसी द्वार पर उपस्थित होता था। द्वार पर प्रवेश परीक्ष उत्तीर्ण करने के उपरान्त ही छात्रों को प्रवेश दिया जाता था।

(iii) पाठ्य विषय– इस विश्वविद्यालय में बौद्ध धर्म की **'हीनयान शाखा'** के ग्रन्थों क अध्ययन कराया जाता था। अर्थशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, कानून, दर्शन, भाषा, साहित्य व राजनीतिशास्त्र की शिक्षा की व्यवस्था थी।

(iv) परीक्षाएँ एवं उपाधियाँ– परीक्षाएँ मौखिक रूप से होती थी। उत्तीर्ण छात्रों को स्नातक क उपाधि दी जाती थी।

2. नालन्दा विश्वविद्यालय–यह विश्वविद्यालय बिहार प्रदेश के पटना नगर से लगभग 40 मील दक्षिण पश्चिम पर स्थित था। यह महात्मा बुद्ध के प्रथम शिष्य सारिपुत्र की जन्मस्थली होने के कारण प्रसिद्ध था। यहाँ पर विहार का निर्माण बौद्ध सम्राट अशोक ने द्वितीय शताब्दी में कराया था। यह तृतीय शताब्दी में शिक्षण केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। 7वीं शताब्दी में यह शिक्षा केन्द्रों में सर्वोपरि अर्थात् शिखर पर था।

(i) भवन एवं पुस्तकालय – नालन्दा विश्वविद्यालय में 300 अध्ययन कक्ष, 8 बड़े सभाभवन, 13 छात्रावास और अनेक शिक्षक निवास और भोजनालय थे। इसके चारों ओर पक्की चार–दीवारी थी। इसमें प्रवेश करने के लिए केवल एक द्वारा था। इस विश्वविद्यालय के मध्य में 9 मंजिला विशाल पुस्तकालय था।

(ii) छात्रों का प्रवेश – प्रधान द्वारा पर भिक्षुओं द्वारा प्रवेश परीक्षा ली जाती थी। इसमें केवल 10 से 25 छात्र ही सफल होते थे। छात्रों को प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद बिना किसी भेद–भाव के प्रवेश दिया जाता था।

(iii) पाठ्य–विषय–इस विश्वविद्यालय में बौद्ध साहित्य एवं दर्शन (महायान व हीनयान) दो शाखाओं का, चारों वेद, न्याय, सांख्य एवं योग दर्शन, जैन धर्म, व्याकरण, गणित, रसायनशास्त्र, ज्योतिष, कला, शिल्प और आयुर्वेद चिकित्सा की शिक्षा की उचित व्यवस्था थी।

(iv) परीक्षाएँ एवं उपाधियाँ – शिक्षा पूर्ण होने पर छात्रों की मौखिक परीक्षा होती थी। छात्र भिक्षुओं के समूह के समक्ष उपस्थित होते थे, भिक्षु उनसे मौखिक रूप से प्रश्न पूछते थे तथा सन्तुष्ट होने पर सफल घोषित करते थे। सफल छात्रों को स्नातक की उपाधि दी जाती थी।

3. तक्षशिला विश्वविद्यालय – तक्षशिला वर्तमान पाकिस्तान के रावलपिंडी शहर से लगभग 35 किमी. की दूरी पर स्थित था। वैदिक काल से ही यह शिक्षा का प्रमुख केन्द्र माना जाता था–

(i) भवन एवं पुस्तकालय – प्रारंभ में केवल एक विहार का निर्माण यहाँ पर हुआ था, पर आगे चलकर यहाँ कई विहारों का निर्माण हुआ। इन विहारों में बड़े–बड़े शिक्षण कक्ष, सभाभवन, विशाल पुस्तकालय, शिक्षा निवास, छात्रावास और भोजनालय आदि बने हुए थे। यह एक उच्च श्रेणी के विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हुआ।

(ii) छात्रों का प्रवेश – इसमें सभी जाति के बालकों को प्रवेश का अधिकार था। प्रवेश के समय कम से कम 16 वर्ष की आयु होना आवश्यक था। प्रवेश हेतु परीक्षाएँ करवाई जाती थीं। प्रवेश के समय प्रत्येक छात्र को 1000 मुद्राएँ देनी होती थीं। जो छात्र एक साथ ये मुद्राएँ देने में असमर्थ होते थे वे अपनी सुविधानुसार दे सकते थे। जो छात्र शुल्क देने में ही असमर्थ होते थे वे सेवा कार्य करते हुए शिक्षा प्राप्त करते थे।

(iii) पाठ्य–विषय–इस विश्वविद्यालय में धार्मिक एवं लौकिक दोनों प्रकार की शिक्षा की उचित व्यवस्था थी। धार्मिक शिक्षा के अन्तर्गत बौद्ध धर्म एवं वैदिक धर्म की शिक्षा दी जाती थी। लौकिक शिक्षा के अन्तर्गत भाषा (संस्कृत व पाली), साहित्य (वैदिक एवं बौद्ध), व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन और अर्थशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री चाणक्य इसी विश्वविद्यालय के छात्र थे। इन सब शिक्षाओं के साथ ही यहाँ कला–कौशलों, व्यवसायों, चिकित्सा, विज्ञान शिक्षा तथा सैनिक शिक्षा की भी उत्तम व्यवस्था थी।

(iv) परीक्षाएँ एवं उपाधियाँ – शिक्षा पूरी होने पर छात्रों की परीक्षा होती थी। भिक्षुओं का समूह, छात्रों से मौखिक प्रश्न पूछता था तथा जो छात्र इसमें सफल होते थे उन्हें प्रमाण पत्र दिये जाते थे।

प्रश्न 4. प्राचीन भारतीय वैदिक शिक्षा के मूल्यों का वर्णन कीजिए। **(इंदौर 2023)**

***अथवा*, प्राचीन शिक्षा प्रणाली के स्त्रोत क्या थे ? प्राचीन भारतीय शिक्षा की मुख्य विशेषताओं पर चर्चा करें।** **(भोपाल 2021)**

उत्तर– वर्तमान की जड़ें अतीत में विद्यमान होती है। भारत का अतीत गौरवमय रहा है। इससे वर्तमान आलोकित हुआ है और भविष्य के प्रति आस्था उपजी है। भारत का अतीत सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक कारकों से उतना प्रभावित नहीं रहा जितना कि यहाँ की आध्यात्मिकता ने उसे प्रभावित किया है। यहाँ पर मानव का जीवन दर्शन "सर्व भूते हितो रता:" रहा है। यहाँ की संस्कृति ने विश्व बंधुत्व तथा अति–मानवता का स्वप्न देखा है और उसे साकार किया है। भारत का इतिहास वैदिक युग से आरंभ माना जाता है। ईसा से लगभग 5000 वर्ष पूर्व भारत में ज्ञान तथा शिक्षा उच्चतम स्तर पर थी। इस युग की शिक्षा की विशेषताएँ इस प्रकार थीं–

1. सामाजिक जीवन की आधारशिला– प्राचीनकाल में आध्यात्मिकता से ही राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक धाराएँ प्रवाहित हुईं। सत्याचरण, प्रेम, अहिंसा आदि पर ही सामाजिक जीवन की नींव रखी गई थी। सहयोग तथा सहअस्तित्व उसका प्राण था। व्यक्ति समाज की आधारभूत इकाई था। जीवन का निश्चित उद्देश्य था, निश्चित आदर्श थे, भौतिक साधनों का उपयोग इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता था। प्राचीनकाल में शिक्षा इस सिद्धांत पर आधारित थी। अनादिकाल से भारत में शिक्षा स्वयं के लिए नहीं अपितु धर्म के लिए प्राप्त की जाती थी। यह मुक्ति और आत्मबोध का साधन था और जीवन का महान् लक्ष्य मुक्ति था।

2. प्रकृति की गोद में विकास– भारतीय शिक्षा का आरंभ प्रकृति की गोद में मानव की मूलभू जिज्ञासा की शांति के लिए हुआ था। भारत में शिक्षा के तत्व–प्रणाली तथा संगठन का स्वरूप प्राच वैदिक युग अर्थात् मोहनजोदड़ो एवं सिंधु नदी की सभ्यता का उत्कृष्ट स्वरूप इस बात की ओ संकेत करता है कि शिक्षा के अभाव में मनुष्य इतनी प्रगति नहीं कर सकता था। आर्य युग को शिक्ष का स्वस्थ, शांत, सौम्य एवं व्यावहारिक युग माना जाता है। **डॉ. अल्तेकर** के अनुसार, "वैदिक युग से लेकर अब तक शिक्षा के विकास के स्रोत से अभिप्राय यह रहा है कि यह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा मार्ग आलोकित करता है।"

3. प्राचीनतम परम्परा– भारत की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक परम्परा विश्व के इतिहास में प्राचीनतम है। आज का भारत जो कुछ है, वह अपनी गत् 5000 वर्ष की सांस्कृतिक एवं सामाजिक विरासत की देन है। प्राचीन भारत में समाज एवं राष्ट्र की परम्पराओं का संरक्षण विद्यालयों में होता था। इस समय जनसम्पर्क के साधन तो न थे पर विद्यालयों से ही सम्पर्क एवं संबंधों का गठन होता था।

4. वेद आधारित शिक्षा– प्राचीन भारत की शिक्षा एवं समाज की जानकारी देने वाले ग्रंथों में वेदों का स्थान पहला है। **डॉ. राधामुकुंद मुखर्जी** ने कहा है– "प्राचीनतम वैदिक काव्य के जन्म से ही भारतीय साहित्य को पूर्णरूपेण धर्म से प्रभावित देखते हैं।" प्राचीनकाल में अनेक विधाओं की शिक्षा की व्यवस्था की थी।

5. परिवार प्रथम पाठ्यशाला– आज की तरह उस काल में भी घर बालक की प्रथम पाठशाला के रूप में ही कार्य करते थे। परिवार बालक की प्राथमिक पाठशाला थी। बालक अपने विकास के साथ–साथ सहज रूप से बहुत–सी बातों को स्वयं सीखता था। समुदाय के व्यवहार तथा समाज की भाषा को वह स्वाभाविक रूप से घर पर ही सीख लेता था। **डॉ. एफ.डब्ल्यू. थॉमस** ने लिखा है– "भारत में शिक्षा कोई नई बात नहीं है। संसार का कोई भी देश ऐसा नहीं है जहाँ पर ज्ञान के प्रति प्रेम की परम्परा भारत से अधिक प्राचीन एवं शक्तिशाली हो।" प्राचीनकाल में शिक्षा का आधार धर्म तथा धार्मिक क्रियाएँ थीं। वैदिक क्रियाएँ ही शिक्षा की प्रमुख आधार थी।

प्रश्न 5. प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का उल्लेख करें।

उत्तर–प्राचीन भारतीय में शिक्षा पद्धति का उल्लेख–निम्न प्रकार से उल्लेख किया गया है-

1. शिक्षण व्यवस्था– वैदिककाल में गुरुकुल प्रणाली थी। छात्र, माता–पिता से अलग गुरु के घर पर ही शिक्षा प्राप्त करता था। यह गुरुकुल पद्धति कहलाती थी। छात्र गुरु गृह में ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ शिक्षा प्राप्त करता था। वेदकालीन शिक्षा–प्रणाली में आरम्भिक युग में शिक्षक प्रमुख था किन्तु उत्तरकाल में शिष्य प्रमुख थे। श्रवण, मनन, निदिध्यासन शिक्षण की प्रक्रिया थी। गुरुकुल शिक्षा के केन्द्र थे। गुरुकुलों में योग्य तथा चरित्रवान व्यक्ति ही शिक्षा देते थे। इनमें प्रतिभाशाली विद्वानों को पुरस्कृत भी किया जाता था। गुरुकुल के अतिरिक्त अन्य शिक्षण संस्थाओं का प्रचलन भी था। ये संस्थाएँ इस प्रकार थीं–

(i) चरण–इनमें एक शिक्षक एक वेद की शिक्षा देता था।

(ii) घटिका–धर्म तथा दर्शन की उच्च शिक्षा कई शिक्षक देते थे।

(iii) टोल–एक ही शिक्षक केवल संस्कृत भाषा की शिक्षा देते थे।

(iv) परिषद्–लगभग 10 शिक्षकों की एक परिषद् अनेक विषयों की शिक्षा प्रदान करती थी।

(v) चतुष्पथी–इसे ब्राह्मणीय विद्यालय भी कहा जाता था। एक ही शिक्षक दर्शन, पुराण, विधि तथा व्याकरण की शिक्षा देता था।

(vi) विशेष विद्यालय–विषय विशेष–चिकित्सा, विद्वान, कृषि, वाणिज्य, सैन्य शिक्षा की व्यवस्था हेतु विशेष विद्यालय होते थे।

2. उपनयन संस्कार– 'उपनयन' का अर्थ है, 'पास ले जाना', 'उपनयन' संस्कार के पश्चात् ही बालक को शिक्षोपार्जन के लिए गुरु के पास ले जाया जाता था। उपनयन संस्कार की आयु ब्राह्मण, क्षत्रीय तथा वैश्यों के लिए क्रमशः 8, 11 तथा 12 वर्ष थी। उपनयन संस्कार से शिक्षा का आरंभ होता था। यह संस्कार शैशवावस्था से बाल्यावस्था में प्रवेश करने का सूचक है। कालान्तर में यह संस्कार केवल ब्राह्मणों के लिए ही रह गया है।

3. ब्रह्मचर्य–हर छात्र को जीवन के विशिष्ट भाग में ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था। आचरण की शुद्धता को प्रमुखता दी जाती थी। अविवाहित छात्रों को ही गुरुकुल में प्रवेश मिलता था। छात्र–जीवन में पर्दापण करने के बाद छात्र मेखला (करधनी) धारण करता था। मेखला वर्ग के अनुसार धारण की जाती थी। ब्राह्मण मूंज की, क्षत्रिय तांत की तथा वैश्य ऊन की मेखला धारण करते थे। पहनने के वस्त्र भी इसी क्रम में रेशम, ऊन, सूत आदि के होते थे।

4. गुरु सेवा– हर छात्र को गुरुकुल में रहते हुए गुरु सेवा अनिवार्य रूप से करनी पड़ती थी। गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करना पाप था और इसके लिए दंड भी दिया जाता था। आचार्य को दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ उपलब्ध कराना छात्र का प्रमुख कर्त्तव्य था। गुरु भी छात्रों से ऐसे कार्य नहीं लेते थे जिनसे उनके अध्ययन में बाधा पहुँचे।

शिक्षा कार्य का प्रारंभ प्रातः काल से होता था। छात्र अपने दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर हवन आदि में भाग लेते थे। इसके बाद उनका अध्ययन चलता था। दोपहर में भोजनादि के बाद फिर विद्याभ्यास आरंभ होता था। सूर्यास्त के समय हवनादि होता था और फिर इसी प्रकार दिन की क्रियाएँ समाप्त हो जाती थी।

5. भिक्षावृत्ति– छात्र को अपना तथा गुरु का पोषण भिक्षावृत्ति द्वारा करना पड़ता था। भिक्षावृत्ति को बुरा नहीं समझा जाता था। हर गृहस्थ छात्र को भिक्षा अवश्य देता था क्योंकि वह जानता था कि उसका पुत्र भी कहीं भिक्षा माँग रहा होगा। छात्रों के लिए भिक्षा का नियम बनाने का कारण यह था कि भिक्षा से जीवन में विनय आती थी। छात्र को यह अनुभूति होती थी कि समाज की सेवा तथा सहानुभूति से ही ज्ञान प्राप्त व जीविकोपार्जन किया जा सकता है।

6. व्यावहारिकता– उस समय की शिक्षा में जीवन की आवश्यक क्रियाएँ सम्मिलित थीं। **डॉक्टर अल्तेकर** के अनुसार– "शिक्षा का उद्देश्य विषयों को साधारण ज्ञान मात्र करा देना न था, अपितु इसका विभिन्न क्षेत्रों में उच्च कोटि के यज्ञ बनाना था। इसी कारण व्यावसायिक शिक्षा में प्रायोगिक शिक्षण पर बल दिया जाता था।

7. व्यक्ति के लिए शिक्षा– वैदिक युग में हर छात्र का विकास करने के लिए गुरु प्रयत्नशील रहता था। वह उनका शारीरिक तथा मानसिक विकास करता था। इस युग में छात्रों के वैयक्तिक विकास पर पूरा–पूरा ध्यान दिया जाता था। परंतु अयोग्यों (विशेषकर नैतिक तथा बौद्धिक दृष्टि से हीनता) के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था न थी।

8. अवधि– गुरु–गृह में शिक्षा की अवधि 24 वर्ष की आयु तक होती थी। 25 वें वर्ष में शिष्य को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना पड़ता था। उस समय छात्रों की तीन श्रेणियाँ थीं–

(i) 24 वर्ष तक अध्ययन करने वाले– वसु

(ii) 36 वर्ष तक अध्ययन करने वाले– रूद्र

(iii) 48 वर्ष तक अध्ययन करने वाले– आदित्य।

9. पाठ्यक्रम– इस काल में वैदिक साहित्य का अध्ययन ही प्रमुख था परंतु ऐतिहासिक कथाएँ, पौराणिक आख्यान एवं वीर गाथाएँ भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित थीं। गणित में रेखागणित का ज्ञान भी दिया जाता था। चारों वेदों का अध्ययन कराया जाता था। ब्राह्मण साहित्य का निर्माण भी इसी युग में हुआ। पाठ्यक्रम में परा–अपरा, विद्या, वेद, वैदिक व्याकरण, कल्प राशि, तर्क, दर्शन, विधि, आचार, छात्र–विद्या आदि विषयों का अध्ययन कराया जाता था।

प्रश्न 6. वैदिक युगीन शिक्षा की व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

उत्तर– वैदिक युग में शिक्षा की व्यवस्था दो स्तरों पर की गई थी–

1. प्राथमिक शिक्षा एवं 2. उच्च शिक्षा।

उपरोक्त दोनों शिक्षाओं का वर्णन निम्न प्रकार से हैं–

1. वैदिक युग में प्राथमिक शिक्षा– वैदिक युग में प्राथमिक शिक्षाओं का वर्णन निम्न प्रकार से हैं–

(i) सामान्य शिक्षा– प्राथमिक शिक्षा पर ब्राह्मणों का कोई अधिकार नहीं होता था। इसलिए उन्होंने धर्म–ग्रंथों में इसका विवरण न देकर इसकी उपेक्षा की है।

(ii) प्रवेश–प्राथमिक शिक्षा का आरंभ पाँच वर्ष की आयु में विद्यारम्भ संस्कार से होता था। यह सभी जातियों के बालकों के लिए अनिवार्य होती थी। इसका अर्थ था सभी जातियों के बालक प्राथमिक शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने की अवधि कितने समय की थी यह तो ठीक प्रकार से नहीं कहा जा सकता परन्तु **डॉ. ए. एस. अल्तकर** ने इसकी अवधि छः वर्ष निर्धारित की।

(iii) पाठ्यक्रम–पाठ्यक्रम में वैदिक मंत्रों का उच्चारण करना और बोलना सिखाया जाता था। मंत्रों का स्मरण, भाषा को पढ़ना और लिखना, साहित्य एवं व्याकरण आदि को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया था।

2. वैदिक युग में उच्च शिक्षा–वैदिक युग में उच्च शिक्षा की व्यवस्था निम्न प्रकार की होती थीं–

(i) प्रवेश– उच्च शिक्षा केवल ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्य छात्रों को दी जाती थी। छात्र सामान्य रूप से उपनयन संस्कार के उपरान्त क्रमशः आठ, ग्यारह और बारह वर्ष की आयु में शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश करते थे।

(ii) पाठ्यक्रम– पाठ्यक्रम में परा विद्या और अपरा विद्या दोनों को स्थान दिया गया था। परा विद्या के अन्तर्गत वेद, वेदांग, पुराण, दर्शन, उपनिषद् आदि आध्यात्मिक विषय थे। साहित्य एवं धर्मशाला के अध्ययन की अवधि दस वर्ष और प्रत्येक वेद के अध्ययन की अवधि बारह वर्ष की होती थी। अपरा विद्या के अन्तर्गत इतिहास, तर्कशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, भौतिकशास्त्र आदि लौकिक विषय होते हैं।

(iii) शिक्षण विधि– छात्र पाठ्य–विषय का मनन, चिंतन, स्वाध्याय और पुनरावृत्ति करते थे। प्रवचन, व्याख्यान, शास्त्रार्थ, प्रश्नोत्तर तथा वाद–विवाद आदि शिक्षण विधियाँ थीं।

(iv) शिक्षण संस्थाएँ– वैदिक युग में मुख्य शिक्षण संस्थाओं में गुरुकुल, ऋषि आश्रम, टोल, चरण, घटिका, विद्यापीठ, विशिष्ट विद्यालय, मंदिर महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय होते थे। टोल में भाषा और साहित्य की शिक्षा दी जाती थी, घटिका में भाषा साहित्य, धर्म, दर्शन एवं नीतिशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी तथा चरण में वेद के किसी विशेष अंग की शिक्षा दी जाती थी।

(v) परीक्षाएँ– वैदिक युग में मौखिक परीक्षाओं का प्रचलन होता था। लिखित परीक्षाएँ आयोजित नहीं की जाती थीं।

(vi) उपाधियाँ– वैदिक युग में परीक्षा में सफल होने वाले छात्रों को उपाधि भी प्रदान की जाती थी। जो छात्र गुरुकुलों का बारह वर्षीय पाठ्यक्रम पूरा कर लेते थे उन्हें 'स्नातक' जो छात्र चौबीस वर्षीय पाठ्यक्रम पूरा कर लेते थे उन्हें 'वसु', जो छात्र छत्तीस वर्षीय पाठ्यक्रम पूरा कर लेते थे उन्हें 'रूद्र' तथा जो छात्र अड़तालीस वर्षीय पाठ्यक्रम पूरा कर लेते थे, उन्हें 'आदित्य' कहा जाता था।

प्रश्न 7. वैदिककालीन शिक्षण विधियों का उल्लेख कीजिए। (जबलपुर 2016; इंदौर 23)

***अथवा*, वैदिक युग में शिक्षा के लिए कौन–सी शिक्षण विधियाँ प्रयुक्त की जाती थी एवं शिक्षक की क्या भूमिका थी ? वर्णन कीजिए। (इंदौर 2022)**

उत्तर– वैदिककालीन शिक्षण विधियाँ–

1. प्रवचन विधि– गुरु छात्रों को धार्मिक ग्रंथों के प्रवचन देते थे। छात्र उन प्रवचनों को ध्यान से सुनते थे तथा उनका अनुकरण करते थे। गुरु शिष्यों के सम्मुख वेदमंत्रों का उच्चारण करते थे। शिष्य उन्हें बार–बार दोहराकर कण्ठस्थ करते थे।

2. व्याख्यान विधि– शिष्यों को वेदों के मंत्र कंठस्थ कराने के बाद गुरु उसकी व्याख्या कर उसका अर्थ एवं भाव स्पष्ट करते थे। अर्थ स्पष्ट करने के लिए उदाहरणों का प्रयोग करते थे।

3. प्रश्नोत्तर, शास्त्रार्थ और वाद–विवाद विधि– वैदिक काल में गुरु उपदेश देते थे, व्याख्यान देते थे, साथ ही छात्रों की शंका का समाधान करने के लिए बीच–बीच में प्रश्न भी पूछते थे। इन प्रश्नों के माध्यम से छात्रों की समस्याओं का निवारण किया जाता था। शिष्यों और गुरुओं के बीच वाद–विवाद का आयोजन भी किया जाता था। विद्वानों के सम्मेलनों का आयोजन किया जाता था जिसमें विद्वानों के बीच शास्त्रार्थ होता था। शिष्य इन सबको सुनकर अपने ज्ञान में वृद्धि करते थे।

4. तर्क विधि– तर्कशास्त्र जैसे विषयों के अध्ययन के लिए तर्क विधि का प्रयोग किया जाता था जिससे छात्र विषय के अन्तर्गत समाहित तथ्यों को समझ सकें।

5. कहानी विधि– गुरु शिष्यों को शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनाते थे तथा बाद में शिष्यों से पूछते थे कि उन्हें इस कहानी से क्या शिक्षा मिली। इस विधि का प्रयोग शिक्षण को रुचिकर बनाने के लिए किया जाता था।

प्रश्न 8. वैदिककालीन मुख्य शिक्षा केन्द्रों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– वैदिक युग में तीर्थ स्थान धर्म प्रचार के केन्द्र होने के साथ–साथ शिक्षा केन्द्रों के रूप में विकसित हुए जो कि मिथिला, तक्षशिला, केकय, पाटलिपुत्र, काशी, प्रयाग, अयोध्या कल्याणी एवं कन्नौज आदि थे। वैदिक युगीन मुख्य शिक्षा केन्द्र निम्नलिखित थीं–

1. मिथिला– मिथिला मध्य भारत के तत्कालीन मिथिला राज्य की राजधानी थी। यहाँ धर्म और दर्शन के विद्वानों के सम्मेलनों का आयोजन होता था। इस नगर में दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान निवास करते थे। दूर–दूर से लोग यहाँ धर्म और दर्शन की शिक्षा प्राप्त करने आते थे। उत्तर वैदिक काल में यहाँ कला–कौशल एवं सैनिक शिक्षा भी दी जाने लगी थी।

2. तक्षशिला– तक्षशिला गांधार राज्य की राजधानी थी। यहाँ संस्कृत भाषा, साहित्य, व्याकरण, चारों वेदों, धर्म तथा दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान थे। कोई विद्वान संस्कृत भाषा एवं साहित्य के लिए प्रसिद्ध था तो कोई विद्वान धर्म एवं दर्शन की शिक्षा के लिए। ऐसा भी ज्ञात होता है कि यहाँ पर कुछ विद्वान आयुर्वेद के विशेषज्ञ भी हो। वैदिक काल में तक्षशिला वैदिक साहित्य धर्म, दर्शन और आयुर्वेद की शिक्षा के मुख्य केन्द्र के रूप में विकसित हुआ।

3. केकय– केकय वैदिक काल में शिक्षा का मुख्य केन्द्र था। यहाँ संस्कृत भाषा, व्याकरण, साहित्य, वेद, धर्म और दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। ऐसा उल्लेख मिलता है कि केकेय नरेश बहुत बड़े विद्वान थे। उनके राज्य में एक भी व्यक्ति अशिक्षित नहीं थे। यहाँ कला–कौशलों, व्यवसायों और सैनिक शिक्षा की व्यवस्था थी।

4. काशी– भारत के पूर्वी भाग में स्थित काशी भी प्रारंभ से ही विद्वानों तथा ऋषियों के बीच शास्त्रार्थ का मुख्य केन्द्र रहा है। काशी के अश्वपति, अजातशत्रु ब्रह्मविद्या के पंडित थे। उन्होंने अपने शासन काल में विद्वानों को आमंत्रित कर यहाँ आत्मा–परमात्मा और ब्रम्ह के स्वरूप पर शास्त्रार्थ कराया था। यह विभिन्न वेदों की शिक्षा और शास्त्रार्थ के केन्द्र के रूप में विकसित हुआ।

5. प्रयाग– यह भारत के पूर्वी भाग में स्थित है। वैदिक काल में यहाँ पर अनेक ऋषि आश्रम थे। ये आश्रम धर्म और दर्शन शिक्षा के मुख्य केन्द्र थे। यहाँ बड़े–बड़े विद्वान अपनी शंका समाधान के लिए आते थे। यह एक तीर्थ स्थान तथा धार्मिक स्थान था। यह धर्म एवं दर्शन के शिक्षा केन्द्र के रूप में विकसित हुआ।

6. कन्नौज– यहाँ पर धर्म, दर्शन तथा वेदों का अध्यापन कराया जाता था। यहाँ पर अपने-अपने क्षेत्र में विशेष योग्यता रखने वाले विद्वान होते थे। वैदिक काल में यह शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था।

7. अयोध्या– यह भगवान श्री राम की जन्मभूमि है। यहाँ पर चारों वेद, साहित्य एवं व्याकरण की शिक्षा की उचित व्यवस्था थी।

प्रश्न 9. उत्तर वैदिक युगीन शिक्षा को स्पष्ट कीजिए।

***अथवा*, उपनयन संस्कार एवं समावर्तन संस्कार क्या है ?** (जबलपुर 2021)

उत्तर– ब्राह्मण युगीन शिक्षा व्यवस्था वैदिककालीन शिक्षा का अन्तिम रूप है इसलिए इसे उत्तर वैदिक शिक्षा अथवा ब्राह्मण अथवा उपनिषद् काल के नाम से भी जाना जाता है। वैदिक युग में शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक विकास करना होता है परन्तु धीरे–धीरे उत्तर वैदिक काल में यज्ञ, हवन, कर्मकाण्ड, बाह्य आडम्बर तथा दिखावे का बोलबाला हो गया था। इस युग में पुरोहितवाद बढ़ रहा था। साथ ही शाखा, चरण, परिषद्, कुल, गोत्र संस्थाओं का जन्म शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए होने लगा था। ब्राह्मण को पुरोहित के नाम से पुकारा जाने लगा था। पुरोहित का स्थान बहुत ऊँचा माना जाता था। उसके द्वारा कहे गये वाक्य "अन्धकार से मुक्त कर प्रकाश की ओर अग्रसर करें" को ब्रम्हवाक्य माना जाता था।

वैदिक कालीन शिक्षा का युग 1400 ई.पू. पर समाप्त होता है और उसके बाद उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा का युग प्रारंभ होता है। यह युग लगभग 800 वर्षों का माना जाता है। इसकी समाप्ति विद्वानों के अनुसार 600 ई.पू. में होती है। यह समय ऋग्वेद काल के अन्त और बौद्ध तथा जैन धर्म के उदय के मध्य का था। शिक्षा का मूल उद्देश्य वैदिक तथा उत्तर वैदिक युग में समान रहा। दोनों युगों का उद्देश्य सांसारिक बन्धनों को तोड़कर मोक्ष प्राप्त करना था लेकिन इस उद्देश्य को पूरा करने के तरीकों में परिवर्तन आ गया। वैदिक काल में जहाँ छात्र गुरु के परिवार में तप और यज्ञ के माध्यम से शिक्षा की प्राप्ति करते थे, वहीं उत्तर वैदिक युग में तप और साधना अथवा आत्मचिंतन विधि का स्थान अनुशासित यज्ञों ने ले लिया। साधना, जो वैदिक युग में अन्तर्मुखी थी, उत्तर वैदिक युग में बहिर्मुखी हो गई।

उपनिषद्, अरण्यक, ब्राह्मण आदि ग्रन्थों की रचना इसी युग की देन है। दर्शन की छः शाखाओं– सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, कर्म (पूर्व मीमांसा) तथा वेदान्त का विकास भी इसी युग में

हुआ साथ ही समाज को चार वर्णों–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र में विभाजित किया जाना भी इसी युग की देन है। इस युग में सूत्र–साहित्य का सृजन भी हुआ, अतः इसे "सूत्रकालीन शिक्षा" के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। इस युग में मत–मतान्तरों, यजमान व जातिप्रथा, उपनयन संस्कार प्रणाली, कर्मकाण्ड, वर्ण के आधार पर शिक्षा व्यवस्था, शूद्र तथा स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखना आदि कार्य किया गया।

इस युग के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे–

1. धार्मिकता को बढ़ावा देना– इस युग में छात्रों को धार्मिक ग्रन्थ पढ़ाए जाते थे और उनका अनुसरण करने के लिए कहा जाता था जिससे छात्रों के अन्दर धार्मिक गुणों का विकास हो सके।

2. ब्राह्मण ग्रंथों का अनुसरण करना– इस युग में छात्रों को ब्राह्मण द्वारा लिखे गये ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाता था साथ ही उनके अनुसरण पर भी जोर दिया जाता था।

3. चरित्र–निर्माण करना– शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों का चरित्र निर्माण करना था जिससे वे समाज में अपना मान–सम्मान बढ़ा सकें।

4. संस्कृति का संरक्षण करना– छात्रों को भारतीय संस्कृति का ज्ञान प्रदान किया जाता था। उन्हें अपनी संस्कृति की किस प्रकार रक्षा करके उसे बढ़ाना है, इसके विषय में ज्ञान दिया जाता था। जिससे छात्र अपनी संस्कृति की रक्षा कर सकें।

5. नैतिक मूल्यों का ज्ञान कराना– उत्तर वैदिक युग में छात्रों को नैतिक मूल्यों का ज्ञान प्रदान किया जाता था जिससे छात्रों के अन्दर दूसरों का सम्मान व आदर करने का गुण तथा दूसरों की मदद करने का गुण उत्पन्न हो सके।

उत्तर वैदिककालीन शिक्षा की विशेषताएँ निम्न प्रकार थीं–

1. उपनयन संस्कार– प्रवेश के समय छात्रों का उपनयन संस्कार होता था। उपनयन का अर्थ है– "पास ले जाना" अर्थात् शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरु के पास ले जाना। उपनयन संस्कार के समय ब्राह्मण छात्र की आयु आठ वर्ष, क्षत्रिय छात्र की आयु ग्यारह वर्ष व वैश्य छात्र की आयु बारह वर्ष निर्धारित की गई थी। उपनयन संस्कार के बाद छात्र द्विज (ब्राह्मण) कहलाता था।

द्विज का अर्थ है, दो जन्म लेने वाला। दो जन्मों से तात्पर्य भौतिक और आध्यात्मिक जन्म से है। उपनयन संस्कार का उत्तर वैदिक काल में इतना अधिक महत्व होता था, कि इसे छात्र का दूसरा जन्म माना जाने लगा। उपनयन संस्कार के अवसर पर गुरु बालक को गुरुमंत्र की दीक्षा देता था। यहाँ से उसका आध्यात्मिक जीवन प्रारंभ होता था।

2. बह्मचर्य– उत्तर वैदिक काल में छात्रों को ब्रह्मचर्य व्रत लेना होता था। इस युग में ब्रह्मचर्य का पालन करने पर अत्यधिक जोर दिया जाता था। आर्यों ने मानव जीवन को चार भागों में विभाजित किया था। जन्म से 25 वर्ष, 26 से 50 वर्ष, 51 से 75 वर्ष और 76 से 100 वर्ष। मानव के प्रथम 25 वर्ष को ब्रह्मचर्य कहते थे। इस समय व्यक्ति गुरु से विद्या प्राप्त करता हुआ अपना शारीरिक, आध्यात्मिक एवं मानसिक विकास करता था। उपनयन संस्कार के बाद ब्रह्मचारी गुरुकुल में, गुरु के पास रहकर, कठोर ब्रह्मचर्य का पालन कर शिक्षा ग्रहण करता था।

3. कर्मकाण्ड व यजमान प्रथा– कर्मकाण्ड व यजमान प्रथा उत्तर वैदिक युग की देन है। हवन, मन्त्रों, बाह्य आडम्बरों तथा दिखावे पर अधिक बल दिया जाने लगा था।

4. धर्म प्रधान होना–उत्तर वैदिक युग में शिक्षा धर्म प्रधान होती थी। छात्रों को धार्मिक क्रियाओं संबंधी ज्ञान प्रदान करने पर बल दिया जाता था।

5. शिक्षण विधियाँ– इस युग में मौखिक कार्य के साथ–साथ लिखने का कार्य भी दिया जाता था। साथ ही प्रश्नोत्तर व वाद–विवाद आदि शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता था।

6. पाठ्यक्रम– पाठ्यक्रम में व्याकरण, गणित, दर्शन, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, कृषि, राजनीति आदि को सम्मिलित किया गया था और शुद्ध उच्चारण, स्वर, व्यंजन, रस, छन्द व अलंकार आदि के अभ्यास पर बल दिया जाता था।

7. शिक्षण संस्थाएँ– ब्राह्मणीय शिक्षा के प्रमुख शिक्षण संस्थान मिथिला, तक्षशिला, बनारस, काशी, केकय आदि होते थे।

8. गुरु शिष्य संबंध– उत्तर वैदिक काल में भी वैदिक काल के समान ही गुरु और शिष्य के बीच मधुर संबंध होते थे। गुरु और शिष्य पिता–पुत्र के समान आश्रम में स्नेह से रहते थे। गुरु, शिष्य का पिता की तरह ध्यान रखते थे तथा छात्र, गुरु को आदर व सम्मान देते थे। दोनों परिवार के सदस्यों की तरह रहते थे।

9. भिक्षावृत्ति– भिक्षा का अर्थ है विनम्रता। भिक्षा मांगने का मुख्य उद्देश्य छात्रों के अहंकार को समाप्त करना होता था। छात्र बिना किसी व्यक्तिगत भेद–भाव के भिक्षावृत्ति करते थे और इस भिक्षा के द्वारा ही गुरु आश्रम में सबके लिए भोजन की व्यवस्था करते थे।

10. स्त्रियों व शूद्रों को शिक्षा से वंचित करना– उत्तर वैदिक युग में समाज चार वर्णों में विभाजित हो गया था और इन चारों वर्णों के कार्य भी निश्चित कर दिये गये थे। इनमें शूद्रों का कार्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण की सेवा करना होता था। जिस कारण शूद्रों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं होता था। साथ ही स्त्रियों को भी शिक्षा से वंचित रखा गया। शिक्षा केवल उच्च कुलों तक ही सीमित हो गई।

11. समावर्तन संस्कार– शिक्षा समाप्त होने पर समावर्तन संस्कार होता था। समावर्तन का अर्थ है– 'घर लौटना' अर्थात् शिक्षा प्राप्त करके अपने घर लौटना। छात्र ब्रह्मचारी वस्त्र उतारकर गृहस्थ वस्त्र पहनते थे। इसके बाद गुरु उन्हें उपदेश (दीक्षांत भाषण) देते थे जिसमें गृहस्थ जीवन के नियम, समाज सेवा, राष्ट्र सेवा का उपदेश दिया जाता था। इसके बाद गुरु उन्हें आशीर्वाद देते थे। साथ ही शिष्य द्वारा गुरु दक्षिणा भी दी जाती थी। यह वर्तमान में विश्वविद्यालयों द्वारा दिये जाने वाले दीक्षान्त समारोह जैसा ही होता था।

उत्तर वैदिक कालीन शिक्षण व्यवस्था– उत्तर वैदिक कालीन शिक्षण व्यवस्था निम्नलिखित प्रकार की होती थी–

1. शिक्षण विषय– इस काल में चारों वेद, इतिहास, पुराण, व्याकरण, अंकगणित, ब्रम्हविद्या, संगीत शास्त्र आदि प्रमुख शिक्षण विषय थे।

2. शिक्षण पद्धति– इस युग में श्रवण, मनन, निदिध्यासन शिक्षा की तीन मनोवैज्ञानिक पद्धतियाँ होती थीं जिनका प्रयोग शिक्षा प्रदान करने में किया जाता था। श्रवण की हुई बात का मनन द्वारा विश्लेषण तथा निदिध्यासन के माध्यम से प्रत्यक्षीकरण मानसिक शिक्षा प्राप्त करने की मान्य प्रक्रिया है। इन्हीं मनोवैज्ञानिक विधियों का उपयोग वैदिक युग में भी किया जाता था। ज्ञान प्राप्त करने की इन विधियों में यह आवश्यक था कि छात्र एकाग्र होकर संयमित प्रयास करे अर्थात् संयम और एकाग्रता इन विधियों के सफल क्रियान्वयन के लिए अनिवार्य वस्तुएँ थीं।

3. छात्रों की जीवनचर्या– छात्र गुरुओं द्वारा संचालित आश्रमों में शिक्षा ग्रहण करते थे। यहाँ अनुशासन और आश्रम के नियमों का पालन करना अनिवार्य था। छात्रों को व्यावहारिक, मानसिक और नैतिक तीनों प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

4. व्यावहारिक शिक्षा– व्यावहारिक शिक्षा के अन्तर्गत भिक्षा माँगना, यज्ञ कुण्ड की अग्नि को बनाए रखना, पशुओं तथा आश्रम के अन्य जीवों की सेवा करना आदि की शिक्षा भी दी जाती थी।

5. मानसिक शिक्षा– मानसिक शिक्षा के अन्तर्गत श्रवण, मनन, निदिध्यासन के तीन अंग हैं। इन तीनों अंगों के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाती थी।

6. नैतिक शिक्षा– नैतिक शिक्षा के अन्तर्गत छात्रों के आचरण संबंधी नियम होते थे। उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना होता था। इसी का पालन करके वह अपने आचार–विचार में सुधार लाते थे एवं उत्तम चरित्र का अनुसरण करते थे।

7. शिक्षा तथा वर्ण व्यवस्था– वैदिक काल में व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार कर्म करता था और उसके अनुसार उसका वर्ण निर्धारित होता था लेकिन उत्तर वैदिक काल में इस व्यवस्था में परिवर्तन हुआ। कर्म के स्थान पर, जन्म के अनुसार व्यक्ति का वर्ण निर्धारित किया गया और उसके अनुसार ही उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा होने लगी।

प्रारंभिक वैदिक कालीन एवं उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन– प्रारंभिक वैदिक कालीन एवं उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन इस प्रकार है–

I. प्रारंभिक वैदिक कालीन एवं उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा में समानताएँ– प्रारंभिक वैदिक कालीन एवं उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा में निम्नलिखित समानताएँ थीं–

1. दोनों कालों में शिक्षा के उद्देश्य समान थे।
2. दोनों कालों में बालक के धार्मिक एवं नैतिक विकास पर सर्वाधिक बल दिया जाता था।
3. दोनों कालों में शिक्षा व्यवस्था निःशुल्क थी।
4. दोनों कालों में शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा थी।
5. दोनों कालों में शिक्षण मौखिक रूप से किया जाता था।
6. दोनों कालों में प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था सामान्य शिक्षा के रूप में घर पर तथा उच्च शिक्षा गुरुकुलों में दी जाती थी।
7. दोनों कालों में गुरुओं को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था।
8. दोनों कालों में गुरु और शिष्य के संबंध मधुर होते थे।
9. दोनों कालों में गुरु और शिष्य गुरुकुलों में रहते थे।
10. दोनों कालों में शिक्षा संस्कार प्रधान थी।
11. दोनों कालों में स्त्री–शिक्षा पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया।
12. दोनों कालों में धार्मिक शिक्षा पर सबसे ज्यादा बल दिया गया।

II. प्रारंभिक वैदिक कालीन एवं उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा में असमानताएँ– प्रारंभिक वैदिक कालीन एवं उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा में निम्नलिखित असमानताएँ थीं–

1. प्रारंभिक वैदिक काल में किसी भी वर्ण का व्यक्ति गुरु हो सकता था, परंतु उत्तर वैदिक काल में केवल ब्राह्मण वर्ण के व्यक्ति ही गुरु बन सकते थें।

2. प्रारंभिक वैदिक काल में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सभी वर्णों को था, परंतु उत्तर वैदिक काल में शूद्रों को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया।

3. प्रारंभिक वैदिक काल की अपेक्षा उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की शिक्षा पर कम ध्यान दिया गया।

4. प्रारंभिक वैदिक काल में शिक्षा नीति प्रधान होती थी। उत्तर वैदिक काल में शिक्षा कर्मकाण्ड प्रधान होती थी।

5. प्रारंभिक काल में व्यवसायों की शिक्षा बच्चों की योग्यता के आधार पर दी जाती थी। उत्तर वैदिक काल में यह वर्णों के अनुसार दी जाने लगी।

6. प्रारंभिक वैदिक काल में पाठ्यचर्या संक्षिप्त थी जबकि उत्तर वैदिक काल में विस्तृत।

7. प्रारंभिक वैदिक काल में गुरुकुल नगरों से दूर घने जंगलों में होते थे। उत्तर वैदिक काल में ये गाँवों, नगरों तथा तीर्थ स्थानों के निकट स्थित होने लगे।

प्रश्न 10. वैदिक शिक्षा प्रणाली के गुण–दोषों को लिखिए। वैदिक कालीन शिक्षा का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव बताइये। **(ग्वालियर 2022)**

उत्तर– वैदिक युग में 2500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक दो शिक्षा प्रणालियाँ विकसित हुईं। पहली वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली और दूसरी उत्तर वैदिक शिक्षा प्रणाली थी। दोनों शिक्षा प्रणालियों के उद्देश्य समान थे। दोनों में ही समान शिक्षा व्यवस्था तथा धार्मिक शिक्षा व्यवस्था पर जोर दिया जाता था। इन दोनों शिक्षा प्रणालियों को वैदिक शिक्षा प्रणाली कहा जाता था। शिक्षा की दृष्टि से इसके गुण–दोष यहाँ प्रस्तुत हैं–

वैदिक शिक्षा प्रणाली के गुण– वैदिक शिक्षा प्रणाली के मुख्य गुण निम्न प्रकार है–

1. शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था– वैदिक युग में गुरुकुलों में छात्रों से शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार का कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। शिक्षा की व्यवस्था भिक्षा मांगकर दान में प्राप्त वस्तुओं द्वारा की जाती थी। गुरु और शिष्य दोनों इसमें अपना सहयोग देते थे।

2. अनुशासित जीवनचर्या– वैदिक युग में गुरुकुल के नियम कठोर होते थे। गुरु और शिष्य दोनों इन नियमों का पालन आदरपूर्वक करते थे। गुरु स्वयं भी अनुशासित जीवन जीते थे जिससे छात्रों को भी अनुशासित जीवन जीने की शिक्षा मिलती थी।

3. शिक्षा के अर्थपूर्ण उद्देश्य– वैदिक युग में शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किये गये थे वे सभी अर्थपूर्ण थे। धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन द्वारा छात्रों का आध्यात्मिक मार्ग प्रशस्त करना गुरु का कार्य होता था। छात्रों के चरित्र निर्माण पर बल दिया जाता था। उनके नैतिक विकास के लिए उन्हें संयमित जीवन जीने की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

शिक्षा के द्वारा उन्हें सामाजिकता का ज्ञान प्रदान किया जाता था, जिससे शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे समाज में अपना समायोजन कर सकें साथ ही, राष्ट्र सेवा के भाव से उन्हें परिचित कराया जाता था, जिससे वे भविष्य में अच्छे नागरिक बनकर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकें। किसी भी शिक्षा प्रणाली के ये ही उद्देश्य होने चाहिए।

4. गुणवत्तापूर्ण पाठ्यचर्या– वैदिक युग में छात्रों के आध्यात्मिक, सामाजिक और नैतिक तीनों पक्षों के विकास पर बल दिया जाता था। इनकी प्राप्ति के लिए पाठ्यचर्या में परा विद्या और अपरा विद्या को स्थान दिया गया था। उस समय छात्रों को धार्मिक ग्रंथ, वेद, पुराण, उपनिषद्, साहित्य, धर्म, दर्शन, नीतिशास्त्र, तर्कशास्त्र आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी, जो छात्रों का चहुँमुखी विकास करने में सहायता करती थी।

5. महत्वपूर्ण शिक्षण–विधियों का प्रयोग– वैदिक काल में शिक्षण अनेक शिक्षण विधियों जैसे–श्रवण, मनन, निदिध्यासन, व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, वाद–विवाद, अनुसरण, तर्क, अभ्यास, कहानी सुनाना आदि के माध्यम से दिया जाता था। उस काल में शिक्षण को रोचक तथा प्रभावी बनाने पर बल दिया जाता था। एक अच्छी शिक्षण प्रणाली में इन सबका प्रयोग होना ही चाहिए। इसके माध्यम से शिक्षण प्रभावी बनता है।

6. गुरुकुलों का शांत वातावरण और संस्कार प्रधान होना– वैदिक काल में गुरुकुल नगरों से दूर घने जंगलों या वनों में स्थापित किये जाते थे। ये नगरों के कोलाहल से दूर बने होते थे जिससे छात्रों को पढ़ने के लिए एक अच्छा प्राकृतिक वातावरण मिलता था। शुद्ध वायु तथा पेड़ों के नीचे बैठकर पढ़ने से छात्रों का स्वास्थ्य अच्छा रहता था तथा वे प्राकृतिक वातावरण में शिक्षा प्राप्त करते थे, जिससे उनका मन हमेशा प्रसन्नचित्त रहता था। इन गुरुकुलों में संस्कार प्रधान शिक्षा की व्यवस्था होती थी। छात्रों के अंदर अच्छे संस्कारों का निर्माण करना गुरु का परम कर्त्तव्य होता था और गुरु हमेशा उनके प्रति ईमानदारी से अपना कर्त्तव्य पूरा करते थे।

वैदिक शिक्षा प्रणाली के दोष– वैदिक शिक्षा प्रणाली के कुछ दोष भी थे, जो इस प्रकार हैं–

1. शिक्षा का धर्म प्रधान होना– वैदिक काल में शिक्षा धर्म प्रधान थी क्योंकि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना था इसलिए छात्रों को धार्मिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे छात्रों को धार्मिक और सांसारिक दोनों प्रकार का ज्ञान मिल सके।

2. रटने पर बल– वैदिक काल में शिक्षा मौखिक प्रवचन के द्वारा दी जाती थी क्योंकि लिखने की कला का विकास नहीं हुआ था। गुरु जो बोलते थे छात्र उसे दोहराते थे और याद करते थे जिससे छात्रों में रटने की आदत का विकास हो जाता था जबकि शिक्षा को केवल याद करने पर ही नहीं बल्कि समझने पर भी बल दिया जाना आवश्यक है।

3. जनशिक्षा की अवहेलना– वैदिक काल में शिक्षा का जन शिक्षा के रूप में विकास नहीं हुआ। जन शिक्षा का अर्थ है बिना किसी भेद–भाव के शिक्षा प्राप्त करने का सभी को अधिकार होना। वर्णों के आधार पर शूद्रों को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया जिससे जनशिक्षा प्रणाली आहत हुई। किसी भी लोकतंत्र में शिक्षा का जनशिक्षा होना आवश्यक है, वह लोकतंत्र तभी विकास कर सकता है।

4. स्त्री शिक्षा की व्यवस्था न होना– वैदिक काल में स्त्रियों को किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। उस काल में स्त्रियों के लिए, अलग से गुरुकुलों की कोई व्यवस्था नहीं थी जहाँ वे शिक्षा प्राप्त कर सकें। राजा–महाराजा अपनी पुत्रियों की शिक्षा की व्यवस्था स्वयं करा लेते थे परंतु इनकी संख्या भी बहुत कम होती थी।

5. विचार–स्वतंत्रता का अभाव– प्राचीन भारतीय शिक्षा में धर्म को अत्यधिक महत्व दिये जाने के कारण व्यक्तियों में यह प्रवृत्ति उत्पन्न हो गयी कि धर्मशास्त्रों में लिखी हुई सब बातें पूर्णतया सत्य है और उन्होंने जिन बातों को असत्य बताया है वे कदापि सत्य नहीं हो सकती है। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप भारतीय समाज में अनेक अंधविश्वासों और रूढ़िवादियों का प्रवेश हुआ।

6. हस्तकार्य व शारीरिक श्रम के प्रति घृणा– प्राचीन भारतीय शिक्षा में धार्मिक शिक्षा की तुलना में लौकिक शिक्षा का स्थान बहुत भिन्न था। फलस्वरूप अध्ययन केन्द्रों में लौकिक शिक्षा से संबंधित हस्तकार्यों की शिक्षा को कोई स्थान प्राप्त नहीं हुआ। अतः उच्च वर्गों के छात्रों का जो इन अध्ययन केन्द्रों में शिक्षा ग्रहण करते थे, इन कार्यों से कोई संपर्क नहीं हुआ। ये कार्य निम्न वर्गों तक ही सीमित रहे, जिनको इनकी शिक्षा अपने परिवारों में प्राप्त होती थी। अतः उनके द्वारा किये जाने वाले हस्तकार्यों और शारीरिक श्रम को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा।

7. नवीन धर्मों का आविर्भाव– डॉ. एस. एन. मुखर्जी का विचार है– "लगभग पाँचवीं शताब्दी के अंत तक शिक्षा अधिकांश रूप में ब्राह्मणों तक ही सीमित रह गयी थी और शिक्षा के व्यवसाय पर

उनको एकमात्र अधिकार था। इस अधिकार को बनाये रखने के लिए उन्होनें धर्म का सहारा लिया और ब्राह्मणों द्वारा उनमें प्रयोग की जाने वाली संस्कृत भाषा का जनसाधारण के लिए कोई महत्व नहीं रह गया। वैदिक धर्म के प्रति जनसाधारण के इसी परिवर्तित दृष्टिकोण के कारण नवीन धर्मों का आविर्भाव हुआ– बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्राचीन भारतीय शिक्षा में अनेक गंभीर दोष थे, जिनके कारण वह कालान्तर में समयानुकूल न रह गयी और उसका ह्रास आरंभ हो गया।

वैदिक कालीन शिक्षा का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव– वैदिक शिक्षा प्रणाली का आधुनिक भारतीय शिक्षा पर भी प्रभाव पड़ा है। आज भी देश में गुरुकुलों के माध्यमों से शिक्षा प्रदान की जाती है। गुरुकुल काँगड़ी, हरिद्वार एवं विश्व भारती इसके उदाहरण हैं। **भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली** में भी वैदिक शिक्षा प्रणाली के गुणों को स्वीकार किया गया है और माना गया है कि यहाँ की शिक्षा का अप्रत्यक्ष प्रभाव है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा और आधुनिक भारतीय शिक्षा के मध्य अनेक शताब्दियों का अंतर है। पर फिर भी प्राचीन शिक्षा के अनेक तत्व हैं, जिनको सिद्धांत और व्यवहार दोनों दृष्टियों से आधुनिक शिक्षा में स्थान दिया जा सकता है। वैदिक कालीन शिक्षा का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव निम्नलिखित हैं–

1. आदर्शवादिता– आज हम आधुनिक युग में जी रहे हैं, परंतु हमें अपने पूर्वजों से जो सभ्यता और संस्कृति विरासत में मिली है उसे हम आज भी धन की अपेक्षा ज्यादा महत्व देते हैं। हम प्रेम, सत्य, अहिंसा, त्याग जैसे गुणों में विश्वास रखते हैं। प्राचीन आदर्शवादिता को आधुनिक शिक्षा में भी स्थान दिया गया हैं।

2. अनुशासन– प्राचीन काल में गुरु और शिष्य दोनों ही अनुशासित जीवन व्यतीत करते थे। आज भी सभी शिक्षण संस्थाओं में अनुशासन को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है।

3. शिक्षण विधियाँ– प्राचीन भारत की शिक्षण विधि में श्रवण, मनन, चिंतन, स्मरण, प्रवचन, प्रश्नोत्तर, व्याख्यान, वाद–विवाद आदि का प्रयोग किया जाता था। अतः यह शिक्षण विधि आज भी विभिन्न विषयों के पठन–पाठन में प्रयोग किये जाने के योग्य है और उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

4. शिक्षा–सिद्धांत– प्राचीन काल के अनेक सिद्धांत आज भी उतने ही उपयोगी और महत्वपूर्ण हैं, जितने कि वे प्राचीन काल में थे। इस प्रकार के कुछ सिद्धांत हैं– छोटी कक्षाएँ, व्यस्त दिनचर्या, व्यक्तिगत ध्यान और अच्छी आदतों का निर्माण।

5. शिक्षा के विभिन्न स्तर– वैदिक काल में शिक्षा का संगठन दो स्तरों में किया जाता था– प्राथमिक एवं उच्च। शिक्षा को विभिन्न स्तरों में विभाजित करने की नींव वैदिक काल में ही रख दी गई थी।

6. शांत वातावरण– प्राचीन काल की सभी शिक्षा–शालाएँ नगर के कोलाहल और जहरीले वातावरण से दूर किसी शांत एवं रमणीक स्थान में स्थित थीं। आधुनिक युग में नगरीकरण के प्रभाव के कारण सभी व्यक्तियों में नगरों में निवास करने की प्रवृत्ति सबल हो गयी है। शिक्षण संस्थाओं का निर्माण नगरों के कोलाहल और गंदगी से दूर किसी शांत, स्वच्छ, स्वास्थ्यकर और प्राकृतिक वातावरण में किया जा सकता है। इस प्रकार की शिक्षा–संस्थाएँ छात्रों के शारीरिक और मानसिक विकास में योगदान देंगी।

7. अध्ययन के विषय– आधुनिक भारतीय शिक्षा में अनेक विषयों को स्थान दिया गया है पर संस्कृत की प्रायः पूर्ण उपेक्षा की गयी है। वस्तुतः संस्कृत भाषा और साहित्य में शांति, मानवता और विश्व–भ्रातृत्व की ऐसी अमूल्य निधियाँ हैं, जिनको न केवल भारत के पाठ्यक्रम में वरन् सभी देशों के पाठ्यक्रमों का अभिन्न अंग होना चाहिए। इसके अतिरिक्त वैदिक पाठ्यक्रम में ऐसे अनेक तत्व ग्रहण किये जा सकते हैं जो आधुनिक भारत के नैतिक, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक उत्कर्ष में अद्वितीय योग दे सकते हैं।

8. व्यावसायिक शिक्षा की शुरुआत– प्रारंभिक वैदिक काल में छात्रों को उनकी योग्यता तथा क्षमता के आधार पर व्यावसायिक शिक्षा दी जाती थी। उत्तर वैदिक काल में व्यावसायिक शिक्षा वर्णों के आधार पर दी जाती थी। लोकतंत्र सभी मनुष्यों को समान समझता है और उनमें किसी भी प्रकार का कोई भेद–भाव नहीं करता। व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सभी को समान रूप से है और ऐसा प्रारम्भिक वैदिक काल में भी था। वर्तमान में सभी के लिए व्यावसायिक शिक्षा उपलब्ध है।

9. शिक्षा व्यवस्था में राज्य और समाज का उत्तरदायित्व– वैदिक काल में शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए धनी वर्ग के लोग खुले हाथों से दान देते थे। राजा–महाराजा भी इस क्षेत्र में अपना उत्तरदायित्व बहुत ही अच्छे से निभाते थे। आज हमारे देश में शिक्षा का उत्तरदायित्व राज्य सरकार का है, परंतु राज्य सरकार भी बिना समाज की भागीदारी के यह दायित्व नहीं निभा पा रही है अर्थात् शिक्षा व्यवस्था करने में राज्य और समाज दोनों मिलकर काम कर रहे हैं।

10. स्त्री–पुरुषों को समान शिक्षा– वैदिक काल में स्त्री एवं पुरुषों की शिक्षा में किसी प्रकार का कोई भेद नहीं किया जाता था। दोनों के लिए समान शिक्षा व्यवस्था थी। वर्तमान में भी स्त्री व पुरुष दोनों के लिए समान शिक्षा व्यवस्था है।

11. अध्यापक एवं छात्र के बीच मधुर संबंध– वैदिक काल में गुरु और शिष्य के बीच मधुर संबंध थे। शिष्य गुरु का आदर करते थे और उनकी आज्ञा का पालन करते थे। आज भी हमारे देश में शिक्षक और छात्र के बीच मधुर संबंध है।

अतः यह कहा जा सकता है कि वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली अपने समय की श्रेष्ठ शिक्षा प्रणाली थी। उसके मुख्य गुण थे– निःशुल्क शिक्षा, छात्रों का आध्यात्मिक विकास, छात्रों का संयमित जीवन, संस्कार प्रधान पाठ्यचर्या, गुरु शिष्यों का अनुशासित जीवन गुणों के साथ–साथ कुछ दोष भी थे। रटने पर अधिक बल देना, कठोर अनुशासन, भिक्षा के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था करना आदि।

प्रश्न 11. बौद्ध कालीन शिक्षा की विशेषताएँ बताइए।

(उज्जैन 2017, 21; छिंदवाड़ा 22; छतरपुर 22)

उत्तर– वैदिक काल के उपरांत बौद्धकाल का उद्भव हुआ। बौद्ध काल के प्रवर्तक **महात्मा गौतम बुद्ध** का जन्म राजसी परिवार में हुआ था परंतु जब उन्होंने सांसारिक दुःखों का अनुभव किया तो वे समस्त सुख–सुविधाएँ छोड़कर इन दुःखों से छुटकारा पाने हेतु उपाय खोजने के लिए तपस्या करने चले गये। उन्होंने कर्मकाण्ड प्रधान वैदिक धर्म के स्थान पर करुणा प्रधान बौद्ध धर्म की स्थापना की। ईसा पूर्व छठीं सदी से बौद्ध धर्म का प्रारंभ माना जाता है जो 600 ईसा पूर्व से 1200 ईसा पूर्व तक रहा। ब्राह्मण काल में शिक्षा जनशिक्षा नहीं बन सकी। इसलिए महात्मा बुद्ध ने जनसाधारण को जीवन का व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया और व्यावहारिक धर्म व व्यावहारिक शिक्षा सभी वर्गों के व्यक्तियों के लिए उपलब्ध हो गई। इस प्रकार बौद्ध काल में सभी समुदाय के लोगों को बिना भेद–भाव शिक्षा प्राप्त करने के अवसर मिलने लगे।

बौद्ध युगीन शिक्षा स्वयं में भिन्नता रखते हुए भी वैदिक युग की शिक्षा प्रणाली पर आधारित थी। बौद्ध शिक्षा संघों में दी जाती थी। **आर. के. मुखर्जी** ने लिखा है– "बौद्ध शिक्षा पद्धति प्रायः बौद्ध संघ की पद्धति है। जिस प्रकार वैदिक युग में यज्ञ संस्कृति के केन्द्र थे, उसी प्रकार बौद्ध-युग में संघ, शिक्षा और विद्या के केन्द्र थे। बौद्ध–संसार में अपने संघों से पृथक् या स्वतंत्र रूप में शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं था। सब प्रकार की धार्मिक तथा लौकिक शिक्षा श्रमणों के हाथ में थी।"

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार– "भगवान बुद्ध ने वैदिक धर्म में कुछ सुधार किए। वे धर्म को पूरा करने के लिए आये थे न कि उसे नष्ट करने हेतु। भारत में भगवान बुद्ध धार्मिक परम्पराओं के अनुपम प्रतिनिधि है। उन्होंने भारत की भूमि पर अपने पद–चिन्ह एवं देश की आत्मा, आदत एवं विश्वासों पर अपना प्रभाव छोड़ा। उनकी शिक्षाएँ हमारी संस्कृति का अंग बन गई हैं, इसलिए एक दृष्टि से भगवान बुद्ध वर्तमान हिन्दू धर्म के निर्माता थे।"

बौद्धकाल में न केवल भारत बल्कि तिब्बत, जावा, जापान के छात्रों द्वारा भारत में शिक्षा प्राप्त की जाने लगी। इससे भारत की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति ऊँची उठी। बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली के विषय में चर्चा करने से पहले यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि इस काल में बौद्ध शिक्षा प्रणाली के साथ-साथ वैदिक शिक्षा प्रणाली के शिक्षा केन्द्र भी निरंतर चलते रहे। इस प्रकार इस काल में दो शिक्षा प्रणाली समान्तर रूप से चल रही थीं।

बौद्धकालीन शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ– बौद्ध युग में शिक्षा स्वतंत्र रूप से किन्तु बौद्ध मठों द्वारा संचालित होती थी। शिक्षा पर बौद्ध संघ का नियंत्रण था। बौद्ध शासक तथा बौद्ध धर्म के उत्पन्न अनुयायी संरक्षण प्रदान करते थे। प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क थी। उच्च शिक्षा के लिए प्रतिदान देना पड़ता था।

बौद्धकालीन शिक्षा की अनेक विशेषताएँ थीं, जो निम्नलिखित हैं–

1. छात्र योग्यता– बौद्ध युग में चांडालों को छोड़कर समाज के सभी वर्गों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। अस्वस्थ, असम्मानित, रोगी, विकलांग एवं दंडित लोगों को शिक्षा का अधिकार नहीं था। विद्यारम्भ 8 वर्ष की आयु में होता था। छात्र 12 वर्ष तक भ्रमण की स्थिति में रहता था। 20 वर्ष की आयु के पश्चात् वह भिक्षु बन सकता था।

2. शिक्षा का माध्यम– शिक्षा का माध्यम 'पाली' भाषा थी। इसके अतिरिक्त 'संस्कृत' भाषा का भी प्रयोग किया जाता था। **प्रो. पी.डी. पाठक** के अनुसार– "शिक्षा का माध्यम सामान्य रूप से पाली भाषा थी, परंतु वैदिक साहित्य की शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा थी। इसके अतिरिक्त देश की अन्य प्रचलित भाषाओं का भी प्रयोग किया जाता था।"

3. पब्बजा संस्कार– शिक्षा के लिए मठों में प्रवेश हेतु पब्बजा संस्कार होता था। **'विनयपिटक'** के अनुसार–"छात्र अपने सिर का बाल मुंडवाता था, पीले कपड़े पहनता था, मठ के भिक्षुओं के चरणों में अपना माथा टेकता था और फिर पालथी मारकर बैठ जाता था। उसे तीन बार कहना पड़ता था– "बुद्धम् शरणं गच्छामि", धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।

इसके बाद उसे 10 नियमों का पालन करने का आदेश दिया जाता था। दस नियमों में चोरी न करना, जीव हत्या न करना, अशुद्ध आचरण न करना, वर्जित समय पर आहार न करना, मादक वस्तुओं का सेवन न करना, शृंगार सामग्री का प्रयोग न करना, बिना दिए हुए वस्तु को ग्रहण न करना, सोना, चाँदी आदि कीमती वस्तुओं का दान न लेना, नृत्य–संगीत आदि न देखना थे। इस संस्कार के बाद छात्र को **'श्रमण'** अथवा **'समनेर'** कहा जाता था।

4. शिक्षण पद्धति– इस काल में शिक्षण की पद्धति मुख्यतः मौखिक थी, रटने पर बल दिया जाता था। वाद–विवाद, तर्क विश्लेषण, व्याख्या और स्पष्टीकरण विधियों का प्रयोग किया जाता था।

ह्वेनसांग के अनुसार– "शिक्षक पाठ्य–वस्तु का सामान्य अर्थ बताते हैं तथा विद्यार्थियों को सविस्तार पढ़ाते हैं। शिक्षक विद्यार्थियों को परिश्रम के लिए प्रोत्साहित करते हैं और कुशलता से उन्नति के पथ पर अग्रसर करते हैं। वे क्रियाशून्य छात्रों को निर्देशित करते हैं और मंदबुद्धि विद्यार्थियों को ज्ञानार्जन के लिए प्रेरित करते हैं।"

5. उपसम्पदा संस्कार–20 वर्ष की आयु के पश्चात् छात्र को उपसम्पदा ग्रहण करनी पड़ती थी। उपसम्पदा के समय 10 भिक्षुओं की उपस्थिति आवश्यक थी। उपसम्पदा के बाद पुरुषों को भिक्षुक एवं स्त्रियों को भिक्षुणी कहा जाने लगा। उपसम्पदा के बाद भी भिक्षुक को वृक्ष के नीचे वास करना, भिक्षापात्र में भिक्षान्न माँगकर खाना, माँगे हुए वस्त्र धारण करना एवं औषधि रूप में गौमूत्र सेवन करना पड़ता था।

6. अध्ययन काल– 12 वर्ष पब्बजा, 10 वर्ष उपसम्पदा, कुल मिलाकर 22 वर्ष का अध्ययन काल होता था।

7. गुरु–शिष्य संबंध– छात्र गुरु–सेवा करते थे, भिक्षा माँगते थे तथा तीन बार भोजन करते थे, तीन वस्त्र पहनते थे और शुद्ध स्नान करते थे, अनुशासन में रहते थे। गुरु और शिष्य के मध्य मधुर तथा प्रगाढ़ संबंध थे। गुरु भी छात्रों को अपने व्यक्तित्व से प्रभावित कर उनके विकास के लिए सदैव सजग रहता था।

8. व्यावसायिक शिक्षा– बौद्धिक काल में व्यावसायिक शिक्षा भी दी जाती थी, जैसे– औषधि, विज्ञान, कताई–बुनाई, भविष्य कथन आदि।

9. शिक्षा पद्धति– बौद्ध काल में शिक्षा मठों और विहारों में दी जाती थी। इसमें केवल संघ के श्रमणों को ही शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थियों को अनुभव प्राप्त करने के लिए देशाटन (देश भ्रमण) को भेजा जाता था।

10. स्त्री शिक्षा– बौद्धकालीन शिक्षा में स्त्रियों को शिक्षा नहीं दी जाती थी। बौद्ध भिक्षुकों के लिए स्त्रियों का सामीप्य निषिद्ध (निषेध किया गया) था। पहले उन्हें संघ में प्रवेश वर्जित था। बाद में विमाता महाप्रजापति के आग्रह पर स्त्रियों को संघ में प्रवेश की आज्ञा प्राप्त हो गयी, तभी उनकी शिक्षा में प्रगति हुई।

11. पाठ्यक्रम– बौद्ध युग में लेखन, गणित तथा शास्त्रार्थ के साथ–साथ कला–कौशल, सैनिक शिक्षा, सारथी विद्या, धनुर्विद्या, भूतल विद्या आदि की शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त धार्मिक तथा लौकिक शिक्षा की भी व्यवस्था थी।

12. छात्र जीवन संबंधी नियम– बौद्धकालीन शिक्षा में छात्रों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सम्भावित नियमों का पालन करना पड़ता था, ये क्षेत्र निम्नलिखित हैं–

भोजन– छात्रों को दिन में तीन बार भोजन करने का नियम था। भोजन शाकाहारी व शुद्ध होता था।

भिक्षाटन– छात्रों को भिक्षाटन के नियमों का पालन करना पड़ता था। छात्र प्रातः काल ही भिक्षाटन को निकल जाते थे। भिक्षा मौन रूप से माँगी जाती थी। भिक्षा उतनी ही ली जाती थी जितनी की आवश्यकता होती थी।

स्नान– प्रतिदिन स्नान करना आवश्यक था।

13. परीक्षाएँ एवं उपाधियाँ– बौद्धकाल में वर्तमान समय की तरह परीक्षाएँ आयोजित नहीं होती थीं। प्राथमिक स्तर पर शिक्षक के संतुष्ट होने पर छात्र को सफल घोषित कर दिया जाता था। इस स्तर पर कोई भी उपाधि नहीं दी जाती थी। उच्च स्तर पर भिक्षुकों (शिक्षक) का एक समूह छात्रों

की मौखिक परीक्षा लेता था और जो छात्र इसमें सफल होते थे उन्हें प्रमाणपत्र दिए जाते थे।

14. लोकभाषाओं को प्रोत्साहन– बौद्धकाल में महात्मा गौतम बुद्ध ने शिक्षा प्रदान करने के लिए लोकभाषाओं को प्रोत्साहित करने के लिए कहा। उनके अनुसार भिक्षुकों को उनकी स्वयं की भाषा में शिक्षा दी जानी चाहिए।

15. शिक्षा का प्रजातंत्रीय आधार– महात्मा गौतम बुद्ध के आह्वान पर बौद्धों ने शिक्षा को जनतंत्रीय आधार प्रदान किया। बौद्ध शिक्षा केन्द्र विभिन्न वर्गों, विभिन्न जातियों और विभिन्न प्रांतों के सभी बालकों के साथ बिना किसी भेदभाव के पारिवारिक संपर्क स्थापित करते थे और उन्हें ज्ञान प्रदान करते थे।

प्रश्न 12. बौद्ध युगीन शिक्षा के उद्देश्य बताइए। **(उज्जैन 2017; इंदौर 23)**

***अथवा*, बौद्धकालीन शिक्षा के उद्देश्य व आदर्श क्या थे ? आज के युग में उनकी प्रासंगिकता की विवेचना कीजिए।** **(जबलपुर 2021)**

उत्तर– बुद्ध ने सद्जीवन के लिए जो अष्टांगिक मार्ग बताए थे, बौद्ध काल में वे ही शिक्षा के उद्देश्य बन गए। इसके अतिरिक्त आगे चलकर जिन उद्देश्यों को स्थान प्राप्त हुआ, वे निम्नलिखित थे–

1. चरित्र निर्माण करना– बौद्धकाल में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालकों के चरित्र का निर्माण करना था। चरित्र निर्माण हेतु आत्म–संयम, करुणा और दया को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। जो बालक इन गुणों का पालन करता था वह चरित्रवान माना जाता था। चरित्र–निर्माण हेतु मठों एवं विहारों में 10 नियमों का पालन कराया जाता था तथा सादा जीवन जीने एवं विनयपूर्ण व्यवहार करने हेतु बालकों को प्रशिक्षित किया जाता था।

2. ज्ञान का विकास– बौद्ध काल के अनुसार संसार के समस्त दुःखों का एकमात्र कारण अज्ञानता को माना गया था। अतः इस काल में छात्रों के द्वारा सच्चे एवं सार्थक ज्ञान के विकास पर बल दिया जाता था। बौद्ध काल में सच्चे ज्ञान से अभिप्राय धर्म एवं दर्शन के चार सत्यों के ज्ञान और उसी के अनुरूप आचरण करने से था।

3. व्यक्तित्व का विकास– आत्म–संयम, आत्म–निर्भरता, आत्मविश्वास, आत्मसम्मान, करुणा तथा विवेक जैसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुणों का विकास कर छात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना बौद्धकालीन शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य था।

4. सर्वांगीण विकास– इस शिक्षा प्रणाली में छात्र के शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक विकास को ध्यान में रखकर शिक्षा दी जाती थी अर्थात् छात्र का सर्वांगीण विकास करना इस शिक्षा का उद्देश्य था।

5. विभिन्न व्यवसायों की शिक्षा– विभिन्न व्यवसायों की शिक्षा के अन्तर्गत छात्र को विभिन्न प्रकार के कला–कौशलों एवं व्यवसायों जैसे–कृषि, पशुपालन, वाणिज्य आदि की शिक्षा दी जाती थी।

6. बौद्ध धर्म की शिक्षा– यद्यपि बौद्ध शिक्षा–प्रणाली में समस्त धर्मों एवं दर्शनों से संबंधित शिक्षा की व्यवस्था की गई थी परंतु सर्वाधिक बल बौद्ध शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार पर दिया जाता था। अतः इस काल में छात्रों के लिए बौद्ध धर्म की शिक्षा को इसके उद्देश्यों में सम्मिलित किया गया था।

प्रश्न 13. बौद्धकालीन शिक्षा की व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए। **(जबलपुर 2022)**

***अथवा*, बौद्ध शिक्षा की पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधियों की विवेचना कीजिए।** **(इंदौर 2022)**

उत्तर–शिक्षा की व्यवस्था –बौद्ध धर्म का विकास मठों में हुआ था। ये मठ न केवल धर्म के वरन् शिक्षा के भी केन्द्र थे और शिक्षा देने का कार्य उनमें निवास करने वाले भिक्षुओं द्वारा किया जाता था।

प्राचीनकालीन भारतीय शिक्षा के समान बौद्ध काल में भी भारत में केवल प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी और शिक्षा के यही दो स्तर थे। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार हैं–

प्राथमिक शिक्षा– बौद्ध शिक्षा प्रणाली में, प्राथमिक शिक्षा सांसारिक शिक्षा के रूप में दी जाती थी। इसकी अवधि छः वर्ष की होती थी। इसमें छात्रों को पढ़ना व लिखना सिखाया जाता था। साथ–ही–साथ सामान्य शिक्षा भी दी जाती थी–

1. सामान्य परिचय– बौद्ध काल में प्राथमिक शिक्षा सभी जाति वर्गों के लिए उपलब्ध थी। यह शिक्षा मठों में प्रदान की जाती थी। बौद्धकाल के आरंभ में यह शिक्षा धार्मिक थी, किन्तु कुछ समय उपरांत ब्राह्मणों द्वारा प्रतिद्वंद्वी शिक्षा–संस्थाएँ स्थापित करके उनमें लौकिक शिक्षा दिए जाने के कारण मठों में भी लौकिक शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई।

2. प्रवेश व अवधि– प्राथमिक शिक्षा आरंभ करने की आयु 6 वर्ष होती थी तथा इसकी अवधि भी साधारणतः 6 वर्ष ही थी।

3. पाठ्यक्रम– बालक प्रथम 6 माह में **सिद्धिरस्तु** नामक बालपोथी का अध्ययन करता था। इस बालपोथी में 12 अध्याय एवं वर्णमाला के 49 अक्षर होते थे, इन वर्णों को विभिन्न रूपों में रखकर 300 से अधिक श्लोकों की रचना की गई थी। 16 माह के बाद छात्रों को निम्न 5 विधाओं की शिक्षा प्रदान की जाती थी–शब्द विधा, चिकित्सा विधा, तर्क विधा, आध्यात्म विधा, कला और शिल्प। इस प्रकार पाठ्यक्रम में धार्मिक व लौकिक दोनों प्रकार के विषयों का स्थान प्राप्त था।

4. शिक्षण विधि– प्राथमिक स्तर पर शिक्षण विधि पूर्णतः मौखिक होती थी। शिक्षक, लकड़ी की तख्ती पर वर्णमाला के अक्षरों को लिखता था और उनका उच्चारण करता था। बालक उसके उच्चारण का अनुकरण करते थे। जब छात्रों को अक्षर ज्ञान हो जाता था तत्पश्चात् वे उसे लिखते थे।

5. शिक्षा का माध्यम–बौद्धकाल में जन–साधारण की भाषा पाली थी। अतः यही भाषा शिक्षा का माध्यम भी बनी।

उच्च शिक्षा– प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद उच्च शिक्षा में योग्य छात्रों को ही प्रवेश दिया जाता था। इसकी सामान्य अवधि बारह वर्ष होती थी। इसमें पाली भाषा, संस्कृत भाषा, प्राकृत भाषा और साहित्य, व्याकरण, न्यायशास्त्र, अर्थशास्त्र, खगोलशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, कला, कौशल, व्यवसाय, भवन निर्माण, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, वैदिक धर्म, ज्योतिष शास्त्र आदि सभी विषयों का ज्ञान प्रदान किया जाता था।

1. सामान्य परिचय– उच्च शिक्षा के द्वारा प्रत्येक धर्म और जाति के बालकों हेतु खुले थे। इस शिक्षा के मुख्य केन्द्र मठ थे तथा सभी मठों में समान विषयों की शिक्षा नहीं दी जाती थी।

2. प्रवेश एवं अवधि– प्राथमिक शिक्षा के समाप्त होने पर उच्च शिक्षा का प्रारंभ होता था अर्थात् बालक इस शिक्षा का आरंभ 12 वर्ष की आयु में करता था। अध्ययन की अवधि 12 वर्ष थी ताकि 25 वर्ष की आयु में छात्र किसी व्यवसाय को अपनाकर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर सकें।

3. पाठ्यक्रम– पाठ्यक्रम दो भागों में विभाजित था– (i) धार्मिक एवं (ii) लौकिक। भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के लिए धार्मिक पाठ्यक्रम था। इसमें धार्मिक एवं जीवनोपयोगी दोनों प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

लौकिक पाठ्यक्रम जन–साधारण के लिए होता था। इस शिक्षा का उद्देश्य सुयोग्य नागरिक बनाना एवं आर्थिक और सामाजिक जीवन हेतु तैयार करना था।

4. शिक्षण विधियाँ– स्वाध्याय विधि, व्याख्यान विधि, देशाटन, तर्क एवं वाद–विवाद आदि इस स्तर की प्रमुख शिक्षण विधियाँ थीं।

5. शिक्षा का माध्यम– इस स्तर पर भी जन–साधारण की शिक्षा का माध्यम पाली भाषा ही थी।

6. शिक्षा के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय– बौद्ध काल में शिक्षा के मुख्य केन्द्र मठ और विहार थे। इनसे छात्रावास संबद्ध थे। छात्रों को निःशुल्क शिक्षा, भोजन, वस्त्र, चिकित्सा आदि की सुविधा प्राप्त थी। वल्लभी विश्वविद्यालय, नदिया विश्वविद्यालय एवं तक्षशिला विश्वविद्यालय के रूप में विकसित होकर पर्याप्त ख्याति अर्जित की।

भिक्षु शिक्षा– जो छात्र अध्ययन–अध्यापन में रुचि रखते थे उनके लिए भिक्षु शिक्षा की अवधि 8 वर्ष थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद जो छात्र बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार का कार्य करना चाहते थे उन्हें उपसम्पदा संस्कार के बाद भिक्षु शिक्षा में प्रवेश दिया जाता था। इस शिक्षा को प्राप्त करने के बाद वे 'भिक्षु' कहलाते थे तथा धर्म प्रचार और शिक्षण का कार्य करते थे।

प्रश्न 14. बौद्धकालीन शिक्षा की शिक्षण विधियों का उल्लेख कीजिए। **(इंदौर 2022)**

उत्तर– बौद्धकालीन शिक्षण विधियों का वर्णन निम्न प्रकार हैं–

1. अनुकरण विधि– शिक्षण की यह विधि पूर्णतः स्वाभाविक है। इस काल में प्राथमिक स्तर पर इस विधि का प्रयोग किया जाता था। शिक्षक (भिक्षु) के वर्ण (अक्षर) उच्चारण का छात्र अनुकरण करते थे। शिक्षकों द्वारा अक्षरों को लिखकर दिखाया जाता था जिसका अनुकरण कर अभ्यास द्वारा छात्र लिखना सीखते थे।

2. प्रश्नोत्तर विधि– यह भी लिखने की स्वाभाविक विधि है। छात्र कब, क्यों, कैसे, कहाँ आदि जैसे प्रश्नों को शिक्षकों से पूछते थे तथा शिक्षक उसका उत्तर देते थे। इसके द्वारा छात्र अपनी समस्या का समाधान करते थे।

3. व्याख्या विधि– इस विधि का प्रयोग उच्च शिक्षा में किया जाता था। शिक्षक छात्रों को विषय– वस्तु का अर्थ स्पष्ट कर उसकी सविस्तार व्याख्या करते थे।

4. तर्क एवं वाद–विवाद विधि– बौद्ध काल में विवादास्पद विषयों का शिक्षण, वाद–विवाद और तर्क विधियों के माध्यम से होता था। अपने–अपने मत की पुष्टि हेतु विभिन्न प्रकार के प्रमाण प्रस्तुत किए जाते थे।

5. व्याख्यान विधि– बौद्धकाल में उच्च स्तर की शिक्षा में इस विधि का प्रयोग किया जाता था। विभिन्न विषयों से संबंधित विषय के अधिकारियों को बुलाकर व्याख्यान कराए जाते थे। इस विधि के द्वारा शिष्य अपनी शंका का समाधान कर उच्च और स्पष्ट शिक्षा ग्रहण करते थे।

6. देशाटन– भिक्षु शिक्षा में, मुख्य रूप से इसी विधि का प्रयोग किया जाता था। भिक्षुओं को देशाटन के अवसर उपलब्ध कराए जाते थे जिससे उन्हें वास्तविक जगत को समझने मानव समाज की वास्तविक स्थिति को जानने के अवसर प्राप्त हो। साथ ही बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार का प्रशिक्षण भी दिया जाता था।

7. स्वाध्याय विधि– चूँकि इस काल में लेखन कला का उद्भव एवं विकास हो चुका था। अतः मुख्य ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियाँ भी छात्रों के अध्ययन हेतु तैयार की जा चुकी थीं। परिणामतः अध्ययन की स्वाध्याय विधि का विकास हुआ। यह विधि उच्च शिक्षा के छात्रों हेतु थी।

प्रश्न 15. बौद्ध कालीन शिक्षा में शिक्षण संस्थाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– बौद्ध कालीन शिक्षा में शिक्षण संस्था– बौद्ध शिक्षा प्रणाली में प्राथमिक एवं उच्च दोनों स्तरों की शिक्षा की व्यवस्था मठों एवं विहारों में होती थी। ये मठ एवं विहार धार्मिक केन्द्र थे। इनका संचालन बौद्ध संघों द्वारा होता था तथा इनमें शिक्षा की व्यवस्था भी की गई थी। बौद्ध काल में यही शिक्षा की संस्थाएँ हुआ करती थीं।बौद्ध कालीन शिक्षा में शिक्षण संस्थाओं का वर्णन इस प्रकार हैं–

1. मठ एवं विहार की स्थिति एवं स्वरूप– बौद्ध मठ एवं विहार बड़े–बड़े नगरों के निकट खुले स्थान पर बनाए गए थे। इन मठों एवं विहारों के भवन बहुत विशाल और भव्य होते थे तथा शिष्यों के लिए छात्रावासो की व्यवस्था थी। गुरुओं के लिए गुरु आवास की व्यवस्था थी। शिक्षण विशाल कक्षों में होता था। बड़े–बड़े पुस्तकालयों की व्यवस्था होती थी। कुछ मठों एवं विहारों में केवल धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था होती थी, जबकि कुछ में धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ प्राथमिक शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। कहीं–कहीं मठों एवं विहारों में धार्मिक, प्राथमिक एवं उच्च सभी तरह की शिक्षा व्यवस्थाएँ थीं।

2. शिक्षक (भिक्षु, उपाध्याय)– बौद्ध काल में बौद्ध भिक्षु ही शिक्षा प्रदान करने का कार्य मठों व विहारों में करते थे। जो बौद्ध भिक्षु शिक्षा देने का कार्य करते थे उन्हें 'उपाध्याय' कहा जाता था। उपाध्याय बनने के लिए उन्हें आठ वर्ष की भिक्षु शिक्षा लेनी होती थी और संघ के सभी नियमों का कठोरता से पालन करना होता था तथा संयमित जीवन व्यतीत करना होता था। अपने शिष्यों के लिए भोजन एवं आवास संबंधी व्यवस्था करनी होती थी।

3. शिक्षार्थी (श्रमण, सामनेर)– पब्बजा संस्कार सम्पन्न होने के बाद छात्र को 'श्रमण' अथवा 'सामनेर' कहा जाता था। ये बौद्ध मठों व विहारों में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। ये नियमों का कठोरता से पालन करते थे, गुरुओं के उठने से पहले उठ जाते थे, गुरुओं के लिए जल आदि की व्यवस्था करते थे और गुरुओं के साथ भिक्षा माँगने जाते थे।

4. छात्र जीवन– छात्रों का जीवन वैदिक काल की अपेक्षा बहुत कठिन हो गया था। उन्हें मठों व विहारों के कठोर नियमों का पालन करना होता था, पीले वस्त्र पहनने होते थे तथा गुरुओं के साथ भिक्षा माँगने जाना होता था। गुरुओं की सेवा करना उनका प्रमुख कर्त्तव्य होता था।

5. गुरु–शिष्य संबंध– बौद्ध काल में गुरु और शिष्य के बीच संबंध बहुत मधुर होते थे। वे एक– दूसरे के प्रति स्नेह व विश्वास रखते थे। शिष्य, गुरु की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायता करते थे। गुरु भी शिष्यों का अध्ययन कराने के साथ–साथ उनका आध्यात्मिक मार्ग प्रशस्त करते थे।

डॉ. ए. एस. अल्तेकर के अनुसार– "छात्र और गुरु के संबंध पिता–पुत्र के समान होते थे। वे पारस्परिक सम्मान, विश्वास और प्रेम के द्वारा एक–दूसरे से मिले हुए थे।"

प्रश्न 16. बौद्धकालीन शिक्षा के अन्य क्षेत्र पर प्रकाश डालिए।

उत्तर– बौद्धकालीन शिक्षा के निम्नलिखित क्षेत्र थे–

1. बौद्धकालीन स्त्री–शिक्षा– बौद्धकाल में स्त्री शिक्षा का पतन हुआ, क्योंकि बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों का संघ में प्रवेश करना वर्जित कर दिया था परंतु बाद में अपनी विमाता, महाप्रजापति और अपने प्रिय शिष्य आनंद के आग्रह पर उन्हें संघ में प्रवेश की अनुमति प्रदान कर दी। स्त्रियों को भी पुरुषों की तरह संघ के कठोर नियमों का पालन करना होता था। मठों एवं विहारों में स्त्रियों के रहने के लिए अलग व्यवस्था होती थी। फिर भी बहुत कम बालिकाएँ इनमें प्रवेश लेती थीं क्योंकि संघ के नियमों का पालन करना उनके लिए कठिन था। इसलिए बौद्ध काल में स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में ह्रास हुआ और वह वैदिक काल की अपेक्षा और अधिक उपेक्षित एवं पिछड़ गई।

2. बौद्धकाल में व्यावसायिक शिक्षा– बौद्धकाल में बच्चों की अपनी रुचि एवं योग्यता के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की गई थी। विभिन्न प्रकार के कुटीर उद्योगों की शिक्षा व्यवस्था थी। जैसे– भवन निर्माण, कताई व बुनाई, मूर्तिकला, चित्रकला आदि। व्यावसायिक शिक्षा में मुख्यतः कृषि एवं वाणिज्य की शिक्षा प्रदान की जाती थी। इस काल को व्यावसायिक शिक्षा का 'स्वर्णकाल' माना जाता है।

बौद्ध शिक्षा धर्म प्रधान थी किन्तु बौद्ध साहित्य में हमें इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि भिक्षुओं और जनसाधारण को व्यावसायिक शिक्षा की अत्युत्तम सुविधाएँ प्राप्त थीं–

(1) लाभप्रद व्यवसायों की शिक्षा। (2) प्राविधिक व वैज्ञानिक शिक्षा। (3) हस्तशिल्पों की शिक्षा। (4) चिकित्साशास्त्र की शिक्षा। (5) भवन निर्माण कला, मूर्तिकला व चित्रकला की शिक्षा।

प्रश्न 17. बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली के गुण–दोषों को लिखिए। बौद्धकालीन शिक्षा का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव बताइए।

उत्तर– यह सर्वविदित है कि हमेशा एक सिक्के के दो पहलू होते हैं। किसी भी प्रणाली का मूल्यांकन करते समय उसके दोनों पहलुओं का अध्ययन किया जाता है, एक गुण तथा दूसरा दोष। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में भी गुणों के साथ–साथ कुछ दोष भी थे। इनका विवरण इस प्रकार है–

बौद्ध शिक्षा प्रणाली के गुण– बौद्ध शिक्षा प्रणाली के निम्नलिखित गुण थे–

1. केन्द्रीय प्रशासन– वैदिक काल में शिक्षा पर गुरुओं का नियंत्रण होता था। बौद्ध काल में शिक्षा पर संघों का नियंत्रण हो गया। जिससे शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति हुई अर्थात् शिक्षा में एकरूपता आयी तथा इसका प्रशासन भी सुचारु रूप से होने लगा।

2. सभी को शिक्षा का समान अधिकार– वैदिक काल में शूद्रों तथा स्त्रियों को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। बौद्ध काल में बिना किसी भेद–भाव के प्रत्येक वर्ण के व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। जिससे जाति और लिंग के भेद–भाव के कारण पिछड़ी हुई शिक्षा को एक नई दिशा मिली।

3. निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा– बौद्ध काल में प्राथमिक शिक्षा के लिए छात्रों से किसी भी प्रकार का कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है और प्राथमिक शिक्षा लोकतंत्र के प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्य रूप से मिलनी चाहिए। बौद्ध काल में इसकी निःशुल्क व्यवस्था से सभी धर्म व जातियों के बालकों के लिए यह सुलभ हो गई।

4. लोकभाषा के माध्यम से शिक्षा– बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध शिक्षा का माध्यम प्रत्येक व्यक्ति की लोकभाषा को बनाना चाहते थे, जिससे किसी को भी शिक्षा प्राप्त करने में असुविधा न हो और वह अपने क्षेत्र की लोकभाषा के द्वारा आसानी से शिक्षा प्राप्त कर सके।

5. गुरु और शिष्य का संयमित जीवन– बौद्ध शिक्षा प्रणाली में मठों व विहारों में आचरण पर पूरी दृष्टि रखी जाती थी। गुरु और शिष्य दोनों को मठों व विहारों में आचरण संबंधी नियमों का पालन करना अनिवार्य होता था, जिससे उन्हें संयमित जीवन किस प्रकार जीना है, उसका ज्ञान होता था। गुरु और शिष्य दोनों अपने जीवन में संयम लाते थे और अनुशासित रहते थे।

6. भव्य शिक्षण संस्थाओं का निर्माण– भारत में विद्यालय शिक्षा का विकास सबसे पहले बौद्ध काल में ही हुआ। उस समय के मठ एवं विहार भव्य भवन में स्थापित होते थे। उनमें छात्रों के पढ़ने के लिए बड़े–बड़े कमरे तथा पुस्तकालय भी होते थे। गुरु एवं शिष्य दोनों के रहने के लिए अच्छे निवास की भी व्यवस्था होती थी।

7. धार्मिक शिक्षा के साथ मानवतावादी शिक्षा पर बल– बौद्ध काल में धार्मिक शिक्षा दी जाती थी तथा छात्रों को बौद्ध धर्म का ज्ञान भी कराया जाता था। साथ–ही–साथ इस काल में छात्रों को मानवतावादी शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। मानवतावादी शिक्षा से आशय ऐसी शिक्षा से है जो मानव के कल्याण एवं राष्ट्र की सेवा हेतु प्रदान की जाती थी।

8. स्त्रियों के लिए शिक्षा व्यवस्था– बौद्ध काल में पुरुषों की तरह स्त्रियों के लिए भी समान शिक्षा की व्यवस्था होती थी। यह बात अलग है कि मठों एवं विहारों के कठोर नियमों के कारण बालिकाएँ इनमें प्रवेश नहीं लेती थीं, परंतु उन्हें भी शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था।

बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली के दोष– बौद्ध शिक्षा प्रणाली अपने समय की श्रेष्ठ प्रणाली मानी जाती थी, परंतु किसी भी प्रणाली में गुणों के साथ–साथ कुछ दोष भी होते हैं। बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली के दोष निम्नलिखित हैं–

1. मठों व विहारों में कठोर नियम– बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में जो नियम थे, वे बहुत कठोर थे। छात्र इन नियमों से भयभीत होकर शिक्षा बीच में ही छोड़ देते थे। लोकतंत्र में बालकों के लिए ऐसे कठोर नियमों की व्यवस्था नहीं की जानी चाहिए, जिससे छात्रों के मन पर दुष्प्रभाव पड़े।

2. स्त्री शिक्षा का ह्रास– बौद्ध शिक्षा में बालिकाओं को भी बालकों की तरह शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी, परंतु शिक्षण संस्थाओं के कठोर नियमों के कारण बालिकाएँ इन शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश नहीं लेती थी जिससे स्त्री शिक्षा का पतन शुरू हो गया था।

3. सैन्य शिक्षा का अभाव– बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध अहिंसा के समर्थक थे, वे हिंसा में विश्वास नहीं करते थे। इसलिए उन्होंने बौद्धकालीन शिक्षा केन्द्रों में सैनिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की। किसी भी देश में सुरक्षा की दृष्टि से सैनिक शिक्षा की व्यवस्था होना अनिवार्य है। परंतु बौद्ध काल में कोई व्यवस्था नहीं थी।

4. धार्मिक शिक्षा के अन्तर्गत बौद्ध धर्म की शिक्षा– बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था की गई थी, परंतु विडम्बना यह थी कि इस धार्मिक शिक्षा के अन्तर्गत केवल बौद्ध धर्म की शिक्षा और उसके प्रचार व प्रसार की शिक्षा ही छात्रों को प्रदान की जाती थी।

5. हस्तकार्य के प्रति घृणा– मठों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा मुख्यतः धार्मिक और आध्यात्मिक थी। उसमें लौकिक विषयों को तो स्थान दिया गया था, किन्तु हस्तकार्यों से संबंधित शिक्षा की उपेक्षा की गयी थी।

6. लौकिक जीवन की उपेक्षा– धर्म प्रधान होने के कारण बौद्ध शिक्षा में आध्यात्मिक विकास पर विशेष बल दिया जाता था। बौद्धों और अबौद्धों को जीवन को मिथ्या और संसार को क्षण भंगुर मानने की निरंतर शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार बौद्ध धर्म, जो शिक्षा प्रदान करता था, वह व्यक्तियों को इस जीवन और संसार के लिए तैयार न करके, दूसरे संसार के लिए तैयार करती थी।

आधुनिक भारतीय शिक्षा में बौद्धकालीन शिक्षा का योगदान– बौद्धयुगीन शिक्षा वस्तुतः उत्तर वैदिक काल तथा ब्राह्मण काल में दी जाने वाली शिक्षा के प्रति प्रतिक्रिया थी। बौद्ध युग में शिक्षा सामान्य जन के लिए हो गयी थी। इस युग में सामान्य शिक्षा संस्थाओं का गठन हुआ। इसमें प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा की व्यवस्था हुई। सभी व्यावहारिक विषयों की शिक्षा जो आज भी दी जाती है बौद्ध युग की देन है। बहुशिक्षक तथा समूह प्रणाली इसी व्यवस्था में विकसित हुई। शिक्षा संगठन औपचारिक रूप से संगठित किये जाने लगे। उच्च शिक्षा के लिए न्यूनतम आयु, नियमों और परीक्षा का आयोजन आज भी दिशा–निर्देश दे रहा है।

बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली का प्रभाव आधुनिक भारतीय शिक्षा पर भी दिखाई देता है, क्योंकि अतीत ही वर्तमान की नींव होता है। आधुनिक भारतीय शिक्षा पर बौद्ध शिक्षा का प्रभाव निम्न प्रकार दिखाई देता है–

1. सभी धर्मों, वर्गों और जातियों के बालकों के लिए शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराना - उत्तर वैदिक काल में शूद्र वर्ण को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। महात्मा गौतम बुद्ध ने बौद्ध मठ एवं विहार प्रत्येक जाति, वर्ण तथा धर्म के बालकों के लिए समान रूप से खोले। लोकतंत्र में भी बिना किसी भेद–भाव के सभी बालकों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। यह बौद्ध धर्म की ही देन है।

2. विद्यालयी शिक्षा और कक्षा–कक्षों में शिक्षण की व्यवस्था– वैदिक काल में शिक्षा गुरुकुलों में खुले आसमान के नीचे दी जाती थी। बौद्ध काल में शिक्षा प्रदान करने के लिए बड़े–बड़े भवनों का निर्माण किया गया। उन भवनों में बड़े–बड़े कक्षा–कक्ष थे जिनमें शिक्षण प्रदान किया जाता था। वर्तमान में भी शिक्षा देने के लिए भवन व कक्षा–कक्ष उपलब्ध होते हैं।

3. विद्यालयों में पुस्तकालयों का निर्माण– बौद्ध काल में बौद्ध मठों एवं विहारों में बड़े–बड़े पुस्तकालय भी उपलब्ध थे। वर्तमान में विद्यालयों में ही पुस्तकालय उपलब्ध होते हैं। यह बौद्ध काल की शिक्षा का ही परिणाम है।

4. गुरु और शिष्य के बीच मधुर संबंध– कोई भी शिक्षा प्रणाली तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक शिक्षक और शिक्षार्थी के मध्य संबंध मधुर न हो। वैदिक काल तथा बौद्ध काल की तरह आज भी छात्र और अध्यापक के मध्य संबंधों में आदर का भाव होता है।

5. शिक्षा की व्यवस्था, जनशिक्षा के रूप में– बौद्ध काल में शिक्षा को जनशिक्षा बनाने पर जोर दिया गया अर्थात् बिना भेद–भाव के सभी को शिक्षा का समान अधिकार। आज भी भारत में सभी को शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार है।

6. व्यावसायिक शिक्षा का विकास– बौद्ध काल में छात्रों के लिए सामान्य शिक्षा की तरह व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने पर भी बल दिया जाता था। वर्तमान में यह हमारी शिक्षा व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग बन गई है।

7. नैतिक शिक्षा– बौद्ध काल में छात्रों का चारित्रिक विकास करने के लिए उन्हें नैतिक शिक्षा प्रदान की जाती थी, जो आज भी शिक्षा का अनिवार्य अंग बनी हुई है।

8. अनुशासित जीवन जीने की कला का विकास करना– बौद्धकाल में मठों एवं विहारों में प्रवेश के लिए आचरण संबंधी दस नियमों का पालन करने की शपथ लेनी पड़ती थी, जिससे छात्रों में अनुशासित जीवन जीने की कला का विकास होता था। वर्तमान में भी शिक्षा के द्वारा छात्रों के अंदर अनुशासन लाना आवश्यक माना जाता है।

9. अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र– बौद्धकाल में भारत अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र था। सुदूर देश से आने वाले छात्र, अध्ययन समाप्त करके अपने देशों को लौटते थे और वहाँ प्रेम, दया, अहिंसा, बौद्ध धर्म, विश्व बंधुत्व और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का संदेश फैलाते थे। हमारा देश आज भी प्रेम, शांति एवं अहिंसा के सिद्धांतों का उपासक माना जाता है। अतः भारत को एक बार फिर अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र बनाकर इन सिद्धांतों का विश्व में व्यापक प्रचार किया जा सकता है।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली को विश्व की श्रेष्ठतम शिक्षण प्रणाली कहा जाता है। संसार में शिक्षण संरचना का जो स्वरूप आज दिखाई देता है उसमें (मूल में) बौद्ध युगीन शिक्षा की संरचना के तत्व विद्यमान हैं।

प्रश्न 18. वैदिक एवं बौद्धकालीन शिक्षा में अंतर बताइए।

उत्तर– वैदिक तथा बौद्धकालीन शिक्षा की तुलना–

क्र.	वैदिक युग	बौद्ध युग
1.	शिक्षा गुरु गृह अथवा गुरुकुल में होती थी।	शिक्षा विद्यालयों, बौद्ध मठों में तथा विश्व–विद्यालय में होती थी।
2.	छात्र परिवार के रूप में रहते थे।	छात्र संस्थागत थे।
3.	वेदाध्ययन पर बल दिया जाता था।	धर्म प्रचार एवं सामान्य विषयों पर बल दिया जाता था।
4.	शिक्षण का माध्यम संस्कृत था।	शिक्षण का माध्यम प्राकृत था।
5.	अध्यापक ब्रह्मा होते थे।	अध्यापक भिक्षुओं में से होते थे।
6.	सभी वर्गों के लिए शिक्षा उपलब्ध नहीं थी।	शिक्षा सार्वजनिक थी।
7.	छात्र जीवन कठोर था।	छात्र जीवन सुविधापूर्ण था।
8.	शिक्षा निःशुल्क थी।	शिक्षा शुल्क किसी–न–किसी रूप में देय था।
9.	संस्कृत भाषा पढ़ाई जाती थी।	पाली के साथ अन्य भाषाओं के अध्ययन का प्रावधान था।

अंत में यह कहा जा सकता है कि बौद्ध शिक्षा प्रणाली द्वारा वैदिक शिक्षा प्रणाली में जो कमियाँ रह गई थीं, उन्हें दूर करने का प्रयास किया गया और शिक्षा के क्षेत्र में इस काल ने अधिक विकास किया जिसका प्रभाव वर्तमान भारत की आधुनिक शिक्षा पर दिखाई पड़ता है। शिक्षा जगत में बौद्ध शिक्षा प्रणाली का श्रेष्ठ स्थान है एवं इसने शिक्षा जगत में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

प्रश्न 19. मध्यकालीन भारत की शिक्षा प्रणाली पर लेख लिखिए। **(जबलपुर 2018)**

उत्तर– इस्लाम धर्म की स्थापना **हजरत मोहम्मद साहब** ने की थी। इस धर्म को मानने वालों को 'मुसलमान' कहा जाने लगा। इतिहासकारों ने 1200 से 1700 ईसवीं तक के काल को 'मध्यकाल' अथवा 'मुस्लिम काल' की संज्ञा दी है।

इस्लाम के अभ्युदय के साथ मुस्लिम शासकों की दृष्टि भारत की ओर मुड़ी। समय ने यहाँ पर उनके पैर जमाने में बहुत सहायता की। गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद तथा लोदी वंश के बाद मुगल शासकों ने यहाँ पर अनेक शिक्षा संस्थाएँ खोलीं। इस शिक्षा का आधार धर्म था। मुस्लिम युग में अरब का प्रभाव भारत की कला तथा संस्कृति पर भी पड़ा था। राजनैतिक स्थिति पर भी वह प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। परिणामतः शिक्षा भी उसी प्रभाव से प्रभावित रही। इस्लाम धर्म का अभ्युदय 570 ई. से 632 ई. के मध्य हुआ। हजरत मुहम्मद साहब ने अपने संदेशों को कुरान शरीफ में संकलित किया और यह ग्रंथ मुस्लिम शासकों के लिए सामाजिक नियमन का आधार बना। **हजरत मुहम्मद साहब** ने शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है– "दान में सोना देने की अपेक्षा अपने बच्चों को शिक्षा देना सर्वश्रेष्ठ दान है।" मुस्लिम युग में शासकों ने अपने निजी उद्देश्यों की पूर्ति में अजमेर

में मस्जिदें तथा मदरसे बनवाए, जिनमें इस्लाम तथा मुस्लिम कानून के शिक्षण की व्यवस्था की। इसी के उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन, बलबन आदि ने मस्जिदों तथा मकतबों का निर्माण कराया तथा शासन से सहायता दिलाई।

1. तुगलक वंश– तुगलक वंश के फिरोजशाह तुगलक ने भी शिक्षा के प्रसार तथा प्रचार के लिए प्रयत्न किये। दिल्ली में फिरोजशाह द्वारा स्थापित मदरसे का वर्णन इस प्रकार किया गया है। मदरसा बहुत बड़े स्थान तथा भवन में स्थित था तथा उसके बड़े–बड़े गुम्बद थे। यह एक उद्यान में बनाया गया था, जिसमें मानव कला के साथ–साथ प्रकृति का समन्वय भी था। यहाँ का वातावरण ध्यान एवं अध्ययन के लिए सर्वोत्तम था। इन विद्यालयों में छात्रवृत्ति का भी प्रबंध था। राज्य भी सहायता करता था।

2. लोदी वंश– सिकंदर लोदी (1489-1519) के समय में हिन्दुओं ने भी फारसी सीखना प्रारंभ कर दिया और इस प्रकार वे भाषा ज्ञान प्राप्त करके राजतंत्र में सेवा करने लगे। मुस्लिम शासकों ने भी प्रशासनिक कार्यों के लिए हिन्दू अधिकारियों की आवश्यकता अनुभव की, इसलिए उन्होंने भारतीय भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था की। हिन्दू तथा मुसलमानों के आपसी सम्पर्क में उर्दू की जुबान या भाषा का विकास हुआ।

3. मुगल वंश– पूर्ववर्ती मुसलमान शासकों की अपेक्षा मुगलों की शिक्षा में अधिक रुचि थी। इसलिये इस युग में शिक्षा का विकास पर्याप्त ढंग से हुआ। अकबर ने महाभारत, रामायण, अथर्ववेद और लीलावती आदि अनेक ग्रंथों का अनुवाद फारसी में कराया। अकबर ने शिक्षा के विकास में बहुत रुचि ली। **अबुल फजल** ने 'आइने अकबरी' में इस संबंध में लिखा है– "प्रत्येक देश में विशेष रूप से हिन्दुस्तान में लड़कों को वर्षों तक विद्यालय में रखा जाता था, जहाँ वे स्वर एवं व्यंजन सीखते थे। अनेक पुस्तकों को पढ़ने के माध्यम से छात्रों के जीवन का एक बड़ा भाग व्यर्थ ही बीतता था। प्रत्येक छात्र को नैतिक शिक्षा, गणित, राजगणित, कृषि, चिकित्सा, तर्क, तबी रियाजी एवं इलाही विधाओं के पढ़ने पर बल दिया जाता था।

जहाँगीर ने एक कानून बनाया कि जो व्यक्ति लावारिस मरेगा उसकी सम्पत्ति विद्यालयों तथा धार्मिक भवनों की मरम्मत के लिए इस्तेमाल की जाएगी। शाहजहाँ ने जामा मस्जिद के पास एक महाविद्यालय खोला था। औरंगजेब ने मुस्लिम शिक्षा का प्रसार तो किया, किन्तु हिन्दू पाठशालाओं तथा मंदिरों को नष्ट करके। उसने मुस्लिम छात्रों को अत्यधिक सुविधाएँ दीं। अध्यापकों को नीचा दर्जा दिया।

मुगल साम्राज्य के पतन के बाद पाठशालाओं तथा मदरसों पर काफी आघात हुआ। अराजकता तथा धनाभाव के कारण ये संस्थाएँ बंद हो गईं। यहाँ पर यह बात ध्यान रखने की है, जब मस्जिदों, मकतब तथा मदरसों का प्रचार मुस्लिम राजशक्ति ही के प्रभाव से हो रहा था तब हिन्दू शिक्षा प्रणाली पाठशाला, मठ मंदिरों आदि से सुरक्षित थी। हालाँकि उस समय मुस्लिम आक्रमणों के कारण अराजकता व्याप्त थी। मुस्लिम शिक्षा में व्यवस्था का अभाव पाया जाता है।

मुस्लिम युग की शिक्षा का आधार सामुदायिक था। इसलिए यह कहना कि मुस्लिम शासकों ने उदार रूप से शिक्षा का प्रसार किया, असंगत है। उन्होंने अपने उद्देश्य, स्वार्थ एवं लालसाओं की पूर्ति के लिए ही शिक्षा का प्रसार किया। **वर्नियर** के अनुसार–"जिस समय का वर्णन मैने किया है,

उसमें घोर व सर्वव्यापी अज्ञान स्वाभाविक है। क्या हिन्दुस्तान में उचित रूप से आर्थिक सहायता प्राप्त विधा केन्द्र तथा मदरसे स्थापित करना संभव है ? हम संस्थापक कहाँ से लायेंगे ? और यदि दे मिल भी गये तो विद्यार्थी कहाँ है ? ऐसे व्यक्ति भी कहाँ है जिनकी संपत्ति विद्यार्थियों को मदरसों में सहायता देने के लिए पर्याप्त हो और यदि ऐसे व्यक्तियों का अस्तित्व भी हो तो उस संपत्ति को बाहर निकालने का साहस किसमें है ? अंत में यदि कोई व्यक्ति यह मूर्खता करने का साहस भी करे तो फिर ऐसे धर्म स्थान ऐसे उद्यम तथा संभावनाप्रद कार्यालय कहाँ है जहाँ योग्य तथा विद्वान की खपत हो सके तथा नये युवकों, विद्यार्थियों में प्रतिस्पर्धा तथा आशा का संचार कर सके।"

भारत में मुस्लिम शिक्षा–प्रणाली बहुमुखी होकर विकसित हुई। इसने एक ओर इस्लाम तथा कुरान को जीवन–शैली का आधार बनाया तो दूसरी ओर मिश्रित और सभ्यता से नई दिशा विकसित हुई। **डॉ. एफ. के. ई.** के अनुसार– "मुस्लिम शिक्षा एक विदेशी प्रणाली थी, जिसका भारत में प्रतिरोपण किया गया और जो ब्राह्मण शिक्षा से अति अल्प संबंध रखकर अपनी नवीन भूमि में विकसित हुई।"

प्रश्न 20. मुस्लिम युगीन शिक्षा की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर– इस्लाम धर्म मानने वाले इस धर्म को सर्वोच्च स्थान देते थे, क्योंकि उनका यह विश्वास था कि इस धर्म के द्वारा व्यक्ति और समाज का कल्याण होता है। इसके अतिरिक्त उनमें धार्मिक कट्टरता भी थी। यही कारण है कि मुस्लिम शासनकाल में शिक्षा प्रमुख रूप से धार्मिक रही है। फिर भी इस बात को अनदेखा नहीं किया जा सकता कि इस्लामी शिक्षा का भारत में प्रसार मुसलमान शासकों का विद्यानुराग है जिसके फलस्वरूप भारत में अनेक मकतब और मदरसे खुलवाए। अतः मुस्लिम शिक्षा ने भारत की प्राचीन शिक्षा–प्रणाली को बहुत आघात पहुँचाया और एक नई शिक्षा–प्रणाली का प्रतिपादन किया। इस शिक्षा–प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. शिक्षा का प्रशासनिक व आर्थिक संगठन– इस काल में सभी मुसलमान शासकों ने इस्लाम धर्म और संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार हेतु 'मकतब' व 'मदरसों' का निर्माण कराया व उन्हें आर्थिक सहायता भी दी परंतु भारत में मुस्लिम शासकों ने केन्द्रीय या प्रांतीय स्तर पर किसी प्रकार की स्थापना नहीं की परंतु मुस्लिम शिक्षा के प्रसार में रुचि अवश्य ली और अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा को नियंत्रित रखा। शिक्षा के लिए मकतब व मदरसे बनवाये। इनमें शिक्षा लेने वाले छात्रों से किसी भी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था बल्कि मदरसों में रहने वाले छात्रों को भोजन व वस्त्र की निःशुल्क सेवा और मेधावी छात्रों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गईं।

2. शिक्षा की संरचना व संगठन– मध्यकालीन मुस्लिम शिक्षा दो भागों में बाँटी गई थी– प्राथमिक व उच्च। इन दोनों शिक्षा के लिए राज्य प्रशासक धनवान व्यक्ति जिनकी रुचि शिक्षा में थी, उनके द्वारा मकतब और मदरसे बनवाए गए। मकतबों में प्रायमरी शिक्षा दी जाती थी जो ज्यादातर मस्जिदों से संबंधित होते थे। मदरसों में उच्च शिक्षा दी जाती थी। इन मदरसों की शिक्षा निःशुल्क थी तथा विद्यादान को महादान माना जाता था, परंतु यहाँ का वातावरण धार्मिक कट्टरता से परिपूर्ण था। इन संस्थाओं में शिक्षा का आयोजन मुख्यतः मुसलमानों के लिए था।

3. नायकीय पद्धति– मुस्लिम काल में नायकीय पद्धति विद्यमान थी। उनके अनुसार कक्षा में कुछ नायक या तेज छात्र शिक्षक को शिक्षण कार्य में सहायता प्रदान करते थे। यद्यपि यह प्रथा भारत में पहले से विद्यमान थी परंतु उसका खुलकर प्रयोग सबसे पहले मुस्लिम काल में हुआ था।

4. गुरु–शिष्य संबंध– वैदिक युग में गुरु–शिष्य संबंध पिता–पुत्र के समान थे परंतु मुस्लिम युग में गुरु और शिष्य के वह संबंध न रहे थे जो वैदिक युग में थे। वैदिक युग में गुरु की आज्ञा की अवहेलना करने का साहस राजा भी नहीं कर सकता था किन्तु मुस्लिम काल में गुरु का पद इतना गौरवशाली नहीं रह गया था। ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते हैं जब शासकों का शिक्षक वर्ग पर अत्याचार था।

5. व्यापकता का अभाव– मुस्लिम काल की शिक्षा मकतबों और मदरसों में दी जाती थी जिसमें धार्मिक कट्टरता की छाप थी। अतएव हिन्दू जनता को उससे कोई लाभ नहीं मिला इसलिए मुस्लिम शिक्षा में व्यापकता का अभाव था। मुस्लिम काल की शिक्षा उच्च और मध्य वर्ग के लिए शिक्षा की व्यवस्था थी, जन–साधारण के बालकों के लिए ज्ञान प्राप्त करने का कोई भी साधन उपलब्ध नहीं था।

6. प्रांतीय भाषाओं की उपेक्षा– मुस्लिम शिक्षा केन्द्रों में 'अरबी' और 'फारसी' भाषाओं को अपनाया गया और अन्त में प्रान्तीय भाषाओं की उपेक्षा की गई। यद्यपि अकबर के काल में हिन्दी को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और औरंगजेब ने उर्दू को प्रोत्साहित किया किन्तु फिर भी अरबी और फारसी की ही प्रधानता बनी रही।

7. नि:शुल्क शिक्षा– मुस्लिम काल में मकतबों एवं मदरसों में नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई थी। मदरसों में रहने वाले छात्रों को भोजन एवं वस्त्र की व्यवस्था नि:शुल्क थी। मेधावी छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की भी व्यवस्था थी। इनका सारा खर्च शासक या धनी वर्ग के लोगों द्वारा उठाया जाता था।

8. स्त्री शिक्षा– यद्यपि मुस्लिम संस्कृति महिलाओं का बहुत सम्मान करती है तथा उसे शिक्षा के समान अवसर देने की बात कहती है परंतु व्यावहारिकता में इस दिशा में कोई ठोस उपाय या प्रयास नहीं किये गये। यही कारण था कि मकतबों में प्राथमिक शिक्षा तो प्रदान की जाती थी परंतु मदरसों में उनको अनुमति नहीं थी, उसका कारण मुस्लिम संस्कृति में पर्दा प्रथा थी। राज्य या समाज की तरफ से स्त्री शिक्षा के लिए अलग से कोई व्यवस्था नहीं की गई थी अर्थात् लड़कियों को एक निश्चित आयु तक ही शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था परंतु उसके बाद उनकी शिक्षा बंद हो जाती थी।

9. परीक्षाएँ– मुस्लिम काल में अगली कक्षा में जाने के लिए परीक्षाएँ नहीं होती थीं। जब शिष्य वर्ष भर ठीक से कार्य करता था तो उसके वार्षिक कार्य के अनुसार शिक्षक निर्णय करता था कि वह अगली कक्षा में जाने के योग्य है या नहीं।

10. लौकिक दृष्टिकोण पर बल– यद्यपि मुस्लिम शिक्षा धर्म प्रधान थी परंतु इस्लाम धर्म में लोक की वास्तविकता पर विशेष बल दिये जाने के फलस्वरूप मुसलमान लौकिक जीवन की ओर अधिक आकृष्ट हुए परिणाम यह हुआ कि शिक्षा के क्षेत्र में भी लौकिकता का ही प्रमुख स्थान रहा और उसका उद्देश्य यश, सुख एवं ऐश्वर्य प्राप्त करना माना गया। बौद्धिक विकास और नैतिक पक्ष की अवहेलना की गई।

11. उपाधियाँ– मुस्लिम काल में मदरसों में इस्लाम धर्म को विशेष योग्यता प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को आलिम, अरबी, फारसी साहित्य में विशेष योग्यता प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को काबिल और तर्क तथा दर्शनशास्त्र में विशेष योग्यता प्राप्त करने वालों को फाजिल की उपाधियाँ दी जाती थीं। उस काल में काबिल उपाधि प्राप्त व्यक्तियों को ही शासन में उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था। छात्रों को उपाधियाँ प्राप्त करते समय नियमित रूप से दीक्षांत समारोह का आयोजन किया जाता था।

12. शिक्षण विधियाँ– मकतबों में दी जाने वाली पद्धति मौखिक थी। शिक्षक प्रत्यक्ष विधि से बालक को शुद्ध उच्चारण का ज्ञान कराता था। जिसके बाद "कलमा" और "कुरान" की कुछ आयतें कंठस्थ करनी पड़ती थीं। पिछला पाठ कंठस्थ हो जाने के बाद अगला पाठ कंठस्थ कराया जाता था। गिनती और पहाड़े जोर–जोर से बोलकर रटवाये जाते थे।

उच्च शिक्षा के लिए मदरसे थे जिसमें भाषण विधि का प्रयोग होता था। कक्षा अनुवीक्षण विधि का अधिक प्रचलन था। सर्वप्रथम कंठस्थ विधि से पढ़ाया जाता था, उसके बाद पढ़ना और लिखना सिखाया जाता था। बाद में व्याख्यान विधि और तर्क विधि भी प्रचलित हुई।

अंत में कह सकते हैं कि इस युग में मुस्लिम शिक्षा में बहुत कमियाँ होते हुए भी उसमें वास्तुकला, चित्रकला, नृत्यकला एवं संगीत आदि कलाओं का विकास हुआ। धर्म के नाम पर इस्लाम धर्म की शिक्षा व नैतिकता के नाम पर शरीयत की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षक की आज्ञा का पालन न करने पर उन्हें कठोर शारीरिक दंड दिये जाने का प्रावधान था। वहीं योग्य और चरित्रवान विद्यार्थी को तमगें एवं सनदें दी जाती थीं। अमीरों द्वारा योग्य छात्रों को पुरस्कार दिया जाता था।

प्रश्न 21. मुस्लिम शिक्षा के उद्देश्य और आदर्श लिखिए। **(जबलपुर 2019)**

उत्तर–मुस्लिम शिक्षा का अर्थ ज्ञानार्जन करना था। मुस्लिम शिक्षा के द्वारा सांसारिक वैभव की प्राप्ति पर जोर दिया जाता था। शिक्षा का यह उद्देश्य आज भी पूर्णतया प्रासंगिक प्रतीत होता है। मुस्लिम शिक्षा–प्रणाली में कुछ ऐसे तत्व थे जो डाँवाडोल राजनैतिक परिदृश्य में भी मुस्लिम शिक्षा प्रणाली को जीवित रखने में सहायक रहें। मकतबों और मदरसों का वातावरण धार्मिक कट्टरता से परिपूर्ण था क्योंकि भारत में सभी मुस्लिम शासकों का लक्ष्य अपने राज्य को स्थायी और सुदृढ़ बनाना था। विदेशी और विधर्मी होने के कारण भारतीयों को सदैव शंका की दृष्टि से देखा जाता था। मुस्लिम शिक्षा में कुरान की आयतों को कंठस्थ करवाया जाता था।

मध्यकालीन मुस्लिम शिक्षा के प्रभाव ने वैदिक शिक्षा के तीव्रगामी विकास को खत्म कर दिया फिर भी वह अंचलों में अपना अस्तित्व बनाये रखी, परंतु मुस्लिम शासकों के तीव्र प्रहार के कारण अंचलों में भी मुस्लिम शिक्षा का प्रभाव दिखने लगा। पाठ्यक्रम में कुरान की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई थी। मुस्लिम शासकों ने भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों को परिवर्तित कर नवीन शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया।

मुस्लिम शिक्षा के उद्देश्य व आदर्श–शिक्षा के प्रति मुस्लिम शासकों के इस विरोधी दृष्टिकोण के कारण सम्पूर्ण मुस्लिम युग में शिक्षा के उद्देश्यों और आदर्शों में असमानता मिलती है, परंतु फिर भी इस्लाम धर्म के सच्चे बंदे होने के कारण सभी मुसलमान शासकों ने शिक्षा के कुछ ऐसे उद्देश्य और आदर्श निर्धारित किये जिनमें निश्चित एकरूपता थी।

1. शिक्षा मानवीय ज्ञान में विस्तार एवं वृद्धि का माध्यम– हजरत मोहम्मद साहब का प्राथमिक उद्देश्य शिक्षा को लेकर इस प्रकार था। "उपहार में स्वर्ण देने की अपेक्षा बच्चों को शिक्षा देना श्रेयस्कर है।" शिक्षा का मूल तत्व ज्ञानार्जन करना था, क्योंकि शिक्षा के माध्यम से ही मानवीयता का प्रकार प्राप्त होता है तथा व्यक्ति में स्वविवेक जाग्रत होता है इसलिए मोहम्मद साहब ने ज्ञान को अमृत बनाया था और कहा था कि ज्ञान ही निजाम अर्थात् मुक्ति का साधन है। ज्ञान के प्रकाश में आलोकित होकर ही व्यक्ति धर्म और अधर्म, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य में अंतर कर सकता है।

2. मुस्लिम धर्म एवं दर्शन का प्रसार– शिक्षा को जनसंचार का माध्यम बनाने के पक्ष में मुस्लिम शासकों ने इसे धर्म, सम्बोधनों, धार्मिक परम्पराओं से अनुप्रमाणित किया था, क्योंकि उनका मुख्य लक्ष्य इस्लाम का प्रसार करना था। मुसलमान अपने धर्म का विस्तार करना अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं। उनका विश्वास है कि काफिरों से इस्लाम धर्म को अंगीकार करने वाला मुसलमान गाजी होता है। इस विश्वास से प्रेरित होकर मुसलमान शासकों ने भारत के कोने–कोने में इस्लाम धर्म को फैलाने का प्रयत्न किया। इसी मकसद की पूर्ति हेतु उन्होंने इसे नवीन संस्थाओं में, मुस्लिम धर्म गुरुओं तथा मौलवियों के मार्गदर्शन में शासकीय आदेशों के साये में पाला–पोसा। इस संस्थाओं को मकतब तथा मदरसे कहते थे कि इनमें कुरान की आयतों को कंठस्थ करना अनिवार्य था।

3. मुस्लिम संस्कृति का प्रसार–मुस्लिम शिक्षा का तीसरा उद्देश्य मुस्लिम संस्कृति का प्रसार करना था। मुसलमान, भारत में दूसरे देशों से आये थे। अतः उनकी और हिन्दुओं की संस्कृति में प्रत्येक दृष्टि से विषमता थी। इस विषमता का अंत करने के लिए मुसलमानों ने शिक्षा को माध्यम बनाया। उनका विचार था कि वे शिक्षा के द्वारा भारतवासियों को अपनी भाषा, प्रथाओं, आचार–विचार और सामाजिक नियमों से प्रभावित करके अपने धर्म के समर्थक बना लेंगे।

4. शिक्षा धार्मिक नियमों तथा आदेशों की पूरक–मुस्लिम शिक्षा जब धर्म की अनुचरी बन चुकी थी तो इसका उद्देश्य था, मुसलमानों में धार्मिकता का समावेश करना तथा अन्य वर्गों के लोगों को इस धर्म में पारंगत करना क्योंकि इससे पूर्व भारतीय इस धर्म तथा परिपाटियों से अपरिचित थे। बहुत से लोगों ने प्रलोभन में आकर इस धर्म को स्वीकार कर लिया। फिर इन लोगों को शिक्षा के माध्यम से धार्मिक, नियमों, कानूनों तथा आदेशों में दक्षता प्रदान किया जाना ही उद्देश्य था। मकतबों और मदरसों को मस्जिद से संबद्ध करके प्रतिदिन सामूहिक नमाज़ का आयोजन किया जाने लगा। यहाँ शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों में धार्मिक वातावरण द्वारा धार्मिकता का समावेश किया जाना था।

5. शिक्षा सांसारिक उन्नति का माध्यम–अब तक शिक्षा मोक्ष प्राप्त करने के अपने चरम लक्ष्य से भटक चुकी थी, क्योंकि नवीन धार्मिक संस्कारों ने इसकी चहुँमुखी प्रतिभा को धार्मिक एवं सांसारिक सुखों की प्राप्ति तक ही सीमित कर दिया था। इस प्रकार तात्कालिक समाज में हिन्दू शिक्षा के रूढ़िगत संस्कारों का ह्रास तो हुआ किन्तु सांसारिक उन्नति की प्राथमिकता के फलस्वरूप आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग हमेशा के लिए बंद हो गए। इस्लाम केवल परिवार बढ़ाने को मुक्ति का मार्ग मानता है जिसका भारतीय संस्कृति के साथ कोई तालमेल नहीं था।

6. चरित्र का निर्माण–मुस्लिम शिक्षा व्यक्ति के चरित्र निर्माण पर भी जोर देती थी परंतु यह इस्लाम धर्म के अनुरूप था। मोहम्मद साहब ने भी चरित्र निर्माण पर अत्यधिक जोर दिया था। उनका कहना था कि उत्तम चरित्र का निर्माण करके ही व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकता है। मकतबों और मदरसों में बालकों के अच्छे चरित्र के निर्माण का प्रयास किया जाता था एवं उनको नियंत्रित करने के लिए उन्हें दंडित भी किया जाता था।

7. शासन दृढ़ बनाना–मुस्लिम युग में शिक्षा का उद्देश्य शासन को दृढ़ बनाना भी रहा है। मुस्लिम शासकों का विचार था कि शिक्षा के अभाव में वे अपना शासन दृढ़ नहीं बना सकते। अत: मुस्लिम शासक शिक्षा के माध्यम से अपनी राजनैतिक स्थिति को दृढ़ करना चाहते थे।

8. ज्ञान का प्रसार–भारत में आये हुए या धर्म परिवर्तन करने वाले मुस्लिमों में धार्मिक ज्ञान का प्रसार केवल शिक्षा द्वारा ही हो सकता था। मुहम्मद साहब का कहना था कि ज्ञान ही अमृत है और इसके बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। उन्होंने लोगों को कर्त्तव्य तथा गलत कार्यों के मध्य अंतर करना बताया। धर्म–अधर्म में भेद की व्याख्या की एवं शिक्षा के द्वारा प्राप्त ज्ञान की आवश्यकता पर बल दिया।

9. व्यावहारिक शिक्षा–मुस्लिम युग में सामान्य शिक्षा को जीवनोपयोगी तथा व्यावहारिक बनाया गया इसीलिए राजकुमार को इतिहास, भूगोल, सैन्य संचालन आदि की शिक्षा दी जाती थी।

प्रश्न 22. मुस्लिम युग में शिक्षा तथा संगठन की व्यवस्था किस प्रकार थी ? स्पष्ट करें।

***अथवा*, मुस्लिम काल में शिक्षा के दो प्रमुख अभिकरण लिखिए।** **(जबलपुर 2021)**

***अथवा*, इस्लामिक शिक्षा से आप क्या समझते हो ? इस्लामिक शिक्षा व्यवस्था की व्याख्या कीजिये।** **(छतरपुर 2021; जबलपुर 22)**

उत्तर–मुस्लिम युग में शिक्षा तथा संगठन की व्यवस्था निम्न प्रकार थी–

1. बिस्मिल्लाह–शिक्षा का आरम्भ बिस्मिल्लाह की रस्म से होता था। 4 वर्ष, 4 माह, 4 दिन की अवस्था होने पर यह रस्म अदा की जाती थी। यह संस्कार वैदिक युग के उपनयन, बौद्ध युग के पब्बजा से मिलता–जुलता है। इस दिन बालक को नवीन ताज पहनाकर मौलवी साहब के पास भेजा जाता था, जहाँ पर वे उसे कुरान की आयत से शिक्षा का आरम्भ कराते थे। धनी लोग यह संस्कार घर पर ही कराते थे।

2. मकतब–शिक्षा का आरंभ मकतब अर्थात् स्कूल में होता था। मकतब प्राथमिक पाठशाला को कहते हैं। बालक की आरंभिक शिक्षा यहीं पर होती थी। मकतब से आशय 'प्रारम्भिक पाठशाला' से था। 'मकतब' शब्द 'अरबी भाषा' के 'कुतुब' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है–उसने लिखा। इसका अर्थ यह हुआ कि वह स्थान जहाँ लिखना–पढ़ना सिखाया जाये, मकतब कहलाता है। मकतब में वर्णमाला, सुलेख, गणित, फारसी, व्याकरण, चरित्र विकास तथा नैतिकता की शिक्षा के साथ–साथ भाषण कला, पत्रलेखन, वार्तालाप, अर्जीनवीस आदि की शिक्षा भी दी जाती थी। मकतबों में मौखिक विधि शिक्षण हेतु अपनाई जाती थी। रटने पर बल दिया जाता था। कुरान शरीफ की आयतें कंठस्थ करायी जाती थीं। मकतब प्राय: मस्जिदों से लगे हुए होते थे। इसमें हस्तलेख, कुरान, समाज, अजान, गणित, अर्जीनवीस, बातचीत, पत्र लेखन आदि सिखाया जाता था।

3. मदरसा–मदरसों में बालकों की उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी। ये राज्य द्वारा सहायता प्राप्त कराते थे। मदरसा वह स्थान होता था जहाँ पर भाषण दिया जाता था अर्थात् मदरसा उच्च शिक्षा का केन्द्र था। मदरसों के साथ छात्रावास की व्यवस्था भी थी। मदरसें व्यक्तिगत तथा राजकीय दोनों ही प्रकार के थे। अलग–अलग विषयों के लिए पृथक्–पृथक् मदरसे होते थे। मदरसों में धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ इस्लामी इतिहास, कानून, मुहम्मद साहब के परमार्थ एवं सूफी सिद्धान्तों का अध्ययन कराया जाता था।

4. पाठ्यक्रम—मुस्लिम युग में शिक्षा के पाठ्यक्रम में कुरान, मुहम्मद साहब की जीवनी तथा कार्य, इस्लाम का इतिहास तथा कानून, अरबी व फारसी भाषाएँ, व्याकरण साहित्य, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, कानून, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, कृषि, यूनानी चिकित्सा पद्धति का अध्ययन भी कराया जाता था। हिन्दू बालकों के लिए संस्कृत की व्यवस्था भी थी। मदरसों में धार्मिक एवं लौकिक दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। धार्मिक शिक्षा में कुरान, इस्लामी कानून, इतिहास तथा सूफी सिद्धान्त आदि हैं। लौकिक शिक्षा के अन्तर्गत व्याकरण, भाषा, साहित्य आदि पढ़ाये जाते थे। अलग-अलग विषयों के अध्ययन केन्द्र भी अलग-अलग थे।

5. शिक्षण विधि—लिखने-पढ़ने तथा गणित के साथ-साथ कंठाग्र करने पर भी जोर दिया जाता था। मौखिक प्रणाली का उपयोग किया जाता था। इन बातों पर व्यक्तिगत ध्यान दिया जाता था। इस समय मॉनीटर प्रणाली भी विकसित हो चुकी थी। प्रत्यक्ष भाषा तथा रटन्त विधियों का प्रयोग भी किया जाता था।

6. गुरु-शिष्य संबंध—इस युग में गुरु-शिष्य संबंधों में घनिष्ठता तो न थी, परन्तु **जफर** के अनुसार— "ईमानदारी एवं पवित्रता पर किसी को शंका नहीं थी। गुरु का समाज में एक विशिष्ट स्थान था, यद्यपि उन्हें थोड़ा वेतन मिलता था, परंतु लोग उनका अधिक आदर तथा विश्वास करते थें।" गुरु-शिष्य का संबंध पिता-पुत्र जैसा था। जो छात्र अपने गुरु की सेवा करते थे, वे भगवान को खुश रखते थे। इतना होने पर भी गुरु-शिष्य के संबंधों का आधार सामान्य था। औरंगजेब ने अपने गुरु मुल्लाशाह सालेह का अपमान किया था।

7. दंड एवं पुरस्कार—अनुशासन बनाये रखने के लिए कठोर दंड की व्यवस्था थी। कुशल एवं होशियार तालिबिम्मों को ईनाम दिये जाते थे।

8. शिक्षा का माध्यम—मुस्लिम युग में शिक्षा का माध्यम फारसी एवं अरबी था। उर्दू के आविष्कार के बाद भाषा का माध्यम उर्दू हो गया था।

9. मूल्यांकन—इस युग में मूल्यांकन के लिये परीक्षा नियमित नहीं थी। शिक्षक जब चाहे परीक्षा ले सकता था तथा आगे का पाठ्यक्रम प्रस्तावित कर सकता था। मदरसों में पाठ्यक्रम पूरा करने के बाद फाज़िल, आलिम तथा काबिल उपाधियाँ दी जाती थीं।

प्रश्न 23. इस्लामिक/मध्यकालीन शिक्षा की शिक्षण विधियाँ बताइए।

उत्तर—मध्यकालीन शिक्षा मौखिक रूप में ही दी जाती थीं। छात्रों में स्वाध्याय विधि का विकास करने पर बल दिया जाता था। साथ ही अनुकरण करने, अभ्यास करने तथा स्मरण विधि के प्रयोग पर भी बल दिया जाता था। उच्च स्तर पर व्याख्यान व भाषण विधि के साथ ही प्रयोग विधि, तर्क विधि, प्रदर्शन विधि का प्रयोग भी शिक्षा देने के लिए किया जाता था। यहाँ इन सब विधियों का संक्षिप्त विवरण निम्न हैं—

1. व्याख्यान विधि या भाषण विधि—उच्च स्तर की शिक्षा प्रदान करने के लिए व्याख्यान या भाषण विधि का प्रयोग किया जाता था। व्याख्यान का अर्थ है—संबंधित विषय-वस्तु की व्याख्या करना। व्याख्यान विधि की सफलता इस पर निर्भर करती है कि व्याख्या करते समय तथ्यों को किस प्रकार समझाया जाता है। मदरसों में इस विधि के माध्यम से शिक्षण प्रदान किया जाता था।

2. प्रयोग विधि—इस विधि का प्रयोग प्रायोगिक विषयों की शिक्षा देने के लिए किया जाता था। शिक्षक सर्वप्रथम वस्तु अथवा क्रिया का प्रदर्शन करके दिखाते थे। छात्र उसे देखकर उसके स्वरूप को समझकर खुद इस विधि का प्रयोग करके सीखते थे।

3. तर्क विधि–इस विधि का प्रयोग दर्शन एवं तर्कशास्त्र जैसे विषयों के शिक्षण के लिए किया जाता था। इसमें प्रत्यक्ष उदाहरणों तथा इस्लामिक सिद्धान्तों को विशेष महत्व दिया जाता था।

4. अनुसरण, अभ्यास तथा स्मरण विधि–इन विधियों का प्रयोग प्राथमिक स्तर पर किया जाता था। शिक्षक कुरान शरीफ की आयतों, अक्षरों और पहाड़ों का उच्चारण कराते थे, छात्र सामूहिक रूप से उनका अनुकरण करते थे, उन्हें कंठस्थ करते थे। उच्चारण और सुलेख की शिक्षा भी इसी विधि के माध्यम से दी जाती थी।

5. स्वाध्याय विधि–मुस्लिम शासकों ने अपने धर्म के ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियाँ तैयार कराईं और इनके रखने के लिए बड़े–बड़े पुस्तकालयों का निर्माण कराया। छात्र इन पुस्तकालयों में बैठकर इन पुस्तकों का अध्ययन करते थे जिससे उनमें स्वाध्याय का विकास होता था।

प्रश्न 24. इस्लामिक/मध्यकालीन शिक्षा–प्रणाली का मूल्यांकन कीजिए। मध्यकालीन शिक्षा प्रणाली का आधुनिक भारतीय शिक्षा पर प्रभाव का वर्णन कीजिए। **(ग्वालियर 2022)**

***अथवा*, मुस्लिम कालीन शिक्षा के गुण–दोष का उल्लेख कीजिए। (रीवा 2022; छतरपुर 22)**

उत्तर– मध्यकालीन मुस्लिम शिक्षा में मुगल शासकों ने भारत की परम्परागत चली आ रही शिक्षा–प्रणाली का अस्तित्व समाप्त कर धार्मिक मुस्लिम शिक्षा पर जोर दिया। लगभग पाँच सौ वर्षों के इस शासनकाल ने भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को पूर्णतः प्रभावित किया। इस काल में कुरान की शिक्षा को अनिवार्यता दी गई थी। संस्कृत व हिन्दी के स्थान पर उर्दू, अरबी व फारसी भाषाओं को प्रचलित किया गया। इस प्रणाली का मूल्यांकन तत्कालीन भारतीय समाज व राष्ट्रीय उन्नति के आधार पर किया जाता है। इसे न तो पूरी तरह सफल कर कह सकते हैं न असफल। मुस्लिम शिक्षा पद्धति को समझने के लिए उसके गुण–दोषों की विवेचना करनी होगी।

इस्लामिक/मध्यकालीन शिक्षा–प्रणाली के गुण–

1. शिक्षा को राज्य का संरक्षण– मुस्लिम काल में शिक्षा को पूर्णतः राज्य का संरक्षण प्राप्त था। मुस्लिम शासकों ने अनेक मकतबों, मदरसों, मस्जिदों और पुस्तकालयों की स्थापना करवाई। मकतबों और मदरसों को शासक की तरफ से पूर्ण आर्थिक सहायता दी जाती थी। धर्म के विद्वानों को शासक द्वारा पुरस्कृत किया जाता था।

2. निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा– मुस्लिम शिक्षा में विद्यार्थी के लिए तीन मुख्य बातों को अनिवार्य माना गया था। पहला कुरान शरीफ का ज्ञान प्राप्त करना, दूसरा मुसलमानों द्वारा मोहम्मद साहब के इस कथन में विश्वास करना– "जो छात्र ज्ञान की खोज करता है उसे ईश्वर स्वर्ग में उच्च स्थान प्रदान करता है।" तीसरा इस्लाम धर्म में कहा गया है– "जो मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है, वह धार्मिक कार्य करता है, जो ज्ञान की बात करता है वह ईश्वर की प्रशंसा करता है, जो ज्ञान की खोज करता है वह ईश्वर की उपासना करता है।" अर्थात् धार्मिक शिक्षा को व्यक्ति के लिए अनिवार्य समझा गया।

3. साहित्य व इतिहास का विकास– मुस्लिम युग में साहित्य और इतिहास का पर्याप्त विकास हुआ। अनेक मुस्लिम शासक विद्या के प्रेमी और विद्वानों के संरक्षक थे। मुस्लिम युग में नीति, दर्शन आदि विषयों पर साहित्य का निर्माण हुआ और रामायण, महाभारत आदि हिन्दू ग्रंथों का फारसी में अनुवाद किया गया। भारत में क्रमबद्ध इतिहास का लेखन सर्वप्रथम मुस्लिम काल में ही आरंभ हुआ था। कल्हण की राजतरंगिणी को इतिहास की कोटि में स्थान दिया गया था।

4. भाषा व विज्ञानों को प्रोत्साहन–मुस्लिम युग में फारसी भाषा और विज्ञानों को अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उस समय फारसी मुस्लिम शासकों की राजभाषा थी। इसलिए इस भाषा के विद्वानों की बहुत माँग थी। इस मुस्लिम युग में फारसी भाषा और विज्ञानों की शिक्षा को शिक्षा का लक्ष्य रखा गया।

5. छात्रों को प्रोत्साहन– मध्यकाल में धर्म, दर्शन, साहित्य व कला–कौशल के क्षेत्र में योग्यता रखने वाले छात्रों को प्रोत्साहन के लिए आर्थिक सहायता देने की शुरुआत की गई। आधुनिक समय में भी ऐसे छात्रों को विशेष आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। इस व्यवस्था के विकास का श्रेय मध्यकाल की शिक्षा–प्रणाली को जाता है।

6. ज्ञान के विकास पर बल– मोहम्मद साहब ज्ञान को अमृत तुल्य मानते थे। यही कारण था कि मध्यकालीन मुस्लिम शिक्षा प्रणाली में इस्लाम धर्म एवं संस्कृति के विकास के साथ–साथ ज्ञान के विकास पर भी बल दिया गया।

7. सांस्कृतिक एकता की अभिवृद्धि– मुस्लिम शिक्षा आरंभ में मकतबों एवं मदरसों में दी जाती थी, जो कि केवल मुसलमानों तक ही सीमित थी। वहाँ पर हिन्दुओं के प्रवेश पर प्रतिबंध था। सिकन्दर लोदी के समय उसने यह प्रतिबंध हटाकर शिक्षा का अधिकार सभी जातियों के बच्चों को मकतब व मदरसों में दे दिया। इसके फलस्वरूप जातीय बंधन खत्म होते ही सांस्कृतिक एकता में वृद्धि हुई।

8. शिक्षक का उच्च स्थान– मध्यकाल में शिक्षकों का समाज में ऊँचा स्थान था। शिक्षक के पद पर ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता था जो चरित्रवान हों, जिनको समाज के व्यक्तियों का विश्वास व सम्मान प्राप्त हो और जो अपने विषय में विद्वान हो। इस काल में शिक्षकों को बहुत सम्मान दिया जाता था।

9. मॉनीटर प्रणाली की शुरुआत– वैसे तो वैदिक काल में भी मॉनीटर होते थे परंतु मध्यकाल में इसका विकास हुआ। प्रतिभाशाली छात्रों को कक्षा का नायक बना दिया जाता था जो निम्न कक्षाओं को पढ़ाने में शिक्षकों की मदद करते थे।

10. धार्मिक और लौकिक शिक्षा का समन्वय– मुस्लिम शिक्षा में धार्मिक और लौकिक शिक्षा का समन्वय था। मकतबों में विद्यार्थियों को कुरान की शिक्षा और आयतें कंठस्थ कराई जाती थीं। अन्य विषयों के साथ अंकगणित, बातचीत करने का ढंग, पत्र–लेखन कला और अर्जीनवीसी आदि एवं जीवनोपयोगी विषय भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार शिक्षा के दोनों स्तरों पर धार्मिक और लौकिक विषयों का समावेश था।

11. शिक्षक–छात्र संबंध– इस काल में भी शिक्षक छात्रों का ध्यान रखते थे। उनकी योग्यता, कुशलता एवं प्रतिभा का विकास करने में मदद करते थे। छात्रों की सभी जरूरतों का ध्यान रखते थे। गलती करने पर छात्रों को दंड की भी व्यवस्था थी क्योंकि प्रशंसा के साथ निंदा से भी छात्रों में अच्छी आदतों व अच्छे चरित्र का निर्माण होता है। शिक्षक छात्रों के प्रति स्नेह रखते थे और व्यक्तिगत रूप से उनका ध्यान रखते थे।

12. व्यावसायिक शिक्षा की उचित व्यवस्था– मध्यकाल से पहले ही व्यावसायिक शिक्षा में बहुत विकास हो चुका था। मुस्लिम शासकों ने भी शिक्षा के पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को सम्मिलित करके उसका विकास किया क्योंकि मुस्लिम शासक भी व्यवसायों की शिक्षा की उत्तम व्यवस्था के पक्ष में थे।

13. कला–कौशलों के क्षेत्र में प्रगति– मुस्लिम काल में कला–कौशलों के क्षेत्र में भी प्रगति हुई। मुस्लिम शासक कला–प्रेमी थे इसलिए इन्होंने इसे बहुत प्रोत्साहन दिया। संगीतकला, मूर्तिकला, चित्रकला, बागवानी आदि कलाओं का विकास जितना इस काल में हुआ उतना और किसी भी काल में नहीं हुआ।

इस्लामिक/मध्यकालीन शिक्षा–प्रणाली के दोष– मध्यकाल की मुस्लिम शिक्षा में दोष भी थे जिनका विवरण इस प्रकार है–

1. शिक्षा व्यवस्था में अस्थिरता– सभी मुस्लिम शासक धर्म के प्रति कट्टरपंथी थे। अकबर बादशाह की नीति इनसे अलग थी। शिक्षा का प्रमुख दोष शिक्षा व्यवस्था की अस्थिरता थी। इसका कारण कुछ मुस्लिम शासकों की धर्म के प्रति कट्टरवादिता थी। इसके विपरीत कुछ शासक उदार प्रवृत्ति के थे। किसी शासक के शासन काल में प्रगति धीमी गति से तथा किसी में तीव्र गति से हुई। राजाओं के शासन को लेकर संघर्षों के कारण भी इनमें उतार–चढ़ाव आते रहे।

2. आध्यात्मिकता का अभाव– हिन्दू शिक्षा–पद्धति का मुस्लिम शासकों ने बहुत विरोध किया और मुस्लिम धर्म की शिक्षा लादने का भरसक प्रयास किया जिसके फलस्वरूप धर्म और दर्शन तथा आध्यात्मिक ज्ञान को बहुत क्षति पहुँची, क्योंकि मुस्लिम शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मुस्लिम धार्मिक कट्टरता फैलाना था। मुस्लिम शिक्षा भौतिक जीवन के सारे सुखों और ऐश्वर्यों का उपभोग करने में विश्वास करती थी।

3. स्त्री शिक्षा की उपेक्षा– मुस्लिम काल में पर्दा प्रथा की व्यवस्था होने के कारण स्त्री शिक्षा में इतनी प्रगति नहीं हुई जितनी होनी चाहिए थी। मकतबों में लड़कियाँ प्रवेश तो लेती थीं परंतु इनकी संख्या बहुत ही कम थी। राजघरानों व धनी वर्ग की लड़कियों की शिक्षा–व्यवस्था उनके घर पर ही कर दी जाती थीं। इस काल में स्त्रियों की शिक्षा की दशा बहुत ही संकुचित हो गई थी।

4. वैदिक शिक्षा का उपेक्षा– मध्यकालीन मुस्लिम शिक्षा–प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य भारत में इस्लाम धर्म और संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार करना था। अपने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए इस शिक्षा–प्रणाली में वैदिक शिक्षा की पूर्णतया उपेक्षा की गई और वैदिक धर्म व साहित्य की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

5. कठोर दंड प्रणाली– मध्यकाल में छात्रों को छोटे–छोटे अपराधों पर कठोर शारीरिक दंड दिया जाता था। छात्र शिक्षकों से भयभीत रहते थे। वैदिक काल में छात्र श्रद्धा से गुरु का आदर व सम्मान करते थे जबकि मध्यकाल में छात्र डर के कारण गुरु का आदर व सम्मान करते थे और उनके आदेशों का पालन करते थे। मनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धतियों में कठोर दंड को कभी भी शामिल नहीं किया जाता था।

6. प्रांतीय भाषाओं की उपेक्षा– मुस्लिम शिक्षा पद्धति फारसी और अरबी भाषा में शिक्षा देती थी अर्थात् प्रारंभ में ही विद्यार्थी को यह भाषा सीखनी पड़ती थी। फारसी भाषा राजभाषा घोषित हो गई थी। राजपदों पर उन्हीं लोगों को आसीन किया जाता था, जिनको फारसी का पूर्ण ज्ञान हो। मुस्लिम काल में लोकभाषाओं पर केवल ध्यान ही नहीं दिया गया वरन् उनकी उपेक्षा भी की गई जिसके कारण उनके विकास का मार्ग रुक गया।

7. जनसाधारण की शिक्षा की उपेक्षा– मध्यकालीन शिक्षा में एक प्रमुख दोष जन शिक्षा की अवहेलना था क्योंकि मध्यकाल में शिक्षा केवल इस्लाम धर्म के लोगों को ही उपलब्ध थी। इसके विपरीत मुस्लिम युग में हिन्दुओं को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध नहीं हुआ। हिन्दुओं की शिक्षा की उपेक्षा की गई और उनकी शिक्षा संस्थाओं के लिए आर्थिक मदद भी नहीं की गई अर्थात् इस काल में जन शिक्षा की पूरी तरह से अवहेलना की गई।

8. धर्म परिवर्तन पर बल– मुस्लिम शिक्षा–प्रणाली का उद्देश्य इस्लाम धर्म व संस्कृति का प्रचार करना था। मुस्लिम शासक हिन्दुओं को इस ओर आकर्षित करने में लगे रहते थे जिससे कि हिन्दू इस ओर आकर्षित होकर इस्लाम धर्म की शिक्षा प्राप्त करने में रुचि लें। इसके लिए जो हिन्दू इस्लाम धर्म की शिक्षा प्राप्त कर लेते थे उन्हें शासन में ऊँचे–ऊँचे पदों पर नियुक्त किया जाता था।

9. लेखन व पठन की असमानता– मुस्लिम शिक्षा में प्रारंभिक शिक्षा में कंठस्थ विधि पर जोर दिया जाता था। यह पद्धति पूरी तरह अमनोवैज्ञानिक थी। इस विधि में विद्यार्थी को लिखना और पढ़ना एक साथ न सिखाकर अलग–अलग सिखाया जाता था। विद्यार्थी जब पढ़ना सीख जाता था तब उसको लिखने का अभ्यास करवाया जाता था।

उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त भी मुस्लिम शिक्षा कई दोषों से भरपूर थी। इस शिक्षा काल में कंठस्थ पर जोर दिया गया जिससे बालक को व्यावहारिक क्रियाओं का कोई अवसर प्राप्त नहीं हुआ। मध्यकालीन शिक्षा बालकों में नेतृत्व के गुणों का विकास करने में भी असफल रही। शिक्षा पद्धति में लचीलेपन की भी कमी थी। वैदिक और बौद्धिक शिक्षा की तरह इसमें विद्यार्थी पर नियंत्रण नहीं था, न ही विद्यार्थी अनुशासित थे।

इस्लामिक/मध्यकालीन शिक्षा प्रणाली का आधुनिक भारतीय शिक्षा पर प्रभाव– हर काल की शिक्षा–प्रणालियों में ऐसी विशेषताएँ होती हैं जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से आने वाले समय की शिक्षा–प्रणालियों पर अपना प्रभाव डालती है। मुस्लिम शिक्षा–प्रणाली में भी कुछ ऐसी विशेषताएँ थीं जो वर्तमान शिक्षा–प्रणाली में भी है।

शिक्षा का मुख्य उत्तरदायित्व था– राज्य का होना, एक निश्चित स्तर तक की शिक्षा निःशुल्क होना, योग्य छात्रों को आर्थिक सहायता प्रदान करना, कालक्रम के अनुसार इतिहास लिखना, उत्कृष्ट व्यावसायिक शिक्षा और कला–कौशल की शिक्षा की व्यवस्था करना आदि। ऐसे गुण हैं जो कि आधुनिक भारतीय शिक्षा नीतियों पर भी अपना प्रभाव डालती हैं। मध्यकालीन में अपनाये गये शिक्षा नीति से हमारे देश में भी उच्च शिक्षा के लिए विशिष्ट महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का निर्माण होने लगा।

मुस्लिम–शिक्षा में हमें ऐसे अनेक उपयोगी तत्व मिलते हैं जो आधुनिक भारतीय शिक्षा के लिए ग्रहणीय हैं, जो निम्नानुसार हैं–

1. निःशुल्क शिक्षा– मुस्लिम शिक्षा, प्राथमिक और उच्च दोनों स्तरों पर निःशुल्क थी। आधुनिक भारतीय शिक्षा, प्राथमिक स्तर पर तो निःशुल्क है, पर माध्यमिक और उच्च स्तरों पर नहीं है। अतः इन स्तरों पर शिक्षा को निःशुल्क बनाया जाना चाहिए। इसका मुख्य कारण यह है कि आज की शिक्षा इतना महँगी हो गई है कि अनेक छात्र माध्यमिक और विशेष रूप से उच्च शिक्षा के लिए लालायित होने पर भी उसे प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं।

2. व्यावहारिक शिक्षा– आज के वैज्ञानिक युग में शिक्षा को आध्यात्मिक विकास और मोक्ष प्राप्ति का साधन बनाना सर्वथा अनुचित है। अतः यह आवश्यक है कि जिस प्रकार मुस्लिम शिक्षा में व्यावहारिक विषयों को महत्व दिया जाता था, इसी प्रकार भारत की आधुनिक शिक्षा में भी दिया जाये। व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करके छात्र–समाज के उपयोगी सदस्य बन सकते हैं और साथ ही अपने जीविका का सरलता से उपार्जन भी कर सकते हैं।

3. शिक्षक की स्थिति में उन्नति–आधुनिक भारत में शिक्षक की स्थिति निम्न से निम्नतर होती चली जा रही है। इसके लिए आंशिक रूप से शिक्षक पर, मुख्य रूप से समाज और राज्य उत्तरदायी है। इसका कारण यह है कि न तो शिक्षक को समाज में सम्मान प्राप्त है और न राज्य का संरक्षण। अतः आवश्यक है कि समाज और राज्य दोनों ही उसके प्रति अपने दृष्टिकोण को परिवर्तित करें और उसकी स्थिति को समुन्नत बनाने में उपयोग करें। मुस्लिम युग में शिक्षक को छात्रों की भक्ति, समाज का सम्मान और राज्य का संरक्षण प्राप्त था। आधुनिक भारत में मुस्लिम शिक्षा के इस तत्व को एकमत से स्वीकार किया जाना चाहिए।

4. व्यक्तिगत सम्पर्क– मुस्लिम युग के अधिकांश मदरसों में शिक्षक और छात्र साथ–साथ रहते थे फलस्वरूप उनमें व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित हो जाता था। इस सम्पर्क के माध्यम से शिक्षक, छात्रों में विशिष्ट गुणों का समावेश करते थे।

आधुनिक भारतीय शिक्षा में व्यक्तिगत सम्पर्क नाम की कोई चीज नहीं है। यही कारण है कि छात्रों में निरंतर अनुशासनहीनता में वृद्धि होती चली जा रही है। इसको समाप्त करने और छात्रों का चारित्रिक उन्नयन करने के लिए शिक्षकों से उनका निकट और व्यक्तिगत सम्पर्क होना परम आवश्यक है।

5. धार्मिक व लौकिक शिक्षा का समन्वय– आज के भौतिकवादी युग में लौकिक शिक्षा की असीम आवश्यकता है। धर्म व्यक्ति के जीवन और चरित्र का प्रधान आधार स्तम्भ है। आधुनिक भारतीय शिक्षा की परिधि में से धर्म को बाहर निकालकर इस आधार स्तम्भ को हटा दिया गया है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन मुस्लिम शिक्षा–प्रणाली हमारे देश में एक विदेशी पौधा था। इससे भारत की शिक्षा प्रणाली का इतना विकास नहीं हो सका जो उस समय की माँग थी। प्रत्येक शिक्षा–प्रणाली में कुछ उपयोगी तथ्य होते हैं और कुछ अनुपयोगी परिस्थितियों के अनुसार उपयोगी तथ्यों को ग्रहण करना चाहिए और अनुपयोगी तथ्यों को छोड़ देना चाहिए। हमने भी आधुनिक शिक्षा नीति में इसकी अच्छाई को अपनाया है और कमियों को दूर करने का प्रयास किया है।

प्रश्न 25. पारम्परिक शिक्षा की विशेषताएँ बताइए। पारम्परिक शिक्षा के लाभ तथा हानियाँ स्पष्ट कीजिए।

***अथवा*, पारम्परिक शिक्षा के लाभ व हानियाँ लिखिए।** **(जबलपुर 2021)**

***अथवा*, शिक्षा की परम्परा से आप क्या समझते हैं ? वर्णन कीजिए।** **(उज्जैन 2021)**

उत्तर– पारम्परिक शिक्षा का अर्थ– पारम्परिक शिक्षा से अभिप्राय शिक्षक केन्द्रित शिक्षा–प्रणाली से है जिसमें शिक्षक कक्षा–कक्ष में छात्रों को ज्ञान एवं जानकारी प्रदान करते हैं। पारम्परिक विद्यालय सामान्यतः शैक्षिक प्रथाओं पर बल देते हैं जिसमें मुख्य शैक्षिक विषयों, जैसे– गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान को पढ़ना, लिखना एवं समझना सम्मिलित हैं। राजकीय विद्यालय सामान्यतः इसी शैक्षिक प्रारूप का पालन करते हैं परंतु चार्टर स्कूल इससे अधिक लचीला दृष्टिकोण अपनाते हैं। अन्य वैकल्पिक विद्यालय जिसमें स्वतंत्र विद्यालय सम्मिलित किये जाते हैं जिनका प्रबंधन निजी हाथों में होता है, जैसे–धार्मिक स्कूल, गृह स्कूल एवं ऑनलाइन अधिगम इत्यादि आते हैं। जब विद्यालय का चुनाव किया जाता है तो कई कारक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसमें केवल शैक्षिक कार्यक्रमों को ही नहीं देखा जाता है बल्कि सामाजिक वातावरण तथा अन्य सुविधाओं की उपलब्धता को भी देखा जाता है। पारम्परिक स्कूल राष्ट्रव्यापी शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, वह चाहे केन्द्र स्तर पर राज्यों में हों, इन स्कूलों की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

पारम्परिक शिक्षा की विशेषताएँ– पारम्परिक शिक्षा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

1. यह शिक्षा पूर्ण प्रभावशाली है अर्थात् इस प्रकार की शिक्षा में बालकों को वह समस्त क्रिया-कलाप एवं अधिगम सिखाए जाते हैं जिनकी उनको भविष्य में आवश्यकता होती है।

2. पारम्परिक शिक्षा यद्यपि कठोर परीक्षणों के माध्यम से प्रदान की जाती है परंतु फिर भी छात्र सरलता से विषयों को आत्मसात् कर लेते हैं एवं स्नातक स्तर तक पहुँच जाते हैं।

3. पारम्परिक शिक्षा में लागत बहुत कम आती है।

4. पारम्परिक शिक्षा में शिक्षक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है।

5. पारम्परिक शिक्षा में शिक्षक–छात्र संबंध बहुत मधुर रहते हैं।

6. पारम्परिक शिक्षा को परम्परागत शिक्षा या प्रथागत शिक्षा के नाम से भी जाना जाता है।

7. परम्परागत शिक्षा छात्रों को उन आवश्यक कौशलों, तथ्यों एवं नैतिक–सामाजिक आचरण को सिखाती है जो अगली पीढ़ी के लिए अत्यंत आवश्यक है।

8. ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो पारम्परिक शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर शिक्षा मौखिक रूप से प्रदान की जाती थी। इसमें छात्रों को एक क्रम में बैठाकर उन्हें तथ्यों को कंठस्थ कराया जाता था।

9. इस शिक्षा व्यवस्था में समस्त छात्रों को एक समान अध्ययन सामग्री तथा शिक्षण विधियों से अध्यापन कराया जाता है।

10. परम्परागत शिक्षा के विभिन्न तत्व देश की संस्कृतियों से अधिक जुड़े होते हैं या प्रभावित होते हैं।

पारम्परिक शिक्षा के लाभ– पारम्परिक शिक्षा के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. मुख्य शैक्षिक पाठ्यक्रमों का मानकीकरण– पारम्परिक शिक्षा के अन्तर्गत मुख्य विषयों- गणित, विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान का विस्तृत ज्ञान छात्रों को प्रदान किया जाता है जिससे उनके व्यक्तित्व का बहुआयामी विकास होता है।

2. नि:शुल्क खेल सुविधाएँ– परम्परागत शिक्षा में छात्रों को विद्यालय की तरफ से नि:शुल्क खेल सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं जिससे उनका शारीरिक विकास उचित प्रकार से होता है।

3. विविध सामाजिक सहभागिता– परम्परागत स्कूलों में विभिन्न पृष्ठभूमि के छात्र शिक्षा ग्रहण करने आते हैं। जब सभी छात्र एक–दूसरे से मिलते हैं तो वे आपस में एक–दूसरे से किस तरह से बात करना चाहिए, सीखते हैं। ये वातावरण छात्रों में सामाजिक कौशल के विकास में सहायता करता है।

4. सभी के लिए खुला– परम्परागत विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार सभी को होता है। इसमें बालक, बालिकाओं, विकलांग एवं विशिष्ट बालक सभी को अपनी सुविधानुसार शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार होता है। विकलांग बालकों को इन विद्यालयों में विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। वे चाहे तो सभी बालकों के साथ एकीकृत या वैकल्पिक रूप से भी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

5. नि:शुल्क विद्यालय– परम्परागत विद्यालयों में जो माता–पिता अपने बच्चों को भेजते हैं उन्हें बालकों की शिक्षा के लिए कोई शुल्क नहीं देना पड़ता है। स्कूली शिक्षा के लिए नि:शुल्क प्रवेश बुनियादी शिक्षा में लाभ के लिए अनुमति देता है।

परम्परागत शिक्षा की हानियाँ– पारम्परिक शिक्षा के जहाँ एक ओर अनेक लाभ हैं वहीं हानियाँ भी होती हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. पारम्परिक शिक्षा छात्रों को सक्रिय अधिगम के स्थान पर निष्क्रिय अधिगम प्रदान करता है जो उनके सम्पूर्ण अधिगम को प्रभावित करता है।

2. परम्परागत शिक्षा एकतरफा सम्प्रेषण को प्रोत्साहित करती है जिससे केवल व्याख्याता ही छात्रों की वास्तविक समस्याओं को समझे बिना विभिन्न अवधारणाओं एवं तथ्यों की व्याख्या करता है।

3. छात्रों से पृष्ठपोषण नहीं प्राप्त किया जाता है जिससे छात्रों की समस्याओं की अनदेखी हो जाती है तथा शिक्षक को अपने शिक्षण में सुधार का अवसर नहीं प्राप्त हो पाता है।

4. छात्रों को विभिन्न शैक्षिक क्रियाओं जैसे–वाद–विवाद, परिचर्या परियोजना, समस्या–समाधान इत्यादि का पर्याप्त अवसर नहीं मिलता है या फिर ये अवसर प्रदान नहीं किए जाते हैं। बहुत से छात्र इन शब्दावलियों का अर्थ तक नहीं जानते हैं।

5. छात्रों को अध्ययन के लिए विशेष रूप से लेखन एवं वाचन के लिए अनुदेशन की आवश्यकता होती है परंतु शिक्षक इसके प्रति लापरवाही करते हैं जिससे छात्रों का अधिगम व्यवहार प्रभावित होता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर ये कहा जा सकता है कि शिक्षण व्यवस्था में कुछ अच्छाइयाँ तो कुछ कमियाँ होती हैं। इन कमियों को दूर कर तथा आधुनिक शिक्षण व्यवस्थाओं को अपनाकर एक सफल एवं उत्तम शिक्षण विधि का निर्माण किया जा सकता है। शिक्षण विधि का मुख्य उद्देश्य छात्रों को अधिक–से–अधिक अधिगम कराना होता है।

प्रश्न 26. औपनिवेशिक भारत में शिक्षा को स्पष्ट कीजिए। **(भोपाल 2022)**

उत्तर– हिन्दू राजाओं के समय से भारत के पश्चिमी देशों से गहरे संबंध थे तथा वे व्यापार–वाणिज्य एवं भ्रमण के उद्देश्य से भारत आये थे। वास्कोडीगामा द्वारा भारत की खोज के उपरान्त यूरोपीय व्यापारियों का भारत में आगमन प्रारंभ हुआ। यूरोपीय धीरे–धीरे भारत में आधिपत्य स्थापित करने को नीति करने लगे। इस संबंध में **टी. एन. सिकेरा** के अनुसार, "व्यापार के बाद इस देश में उनका झंडा लहराया और उसके साथ उनकी शिक्षा का आरंभ हुआ।"

मिशनरियों द्वारा आधुनिक शिक्षा का आरंभ–मिशनरियों का प्रमुख उद्देश्य भारतवासियों में कैथोलिक धर्म का प्रसार करना था। इसके अतिरिक्त अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करना इनका प्रमुख उद्देश्य था। इस संबंध में **डॉ.डी.ओ. ऐलेन** के अनुसार– "शिक्षा संस्थाओं ने मिशनरियों को भारतीयों से संपर्क स्थापित करने, उन्हें अपने धार्मिक सिद्धांतों से अवगत कराने का अवसर प्रदान किया।"

मिशनरियों ने भारत में विभिन्न स्थानों पर शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की और पाश्चात्य ढंग से शिक्षा प्रदान करने का कार्य आरंभ किया जिस कारण मिशनरियों को आधुनिक शिक्षा का प्रवर्तक माना जाता है।

नूरल्ला व नायक के अनुसार– "मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा पद्धति के प्रवर्तक होने का सम्मान प्राप्त है।"

मिशनरियों के शिक्षा कार्य–मिशनरियों में सर्वप्रथम डच मिशनरियों ने चिनसुरा, नागापट्टम तथा विमलीपट्टम में कुछ स्कूलों की स्थापना की। इन स्कूलों में डच ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों एवं अन्य भारतीयों के बालकों को शिक्षा प्रदान की जाती थी। डच मिशनरियों ने धर्म प्रचार को वरीयता नहीं दी।

इसके पश्चात् डेन, फ्रांसीसी, पुर्तगाली तत्पश्चात् अंग्रेज मिशनरियों ने अनेक स्कूलों की स्थापना की जिनमें विभिन्न विषयों के अतिरिक्त दस्तकारी प्रशिक्षण आदि की शिक्षा दी जाती थी। अंग्रेज मिशनरियों ने व्यापक स्तर पर विभिन्न विद्यालयों की स्थापना की। इन विद्यालयों में इनके कर्मचारियों के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती थी। अंग्रेज मिशनरियों ने बंगाल को ईसाई धर्म के प्रचार का केन्द्र बनाया परंतु ईस्ट इंडिया कंपनी की धर्म विरोधी नीति से मिशनरियों को निराशा हुई। इस संबंध में **मुरूल्ला व नायक के अनुसार**– "मिशनरियों और उनके मित्रों ने धर्म-प्रचार कार्य में स्वतंत्रता प्राप्त करने के उद्देश्य से इंग्लैण्ड में आंदोलन प्रारंभ किया। आंदोलन करने वालों में प्रमुख स्थान चार्ल्स ग्राण्ट का था।"

चार्ल्स ग्राण्ट ईस्ट इंण्डिया कंपनी में कार्यरत था उसने अपनी पुस्तक में हिन्दू–मुस्लिम अज्ञानता को दर्शाया तथा उसके निवारण के लिए पंचमुखी योजना प्रस्तुत की जिसमें भारत में विद्यालयों की स्थापना तथा अंग्रेजों द्वारा शिक्षा की संपूर्ण व्यवस्था की योजना प्रस्तुत की।

अपने प्रस्ताव के द्वारा ग्राण्ट ने भारतीयों की शिक्षा हेतु रूपरेखा तैयार की जिसे भविष्य में मान्यता प्राप्त हो गई।

नरूल्ला व नायक के अनुसार–"ग्राण्ट को कभी–कभी भारत की आधुनिक शिक्षा का जन्मदाता कहा जाता है।"

उपरोक्त विवरण से हमें ज्ञात होता है कि मिशनरियों ने आधुनिक शिक्षा का आविर्भाव किया तथा नवीन शिक्षा का सूत्रपात किया। मिशनरियों के कारण ही 19 वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में इस देश में शिक्षा की नवीन पद्धति का आविर्भाव हुआ।

प्रश्न 27. ईस्ट इंडिया कंपनी की प्रारंभिक शिक्षा नीति को संक्षिप्त में लिखिए।

(उज्जैन 2017)

***अथवा,* ब्रिटिश शासन ने भारत में शिक्षा को कैसे प्रभावित किया ? औपनिवेशिक भारत में शिक्षा की प्रमुख विधियों का वर्णन करें।** **(भोपाल 2021)**

उत्तर–सर्वप्रथम भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की शिक्षा नीति से अंग्रेजी शिक्षा का आरंभ होता है। सन् 1599 में इंग्लैण्ड के व्यापारियों ने एक साथ मिलकर एक कंपनी का निर्माण किया। इस कंपनी ने ईस्ट इंडिया के नाम से अपना अस्तित्व बनाया। वैसे तो इस कंपनी का प्राथमिक उद्देश्य था, व्यापारिक समझौते में प्रतिस्पर्धा तथा संघर्ष को समाप्त करना। इंग्लैण्ड की महारानी एलिजाबेथ ने 1600 ई. में राजाज्ञा देकर पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने की अनुमति प्रदान की थी। जिसके फलस्वरूप ईस्ट इंडिया कंपनी फलने–फूलने लगी। इस कंपनी ने केवल धर्म के प्रचार व उत्थान के लिए सन् 1611 में मछलीपट्टनम एवं सूरत में कारखानों की स्थापना की। अपने धर्म का प्रसार करने के लिए सन् 1659 में एक आदेश पत्र जारी कर इंग्लैण्ड से अंग्रेज मिशनरियों को भारत लाया गया। इस कंपनी ने सन् 1659 में एक आज्ञा पत्र लेकर कंपनी के किलों, रक्षक, सेनाओं एवं कारखानों में विद्यालय स्थापित कर धर्म की शिक्षा दी। इसको बढ़ावा देने के लिए सन् 1698 में स्कूलों की स्थापना कर निःशुल्क शिक्षा देने की व्यवस्था की गई। इन स्कूलों का खर्च दान से आये पैसों से चलता था। पादरी पिंगले के नेतृत्व में सन् 1673 में मद्रास में माध्यमिक स्कूल की स्थापना की गई। प्रोटेस्टेण्ट धर्म के बालकों की शिक्षा के लिए पादरी **रिचर्ड कॉंबे** ने एक स्कूल की स्थापना बंबई में की। अंग्रेजों को प्लासी युद्ध में विजय के उपरांत सन् 1757 में शासक शाह आलम द्वारा प्रभुसत्ता की स्वीकृति

मिलते ही सत्ता में अंग्रेजों की जड़ों को और मजबूत कर दिया जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों ने शिक्षा की रूपरेखा अपने हितों को ध्यान में रखते हुए बना दी। सन् 1773 में 'रेग्यूलेटिंग एक्ट' लागू किया गया जिसके उपरांत कलकत्ता में एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया गया।

सन् 1780 में मुसलमानों को उच्च शिक्षा प्रदान करने के लक्ष्य से वॉरेन हेस्टिंग्ज ने बंगाल के गवर्नर होने के नाते कलकत्ता में मदरसा बनाया। लॉर्ड वैलेजली ने सन् 1800 में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। इसका मुख्य उद्देश्य ईस्ट इंडिया कंपनी हेतु सुयोग्य भारतीय कर्मचारियों को तैयार करना था। अंग्रेजों की भारत में दस्तक होते ही सन् 1765 से ही अपने स्वार्थ और हितों की पूर्ति के लिये शिक्षा देने के प्रयास आरंभ कर दिये गये थे। अंग्रेजों के इस दृष्टिकोण के लिए डॉ. श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय ने इस प्रकार विचार अभिव्यक्त किये हैं, "ईस्ट इंडिया कंपनी के मालिकों का विचार था कि शिक्षा प्रसार हेतु शासक उत्तरदायी नहीं माना जा सकता, क्योंकि वह किसी देश की पूर्व प्रचलित शिक्षा पद्धति में परिवर्तन एवं हस्तक्षेप के लिये स्वतंत्र नहीं है। इसके फलस्वरूप कंपनी ने पूर्व प्रचलित शिक्षा पद्धति को न तो छुआ और न ही कोई हस्तक्षेप किया।

किन्तु इस स्थिति के बावजूद भी शिक्षा के क्षेत्र में धार्मिक, राजनैतिक तथा व्यापारिक कार्य प्राप्ति हेतु कुछ अनियमित प्रयास किये जाते रहे। इन्हीं प्रयासों के परिणामस्वरूप मद्रास मदरसा तथा बनारस संस्कृत कॉलेज संस्थान अपना अस्तित्व बनाए रख सकी।

ईस्ट इंण्डिया कंपनी के शिक्षा संबंधी कार्य– 1600 ई. में महारानी एलिजाबेथ ने कंपनी को पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने का आज्ञा पत्र जारी किया। इस आज्ञा पत्र के बाद भारत में शिक्षा के द्वारा ऐसे भारतीयों को तैयार करना था, जो अपनी कड़ी मेहनत से अंग्रेजी शासन की जड़ों को मजबूत करने में उनकी सहायता करें। अर्थात् शिक्षा इस तरह की दी जाये जो मानसिक रूप से लोगों को अंग्रेजों का गुलाम बनाये। सन् 1792 में चार्ल्स ग्रांट द्वारा भारतीयों की शैक्षिक व सामाजिक दुर्दशा पर एक पुस्तक ग्रेट ब्रिटेन के एशियाई नागरिकों की सामाजिक स्थिति व अवलोकन कर लिखा कि ग्रांट भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों के रूप में कार्य कर चुका था, उसने भारतीयों को इस पुस्तक में अज्ञानी/अंधविश्वासी कहा तथा उनके लिए अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी साहित्य, ईसाई धर्म व संस्कृति तथा पाश्चात्य ज्ञान की शिक्षा ग्रहण करने पर जोर दिया।

कंपनी 1765 ई. से राज्य करने लगी थी, लेकिन उसने इंग्लैण्ड की परम्परा के अनुसार शिक्षा का भार निजी हाथों में ही रहने दिया। कंपनी की सरकार ने उच्च शिक्षा के लिए कुछ निरुत्साह से प्रयत्न किये। अंग्रेजी शिक्षा का विरोध करते हुए **शार्प महोदय** ने कहा कि "हिन्दुओं की धार्मिकता तथा नैतिकता उतनी ही उत्तम है जितनी अन्य व्यक्तियों की। अतः उनके धर्म परिवर्तन का प्रयास करना तथा अधिक ज्ञान प्रदान करना पागलपन होगा।"

रेजीडेन्ट जोनाथन डंकन के प्रयासों से सन् 1791 ई. में बनारस संस्कृत कॉलेज की स्थापना हुई। इसमें गणित, इतिहास, धर्म, कानून, न्याय, दर्शन, तर्कशास्त्र आदि विषयों की शिक्षा प्रदान की जाने लगी। इन संस्थाओं का प्रमुख उद्देश्य था कि हिन्दू लोगों में किसी प्रकार का विरोध उत्पन्न न करते हुए अंग्रेजों के शासन में कार्य करने के लिए पढ़े–लिखे व्यक्तियों की जमात तैयार करना।

सन् 1813 से लेकर सन् 1833 तक शिक्षा अनेक विरोधाभासों से घिरी रही। यह शिक्षा के लिये अनिश्चितता का युग था। शिक्षा का उद्देश्य क्या हो ? उसका माध्यम क्या हो ? शिक्षा व्यक्तियों तक पहुँचाने के लिये सरकार प्रयास करें या निजी लोगों का भी इसमें योगदान लिया जाये ? इसके खर्च की व्यवस्था किस प्रकार हो ? आदि।

इस प्रकार अंग्रेज मिशनरियों ने भारत के बहुसंख्यक हिन्दुओं को धन और नौकरी का प्रलोभन देकर अंग्रेजी शिक्षा की ओर आकर्षित कर भारतीयों का फायदा उठाया।

नोट–प्रश्न क्रमांक 26 का भी अवलोकन करें।

प्रश्न 28. 1813 ई. का आज्ञा पत्र पर लेख लिखिए।

उत्तर–ईस्ट इंडिया कंपनी ने शिक्षा के प्रति उदासीनता का रवैया अपना रखा था जिसके कारण वह भारतीय शिक्षा के भार से मुक्त रहना चाहती थी। कंपनी के संचालकों को इस बात का डर था कि यदि भारतीयों को शिक्षित किया जायेगा तो अमेरिका की तरह भारत को भी खोना पड़ेगा। कंपनी को इसे शिक्षा नीति के कारण कंपनी व मिशनरियों के मध्य "शिक्षा" को लेकर विवाद की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। इस विवाद के परिणामस्वरूप भारत के तात्कालीन गवर्नर **जनरल लार्ड मिण्टो** ने 6 मार्च, 1811 ई. के अपने विवरण पत्र में भारतीय शिक्षा की दयनीय स्थिति के बारे में अपने विचार रखें और कंपनी का ध्यान शिक्षा की और आकर्षित किया। अपने विवरण पत्र में **लार्ड मिण्टो** ने लिखा था कि– "यह बात सामान्य रूप से कही जाती है कि भारत के मूल निवासियों में विज्ञान एवं साहित्य के ज्ञान का क्रमिक रूप से ह्रास होता जा रहा है। विद्वानों की संख्या न केवल कम हो गयी है बल्कि जो व्यक्ति इस कार्य में संलग्न हैं उनके बीच भी विद्वता का दायरा भी काफी संकुचित प्रतीत होता है। अमूर्त किताबों का परित्याग कर दिया गया है, परिमार्जित साहित्य की अवहेलना कर दी गयी है और लोगों के विशिष्ट धार्मिक सिद्धांतों से संबंधित शिक्षा के अतिरिक्त उच्च शिक्षा की अन्य किसी शाखा की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। इस स्थिति का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि बहुत–सी बहुमूल्य पुस्तकों को अब उपयोग में नहीं लाया जाता है। यहाँ तक कि अनेक बहुमूल्य पुस्तकें वास्तव में लुप्त भी हो गयी हैं। यह आशंका की जाती है कि यदि सरकार ने प्रतिपालक बनकर हस्तक्षेप नहीं किया तो शीघ्र ही पुस्तकों की कमी अथवा उनकी व्याख्या नहीं करने में समर्थ व्यक्तियों के अभाव के कारण इस साहित्य को पुनर्जीवित करना संभव नहीं रह जायेगा। यह अत्यंत सोचनीय बात है कि जो राष्ट्र अपने साम्राज्य के अन्य भागों में अपने साहित्य प्रेम और साहित्य के सफल परिष्करण के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं उसने न तो हिन्दुओं के साहित्य की प्रतिपालक देखभाल की है और न ही उस साहित्य के भंडार के द्वारा यूरोपीय विद्वानों के लिए खोल देने में सहायता की है।" **लार्ड मिण्टो** के विवरण पत्र तथा अन्य परिस्थितियों के कारण एक उग्र विवाद उठ खड़ा हुआ जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश संसद का ध्यान इस समस्या की ओर आकृष्ट हुआ। इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी के आज्ञा पत्र का प्रत्येक 20 वर्ष उपरांत ब्रिटिश पार्लियामेण्ट द्वारा पुनरावर्तन किया जाता था। उक्त शैक्षिक परिस्थितियों को देखते हुए ब्रिटिश संसद ने कंपनी के नाम 1813 ई. में एक नया आज्ञा पत्र घोषित किया।

सन् 1813 के आज्ञा पत्र की 43 वीं धारा में शिक्षा संबंधी धारा का उल्लेख करते हुए भारत में शिक्षा–प्रसार का उत्तरदायित्व कंपनी के ऊपर रखा गया। साहित्य के पुनरुद्धार और सहानुभूति के लिए भारतीय विद्वानों को प्रोत्साहित करने के लिए और भारत में ब्रिटिश प्रदेशों के निवासियों में विद्वानों के ज्ञान का प्रसार एवं विकास करने के लिए प्रतिवर्ष कम–से–कम एक लाख रुपये की धनराशि पृथक् रखी जायेगी और व्यय की जायेगी। इस आज्ञा पत्र से भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में उठ रहे विवादों को समाप्त करने का प्रयास किया गया। इस आज्ञा पत्र की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित थीं–

(1) ईसाई मिशनरियों को भारत में धर्म प्रचार की स्वतंत्रता प्रदान की गयी थी।

(2) शिक्षा को कंपनी का आवश्यक कर्त्तव्य बताया गया।

(3) भारतीयों में शिक्षा–प्रसार के लिए कम–से–कम एक लाख रुपये प्रतिवर्ष निश्चित किया गया था। एक लाख रुपये की धनराशि का प्रयोग साहित्य के रख–रखाव एवं विकास तथा भारतीय विद्वानों को प्रोत्साहन और भारत में ब्रिटिश क्षेत्र में रहने वालों को विज्ञान का ज्ञान कराने में किया जाए।

उन्नत धारा का भारतीय शिक्षा के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इस आज्ञा पत्र से **चार्ल्स ग्रांट और बिल्बर फोर्स** द्वारा लगभग 20 वर्षों तक चलाये जाने वाले आंदोलन की इतिश्री हो गयी। अब भारतीय शिक्षा के प्रचार–प्रसार का उत्तरदायित्व कंपनी सरकार पर आ गया। इस आज्ञा पत्र ने भारतीय शिक्षा को एक नया मोड़ प्रदान किया। इस संदर्भ में **नुरूल्ला** व **नायक** ने लिखा है कि– "1813 ई. के आज्ञा पत्र ने भारतीय शिक्षा के इतिहास को एक नई दिशा में मोड़ा।"

प्रश्न 29. प्राच्य–पाश्चात्य विवाद पर लेख लिखिए। **(छिंदवाड़ा 2022)**

उत्तर–उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही भारतीयों की शिक्षा के संबंध में कंपनी के अधिकारियों में परस्पर मतभेद था, जिसके परिणामस्वरूप उनमें प्राच्यवादी तथा पाश्चात्यवादी विचारधारा के दो दल बन गये थे। प्राच्यवादी विचारधारा वाले गुट संस्कृत, अरबी और फारसी के माध्यम से प्राचीन ज्ञान का प्रचार–प्रसार करना चाहते थे जबकि पाश्चात्यवादी गुट अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पाश्चात्य भाषा एवं साहित्य तथा ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा का समर्थन करते थे।

सरकार ने नई शिक्षा नीति की घोषणा तो कर दी परंतु यह प्राच्य–पाश्चात्य विवाद का अंत न कर सकी क्योंकि **लार्ड बैंटिक** 20 मार्च, 1835 को वापस इंग्लैण्ड चला गया। लार्ड बैंटिक के इंग्लैण्ड जाते ही प्राच्यवादी दल ने अपना आंदोलन दोबारा प्रारंभ कर दिया। उसके पश्चात् जब लार्ड ऑकलैंड भारत के नए गवर्नर जनरल बनकर भारत आए तो उन्होंने प्राच्य पाश्चात्य" विवाद को अत्यंत गंभीर रूप में पाया। उन्होंने 4 वर्षों तक इस विवाद का अध्ययन किया। अध्ययन करने के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सरकार द्वारा प्राप्य शिक्षा पर कम धन व्यय करना, इस विवाद का प्रमुख कारण है। ऑकलैण्ड को विश्वास था कि यदि प्राच्य शिक्षा पर कुछ धन और व्यय कर दिया जाए तो प्राच्यवादी अपना आंदोलन समाप्त कर देंगे। इसके लिए लॉर्ड ऑकलैण्ड ने 24 नवम्बर, सन् 1939 को अपना विवरण पत्र प्रकाशित कराया। इस विवरण पत्र में उसने प्राच्य साहित्य पर 31 हजार रुपये अतिरिक्त खर्च करने की घोषणा की। इस घोषणा ने प्राच्यवादियों को प्रसन्न कर दिया जिसके फलस्वरूप सन् 1813 से चले आ रहे प्राच्य पाश्चात्य विवाद का अंत हो गया।

डॉ.एस.एन. मुखर्जी के अनुसार– "लॉर्ड ऑकलैण्ड को इस बात का अभिमान था कि उसने 31 हजार रुपये प्रतिवर्ष की मामूली धनराशि अधिक व्यय करके प्राच्य–पाश्चात्य विवाद का अंत कर दिया।"

प्रश्न 30. मैकाले की शिक्षा नीति पर लेख लिखिए। **(उज्जैन 2017, 22; ग्वालियर 21)**

***अथवा*, मैकाले का दस्तावेज भारतीय शिक्षा का एक ऐतिहासिक महाधिकार पत्र क्यों कहा जाता है ?** **(ग्वालियर 2021)**

***अथवा*, मैकाले विवरण पत्र क्या था ?** **(जबलपुर 2021, 22)**

उत्तर–**लार्ड मैकाले** ने 10 जून, सन् 1834 को भारत के गवर्नर जनरल की कॉउन्सिल के कानूनी सलाहकार के रूप में नियुक्त होकर भारत में पदार्पण किया था। तब तक प्राच्य और पाश्चात्य विवाद ने एक बड़ा रूप ले लिया था और इसका कोई अंत नजर नहीं आ रहा था। उस समय तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक ने मैकाले को बुलाया और उन्हें बंगाल की

लोक शिक्षा समिति का अध्यक्ष नियुक्त करते हुए उससे यह अपेक्षा की कि वे 1813 के आज्ञा पत्र की धारा 43 में उत्पन्न हुए विवाद का स्थायी हल सुझाए तथा साथ ही साथ साहित्य और भारतीय विद्वान का आशय स्पष्ट करते हुए 1813 के आज्ञा पत्र में वर्णित 1 लाख रु. की धनराशि को खर्च करने की मदों का भी स्पष्टीकरण दें।

चूँकि मैकाले अंग्रेजी साहित्य के घोर समर्थक, प्रकाण्ड विद्वान तथा एक कुशल वक्ता थे। अत: सबसे पहले मैकाले ने 1813 के आज्ञा पत्र की धारा 43 का गहनता से अध्ययन किया और अध्ययन करने के पश्चात् 2 फरवरी, सन् 1835 में अपने तर्कों और विचारों को स्पष्ट कर तर्कपूर्ण भाषा में लेखबद्ध कर दिया और विवरण पत्र गवर्नर जनरल को सौंप दिया। इस विवरण पत्र को ही "मैकाले का विवरण पत्र" 1835, के नाम से जाना जाता है।

मैकाले के भारत आने के पीछे मुख्य तीन उद्देश्य थे–

1. सन् 1813 के राजपत्र की धारा 43 की व्याख्या करना।
2. इस राजपत्र से संबंधित 1 लाख रुपये की धनराशि से संबंधित व्यय को सुलझाना।
3. **मैकाले** ने सर्वप्रथम आज्ञा पत्र की उत्तम धारा और दोनों दलों के वक्तव्यों का सूक्ष्म अध्ययन किया, परंतु मैकाले प्राच्य शिक्षा व संस्कृति का कड़ा आलोचक था। अतः उसने अंग्रेजी के पक्ष में विवाद का निपटारा कर दिया। **मैकाले** ने तर्क दिया कि "भारत व अरब देशों का समस्त शिक्षा साहित्य यूरोपीय साहित्य की एक अलमारी के बराबर है।"

मैकाले का विवरण पत्र–मैकाले ने अपने विवरण पत्र में सन् 1813 के आज्ञापत्र की धारा की निम्नलिखित प्रकार से व्याख्या की है–

1. धनराशि व्यय की व्याख्या–एक लाख रुपये की धनराशि व्यय करने के लिये सरकार पर कोई प्रतिबंध नहीं है। वह इस धनराशि को अपनी इच्छानुसार किसी प्रकार भी व्यय कर सकती है।

2. 'साहित्य' शब्द की व्याख्या–मैकाले ने स्पष्ट रूप से साहित्य शब्द की व्याख्या अंग्रेजी साहित्य के रूप में की। उसका कहना था कि प्राचीन भाषाओं जैसे–संस्कृत, अरबी, फारसी के साहित्य को बनाये रखने से नवीन ज्ञान में बाधा उत्पन्न होगी।

3. शिक्षा का माध्यम–मैकाले अंग्रेजी प्रेमी थे। उसे अन्य भाषाओं से लगाव नहीं था। अत: उसने कड़े शब्दों में अंग्रेजी की वकालत कर शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी पर जोर दिया।

4. भारतीय विद्वान की व्याख्या–मैकाले ने भारतीय विद्वानों में सिर्फ उन विद्वानों को ही शामिल किया जो अंग्रेजी साहित्य के ज्ञाता थे; जैसे–मिल्टन व शेक्सपियर। पाश्चात्य दर्शन जैसे–लॉक का दर्शन व विज्ञान जैसे न्यूटन की खोज आदि के ज्ञाता हो।

5. विज्ञान विषय की व्याख्या–विज्ञान के अंतर्गत, पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के अंतर्गत पढ़ाए जाने वाले विज्ञान को सम्मिलित किया गया।

6. अंग्रेजी का पक्ष–मैकाले अंग्रेजी भाषा का घोर प्रशंसक था तथा प्राच्य शिक्षा व संस्कृति का उपहास उड़ाता था और अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञानों की शिक्षा का शक्तिशाली समर्थन करता था। सबसे पहले मैकाले ने भारतीय भाषाओं को अध्ययन के लिए पूर्णतया निरर्थक बताते हुए लिखा, "भारत के निवासियों में प्रचलित देशी भाषाओं में साहित्यिक तथा वैज्ञानिक ज्ञान कोष का अभाव है और वे इतने अविकसित तथा असभ्य है कि जब तक उनको बाह्य भंडार से सम्पन्न नहीं किया जायेगा, तब तक उनसे किसी भी महत्वपूर्ण पुस्तक का सरलता से अनुवाद नहीं हो सकेगा।

भारतीय भाषाओं की निरर्थकता सिद्ध करने के पश्चात् मैकाले ने अरबी, फारसी तथा संस्कृत की अपेक्षा अंग्रेजी को कहीं अधिक उच्च स्थान दिया। मैकाले ने अंग्रेजी को इनकी अपेक्षा अधिक समृद्ध बनाया और उसके अध्ययन के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए–

1. **मैकाले** के अनुसार, "अंग्रेजी आधुनिक ज्ञान की कुंजी है। वह पश्चिमी भाषाओं में सर्वश्रेष्ठ है।"

2. अंग्रेजी इस देश के शासकों की भाषा है, भारत के उच्च वर्गों के द्वारा बोली जाती है और पूर्वी समुद्रों में व्यापार की भाषा बन सकती है।

3. जिस प्रकार लैटिन एवं यूनानी भाषाओं से इंग्लैण्ड में और पश्चिम यूरोप की भाषाओं से रूस में पुनरुत्थान हुआ, उसी प्रकार अंग्रेजी से भारत में होगा।

4. अंग्रेजी द्वारा भारत में भी अंग्रेज भारतीयों का निर्माण किया जा सकता है और हमारे प्रयास इसी दिशा में होने चाहिए।

5. भारतवासी अरबी और संस्कृत की शिक्षा की अपेक्षा अंग्रेजी शिक्षा के लिए अधिक उत्कंठित है।

6. अंग्रेजी की शिक्षा के द्वारा इस देश में एक ऐसे वर्ग का निर्माण किया जा सकता है जो रक्त और रंग में भले ही भारतीय हो परंतु रुचि, विचार, नैतिकता और विद्वता में अंग्रेज होगा।

अतः मैकाले ने अंग्रेजी के पक्ष में ऐसे तर्क दिये। मैकाले भारतीयों में एक ऐसा वर्ग स्थापित करना चाहता था, जो कि जनसाधारण में कोई रुचि न रखे तथा उनसे पृथक् रहे ताकि समाज में वर्ग संघर्ष फैले। वह सरकारी कार्य हेतु कुशल क्लर्क का कार्य कर सकें तथा अंग्रेजी शासन को दृढ़ता प्रदान करने में सहायता प्रदान करें। उसका यह मत था कि भारतीयों में अंग्रेजी फैलाकर कंपनी को व्यापार तथा शासन के क्षेत्र में व्यापक सफलता प्राप्त होगी। यही कारण है कि अंग्रेजी शिक्षा की प्रगति में मैकाले एक मार्गदर्शक कहलाता है।

मैकाले के विवरण पत्र का मूल्यांकन–यदि हम मैकाले के इरादे की बात करें तो हमें ज्ञात होता है कि मैकाले की यह मान्यता थी कि प्राच्य साहित्य और ज्ञान–विज्ञान बहुत निम्न कोटि का है। अतः उनकी दशा सुधारने के लिये उन्हें अंग्रेजी साहित्य और ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा देना आवश्यक है और यह शिक्षा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ही दी जा सकती है, परंतु वास्तविकता यह है कि वह हमारे देश में एक ऐसे वर्ग का निर्माण करना चाहता था जो जन्म से तो भारतीय हो, परंतु आचार–विचार से अंग्रेज हो। उसके अपने शब्दों में, "हमें भारत में एक ऐसा वर्ग विकसित करना चाहिए जो हमारे और उनके बीच जिन पर हम राज्य करते हैं, संदेशवाहक का कार्य करें। एक ऐसा वर्ग जो रक्त और रंग में भारतीय हो परंतु विचार, आदर्श और बुद्धि में अंग्रेज हो।"

मैकाले भारतीयों में धर्म, दर्शन और संस्कृति को जड़ से नष्ट करना चाहता था। अतः **स्पष्ट** है कि भारतीयों की दृष्टि से मैकाले का इरादा नेक नहीं था। वह भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति को नष्ट कर उसके स्थान पर पाश्चात्य धर्म, दर्शन और संस्कृति का विकास करना चाहता था।

प्रश्न 31. वुड के घोषणा पत्र (1854) की विवेचना कीजिए। **(उज्जैन 2021)**

***अथवा*, "वुड का आज्ञा पत्र भारतीय शिक्षा का महाधिकार पत्र कहा जाता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।** **(छतरपुर 2021)**

***अथवा*, वुड के घोषणा पत्र की सिफारिशें निम्न बिन्दुओं के आधार पर लिखिए–**

(अ) शिक्षा का उद्देश्य **(ब) पाठ्य विषय**

(स) शिक्षा का माध्यम **(द) विश्वविद्यालय।** **(सेमेस्टर 2022, 23)**

उत्तर– कंपनी के नियमानुसार 20 वर्ष बाद आज्ञा पत्र को परिवर्तित किया जाता था। इसी आधार पर 19 जुलाई, 1854 को कंपनी के संचालकों ने वुड का घोषणा पत्र प्रकाशित किया। चार्ल्स वुड "बोर्ड ऑफ–कण्ट्रोल" का प्रधान था, इसलिये इसका नाम 'वुड डिस्पेच' पड़ा। वुड के इस घोषणा पत्र के आधार पर सभी राज्यों में शिक्षा विभाग स्थापित किए तथा इन विभागों को ही प्राथमिक शिक्षा के विकास का उत्तरदायित्व सौंपा गया। वुड के इस घोषणा पत्र में शिक्षा का एक उचित ढाँचा प्रस्तुत किया।

घोषणा पत्र में स्पष्ट किया गया कि शिक्षा का संपूर्ण आर्थिक भार कंपनी को उठाना चाहिए। शिक्षा के सभी विषयों पर ध्यान दिया जाये। शिक्षा देते समय भारतीय भाषाओं को अनदेखा न किया जाये। अंग्रेजी के साथ अन्य भाषाओं को भी स्थान दिया जाये।

वुड के घोषणा–पत्र की सिफारिशें एवं सुझाव–वुड के घोषणा–पत्र की प्रमुख सिफारिशों का विवरण इस प्रकार हैं–

1. शिक्षा का उद्देश्य–कंपनी के अधिकारियों ने घोषणा–पत्र में स्पष्ट किया कि भारतीयों में शिक्षा–प्रसार का उद्देश्य उनके नैतिक, बौद्धिक तथा आर्थिक स्तर को सुधारने के साथ–साथ शासन को सुदृढ़ बनाने वाले राजपदों को संभालने के योग्य भारतीय तैयार करना है।

2. शिक्षा की व्यवस्था–घोषणा–पत्र में यह स्वीकार किया गया कि शिक्षा की व्यवस्था करना कंपनी का उत्तरदायित्व है। इसमें लिखा गया है कि सभी महत्वपूर्ण विषयों में से सबसे ज्यादा हमारा ध्यान अगर कोई आकर्षित करता है तो वह है शिक्षा। यह हमारा मुख्य कर्त्तव्य है।

3. शिक्षा का संगठन– इस घोषणा–पत्र में शिक्षा का संगठन चार स्तरों में करने की घोषणा की गई। ये चार स्तर थे–प्राथमिक, मिडिल, हाईस्कूल और उच्चतर स्तर।

4. पाठ्य विषय–संस्कृत और अरबी भाषाओं की महत्ता को स्वीकार करते हुए उन्हें पाठ्यक्रम में महत्व दिया गया। घोषणा–पत्र में इन भाषाओं का महत्व बताते हुए कहा कि हिन्दू और मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने तथा कानून की दृष्टि से पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाये, इसके साथ ही ज्ञान व विज्ञान की शिक्षा भी भारतीयों के लिये उपयोगी है।

5. शिक्षा का माध्यम–जनसाधारण को शिक्षित करने के लिये उन्हीं भाषाओं को माध्यम माना जाये जिनके द्वारा ये शिक्षित हो पाये। अंग्रेजी भाषा शिक्षा का माध्यम उन व्यक्तियों के लिये हो जो उसका ज्ञान रखते हैं और इसका अध्ययन करना चाहते हैं अर्थात् अंग्रेजी व देशी दोनों भाषाएँ माध्यम बनीं।

6. विश्वविद्यालय–आज्ञा पत्र की सिफारिश को ध्यान में रखते हुए उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए कलकत्ता, बंबई और मद्रास में विश्वविद्यालय खोले गये। जिसके लिये चांसलर की सहायता से वाइस चांसलर बनाये गये। परीक्षा लेना तथा उपाधियाँ देना विश्वविद्यालय के ही प्रमुख कार्य हैं।

7. सार्वजनिक शिक्षा का प्रसार–राजकीय पदों के लिये अभी तक शिक्षा प्रदान की जा रही थी इसलिये सरकार उच्च वर्ग के व्यक्तियों की शिक्षा पर ही अधिक धन खर्च कर रही थी तथा जनसाधारण की अवहेलना की जा रही थी। अत: इस घोषणा–पत्र के बाद जनसाधारण को भी शिक्षा के अवसर प्रदान किये गए।

8. सहायक अनुदान–घोषणा–पत्र के अनुसार भारतीय सरकार शिक्षा का भार अकेले उठाने में असमर्थ है इसलिये सरकार नवीन स्कूल नहीं बनवायेगी। देश के उदार और धनवान व्यक्तियों को नये स्कूल खोलने के लिए प्रोत्साहित करेगी। इसके लिए राजकोष से भी कुछ आर्थिक सहायता प्रदान की जायेगी।

9. शिक्षण विधियाँ--इस घोषणा–पत्र में प्राथमिक शिक्षा के लिए स्पष्ट किया गया कि इस स्तर की शिक्षा की व्यवस्था देशी भाषाओं और अंग्रेजी भाषा के माध्यम से की जाए परंतु देशी भाषाएँ इतनी विकसित नहीं है कि उनके माध्यम से उच्च शिक्षा की व्यवस्था हो सके, इसलिए उच्च शिक्षा में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा हो।

10. व्यावसायिक शिक्षा–घोषणा–पत्र में सिफारिश की गई कि देश में विभिन्न उद्योगों को ध्यान में रखते हुए लोगों को शिक्षा के माध्यम से व्यावसायिक शिक्षा दी जाये ताकि देश में फैली बेरोजगारी कुछ कम हो पाये।

11. शिक्षक एवं छात्रों के मध्य संबंध में– इस घोषणा–पत्र में यह स्वीकार किया गया कि शिक्षा का स्थान समाज में उच्च है। इसलिए शिक्षकों का स्तर ऊँचा उठाने का प्रयास किया जाए और उनके वेतनमान तथा भत्ते बढ़ाए जाएँ।

12. गरीब छात्रों का आर्थिक सुधार– इस घोषणा–पत्र में छात्रों की आर्थिक स्थिति पर भी विचार किया गया और यह स्पष्ट किया गया कि विद्यालयों में पढ़ने वाले गरीब वर्ग के छात्रों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाए।

13. स्त्री शिक्षा– घोषणा–पत्र में स्त्रियों की शिक्षा की महत्ता पर भी ध्यान दिया गया। भारत में स्त्री शिक्षा की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह जानकर हमें प्रसन्नता हुई कि कुछ भारतीय अपनी पुत्रियों को शिक्षित करना चाहते हैं।

14. मुस्लिमों की शिक्षा– इस घोषणा–पत्र में यह भी स्पष्ट किया गया कि मुस्लिमों में हिन्दुओं की अपेक्षा शिक्षा का स्तर बहुत निम्न है इसलिए इनमें शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए मुस्लिम बच्चों के लिए अलग से स्कूल खोलने के लिए कहा गया तथा किस प्रकार मुस्लिम अभिभावकों को जागरूक करके इन बच्चों को शिक्षा के लिए प्रेरित किया जाए, इसका प्रयास करने के लिए भी कहा गया।

अतः इस घोषणा–पत्र में शिक्षा के सभी पहलुओं को छुआ गया। अध्यापन स्तर ऊँचा उठाने के लिए इंग्लैण्ड के समान भारत में भी अध्यापक प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की जाए। शिक्षित व्यक्ति को सरकारी पद प्रदान किया जाए। छोटे पदों पर भी साक्षर व्यक्ति को निरक्षर व्यक्ति से अधिक महत्व दिया जाए। घोषणा–पत्र में स्पष्ट किया गया कि भारतीय भाषाओं में पाश्चात्य साहित्य और विज्ञान का अनुवाद अनिवार्य है। पुस्तकों का भारतीय भाषाओं में प्रकाशन किया जाये तथा शिक्षा के लिए सरकारी सहायता धर्म निरपेक्ष स्कूलों को दी जाए। प्रत्येक प्रांत में एक जनशिक्षा विभाग की सिफारिश की गई। इस विभाग का पदाधिकारी जन शिक्षा संचालक नियुक्त किया जाए। उसकी सहायता के लिए तथा कार्य को सुगम बनाने के लिए निरीक्षक रखे जायें।

प्रश्न 32. वुड के घोषणा–पत्र का मूल्यांकन गुण–दोषों के आधार पर कीजिए।

(जबलपुर 2018)

***अथवा*, "वुड का आज्ञा पत्र भारतीय शिक्षा का महाधिकार पत्र कहा जाता है।" इस कथन की विवेचना कीजिये।** **(छतरपुर 2021)**

उत्तर–वुड के घोषणा–पत्र का मूल्यांकन–वुड के घोषणा–पत्र ने भारतीय शिक्षा के आवरण को चीरकर उसका नग्न रूप चित्रित किया और आधारभूत सिद्धांतों की व्याख्या करके शिक्षा के भावी स्वरूप को निर्धारित किया परंतु इस घोषणा पत्र की उपादेयता के संबंध में गहरा मतभेद है। सन् 1854 के बाद से ही शिक्षा के क्षेत्र में नवीन युग का आरंभ होता है, इस कारण इसे भारत में अंग्रेजी शिक्षा **"महाधिकार पत्र"** कहा गया।

वुड घोषणा–पत्र के गुण– 1. प्राचीन शिक्षा संस्थाओं का पुनरुत्थान किया गया।

2. भारतीय शिक्षा का वैधानिक उत्तरदायित्व सरकार को उठाना है। उनका कर्त्तव्य है कि जनसाधारण को शिक्षा प्रदान किया जाए।

3. पहली बार प्राथमिक पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा पर विचार किया गया।

4. क्रमबद्ध स्कूलों की स्थापना की गई। प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक संस्थाओं का निर्माण किया।

5. सहायक अनुदान की प्रथा को प्रचलित करके देश में शिक्षा विस्तार का कार्य पहले से अधिक गतिपूर्ण बना दिया गया।

6. स्त्री शिक्षा के महत्व को समझते हुए इसके लिए सरकार द्वारा सहायता देने की सिफारिश की गई।

7. भारतीय साहित्य, संस्कृति और ज्ञान को उपयोगी मानकर उसे मान्यता दी गई तथा प्राच्य साहित्य को प्रोत्साहन दिया गया।

8. शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था कर प्रत्येक प्रांत में प्रशिक्षित संस्थाएँ खोली गईं।

9. मेधावी और योग्य गरीब छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी गईं ताकि वे शिक्षा प्राप्त कर अपना भविष्य बनाएँ।

10. घोषणा–पत्र में भारतीय शिक्षा की नीति का निर्धारण कर उसे वैधानिक स्वरूप प्रदान किया तथा शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट किया।

11. शिक्षित व्यक्तियों को अधिक वेतन पर राज्य में नौकरियाँ देने के कारण लोगों की रुचि शिक्षित होने में हुई।

12. **ए. एन. बसु** ने लिखा–"यह घोषणा–पत्र भारतीय शिक्षा की आधारशिला है। हमारी शिक्षा में आधुनिकता का समावेश इसी ने किया।"

13. इस घोषणा–पत्र में कहा गया कि शिक्षा किसी वर्ग विशेष के लिए न होकर जनसाधारण के लिए हो।

14. **वुड का घोषणा–पत्र** भारतीय शिक्षा का शिलाधार कहलाया। **लार्ड डलहौजी** का कथन है, "इस घोषणा–पत्र में सम्पूर्ण भारत की शिक्षा योजना थी। इस प्रकार की विशाल और व्यापक योजना का विचार केन्द्रीय व प्रांतीय सरकारों के मस्तिष्क में कभी नहीं आ सकता था।"

वुड घोषणा–पत्र के अवगुण– सन् 1854 का घोषणा–पत्र भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नया युग लेकर आया जो भारतीय शिक्षा के लिए किसी वरदान से कम नहीं था परंतु उसमें फिर भी कुछ कमियाँ थीं, जिसने भारतीय शिक्षा को हानि पहुँचाई।

1. घोषणा–पत्र में सरकारी पदों पर शिक्षित, योग्य व्यक्ति को अवसर प्रदान करने के कारण व्यक्ति का उद्देश्य शिक्षित न होकर सिर्फ उच्च पदों पर नौकरी पाना रहा।

2. प्रांतों में शिक्षा विभागों की स्थापना के कारण शिक्षा सरकारी नियंत्रण में रही अतः शिक्षा मशीनी प्रक्रिया के समान हो गई।

3. शिक्षा के महान् उद्देश्यों पर ध्यान न देकर शिक्षा के स्वरूप को विकृत कर दिया।

4. घोषणा–पत्र में धार्मिक निष्पक्षता का जाल रचा गया था। इस पत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सरकारी विद्यालय में ईसाई धर्म की पुस्तकें रखी जा सकती हैं तथा विद्यालय का समय समाप्त होने पर छात्र अध्यापकों से ईसाई धर्म संबंधी प्रश्न कर सकते हैं।

5. घोषणा–पत्र में निष्पक्ष संस्कृति की शुरुआत कर शिक्षा में भारतीय, धार्मिक एवं आध्यात्मिक मान्यता को तीव्र आघात पहुँचाया।

6. घोषणा–पत्र में यद्यपि प्राच्य साहित्य, संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने की संस्तुति की परंतु अंग्रेजी शिक्षा की व्यापक प्रगति के नीचे वह स्वयं ही दम तोड़ रही थी।

7. घोषणा–पत्र ने भारतीयता का विनाश करके पूर्ण विदेशीकरण का बिगुल बजाया।

8. हिन्दू काल और मुस्लिम काल दोनों के शिक्षा का स्वरूप धर्म प्रधान था परंतु घोषणा–पत्र में धर्म को शिक्षा से अलग करके भारतीय भावनाओं पर भीषण आघात किया।

वुड का घोषणा–पत्र भारतीय शिक्षा के लिए न तो बहुत अच्छा और न बहुत बुरा रहा। इसने भारतीयों को शिक्षा की नई राह दिखाई जिसके परिणामस्वरूप साधारण लोगों में जागरूकता आई।

प्रश्न 33. सार्जेण्ट रिपोर्ट का महत्व बताइए। **(जबलपुर 2019; छिंदवाड़ा 22)**

***अथवा*, सार्जेण्ट योजना 1944 की मुख्य सिफारिशें लिखिए।** **(इंदौर 2022)**

उत्तर–दूसरे महायुद्ध की समाप्ति पर देश की शिक्षा व्यवस्था का मूल्यांकन करने के लिए सन् 1944 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् ने युद्धोत्तर–कालीन शैक्षिक परिस्थितियों की जाँच करने के लिए भारत सरकार के सलाहकार **सर जॉन सार्जेन्ट** की अध्यक्षता में एक सर्वेक्षण का गठन किया। इसकी रिपोर्ट के अनुसार 6 से 14 वर्ष तक के बालकों के लिए निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। इस समिति ने यह भी प्रस्ताव दिया कि 11 वर्ष की आयु के पश्चात् मिडिल स्तर पर पाँच वर्ष के विभिन्न पाठ्यक्रम चरित्र में सांस्कृतिक हो। इस समिति के प्रतिवेदन के अनुसार हाईस्कूल दो प्रकार के हैं– 1. एकेडेमिक, 2. टेक्निकल।

इन दोनों का उद्देश्य सर्वांगीण शिक्षा को विकसित करना है। यह रिपोर्ट 12 भागों में विभक्त है। इसमें पूर्ण प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा योजना पर विचार किया गया। इस योजना पर कुल व्यय 312·60 करोड़ होता था।

सार्जेंट महोदय इस तथ्य को अच्छी तरह समझते थे कि सम्पूर्ण शिक्षा का नियामक शिक्षक होता है। प्रशासन तो केवल सहायक है इसलिए सार्जेन्ट योजना में शिक्षक व्यवसाय में अच्छे व्यक्तियों को आकर्षित करने के लिए अच्छे वेतनमानों की सिफारिश की गई। इस योजना में विद्यमान शिक्षा के दोषों पर विचार किया गया इसलिए पाठ्यक्रम को व्यावहारिक बनाने पर बल दिया गया। सार्जेन्ट महोदय ने 40 वर्षीय शिक्षा योजना प्रस्तुत की जिसमें 5 वर्ष तैयारी के लिए तथा 35 वर्ष निष्ठापूर्ण कार्य के लिए रखे गये।

इस रिपोर्ट के आधार पर पॉलिटेक्निक कॉलेज राजधानी में खोला गया। विश्वविद्यालय अनुदान समिति का गठन किया गया इसी योजना में एक 16 वर्षीय योजना भी प्रस्तुत की गई थी।

प्रश्न 34. राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन के उद्देश्य एवं कार्य लिखिए।

***अथवा*, राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के उद्भव हेतु किए गए प्रयासों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।** **(उज्जैन 2021)**

उत्तर–शिक्षा एक विकास है तथा इसके विकास द्वारा ही समाज और संस्कृति का विकास होता है। यह वह धन है जिसे किसी को पूर्ण रूप से आदान–प्रदान कर समाप्त नहीं किया जा सकता।

शिक्षा अपने ढंग से ही विकसित होती है। शिक्षा के राष्ट्रीयकरण अथवा राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का अभिप्राय शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप से है। सम्पूर्ण शिक्षा योजना का देश की आकांक्षाओं, संस्कृतियों, मान्यताओं तथा विचारधाराओं के अनुकूल ढाला जाना है। इस प्रकार शिक्षा के राष्ट्रीयकरण का निर्माण अति महत्वपूर्ण है। ब्रिटिश काल से ही शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता प्रतीत हुई तथा इसके विविध प्रयास भी किए गए। भारतीयों द्वारा ये प्रयास संयुक्त रूप से विविध राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलनों के माध्यम से किया गया जिसका एक सार्थक परिणाम प्राप्त हुआ।

राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन के उद्देश्य– राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे–

1. शिक्षा का भारतीयकरण–राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य अंग्रेजों द्वारा प्रचलित पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति तथा ज्ञान–विज्ञान के स्थान पर भारतीय शिक्षा संस्कृति का प्रचार–प्रसार करना।

2. अंग्रेजी भाषा व संस्कृति का विरोध–उग्रवादी दलों एवं उनके नेताओं ने वास्तविक रूप में राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन में अग्रगामी भूमिका निभाई। ये अंग्रेजी भाषा के घोर विरोधी थे इसलिए वे आंग्ल भाषाओं के स्थान पर मातृभाषा तथा प्रांतीय भाषाओं का प्रसार करने के पक्ष में थे।

3. राष्ट्रीय जागरण–राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य आंदोलनकारियों, भारतीय युवाओं को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करना जो गौरवशाली इतिहास की जानकारी प्राप्त कर अपने को भारतीय नागरिक के रूप में धन्य समझे और उनके मन में भारतीयता की भावना व देशभक्ति की भावना जाग्रत हो।

4. व्यावसायिक शिक्षा–व्यक्ति एवं देश की उन्नति के लिए व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता प्रतीत की गई। उनकी उन्नति एवं विकास व्यावसायिक शिक्षा के द्वारा ही संभव था इसलिए राष्ट्रीय स्तर पर रोजगार के लिए उपयुक्त एवं व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने की योजना थी।

5. पाश्चात्य ज्ञान की शिक्षा –राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन के द्वारा छात्रों को पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान प्रदान करने का भी लक्ष्य रखा गया। इसका उद्देश्य अन्य देश के ज्ञान, विज्ञान एवं विकास को समझना था जिसके द्वारा अपना विकास किया जा सके।

राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के विकास हेतु किए गए कार्य–राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन में चूँकि उग्रवादी दल अधिक सक्रिय था इसलिए इस पर देशी प्रभाव अधिक दिखाई पड़ा। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान कॉलेजों के छात्र पढ़ाई छोड़कर देश के आंदोलनों में कूद पड़े। इस स्थिति में इन भारतीय छात्रों के लिए राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता महसूस हुई। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन द्वारा इसी प्रकार की संस्थाओं का निर्माण किया गया। इस क्षेत्र में निम्नलिखित शैक्षिक संगठनों ने प्रमुख भूमिका निभाई–

1. राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की स्थापना–शिक्षा के राष्ट्रीयकरण अथवा उसके विकास के लिए बंगाल में 15 अगस्त, 1906 को एक राष्ट्रीय शिक्षा संवर्धन समिति का गठन किया गया।

2. बंगाल राष्ट्रीय महाविद्यालय–14 अगस्त, 1906 को बंगाल राष्ट्रीय महाविद्यालय की स्थापना की गई।

3. राष्ट्रीय महाविद्यालय–शिक्षा के विकास के लिए एक राष्ट्रीय महाविद्यालय की स्थापना हुई तथा अरविन्द घोष को इसका प्राचार्य नियुक्त किया गया।

उपर्युक्त शैक्षिक संस्थाओं के साथ–साथ अन्य बहुत–सी संस्थाएँ स्थापित की गईं जिन्होंने शिक्षा के राष्ट्रीयकरण एवं विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया तथा वर्तमान में भी ये संस्थाएँ अपने कार्यों का निर्वहन समुचित रूप से कर रही हैं।

इसके साथ–साथ कुछ अन्य विश्व प्रमुख संस्थाएँ हैं जो भारतीय शिक्षा के राष्ट्रीयकरण तथा विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती चली आ रही हैं–

1. विश्व भारती, 2. गुरुकुल प्रणाली, 3. वनस्थली विद्यापीठ, 4. श्री अरविन्द आश्रम, 5. राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान।

प्रश्न 35. भारत में राष्ट्रीय चेतना का विकास किस प्रकार हुआ ? विवेचना कीजिए।

(उज्जैन 2022)

उत्तर–भारत में सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ने भारतवासियों के मन में राष्ट्रीयता की भावना का तीव्र गति से विकास किया था। अंग्रेजी शासकों ने भारत में राष्ट्रीयता के अस्तित्व को पूर्णरूपेण मानने से मना कर दिया था। **जे. आर. सीले** ने भारत को केवल एक भौगोलिक इकाई की संज्ञा प्रदान की। उस इकाई में राष्ट्रीय एकता की कोई भावना नहीं थी परंतु उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तथा बींसवी शताब्दी में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जिसने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत में राष्ट्रवाद का उदय हो चुका है। अतः कुछ अंग्रेजी विद्वानों ने इसका श्रेय अंग्रेजी शासन को देना शुरू कर दिया। भारत में राष्ट्रीय चेतना की प्रगति की तीन अवस्थाएँ मानी हैं–

1. 1885-1905 ई.–राष्ट्रीय चेतना का अस्पष्ट स्वरूप जो शिक्षित मध्यमवर्गीय एवं बुद्धिजीवी वर्ग तक ही सीमित था।

2. 1905-1919 ई.–इसमें भारतीय जनता सामाजिक एवं आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए प्रयत्नशील हुई और पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति के लिए क्रांतिकारी ढंग को अपनाया।

3. 1919-1947 ई.–कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति के लिए महात्मा गाँधी के नेतृत्व में अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन किया।

अंग्रेज अधिकारियों एवं मिशनरियों की शिक्षा पर इस समय तक अंकुश लग चुका था। इसके परिणामस्वरूप भारतीयों को व्यक्तिगत रूप से शिक्षा–प्रसार का कार्य करने के लिए विस्तृत क्षेत्र मिल गया क्योंकि भारतीय इस समय तक शिक्षा के महत्व को समझ चुके थे और विदेशियों के शिक्षा–प्रयासों को देखकर उनमें प्रतिस्पर्धा की भावना जाग्रत हो चुकी थी। शिक्षा द्वारा अपने देशवासियों को अंधविश्वास एवं अज्ञानता जैसी बुराइयों से निकालने लगे थे। भारतीयों में राष्ट्रीय प्रेम के साथ राष्ट्रीय चेतना की भावना विकसित हो गई थी।

राष्ट्रीय चेतना विकास के प्रयास–

1. अंग्रेजी शासन का प्रभाव–अंग्रेज शासकों ने अपने साम्राज्य की जड़ें स्थापित करने में भारतवासियों के आर्थिक शोषण के लिए भारत में सभी क्षेत्रों जैसे–राजनीतिक, आर्थिक, बौद्धिक, सैनिक तथा सामाजिक आदि में आधुनिक पद्धति का प्रयोग किया। इसके परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रवाद का उदय हुआ।

2. भारत में राजनीतिक तथा प्रशासनिक एकता–अंग्रेजों ने सम्पूर्ण भारत को अपने अधीन कर रखा था। भारत के पूर्व विशाल भू–भाग में कोई भी साम्राज्य नहीं रहा था। भारत में प्रशिक्षित तथा व्यावसायिक प्रशासकों ने सम्पूर्ण भारत के लिए एक ही न्यायिक ढाँचे का विकास किया था। इसने भारत में चली आ रही परम्परागत सांस्कृतिक एकता को चेतना प्रदान की।

3. तीव्र परिवहन तथा संचार संसाधनों का विकास–प्रशासनिक सुविधाओं की पूर्ति करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने संचार संसाधनों का विकास किया। **उदाहरण**– सैनिकों को आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति के लिए तथा व्यापारिक शोषण के लिए इनका विकास किया, परंतु इसके फलस्वरूप भारत में अलग–अलग भागों में रहने वाले व्यक्तियों को एक–दूसरे से सम्पर्क स्थापित करने में सहायता प्रदान करके राष्ट्रीय चेतना की भावना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

4. समकालीन यूरोपीय आंदोलनों का प्रभाव–उस समय यूरोप में राष्ट्रवाद को लेकर आंदोलन चल रहे थे। यूरोपीय आंदोलन की भावना ने भारतीयों को बहुत प्रभावित किया। लाला लाजपत राय तथा सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी जैसे देशभक्त ने यंग इटली मूवमेन्ट एवं गैरी वाल्टी आंदोलनों पर व्याख्यान प्रस्तुत किये। इससे भारत में राष्ट्रवाद का तीव्र गति से विकास हुआ।

5. ऐतिहासिक शोधों का प्रभाव–भारतीय संस्कृति तथा संस्कृति की विशाल समृद्ध परम्परा विभिन्न विदेशी विद्वान मैक्समूलर, सर विलियम जोन्स, रॉस आदि के शोधों से स्थापित हो चुकी है। यूरोपीय विद्वानों ने वेद, उपनिषद् तथा अन्य भारतीय साहित्यों का गुणगान किया है तथा कुछ विद्वानों ने तो यह भी माना है कि आर्यों से ही यूरोपीय जातियाँ उपजी हैं। इसके परिणामस्वरूप ही भारतवासियों में आत्म–गौरव, आत्म–विश्वास तथा आत्म–सम्मान का विकास हुआ जिसने देशभक्ति तथा राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहन दिया।

6. आर्थिक शोषण–अंग्रेजी शासन का उद्देश्य ही भारत को लूटना था। अंग्रेजी शासन नीति का लक्ष्य भारतीय अर्थव्यवस्था को योजनाबद्ध तरीके से नष्ट करना था। अंग्रेजों की पक्षपातपूर्ण धारणा के परिणामस्वरूप भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय हुआ। भारत में उस समय निर्धनता पूरी तरह अपने पैर पसार चुकी थी जिसके कारण विदेशी शासन के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई और स्वदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया। जिसने राष्ट्र एकता को बढ़ावा दिया।

7. धार्मिक सुधार आंदोलन–कुछ शिक्षित भारतवासियों ने समाज में व्याप्त सामाजिक कुप्रथाओं, समाज विरोधी, रीति–रिवाजों, अंधविश्वासों को विभिन्न संस्थाओं जैसे–आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, ब्राह्मण समाज, मुस्लिम तथा सिक्ख आदि सुधारवादी संस्थाओं द्वारा करने का प्रयास किया। प्रजातंत्र, समाजवाद, उदारवाद, आत्म–सम्मान तथा देशभक्ति की भावनाओं का विकास कर राष्ट्रवाद की नींव मजबूत की।

8. बंग–भंग–सन् 1905 में लार्ड कर्जन ने बंगाल को दो भागों में विभाजित कर दिया तथा बंगालियों के प्रभाव को कम करने के लिए विश्वविद्यालय व कलकत्ता एक्ट को पास कराया। जब भारतीयों द्वारा इस कार्य के विरुद्ध आंदोलन चलाया तो इस आंदोलन को दबाने के लिए प्रेस को प्रतिबंधित कर दिया और इस आंदोलन में भाग लेने वाले को कठोर दंड की धमकी दी जिसके परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ।

9. रूस पर जापान की विजय–जापान जैसे छोटे देश ने रूस को पराजित कर दिया था। जापान की इस जीत को देखकर भारतवासियों ने एक साथ संगठित होकर संघर्ष करने का विचार किया। सन् 1906 ई. में सरकार द्वारा कलकत्ता में 'जापान की शिक्षा प्रणाली' नामक एक रिपोर्ट प्रकाशित की गई जिसने भारतीय युवाओं के अंदर राष्ट्रीय चेतना का विकास किया।

10. इल्बर्ट बिल का विवाद–भारत में जाति व्यवस्था में आई बुराइयों को दूर करने के लिए **लॉर्ड रिपन** ने प्रयास किया। इल्बर्ट बिल ने भारतीय जिला और सत्र न्यायाधीशों को भी वही अधिकार तथा शक्तियाँ प्रदान करने का प्रयास किया जो अधिकार अंग्रेजों को सरकार द्वारा मिले हुए थे। भारतवासियों ने महसूस किया कि बिना संघर्ष किये उन्हें उचित न्याय नहीं मिलेगा।

11. लार्ड लिटन की प्रतिक्रियावादी नीतियाँ–लार्ड लिटन ने एक प्रस्ताव पारित करके आई.सी.एस. परीक्षा की आयु 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष कर दी ताकि भारतीय शिक्षित युवक परीक्षा में भाग नहीं ले सकें। नौकरियों के विज्ञापन में "बंगाली बाबुओं का आवेदन करना प्रतिबंधित है" लिखा गया। इससे बंगाल के शिक्षित युवाओं में विद्रोह की भावना ने जन्म लिया जिसके परिणामस्वरूप सरकार विरोधी आंदोलन चलाये गये।

इस तरह के अनेक कारण रहे जिसके चलते राष्ट्रीय चेतना के विकास को हवा मिली जो धीरे–धीरे पूरे भारत में फैलने लगी।

प्रश्न 36. राष्ट्रीय व्यवस्था के विकास के लिए राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप की विवेचना कीजिए।
(जबलपुर 2019; उज्जैन 22)

उत्तर–उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में भारत में राष्ट्रीयता का बिगुल बजने लगा था। वर्षों की दासता से मुक्त होने का स्वप्न हर भारतीय ने दिल में संजो लिया था इसलिए अनेक समाज सुधारक व राष्ट्रवादी नेताओं ने राष्ट्रीय शिक्षा का स्वरूप बना लिया था जिसके परिणामस्वरूप स्वामी दयानंद, ऐनी बेसेन्ट आदि ने अपने शिक्षा प्रयासों को मूर्त रूप देना प्रारंभ कर दिया। बीसवीं शताब्दी तक शिक्षित वर्ग ने एकमत होकर कहा–"विदेशी भारत का शोषण कर रहे हैं। वे भारत के प्राकृतिक संसाधनों का निरंतर दोहन कर रहे हैं जिससे देश दुर्भिक्ष का शिकार हो रहा है।" भारतीय उद्योगों के प्रति सरकार की उपेक्षा भाव ने निर्धनता में तीव्र वृद्धि कर दी थी।

सन् 1904 में लार्ड कर्जन की शिक्षा नीति ने सम्पूर्ण राष्ट्र को क्षुब्ध कर दिया। बंग–भंग के अधिनियम ने राष्ट्रवादी शक्ति के आगे एक राजनीतिक चुनौती और उत्पन्न कर दी थी जिसके परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रभक्तों का मनोबल और बढ़ गया। इस राष्ट्रीय राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय कांग्रेस ने 7 अगस्त, 1905 को कलकत्ता में राष्ट्रीय आंदोलन करने का ऐलान कर दिया। इस आंदोलन के अंदर 'राष्ट्रीय शिक्षा' की माँग की गई। इस माँग ने ब्रिटिश सरकार को हिलाकर रख दिया। ऐनी बेसेन्ट ने भारतीय शिक्षा की भर्त्सना करते हुए कहा, "भारत के राष्ट्रीय जीवन एवं राष्ट्रीय चरित्र को निर्बल बनाने के उपायों में भारतीय शिक्षा पर विदेशी प्रभुत्व से अधिक उत्तम उपाय और कोई नहीं हो सकता।"

महात्मा गाँधी ने भी ब्रिटिश शिक्षा–प्रणाली की घोर आलोचना करते हुए कहा था–"यह शिक्षा–पद्धति अन्यायपूर्ण शासन की बुनियाद पर स्थित है, जिसकी मौलिक जड़ें विदेशी संस्कृति में निहित हैं। भारतीय संस्कृति को इसमें पूर्णतया उपेक्षित किया गया है। यह शिक्षा–पद्धति मात्र मानसिक विकास का उपक्रम करती है। यह शिक्षा हृदय परिवर्तन करने में असमर्थ है और इसमें हस्त शिल्प कौशलों को उचित स्थान प्रदान नहीं किया गया है। यह अंग्रेजी माध्यम पर आधारित है। वास्तविक शिक्षा का आधार विदेशी शिक्षा नहीं हो सकता।"

राष्ट्रीय शिक्षा का स्वरूप–राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों से की गई–

1. शिक्षा का भारतीयों पर नियंत्रण–राष्ट्रवादी नेता और शक्तियाँ पूर्ण रूप से शिक्षा पर भारतीयों का नियंत्रण चाहती थी। **ऐनी बेसेन्ट** का कथन है कि–"भारतीय शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो धार्मिकता की भावना से परिपूर्ण होते हुए भी साम्प्रदायिक शक्तियों से पृथक् रहे तथा छात्रों के सम्मुख भक्ति, ज्ञान एवं नैतिकता के आदर्शों को उपस्थित करें।

2. भारतीय संस्कृति तथा आदर्शों की महत्ता–ऐनी बेसेन्ट ने भारतीय संस्कृति के अनुरूप आदर्श राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप के बारे में कहा था–"राष्ट्रीय शिक्षा का बहुमुखी विकास गौरवपूर्ण

महान् देशभक्ति के वातावरण में ही संभव है, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पाठ्यक्रम में भारतीय इतिहास, साहित्य, विज्ञान, कला–कौशल एवं राजनीति आदि को सम्मिलित करना चाहिए।"

3. ब्रिटिश दासता का अंत–भारतीयों को ऐसी शिक्षा चाहिए थी जो ब्रिटिश दासता को समाप्त कर दे। **ऐनी बेसेन्ट** का कथन है–"ब्रिटिश आदर्श ब्रिटेन के लिए अनुकरणीय है परंतु भारतीय आदर्श भारतीयों के लिए उत्तम है। भारत की राष्ट्रीयता से श्रेष्ठ और अधिक उत्तम राष्ट्रीयता का निर्माण ईश्वर ने किया है।"

4. पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान का अध्ययन–राष्ट्रीय शिक्षा की प्रगति यूरोपीय राष्ट्रों के ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन में ही निहित हैं। इसके लिए पाश्चात्य विज्ञान के अध्ययन को प्रधानता प्रदान की गई है।

5. अंग्रेजी भाषा का अंत–किसी भी राष्ट्र की प्रगति राष्ट्र की भाषा के माध्यम में शिक्षा प्रदान करने से ही संभव है। इसके संबंध में महात्मा गाँधी के विचार थे– "अंग्रेजी का अध्ययन लोग केवल राजनैतिक तथा व्यावसायिक लाभ प्राप्ति के उद्देश्य के लिए ही करते थे। मनुष्य अच्छा राजनैतिक पद तथा स्त्रियाँ उत्तम वर प्राप्ति के लिए अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करती थीं। समाज को अंग्रेजी का घुन लग गया है और यह दासता एवं पतन का प्रतीक है।"

अतः राष्ट्रीय शिक्षा की इस लहर का सबसे ज्यादा प्रभाव बंगाल में हुआ क्योंकि उस समय बंगाल बंग–भंग की ज्वाला से सुलग रहा था। राष्ट्रवादी नेताओं ने कलकत्ता में नेशनल कॉलेज टेक्निकल इन्स्टीट्यूट, शांति निकेतन आदि जैसी संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य संस्थाएँ भी शुरू की थीं।

1. जामिया मिलिया इस्लामिया, अलीगढ़। 2. बिहार विद्यापीठ। 3. काशी विद्यापीठ वाराणसी। 4. तिलक विद्यापीठ, महाराष्ट्र। 5. गुजरात विद्यापीठ।

निष्कर्ष–लॉर्ड–कर्जन वह व्यक्ति था जिसने भारत में प्राथमिक शिक्षा के लिए अच्छी पहल की थी। उसी के द्वारा इस शिक्षा में मात्रात्मक व गुणात्मक प्रयास हुए जिसके परिणामस्वरूप 1910 तक प्राथमिक शिक्षा में गति बनी रही। सम्राट जॉर्ज पंचम ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए 50 लाख रुपये वित्त की घोषणा की। उनका कथन था कि "मेरी यह इच्छा है कि सम्पूर्ण देश के स्कूलों एवं कॉलेजों का ताना–बना जाये। जहाँ से उद्योगों एवं कृषि और जीवन के समस्त व्यवसायों में कुछ कर दिखाने वाले योग्य, उपयोगी, विश्वसनीय एवं साहसी नागरिक शिक्षा प्राप्त करके निकले।" राष्ट्रीय विकास को ध्यान में रखते हुए भारत में अनेक विद्वानों व राष्ट्र नेताओं ने प्रयास किये और कई आयोग बनाये। इन आयोगो का महत्वपूर्ण उद्देश्य भारतीयों को मानसिक रूप से पूर्णतया अंग्रेजी दासता से मुक्त कर एक नये राष्ट्र का निर्माण करना था। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कई राष्ट्रीय आंदोलन भी किये गये। शिक्षा को व्यवस्थित रूप देने के लिए शिक्षा सरकार के नियंत्रण में रखी गई और इस बात पर जोर दिया गया कि प्राथमिक स्तर की शिक्षा बालकों को निःशुल्क दी जाये। यह प्रयास आज की आधुनिक युग में जारी है।

प्रश्न 37. वैदिक युग में शिक्षक की क्या भूमिका थी ? वर्णन कीजिए। **(इंदौर 2022)**

उत्तर–वैदिक काल में गुरु शिष्य संबंध अत्यंत मधुर होते थे। शिष्य गुरु को अपना मानस पिता मानता था तथा गुरु शिष्य को पुत्रवत् स्नेह देते थे। गुरु वात्सल्य भाव से शिष्य की देखरेख, उनके भोजन एवं आवास आदि का प्रबंध करते थे जबकि शिष्य, गुरु की कृपा एवं आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते थे।

गुरु को सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान होता था। इस कारण गुरु अपने शिष्यों का पथ–प्रदर्शन करने में समर्थ होते थे। गुरु का कर्त्तव्य होता था कि वह अपने शिष्यों को अंधकार से प्रकाश का रास्ता

देखाए। गुरु का जीवन शिष्य के लिए आदर्श होता था। गुरु को शिष्य का आध्यात्मिक पिता माना जाता था। गुरु अपने शिष्यों के साथ पुत्र के समान व्यवहार करते थे। उनमें अच्छी आदतों का विकास करते थे। शिष्य के भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था करना गुरु का उत्तरदायित्व होता था। अतः शिष्य के प्रति शिक्षक के कर्त्तव्यों को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. शिष्यों के स्वास्थ्य की देखभाल करना तथा अस्वस्थ होने पर उपचार की व्यवस्था करना।
2. शिष्यों को उनकी योग्यतानुसार या वर्णानुसार विशिष्ट विषयों की एवं क्रियाओं की शिक्षा देना।
3. शिक्षा के उपरांत भी शिष्यों की शंका का समाधान करना तथा मार्गदर्शन करना।
4. शिष्यों के आवास, भोजन एवं वस्त्रादि की व्यवस्था करना।
5. शिष्यों को सदाचरण की शिक्षा देकर उनका चरित्र निर्माण करना।
6. शिष्यों का सर्वांगीण विकास करना।

प्रश्न 38. प्राचीन भारतीय शिक्षा की मुख्य विशेषताओं पर चर्चा करें।

(भोपाल 2021; उज्जैन 22)

उत्तर– प्राचीन भारतीय शिक्षा की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. प्राचीन शिक्षा का जन्म वेदों से हुआ है। वेद भारतीय जीवन–दर्शन के स्रोत माने जाते थे। इस काल में ऋग्वैदिक शिक्षा व्यवस्था की प्रधानता थी।

2. व्यक्तियों का दृष्टिकोण भौतिक न होकर आध्यात्मिक था। उनका अधिकांश समय चिंतन, मनन तथा स्वाध्याय में व्यतीत होता था। 'सा: विधा या विमुक्तये' शिक्षा का प्रमुख ध्येय था।

3. भारतीय संस्कृति पूर्णरूप से धार्मिक भावनाओं से ओत–प्रोत थी।

4. शिक्षा के संबंध में उनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक तथा विशाल और मोक्ष प्राप्ति जीवन का परम लक्ष्य था।

5. शिक्षा की प्राप्ति गुरुकुलों तथा आश्रमों के शुद्ध व सुरम्य वातावरण में होती थी। सादा जीवन उच्च विचार द्वारा छात्रों के चारित्रिक विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

6. ब्रह्मचर्य पालन द्वारा सात्विकता, इंद्रिय–निग्रह तथा मन की स्थिरता पर बल दिया जाता था।

7. शिक्षा निःशुल्क थी और विद्यार्थी जीवन आदर्श जीवन था। प्रवेश का आधार सदाचार था।

8. गुरु का स्थान बहुत ऊँचा था। छात्र उनका सम्मान करते तथा श्रद्धा, भक्ति व सेवा–भाव रखते थे। गुरु और शिष्य में परस्पर निकट का संबंध था।

9. शिक्षा के आध्यात्मिक पक्ष के अतिरिक्त उसके व्यावहारिक रूप को भी महत्व दिया गया था और कला, साहित्य तथा दर्शन के साथ–साथ कृषि व अन्य व्यवसायों का अध्ययन भी छात्र करते थे।

10. शिक्षा का स्वरूप सामूहिक की अपेक्षा व्यक्तिगत अधिक, व्यक्तिगत का सर्वांगीण (शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक) विकास करना शिक्षा का प्रमुख ध्येय था।

11. पाठ्य–विषयों में दर्शन, व्याकरण, धर्म–संस्कृति, तर्क ज्योतिष विज्ञान व नीतिशास्त्र आदि की प्रधानता थी।

12. अध्यापन विधि का आधार मनोवैज्ञानिक था।

13. समाज में नारी का स्थान बहुत ऊँचा था और उनकी शिक्षा की ओर ध्यान दिया जाता था। उन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता था।

14. व्यक्तियों में जाति–पाति का कोई भेद–भाव नहीं था। सभी वर्गों के छात्र समान रूप से शिक्षा प्राप्ति के अधिकारी थे।

15. इस काल में उद्योग, कला–कौशल तथा चिकित्सा–शास्त्र की भी पर्याप्त प्रगति हुई।

प्रश्न 39. बौद्ध दर्शन के सामाजिक पहलू को विस्तार से समझाइए। (भोपाल 2022)

उत्तर–लगभग ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी से जन–जीवन की परिवर्तित आवश्यकताओं की पूर्ति न कर सकने के कारण वैदिक कालीन अथवा ब्राह्मणीय शिक्षा में विशृंखलता के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे थे। भारत के सौभाग्य से उसके एक शताब्दी पूर्व ही महात्मा गौतम बुद्ध ने इस देश की भूमि पर अवतरित होकर शिक्षा को समयानुकूल बनाने के विचार से उसके कलेवर में परिवर्तन करके बौद्ध शिक्षा को जन्म दिया। इस शिक्षा के विषय में **डॉ. एफ. ई. के. ई.** ने लिखा है–"बौद्ध शिक्षा 1500 वर्षों से अधिक प्रचलित रही और उसने ऐसी शिक्षा–पद्धति का विकास किया जो ब्राह्मणीय शिक्षा–पद्धति की प्रतिद्वन्द्वी थी, पर अनेक बातों में उनके सदृश थी।"

"For over fifteen hundred years Buddhist education was in vogue and developed a system of education which was a rival of the Brahmanie system though in many ways similar to it."

बौद्ध धर्म के सामाजिक पहलुओं की व्याख्या–बौद्ध धर्म के सामाजिक पहलुओं में मानव जाति को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से कई अलग–अलग प्रकार की गतिविधियाँ शामिल हैं। इसमें दान के सरल व्यक्तिगत कार्य शिक्षण और प्रशिक्षण, संगठित प्रकार की सेवा मदद करने वाले व्यवसायों के अन्दर और बाहर "सही आजीविका" और विभिन्न प्रकार के सामुदायिक विकास के साथ–साथ एक बेहतर समाज के लिए काम करने में राजनीतिक गतिविधि शामिल है। बौद्ध–धर्म एक व्यावहारिक शिक्षा है जो कुछ मौलिक प्रस्तावों से शुरू होती है कि हम दुनिया को कैसे अनुभव करते हैं और हम इसमें कैसे कार्य करते हैं।

बौद्ध धर्म का विशाल साहित्य रहस्योद्घाटन और अधिकार का साहित्य नहीं है। इसके बजाय यह इस ज्ञान का मार्ग दिखाने के लिए नैतिकता और ध्यान, दर्शन और विज्ञान, कला और कविता का उपयोग करता है। इसी प्रकार सामाजिक प्रक्रिया पर बौद्ध लेखन, धर्म निरपेक्ष लेखन के विपरीत सीमित प्रस्ताव देता है। जो अंततः इस ज्ञान को संदर्भित करता है। लेकिन जो हमारे सामान्य अनुभव के संदर्भ में भी बहस योग्य है। पूर्व में, बौद्ध धर्म ने "परम्पराओं" के विभिन्न स्कूल विकसित किए जो श्रीलंका से लेकर तिब्बत और मंगोलिया से लेकर जापान तक विभिन्न संस्कृतियों के अनुभवों की सेवा करते थे। इस प्रकार बौद्ध–धर्म विभिन्न रूपों में उत्कृष्ट मानवतावाद, जादुई रहस्यवाद, काव्यात्मक विरोधाभास और बहुत कुछ के रूप में प्रकट हो सकता है। हालांकि, अभिव्यक्ति के ये सभी तरीके मौलिक शिक्षा "बारहमासी बौद्ध–धर्म" पर केन्द्रित है।

बुद्ध के प्रवचनों या दीघ निकाय (जो बौद्ध ग्रंथ त्रिपिटक के सुत्तपिटक का प्रथम निकाय है) में सुत्तों के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि प्रारंभिक बौद्ध मूल्यों की व्यक्तिगत खेती के लिए अनुकूल सामाजिक परिस्थितियों के निर्माण से बहुत चिंतित थे। बौद्ध धर्म भारत में सामाजिक अन्यायों, अपमानजनक, अंधविश्वासी, संस्कारों, समारोहों और बलिदान के खिलाफ एक आध्यात्मिक शक्ति के रूप में उभरा, इसने जाति व्यवस्था के अत्याचार की निंदा की और सभी मनुष्यों की समानता की वकालत की; इसने महिला को मुक्ति दिलाई और उसे पूर्ण आध्यात्मिक स्वतंत्रता दी। बौद्ध धर्मग्रंथ, बौद्ध सामाजिक सोच की सामान्य दिशा का संकेत देते हैं, और उस हद तक वे हमारे समय के लिए विचारोत्तेजक है। फिर भी तेईस शताब्दी पहले पनपी सामाजिक व्यवस्था की जरूरतों को पूरा करने के लिए विस्तृत आधुनिक औद्योगिक समाज के सामाजिक नुस्खों को सीधे लागू करना पांडित्यपूर्ण और कुछ मामलों में बेतुका होगा। ऐतिहासिक बुद्ध जिसने बुनियादी, बारहमासी शिक्षा को अपने समय की विशिष्ट परिस्थितियों से जोड़ने का प्रयास किया।

हमारा मानना है कि शास्त्रीय सामाजिक शिक्षा को आधुनिक समाजों में बिना सोचे–समझे और सावधानीपूर्वक योग्यता के साथ स्थानांतरित करना या यह घोषित करना कि बुद्ध एक लोकतांत्रिक और अंतर्राष्ट्रीयवादी थे, असुविधापूर्ण है। आधुनिक शब्द 'लोकतंत्र' और 'अंतर्राष्ट्रीयवाद' उस अर्थ में मौजूद नहीं थे, जिस अर्थ में हम उन्हें उभरते सामंती समाज में समझते थे, जिसमें बुद्ध रहते थे। इस तरह की विशेष अपील से लंबे समय में बौद्ध धर्म का अहित होता है। दूसरी ओर यह तर्कपूर्ण है कि बुनियादी बौद्ध शिक्षाओं में लोकतांत्रिक और अंतर्राष्ट्रीयवादी निहितार्थ है। हालांकि बौद्ध धर्म इस मायने में मानवतावाद है कि यह मानव स्वभाव में निहित सच्ची स्वतंत्रता की संभावना में आनन्दित होता है। बौद्ध धर्म के लिए अंतिम स्वतंत्रता सभी दुखों के मूल कारणों से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करना है। लालच, घृणा और भ्रम, जो स्पष्ट रूप से सभी सामाजिक बुराइयों का मूल कारण भी है। उनके सबसे स्थूल रूप वे है जो दूसरों के लिए हानिकारक हैं।

प्रश्न 40. शिक्षण के तरीकों के संदर्भ में औपनिवेशिक भारत में शिक्षा के ब्रिटिश सिस्टम के प्रमुख स्थलों को लिखिए। **(भोपाल 2022)**

उत्तर–सन् 1857 ई. की क्रान्ति के बाद भारत के शासन की बागडोर ब्रिटिश संसद के हाथों में आ गई। वुड के घोषणा पत्र से मिशनरियों का एकाधिकार समाप्त हो गया। वुड डिस्पेच के परिणामों से शासित होकर इंग्लैण्ड में 'जनरल कौंसिल ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया' नामक संस्था बनाई गई और लॉर्ड रिपन (1882) के वायसराय होने पर इस संस्था ने उनसे भारतीय शिक्षा की स्थिति की जाँच करने को कहा। लॉर्ड रिपन ने भारत आकर 3 फरवरी, 1882 ई. को भारतीय शिक्षा आयोग (Indian education commission) अर्थात् हन्टर कमीशन की नियुक्ति की। इस आयोग में भारतीय सदस्यों में आनन्द मोहन बोस, सैयद महमूद, भूदेव मुकर्जी, के. टी. तैलंग, पी. रंगानन्द, मुदलियार महाराजा जीतेन्द्र, मोहन ठाकुर तथा हाजी गुलाम थे। सी. एल. राइस सदस्य सचिव थे।

आयोग ने मुस्लिम, हरिजन एवं पिछड़े हुए लोगों के साथ आदिवासियों, पहाड़ी इलाकों के लोगों तथा राजपरिवारों के लोगों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की। भारतीय अथवा देशी पाठशालाओं को आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहन देने पर आयोग ने बल दिया।

भारत में आधुनिक शिक्षा के तीन अभिकर्ता थे, जिसमें ब्रिटिश सरकार (ईस्ट इंडिया कंपनी), ईसाई मिशनरी और भारतीय बुद्धिजीवी और सुधारक थे। कंपनी कुछ शिक्षित भारतीयों को चाहती थी जो भूमि के प्रशासन में उनकी सहायता कर सके। साथ ही, वे स्थानीय रीति–रिवाजों और कानूनों को अच्छी तरह से समझना चाहते थे।

इस उद्देश्य के लिए वारेन हेस्टिंग्स ने मुस्लिम कानून की शिक्षा के लिए सन् 1781 में कलकत्ता मदरसा की स्थापना की। सन् 1791 में जोनाथन डंकन द्वारा हिंदू दर्शन और कानूनों के अध्ययन के लिए वाराणसी में एक संस्कृत कॉलेज शुरू किया गया था।

बैपटिस्ट मिशनरी विलियम कैरी सन् 1793 में भारत आए थे। सन् 1800 तक बंगाल के सेरामपुर में एक बैपटिस्ट मिशन था और वहाँ आसपास के क्षेत्रों में कई प्राथमिक विद्यालय भी थे। सन् 1835 में यह निर्णय लिया गया कि लॉर्ड विलियम बैटिक की सरकार द्वारा भारतीयों को पश्चिमी विज्ञान और साहित्य अंग्रेजी के माध्यम में प्रदान किया जाएगा। सन् 1849 में जेईडी बेथ्यून ने बेथ्यून स्कूल की स्थापना की। पूसा (बिहार) में कृषि संस्थान की स्थापना की गई। इंजीनियरिंग संस्थान की स्थापना रूड़की में की गई थी।

कलकत्ता विश्वविद्यालय की समस्याओं पर अध्ययन करने के लिए बनाया गया था और उनकी सिफारिशें अन्य विश्वविद्यालयों पर भी लागू थीं।

उनके अवलोकन इस प्रकार थे–

1. 12 साल का स्कूल कोर्स, 2. मध्यवर्ती चरण के बाद 3 साल की डिग्री, 3. विश्वविद्यालयों का केन्द्रीकृत कामकाज एकात्मक आवासीय शिक्षण स्वायत्त निकाय।

इस आयोग की सिफारिशों के आधार पर भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम (1904) बनाया गया। इस अधिनियम के अनुसार विश्वविद्यालयों का स्तर बढ़ गया। परीक्षा लेने, अनुसंधान कराने नियुक्तियाँ करने के अधिकार मिल गए।

समस्त देश में ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा का आयोजन किया जाए जो भारत के राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति एवं देश की आवश्यकता की पूर्ति में समर्थ हो सके। राष्ट्रीय आन्दोलन ने राष्ट्रीय शिक्षा हेतु इन सब बातों पर बल दिया–

1. शिक्षा व्यवस्था पर भारतीय नियंत्रण हो, 2. मातृभूमि के प्रति प्रेम हो, 3. पश्चिम की दासता का अनुकरण समाप्त हो, 4. पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान का अध्ययन किया जाए, 5. अंग्रेजों के प्रभुत्व की समाप्ति हो, 6. व्यावसायिक शिक्षा का विकास किया जाए।

प्रश्न 41. निम्न बिंदुओं के आधार पर वैदिक शिक्षा की विवेचना कीजिए– (ग्वालियर 2022)
(i) उद्देश्य, (ii) शिक्षक एवं विद्यार्थी, (iii) पाठ्यचर्या।

उत्तर–भारतीय सभ्यता एवं शिक्षा की पृष्ठभूमि में वेद है। वेदों द्वारा हमें भारतीय संस्कृति सभ्यता, जीवन और दर्शन का ज्ञान होता है। वेद हमारी वह थाती है, जो मानव जीवन के लक्ष्य को अपने में संजोए हुए है। वैदिक काल का विस्तार ईसा पूर्व 2500 से लेकर 500 ई. पूर्व तक माना जाता है। इस काल में शिक्षा पर ब्राह्मणों का आधिपत्य था। अतः वैदिक कालीन शिक्षा को 'ब्राह्मण शिक्षा' एवं 'हिन्दू शिक्षा' की संज्ञा भी दी जाती है। वैदिक साहित्य में 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है। यथा–'विद्या', 'ज्ञान', बोध तथा विनय। आधुनिक शिक्षाशास्त्रियों के समान प्राचीनकाल में भारतवासियों ने भी 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग व्यापक और सीमित दोनों अर्थों में किया है।

परिभाषा–डॉ. ए, एस. अल्टेकर के अनुसार–"व्यापक अर्थ में, शिक्षा का तात्पर्य है–व्यक्ति को सभ्य और उन्नत बनाना है। इस दृष्टि से शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। सीमित अर्थ में, शिक्षा का अभिप्राय उस औपचारिक शिक्षा से है जो व्यक्ति को गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने से पूर्व छात्र के रूप में गुरू से प्राप्त होती थी।"

वैदिक शिक्षा के उद्देश्य (ग्वालियर 2022)–प्राचीन भारतीय समाज के सभी पक्ष धार्मिक भावनाओं से परिपूर्ण थे। समाज के प्रत्येक पहलू पर धर्म का रंग चढ़ा हुआ था। मूलतः शिक्षा भी धर्म के आधार पर आधारित थी। धर्म के कारण शिक्षा के उद्देश्य भी धार्मिक थे। वैदिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य आध्यात्मिक विकास करना था। **डॉ. राधा कुमुद मुकर्जी** के अनुसार, "ज्ञान प्राप्ति केवल ज्ञान प्राप्ति के लिए ही नहीं थी और न धर्म का एक अंग ही थी वरन् इसका प्रमुख उद्देश्य जीवन का चरम लक्ष्य–'मुक्ति' प्राप्त करना था।" शिक्षा उतनी भौतिकवादी न थी और न जीविकोपार्जन के साधनों का ही ज्ञान प्राप्त कराती थी, वरन् यह तो हमें सत्यम, शिवम तथा सुन्दरम का ज्ञान प्राप्त कराती थी। तत्कालीन शिक्षा के उद्देश्यों का उल्लेख करते हुए **डॉ. ए. एस. अल्टेकर** ने लिखा है– "ईश–भक्ति एवं धार्मिक भावना, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व विकास, नागरिक एवं सामाजिक मूल्यों का विकास, सामाजिक दक्षता का विकास तथा राष्ट्रीय संस्कृति का प्रसार एवं संरक्षण प्राचीन भारतीय

शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य तथा लक्ष्य थे।" इस प्रकार शिक्षा का ध्यान व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास की ओर अधिक था। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि वैदिक कालीन शिक्षा मनुष्य का केवल एक पक्षीय विकास ही करती थी। वास्तव में, वैदिक युग में भौतिक विकास के प्रति विशेष आस्था न होते हुए भी, शिक्षा में कर्म की उपेक्षा नहीं की गई थी। हाँ, ऐसे कर्म की सदैव उपेक्षा की गई थी, जो मनुष्य को बन्धनों में डालता है–'तत्कर्म यत्र बन्धाय'।

शिक्षक एवं विद्यार्थी–वैदिक काल में शिक्षा का प्रारम्भ बालक की पाँच वर्ष की आयु से कर दिया जाता था। शिक्षा के लिए उस समय विद्यालय नहीं थे। बालक अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्रायः घर पर ही प्राप्त किया करता था। घर पर बालक को भाषा, व्याकरण, उच्चारण आदि का ज्ञान कराया जाता था। शिक्षा में संस्कृत भाषा को प्रमुख स्थान प्राप्त था। घर पर तीन–चार वर्ष तक अध्ययन करने के उपरान्त बालक गुरू–गृह पर रहकर शिक्षा ग्रहण किया करता था। गुरू–गृह नगर के कोलाहल से दूर जंगल के मध्य किसी रमणीक एवं सुरम्य स्थानों पर अवस्थित होते थे। यहाँ बालक गुरू–परिवार के साथ रहकर अपना सर्वांगीण विकास किया करता था।

गुरू–गृह को 'गुरूकुल' कहा जाता था। गुरूकुल प्रवेश के समय एक संस्कार होता था। जिसे 'उपनयन' (Initiation) संस्कार कहते हैं। कुछ शास्त्रकारों के अनुसार, विभिन्न वर्णों के बालकों का उपनयन संस्कार विभिन्न आयु अवस्था में किया जाता था। ब्राम्हण, क्षत्रिय तथा वैश्य बालकों के उपनयन संस्कार क्रमशः आठ, ग्यारह तथा बारह वर्ष की अवस्था में किया जाता था। उपनयन के उपरान्त बालक की रुचियों तथा क्षमताओं का अध्ययन किया जाता था तथा उसके आचार–विचारों का निरीक्षण किया जाता था। गुरू यदि बालक के आचार–विचार तथा रुचियों को गुरूकुल के प्रतिकूल पाता था तो उसे गुरूकुल से निष्कासित कर दिया जाता था और यदि उसके आचार–विचार गुरूकुल की परम्पराओं के अनुकूल होते थे तो बालक 'ब्रम्हचारी', 'अन्तेवासी' अथवा 'कुलवासी' कहलाने लगता था। ब्रम्हचर्य–व्रत धारण करने के उपरान्त बालक का जीवन अत्यंत साधारण होता था। वह कौपीन, मृगछाला, दण्ड, कमण्डल तथा मेखला आदि का प्रयोग करता था तथा भिक्षा माँगना उसका अनिवार्य कार्य था।

आश्रमों में बालकों को कठोर नियमित जीवनयापन करना पड़ता था। ब्रम्हमुहूर्त में उठकर नित्यकर्म समाप्त करने के उपरान्त वह पास ही स्थित नदी या झरने से जल लाया करता था। सफाई इत्यादि करना, गायों की साफ–सफाई, दुग्ध दोहन करना आदि करने के तदोपरान्त गुरू से शिक्षा ग्रहण करता था। मध्यान्ह का समय भिक्षाटन के निमित्त होता था। भिक्षाटन के उपरान्त बालक कुछ विश्राम करके शाम को साथ के सहपाठियों के साथ सुबह के पाठ की चर्चा करता था, और व्यायाम करके फिर गाय तथा आश्रम की सेवा करता था। इस प्रकार बालक प्रातः काल से रात्रिपर्यन्त कार्य करता रहता था। वैदिक काल में गुरू–शिष्य सम्बन्ध अत्यन्त मधुर थे। शिष्य अपने अध्ययन काल में पूर्णरूपेण गुरू के संरक्षण में रहता था। गुरू–शिष्य का आध्यात्मिक पिता (Spiritual father) माना जाता था। गुरू–शिष्य की उसी प्रकार देखरेख करता था जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र की करता है।

गुरू, शिष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास का प्रयास करता था। आवश्यकता होने पर गुरू अपने शिष्य की सुश्रूषा तथा चिकित्सा भी करता था। गुरू अपने शिष्यों में अच्छी आदतों का निर्माण करता था। गुरू का प्रयास अपने शिष्यों का शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास करना रहता था।

शिष्य भी गुरू का बहुत सम्मान तथा आदर करते थे। गुरू को वे राजा, माता–पिता तथा देवता तुल्य समझते थे। वे गुरू के पहले ही उठ जाते और गुरू के लिए सुबह के आवश्यक साधन जुटाते। शिष्य अपने गुरू की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। वे गुरू के सभी आवश्यक कार्य सम्पन्न करते थे। संक्षेप में, वैदिक काल में गुरू–शिष्य के मध्य अत्यन्त मधुर संबंध थे।

पाठ्यचर्या–वैदिक कालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य आध्यात्मिक विकास करना था किन्तु कर्म की भी उपेक्षा नहीं की गई थी। वेदों में आध्यात्मिक तथा लौकिक दोनों ही प्रकार के ज्ञान का वर्णन है। यहाँ पर परा तथा अपरा दोनों ही प्रकार की विधाओं का वर्णन पाते हैं। **परा विधा,** जिसका प्रमुख उद्देश्य, आध्यात्मिक विकास करना था। धर्म, जीव, आत्मा, परमात्मा, पुराण, दर्शन, वेद, वेदांग, नीतिशास्त्र आदि के अध्ययन से संबंधित थी तथा **अपरा विधा,** जो प्रमुख रूप से लौकिक जगत से संबंधित थी, अंकशास्त्र, इतिहास, राजनीति शास्त्र, ज्योतिष, भूगर्भ विद्या, भौतिकशास्त्र आदि से सम्बन्धित थी।

बालक अपने वर्ण के अनुसार किसी एक विषय में विशेष अध्ययन भी करता था।

उदाहरणस्वरूप–ब्राह्मण बालक धार्मिक कृत्यों का विशेष अध्ययन करता था तो क्षत्रीय बालक युद्ध–विद्या से सम्बन्धित किसी एक कला में दक्षता प्राप्त करता था और वैश्य व्यापार, कृषि आदि व्यावसायिक जगत से सम्बन्धित किसी एक कला में दक्षता अर्जित करता था। इस प्रकार वेदकालीन शिक्षा मानव–जीवन के तीनों पहलुओं–आध्यात्मिक, मानसिक तथा व्यावहारिक का विकास करती थी। वैदिक काल में शिक्षण कार्य मौखिक रूप से ही होता था। गुरू द्वारा उच्चारित मंत्रादि को ध्यानपूर्वक सुनता और कंठस्थ करता तथा चिन्तन करता था। गुरू के उच्चारणों को छात्र अनुसरण करता था। इसी प्रकार अन्य ज्ञान भी मौखिक ही प्रदान किया जाता था। इसका प्रमुख कारण था कि उस समय कागज आदि लेखन–सामग्री का उतना अधिक प्रचलन न था।

शिक्षण–पद्धति में वाद–विवाद, शास्त्रार्थ, प्रवचन, व्याख्या, शंका–समाधान, प्रश्नोत्तर आदि का प्रमुख स्थान था। छात्रों को अधिकांश ज्ञान पद्य के माध्यम से प्रदान किया जाता था।

प्रश्न 42. बौद्धिक शिक्षा के स्वरूप का वर्णन कीजिए। **(ग्वालियर 2022)**

उत्तर–बौद्धिक शिक्षा का स्वरूप–1. बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म के आडम्बरप्रियता की प्रक्रिया में उत्पन्न हुआ अतएव इस धर्म में यज्ञ का पूर्ण विरोध किया गया।

2. इस धर्म में निराशावाद अधिक है जीवन को निराशापूर्ण एवं दुःखमय समझा गया है तथा इस निराशा एवं दुःख में दूर होने के उपाय बताये गये हैं।

3. इस धर्म का कर्मफल में विश्वास है। मनुष्य को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है, और कर्मफल भोगने के लिए उसके अनेक जन्म होते हैं।

4. यह धर्म आचार प्रधान धर्म है। अतः इसमें उच्च प्रकार की नैतिकता एवं सदाचार का विशेष महत्व है।

5. इस धर्म के प्रारंभ में ईश्वर की आवश्यकता नहीं समझी गयी। ईश्वर एवं सृष्टि सिद्धान्तों के बारे में भगवान बुद्ध मौन रहे हैं।

6. ज्ञान और भक्ति को देखकर इस धर्म में कर्म और सदाचार का विशेष महत्व प्रदर्शित है।

7. बौद्ध धर्म एवं हिन्दू धर्म दोनों कर्म एवं पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। दोनों धर्मों का साध्य है, जन्म, जटा, व्याधि एवं मृत्यु से छुटकारा पाना। हिन्दू धर्म में सृष्टि के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की धारणाएँ हैं–भगवान बुद्ध ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। हिन्दू धर्म ईश्वरवादी है। ज्ञान,

कर्म, भक्ति आदि का हिन्दू धर्म में स्थान है पर बौद्ध धर्म में ईश्वर के प्रश्न पर विचार नहीं किया गया। इस धर्म में व्यक्ति का भी कोई स्थान नहीं है। परवर्ती बौद्ध धर्म में महायान शाखा में अवतारवाद, मूर्ति पूजा, पौराणिक कथाएँ, भिक्षुओं की पुरोहितों के रूप में प्रतिष्ठा एवं गुरु का सम्मान आदि का प्रचलन था।

प्रश्न 43. वैदिक कालीन तथा बौद्धिक कालीन शिक्षा में पाँच अन्तर बताइए। (ग्वालियर 2022)

उत्तर – वैदिक कालीन तथा बौद्धिक कालीन शिक्षा में पाँच अन्तर –

क्र.	शिक्षा संबंधी	वैदिक–कालीन शिक्षा	बौद्धिक–कालीन शिक्षा
1.	छात्र की स्थिति	'भिक्षु'	'ब्रह्मचारी'
2.	छात्र जीवन	सात्विक, ब्रह्मचर्य गुणों से	सात्विक तथा ब्रह्मचर्य पूर्ण।
3.	छात्र दिनचर्या एवं छात्र कर्तव्य	परिपूर्ण एकसमान थे	एकसमान थे।
4.	छात्र जीवन सम्बन्धी नियम	समस्त ब्रह्मचर्य नियमों का कठोर अनुपालन पर जोर	इन नियमों का कठोर अनुपालन
5.	छात्र का धार्मिक एवं नैतिक जीवन	दोनों के विकास को प्राथमिकता	यही स्थिति थी।
6.	शिक्षा संस्कार	पबज्जा, उपसम्पदा आदि।	इसी प्रकार के संस्कार किये जाते थे केवल नाम अलग थे।
7.	नि:शुल्क शिक्षा एवं छात्र व्यय	नि: शुल्क शिक्षा	नि: शुल्क शिक्षा।
8.	छात्र शिक्षक सम्बन्ध	पिता–पुत्र तुल्य	ठीक ऐसे ही।
9.	शिक्षण विधि	मौखिक, तार्किक, श्रवण मनन निदिध्यासन पर आधारित थी।	इन्हीं शिक्षा विधियों का प्रयोग किया जाता था।
10.	छात्र जीवन में प्रवेश आयु तथा अध्ययन अवधि	एकसमान तथा सुनिश्चित थी।	इसी प्रकार की थी।
11.	शिक्षा संस्थाएँ	बौद्ध मठों में, नगरों से दूर, प्रकृति की गोद में।	आश्रमों में नगरों से दूर।
12.	अनुशासन	कठोर	कठोर
13.	छात्र संबोधन	सामनेर	ब्रह्मचारी
14.	शिक्षा का माध्यम	क्षेत्रीय भाषाएँ तथा पाली	संस्कृत
15.	शिक्षा का उद्देश्य	छात्र का पूर्ण विकास	छात्र का समग्र विकास।

प्रश्न 44. पारम्परिक शिक्षा पर टिप्पणी लिखिए। (जबलपुर 2022)

उत्तर–पारम्परिक शिक्षा–स्कूल में पारम्परिक शिक्षा एक कक्षा में एक शिक्षक के माध्यम से होती है, इसमें शिक्षक कोई भी एक अध्याय लेकर छात्रों के आमने–सामने पढ़ाता है। पारंपरिक पढ़ाई में शिक्षक बहुत से उपकरणों का उपयोग भी करता है। जैसे–चाक, मार्कर तथा ब्लैक बोर्ड या व्हाइट बोर्ड।

शिक्षा की पारंपरिक प्रणाली, जिसके माध्यम से दुनिया भर में अधिकांश लोग अभी भी गुजरते हैं। सदियों और सहस्राब्दियों से विकसित हुई है। प्राचीन मिस्र में, सुमेर की तरह, एक छात्र को उसकी आज्ञा मानने के लिए पीटने की प्रथा थी, छात्र एक ही अभ्यास को अंतहीन रूप से दोहराए ताकि उसे बेहतर याद किया जा सके और स्वचालितता में लाया जा सके। छात्र अधिकार द्वारा पवित्र किये गए प्राचीन ग्रंथों को याद करें और उन्हें अंतहीन रूप से दोहराएँ।

पारम्परिक शिक्षा प्रणाली, जो अब है प्रश्न में, एक साधारण विषय वर्ग–पाठ प्रणाली है जिसे लगभग हर कोई अपने अनुमान से जानता है। शिक्षा विषय द्वारा आयोजित की जाती है, अध्ययन के समय को पाठों में विभाजित किया जाता है और एक दिन में पाँच से आठ पाठ होते हैं और वे सभी भिन्न होते हैं। छात्रों को उम्र के अनुसार और शिक्षक या सहपाठियों की पसंद के बिना कक्षाओं में बाँटा गया है, अंक का उपयोग करके सीखने में सफलता का आकलन किया जाता है, हमेशा उत्कृष्ट, अच्छे और बुरे छात्र होते हैं। कक्षाओं में उपस्थिति देना अनिवार्य है। साथ ही विभिन्न प्रकार की नियंत्रण गतिविधियों में भाग लेना भी अनिवार्य है।

पारम्परिक शिक्षा की विशेषताएँ–पारम्परिक शिक्षा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

1. पारम्परिक शिक्षा यद्यपि कठोर परीक्षणों के माध्यम से प्रदान की जाती है परन्तु फिर भी छात्र सरलता से विषयों को आत्मसात कर लेते हैं एवं स्नातक स्तर तक पहुँच जाते हैं।

2. परम्परागत शिक्षा छात्रों को उन आवश्यक कौशलों, तथ्यों एवं नैतिक सामाजिक आचरण को सिखाती है जो अगली पीढ़ी के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

3. यह शिक्षा पूर्ण प्रभावशाली है अर्थात् इस प्रकार की शिक्षा में बालकों को वह समस्त क्रिया कलाप एवं अधिगम सिखाए जाते हैं जिनकी उनको भविष्य में आवश्यकता होती है।

4. इस शिक्षा व्यवस्था में समस्त छात्रों को एक समान अध्ययन सामग्री तथा शिक्षण विधियों से अध्यापन कराया जाता है।

5. परम्परागत शिक्षा के विभिन्न तत्व देश की संस्कृतियों से अधिक जुड़े होते हैं या प्रभावित होते हैं।

6. ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो पारम्परिक शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर शिक्षा मौखिक रूप से प्रदान की जाती थी। इसमें छात्रों को एक क्रम में बैठाकर उन्हें तथ्यों को कंठस्थ कराया जाता था।

7. पाम्परिक शिक्षा को परम्परागत शिक्षा या प्रथागत शिक्षा के नाम से भी जाना जाता है।

8. पारम्परिक शिक्षा में शिक्षक–छात्र सम्बन्ध बहुत मधुर रहते हैं।

9. पारम्परिक शिक्षा में लागत बहुत कम आती है।

10. पारम्परिक शिक्षा में शिक्षक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है।

प्रश्न 45. वैदिक शिक्षा की आधुनिक युग में प्रासंगिकता समझाइए। (छतरपुर 2022)

उत्तर–वैदिक साहित्य में 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है, यथा 'विद्या', 'ज्ञान', 'बोध' और 'विनय'। आधुनिक शिक्षाशास्त्रियों के समान प्राचीन भारतीयों ने भी 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग **'व्यापक' और 'सीमित'** दोनों अर्थों में किया है। **डॉ. ए. एम. अल्टेकर**, के अनुसार व्यापक अर्थ में शिक्षा का तात्पर्य है–'व्यक्ति को सभ्य और उन्नत बनाना इस दृष्टि से शिक्षा, आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है।'

प्राचीन भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों और आदर्शों पर प्रकाश डालते हुए डॉ. ए. एम. अल्टेकर ने लिखा है–"प्राचीन भारतीय शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों एवं आदर्शों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है–ईश्वर भक्ति एवं धार्मिकता का समावेश, चरित्र का निर्माण, व्यक्तित्व का विकास नागरिक एवं सामाजिक कर्त्तव्य पालन भी भावना का समावेश और राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रचार।"

संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

(1) ज्ञान और अनुभूति पर बल–प्राचीन भारत में शिक्षा का पहला उद्देश्य ज्ञान और अनुभूति पर बल देना था। इस समय छात्रों की मानसिक योग्यता का मापदण्ड था–उनके द्वारा प्राप्त किए जाने वाले अंक, प्रमाण पत्र या उपाधि पत्र नहीं थे। इनके स्थान पर उनकी योग्यता का मापदण्ड था। उनके द्वारा अर्जित किया गया ज्ञान, जिसका प्रमाण वे विद्वत्परिषदों में शास्त्रार्थ करके देते थे।

(2) चित्त–वृत्तियों का निरोध–प्राचीनकाल में शिक्षा का दूसरा उद्देश्य छात्रों की चित्त–वृत्तियों का निरोध करना था। इस समय शरीर की अपेक्षा आत्मा को बहुत अधिक महत्व दिया जाता था क्योंकि शरीर नश्वर है, जबकि आत्मा अनश्वर है। अतः आत्मा के उत्थान के लिए जप, तप और योग पर विशेष बल दिया जाता था। ये कार्य चित्त की वृत्तियों का निरोध करके अर्थात् मन पर नियंत्रण करके ही सम्भव थे।

(3) ईश्वर भक्ति व धार्मिकता का समावेश–प्राचीन भारत में शिक्षा का तीसरा उद्देश्य छात्रों में ईश्वर–भक्ति और धार्मिकता की भावना का समावेश करना था। उस समय उसी शिक्षा को सार्थक माना जाता था, जो इस संसार में व्यक्ति की मुक्ति को सम्भव बनाए–'सा विद्या या विमुक्तये।' व्यक्ति को मुक्ति तभी प्राप्त हो सकती थी जब वह ईश्वर–भक्ति और धार्मिकता की भावना से सराबोर हों।

(4) चरित्र का निर्माण–प्राचीन भारत में शिक्षा का चौथा उद्देश्य, छात्रों के चरित्र का निर्माण करना था। उस समय व्यक्ति के चरित्र को उसके पांडित्य से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता था। 'मनुस्मृति' में लिखा है–"केवल गायत्री मन्त्र का ज्ञान रखने वाला चरित्रवान, ब्राम्हण, सम्पूर्ण वेदों के ज्ञाता, पर चरित्रहीन विद्वान से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।"

●●

इकाई 3

माध्यमिक शिक्षा

प्रश्न 1. माध्यमिक शिक्षा के मुख्य लक्ष्य एवं उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

(जबलपुर 2015, 21, 22; ग्वालियर 21; छतरपुर 22; उज्जैन 21; रीवा 22)

***अथवा*, माध्यमिक शिक्षा के सामान्य लक्ष्य और उद्देश्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।**

(भोपाल 2021)

उत्तर–माध्यमिक शिक्षा–माध्यमिक शिक्षा प्रायमरी और हायर सेकेण्डरी के बीच दी जाने वाली शिक्षा है। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के क्षेत्र में तीव्र गति से विकास हुआ तथा स्वतंत्र भारत में राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों में बड़ी तीव्र गति से परिवर्तन आया। इसलिये नई परिस्थितियों से संतुलन बनाये रखने के लिए माध्यमिक शिक्षा को पुनर्गठित करने की आवश्यकता महसूस की गई क्योंकि उच्च शिक्षा के विकास के लिए माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन आवश्यक था। माध्यमिक शिक्षा पूरे देश के लिए जरूरी थी क्योंकि रोज नई–नई समस्याएँ उभरकर आ रही थीं। अतः किसी भी उद्देश्यपूर्ण क्रिया के लिए पर्याप्त उद्देश्यों की आवश्यकता होती है। निरुद्देश्य शिक्षा अपने में अर्थहीन सिद्ध होती है। **रिवलिन महोदय के अनुसार**– "शिक्षा एक सप्रयोजन तथा नैतिक क्रिया है। समय परिवर्तन के साथ–साथ शिक्षा के उद्देश्य भी बदलते रहे हैं।"

माध्यमिक शिक्षा के मुख्य लक्ष्य– इनके सामान्य लक्ष्य निम्नलिखित हैं–

1. ज्ञान का लक्ष्य– शिक्षा का लक्ष्य ज्ञान का अर्जन करना है। ज्ञान को ज्ञान द्वारा ही पा सकते हैं।

डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार– "ज्ञान मात्र सूचना नहीं है और न ही विद्वता है। यह मात्र आलोचना भी नहीं है। यह अपने गहन रूप में शिक्षा है। विवेक के अभाव में ज्ञान व्यर्थ है।"

फैरार के अनुसार– "ज्ञान समझदारी के साथ विवेक है, व्यवस्था के साथ शक्ति है, दया के साथ भलाई है, धर्म के साथ सद्गुण, जीवन और शांति है।"

2. शारीरिक विकास– सामान्य रूप से सभी देशों व कालों में स्वस्थ नागरिक की कल्पना की गई है जो देश के विकास में सहायक हो। शिक्षा द्वारा शरीर और मस्तिष्क का संतुलित विकास किया जाना चाहिए।

3. चरित्र निर्माण– डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार, "भारत सहित संसार के सारे कष्टों का कारण यह है कि शिक्षा का संबंध नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति से न होकर केवल मस्तिष्क के विकास तक रह गया है।" कुछ शिक्षाविदों के अनुसार, "चरित्र का अर्थ आंतरिक दृढ़ता और व्यक्तित्व की एकता है।"

4. सांस्कृतिक विकास– शिक्षा के सांस्कृतिक लक्ष्य का अर्थ है, 'संस्कृति का प्रसार' अर्थात् नागरिक को सुसंस्कृत व परिष्कृत बनाना।

महात्मा गाँधी के अनुसार–"संस्कृति ही मानव जीवन की आधारशिला और मुख्य वस्तु है। यह आपके आचरण और व्यक्तिगत व्यवहार की छोटी–सी–छोटी बातों में व्यक्त होना चाहिए।"

5. जीविकोपार्जन–शिक्षा के माध्यम से ही नागरिक रोजगार, व्यवसाय या कार्य करने में सक्षम होंगे क्योंकि समाज की आवश्यकता है कि नागरिक शिक्षा ग्रहण करने के बाद अपनी जीविका चलाने में आत्मनिर्भर हों। व्यवसाय में कुशल नागरिक देश के विकास और समृद्धि में सहायक होते हैं।

6. **नागरिकता**– नागरिक के रूप में प्रत्येक व्यक्ति के कुछ कर्त्तव्य और अधिकार होते हैं लोकतंत्रीय देशों में नागरिकता का प्रशिक्षण देना शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए।

7. **अवकाश उपयोग–एडिथ व्हार्टन** के अनुसार–"अवकाश सदैव सम्पत्ति को सौन्दर्य में परिवर्तित करने में लगा रहता है। यह सौन्दर्य श्रेष्ठ स्थापत्य कला, श्रेष्ठ चित्रकला और श्रेष्ठ साहित्य द्वारा व्यक्त होता है।"

शिक्षा यह सिखाती है कि खाली समय का उचित उपयोग कैसे करें क्योंकि एक कहावत है कि खाली दिमाग शैतान का घर होता है।

8. **वैयक्तिक लक्ष्य–नन** ने व्यक्ति के महत्व पर बल देते हुए लिखा है–"शिक्षा की ऐसी दशाएँ उत्पन्न करनी चाहिए, जिनसे वैयक्तिकता का पूर्ण विकास हो सके और व्यक्ति मानव जीवन में अपना मौलिक योगदान दे सके।"

9. **सामाजिक लक्ष्य**– इसके अनुसार समाज और राज्य का स्थान व्यक्ति से ऊँचा है। समाज के हित में ही व्यक्ति का हित है, समाज से अलग उसका कोई व्यक्तित्व नहीं है। व्यक्ति समाज में रहकर ही अपनी उन्नति और विकास कर सकता है।

व्यक्ति और समाज दोनों अन्योन्याश्रित हैं। व्यक्ति मिलकर समाज बनाते हैं और व्यक्तियों के अभाव में समाज अर्थहीन है। **जॉन ड्यूवी** ने शिक्षा से सामाजिक कुशलता की प्राप्ति के उद्देश्य की व्याख्या दूसरे ढंग से की है। ऐसा नागरिक अपनी जीविका की समस्या को हल कर सकने के कारण समाज पर भार नहीं बनता है और साथ ही वह अपने देश और अन्य समस्याओं को समझते हुए समाज व देश की समस्याओं को हल करने में बलिदान करने को भी तैयार रहता है।

सामाजिक कुशलता में कभी–कभी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बंधन के रूप में देखा जाता है। **नन** का कहना है कि स्वतंत्र व्यक्ति समाज के लिए नई व उपयोगी खोज करते हैं। इसके साथ ही व्यक्ति समाज की आवश्यकतानुसार स्वयं में परिवर्तन भी करते हैं। वैयक्तिक स्वतंत्रता और सामाजिकता नागरिक की जीवनशैली, भौतिकता आदि पर निर्भर होती है। व्यक्ति को अपने जीवन के हर स्तर पर सामाजिकता की आवश्यकता होती है।

राष्ट्रीय भावना–राष्ट्रीय भावना जगाने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। अन्य पाठ्य–सहगामी क्रियाओं के माध्यम से तथा राष्ट्रीय स्तर के राजनेताओं के प्रेरक प्रसंग इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

वैश्विक सद्भावना–डॉ. वाल्टर एच.सी.लेव्स के अनुसार, "आज का युग वैश्वीकरण का युग है। इसके पहले इस भावना की इतनी आवश्यकता नहीं थी जितनी आज है।"

अन्तर्राष्ट्रीय भावना इस ओर ध्यान दिये बिना कि व्यक्ति किस राष्ट्रीयता या संस्कृति का है, एक–दूसरे के प्रति सब जगह उनके व्यवहार का आलोचनात्मक और निष्पक्ष रूप से निरीक्षण करने और आँकने की योग्यता है।

गोल्ड स्मिथ के अनुसार–"अन्तर्राष्ट्रीयता एक भावना है जो व्यक्ति को यह बताती है कि वह अपने राज्य का ही सदस्य नहीं है वरन् विश्व का एक नागरिक भी है।"

इस प्रकार शिक्षा के सामान्य लक्ष्यों के माध्यम से छात्रों में अच्छे नागरिक के गुणों का बीजारोपण किया जा सकता है।

माध्यमिक शिक्षा के सामान्य उद्देश्य—स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, राष्ट्रीय अनुशासन की स्थापना कर न्याय, समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व को प्राप्त करना ही शिक्षा का उद्देश्य बताया गया है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार—"शिक्षा व्यवस्था की आदतों, प्रवृत्तियों एवं चारित्रिक गुणों के विकास के लिए अपना योगदान देना चाहिए ताकि यहाँ के नागरिक कुशलतापूर्वक लोकतांत्रिक नागरिकता के उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने की क्षमता प्राप्त कर सकें और उन विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों का विरोध करें जो व्यापक राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण के विकास में बाधक हो।"

माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य (उज्जैन 2022)—माध्यमिक शिक्षा ने निम्नलिखित उद्देश्य बताये हैं—

1. लोकतांत्रिक नागरिकों का विकास—विश्व के सबसे बड़े जनतांत्रिक देश के नागरिक योग्य हों, जो कर्त्तव्य और अधिकार दोनों समझे और उनका पालन करें। छात्र विवेकशील व राष्ट्र प्रेमी हों। सहयोग, अनुशासन, सामाजिकता, सहानुभूति आदि मानवीय मूल्यों का विकास हो।

लोकतंत्र में शिक्षा इस कारण भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य शर्त है कि बाद में नागरिक मतदाता के रूप में सफल कार्य कर सकें।

2. व्यावसायिक कुशलता का विकास— देश के औद्योगिक और व्यावसायिक विकास के लिए कुशल व योग्य छात्र–छात्राओं को माध्यमिक शिक्षा से ही प्रशिक्षण और अध्यापन कराया जाये जिससे वे जीविकोपार्जन कर स्वावलम्बी बन सकें। नागरिक राष्ट्र के विकास में सहभागी हों। छात्रों में श्रम के प्रति निष्ठा भाव हो।

3. व्यक्तित्व का विकास— छात्र और छात्राओं के व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास करना, शिक्षा का उद्देश्य है जिससे वे उचित शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक विकास के साथ जीवनयापन करने में सक्षम और राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हों। छात्रों को देश की सांस्कृतिक परम्पराओं का ज्ञान हो तथा वे रुचि अनुसार स्वयं भी कला अपनायें और उसे समृद्ध बनायें।

4. नेतृत्व की भावना का विकास— स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लोगों को नेतृत्व की तुलना में अनुकरण या कार्यकर्ता के रूप में कार्य करना ज्यादा रुचिकर लगा। इसी बात को ध्यान में रखकर नेतृत्व की अगली पंक्ति के लिए स्कूली शिक्षा से बीजारोपण किया जाये ताकि देश व समाज को उचित नेतृत्व मिल सके।

इसके साथ ही अन्य उद्देश्य इस प्रकार हैं—लोकतंत्र में व्यक्ति की गरिमा होती है। प्रत्येक का समान महत्व होता है। हर एक व्यक्ति अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार अग्रसर हो सकता है। इसलिए आज शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है।

5. लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास— इसके अन्तर्गत निम्न मूल्यों का विकास अपेक्षित हैं-

(अ) व्यक्तित्व की गरिमा का आदर, (ब) पारस्परिक सद्भाव, (स) विचार–विमर्श द्वारा परिवर्तन, (द) आत्म नियंत्रण या सहनशीलता, (ई) व्यक्तिगत तथा सामाजिक उन्नति में समन्वय।

6. सामाजिक दृष्टिकोण का विकास— यह उद्देश्य सामाजिक समझदारी, सामाजिक रुचियाँ, सहयोग व सामाजिक प्रश्नों के समाधान की ओर प्रेरित करता है। शिक्षा केवल मानसिक विकास ही नहीं करती वरन् सामाजिक कुशलता से उसकी उन्नति भी करती है ताकि वह सरलता से जीविकोपार्जन कर आर्थिक रूप से समक्ष व सम्पन्न बन सके।

7. अंतर–सांस्कृतिक भावना का विकास– भारत में अति प्राचीन काल से विभिन्न सांस्कृतिक धाराएँ बहती रही हैं। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति अन्य देशों की संस्कृतियों के समान नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में भारत में विभिन्न भागों और विश्व की संस्कृतियों को समझना और उनका आदर करना सरल कार्य नहीं है। अतः इसके लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं–

(अ) भारतीय और विश्व इतिहास का विशेष अध्ययन हों।

(ब) विभिन्न भारतीय राज्यों में सांस्कृतिक आदान–प्रदान का आयोजन हो।

(स) सामाजिक विज्ञानों के लिए–भ्रमणकारी अध्यापक संस्था हो, विषय के लिए स्कूलों में विशेष कार्यक्रम आयोजित कर सांस्कृतिक धरोहर से छात्रों को परिचित कराएँ ताकि सांस्कृतिक धरोहर की समृद्धता से परिचित होकर उसमें रुचि लें व विकास में योगदान दें।

8. राष्ट्रीय भावना का विकास–किसी भी देश की स्वतंत्रता के साथ ही विकास की राह बनती है। छात्रों में यह भावना शिक्षा के माध्यम से जगाई जा सकती है। जिस देश में जन्म हुआ वहीं की मिट्टी, हवा और पानी व अन्न से हम बड़े हुए हैं उस देश के प्रति सम्मान का भाव अवश्य ही होना चाहिए।

युवा वर्ग ही राष्ट्रीय सुरक्षा के कर्णधार होते हैं। इन्हीं के कंधों पर देश की सुरक्षा की जिम्मेदारी होती है और इस भावना का बीजारोपण स्कूली शिक्षा में ही होना चाहिए।

9. भविष्य के लिए शिक्षा– यूँ तो भविष्य को लेकर इतने सवाल खड़े हैं कि उनमें से चुनना कठिन है कि क्या सही और क्या गलत है, पर इतना अवश्य है कि भविष्य की आधारशिला–भाषा, गणित, विज्ञान का ज्ञान ही आगे काम आयेगा। भविष्य या रोजगार या व्यवसाय की कोई भी शाखा ऐसी नहीं है जिसका आधार माध्यमिक शिक्षा के विषयों से न जुड़ा हो।

प्रश्न 2. माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रणाली को स्पष्ट कीजिए।

***अथवा*, स्वतंत्रोत्तर भारत की शिक्षा का संक्षेप में वर्णन कीजिए।** **(रीवा 2022)**

***अथवा*, सार्जेण्ट योजना (1944) की मुख्य सिफारिशें लिखिए।** **(इंदौर 2022)**

उत्तर–माध्यमिक शिक्षा किसी भी देश की शिक्षा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्तर है। यही वह स्तर है जो प्राथमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा के बीच एक सेतु का कार्य करता है व दोनों को परस्पर जोड़ता है। इस स्तर पर पढ़ने वाले छात्र किशोरावस्था के होते हैं इसलिए इस अवस्था का महत्व भी बढ़ जाता है। दूसरे शब्दों में, माध्यमिक शिक्षा एक ऐसा केन्द्र बिंदु है जो प्राथमिक शिक्षा एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा के मध्य संबंध स्थापित करता है। यह शिक्षा प्राथमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा के मध्य कड़ी का काम करती है। इस स्तर पर जो बालक अध्ययन करते हैं उनके व्यक्तित्व की शैली उसी पर निर्धारित होती है क्योंकि यहीं से उसके व्यवसाय की तैयारी आरंभ हो जाती है। यहीं से छात्र–छात्राएँ जीवन जीने की कला सीखते हैं।

सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली तथा मानव जीवन में माध्यमिक शिक्षा का इतना महत्व होते हुए भी यह आज तक अनेक दोषों से ग्रसित रही है। माध्यमिक शिक्षा के दोषों की ओर संकेत करते हुए **प्रो. के.जी. सैय्यदन जी** लिखते हैं कि–"सारे संसार के शैक्षणिक क्षेत्रों में माध्यमिक शिक्षा के आम ढर्रे के प्रति गहरा असंतोष रहा है एवं वे काफी समय से यह अनुभव करते रहे है कि उसकी आमूल पुनर्रचना तत्काल आवश्यक है। यद्यपि प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में बहुमूल्य परिवर्तन हुए हैं और स्वयं हमारे देश में बुनियादी शिक्षण पद्धति ने उसकी समस्याओं के प्रति एक बिलकुल ही नया रवैया

अपनाया है पर माध्यमिक शिक्षा अभी कुछ समय पहले कुल मिलाकर गतिहीन तथा अपरिवर्तित रही है।"

भारत देश में माध्यमिक शिक्षा गतिहीन तथा अपरिवर्तित क्यों रही है एवं इसमें गतिशीलता और परिवर्तनशीलता का कब, क्यों तथा कैसे समावेश हुआ है ? इन तथ्यों की जानकारी प्रदान करने के हेतु अधोलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत माध्यमिक शिक्षा के विकास पर दृष्टिपात कर रहे हैं।

माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रणाली का विकास—माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रणाली का विकास दो रूपों में देख सकते हैं—

[I] स्वतंत्रता से पूर्व विकास— शिक्षा के इतिहास में जिन सीमा चिन्हों ने माध्यमिक शिक्षा का सूत्रपात कर उसके प्रचार एवं प्रसार में अपना योगदान देकर समय–समय पर उसके स्वरूप–संगठन आदि में परिवर्तित किया। उनका क्रमानुसार विवरण इस प्रकार है—

1. माध्यमिक शिक्षा का सूत्रपात— माध्यमिक शिक्षा, आधुनिक युग की देन है क्योंकि वैदिक एवं मध्य युग की शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा के मात्र दो ही स्तर थे—प्राथमिक एवं उच्च। यूरोपीय मिशनरियों को भारत में माध्यमिक शिक्षा के सूत्रपात करने का श्रेय जाता है, क्योंकि इन्होंने 18वीं शताब्दी के अंत में देश के कुछ भागों में माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की थी। इन लोगों से प्रेरित होकर कुछ भारतीयों ने माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना का कार्य किया।

डॉ. एस.एन.मुखर्जी के अनुसार—"माध्यमिक स्कूलों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य धनी भारतीयों की अपने अंग्रेज शासन की भाषा को सीखने की माँग की पूर्ति करना था।"

माध्यमिक शिक्षा की आधारशिला, "वुड घोषणा पत्र, 1854" में रखी गई थी। उन्होंने माध्यमिक स्तर पर दो प्रकार के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करने के लिए कहा था— (अ) पाठ्यक्रम और (ब) पाठ्यक्रम। उसके बाद समय–समय पर माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन हुए।

2. माध्यमिक शिक्षा की प्रारंभिक अवस्था— अपनी प्रारंभिक अवस्था में माध्यमिक शिक्षा को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप उसने प्रगति के मार्ग पर अपनी यात्रा का शुभारंभ किया।

(1) कंपनी के संचालकों ने सन् 1839 में अपने एक विवरण पत्र द्वारा मद्रास के गवर्नर को यह आदेश दिया कि प्रशासन कार्य हेतु भारतीयों की सहायता के लिए उन्हें अंग्रेजी की शिक्षा दी जाए।

(2) लार्ड विलियम बैंटिक ने सन् 1835 में मैकाले के विवरण पत्र को स्वीकार करके यह निर्धारित किया कि शिक्षा पर व्यय होने वाला समस्त धन अंग्रेजी भाषा के माध्यम से चलाई जाने वाली कक्षाओं में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने हेतु व्यय किया जाएगा।

(3) सन् 1837 में अंग्रेजी को न्यायालय की भाषा बना दी गई।

(4) **लार्ड हार्डिज** ने सन् 1844 में अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त भारतीयों के लिए कंपनी की नौकरियों के द्वार खोल दिए। इसके फलस्वरूप भारतीयों को अंग्रेजी की शिक्षा देने के लिए सन् 1844 तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में 32 मान्यता प्राप्त स्कूल खोले गए।

3. 1854 वुड का घोषणा पत्र— इसमें माध्यमिक शिक्षा से संबंधित मुख्य तीन बातें थीं—

(1) इस घोषणा पत्र में भारत के लोगों को यूरोप के लेखकों की पुस्तकों एवं वहाँ के लोगों के द्वारा अर्जित किए जाने वाले ज्ञान से परिचित कराने के लिए कहा गया। इसने माध्यमिक शिक्षा के प्रसार में प्रशंसनीय योगदान दिया।

(2) विद्यालयों को आर्थिक सहायता देने के लिए सहायता अनुदान प्रणाली को प्रचलित करने का सुझाव दिया गया। इससे नवीन माध्यमिक स्कूलों की स्थापना को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

(3) मद्रास, मुम्बई एवं कलकत्ता में विश्वविद्यालय स्थापित किए जाने की आज्ञा दी गई।

4. 1882 का हंटर कमीशन– हंटर कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा को अत्यधिक साहित्यिक होने के दोषों से मुक्त कराने हेतु विविध पाठ्यचर्या का सुझाव दिया। उसने हाई स्कूल शिक्षा को दो भागों में विभक्त कर 'अ' कोर्स का उद्देश्य छात्रों को विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिए तैयार करना हो तो एवं 'ब' कोर्स का उद्देश्य छात्रों को व्यावसायिक एवं असाहित्यिक कार्यों के लिए तैयार करना हो। आयोग के सुझाव एवं विचार पर सरकार एवं जनता ने ध्यान नहीं दिया फलतः माध्यमिक शिक्षा का अपने पूर्व रूप में प्रसार होता रहा साथ ही उस पर विश्वविद्यालयों का प्रभुत्व भी यथावत् रहा।

5. 1904 का भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम– इस अधिनियम से पहले विश्वविद्यालयों की मैट्रीकुलेशन परीक्षा में उन माध्यमिक स्कूलों के छात्र भी सम्मिलित हो सकते थे जिनको विश्वविद्यालयों से मान्यता प्राप्त नहीं थी। इस अधिनियम में विश्वविद्यालयों को केवल मान्यता प्राप्त विद्यालयों के छात्रों का मैट्रीकुलेशन परीक्षा में सम्मिलित होने की आज्ञा देने और मान्यता संबंधी नियमों का निर्माण करने का अधिकार प्रदान कर दिया। इसके परिणामस्वरूप माध्यमिक शिक्षा पर विश्वविद्यालयों का पहले से अधिक कठोर नियंत्रण स्थापित हो गया एवं अवांछनीय स्कूल, मान्यता प्राप्त न कर सकने के कारण बंद हो गए साथ ही नए स्कूलों की स्थापना भी सोच–समझकर की जाने लगी।

6. 1919 का सैडलर कमीशन–इस कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा को दोषमुक्त करने हेतु निम्न सुझाव दिए–

(1) विश्वविद्यालय के अधिकार क्षेत्र से माध्यमिक शिक्षा को बाहर रखा जाए।

(2) माध्यमिक शिक्षा से संबंधित समस्त कार्यों को सम्पन्न कराने हेतु प्रत्येक प्रांत में माध्यमिक एवं इण्टरमीडिएट शिक्षा परिषद् का निर्माण किया जाए।

(3) विश्वविद्यालयों से इण्टरमीडिएट कक्षाओं को पृथक् कर इण्टरमीडिएट कॉलेजों की स्थापना की जाए।

7. 1929 की हर्टांग समिति– इस समिति के अनुसार, माध्यमिक शिक्षा की प्रगति तो अवश्य हुई परंतु इस पर मैट्रीकुलेशन परीक्षा का आधिपत्य है। इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की अधिक संख्या होने के कारण माध्यमिक शिक्षा में बहुत अधिक अपव्यय हो रहा है। अतः अपव्यय को कम करने के लिए समिति ने पाठ्यचर्या में व्यावसायिक विषयों को स्थान दिए जाने की सिफारिश की।

8. 1836-37 की वुड एबट रिपोर्ट– इस रिपोर्ट के अनुसार निम्न माध्यमिक कक्षाओं में अंग्रेजी के अध्ययन पर बल न दिया जाए एवं हाईस्कूल तक की सभी कक्षाओं में भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाए।

9. 1944 की सार्जेण्ट रिपोर्ट (इन्दौर 2022)–माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन के लिए इस रिपोर्ट ने निम्न उपयोगी सुझाव दिए–

(1) मात्र असाधारण योग्यता वाले बालकों को ही हाईस्कूल में प्रवेश दिया जाए।

(2) प्रवेश प्राप्त करने वाले छात्रों के लिए 14 वर्ष की आयु तक की शिक्षा ग्रहण करना अनिवार्य कर दिया जाए।

साहित्यिक एवं प्राविधिक दोनों प्रकार के हाईस्कूलों की स्थापना की जाए। यदि इन सुझावों का क्रियान्वयन हो जाता है तो माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप कुछ और ही होता।

[II] स्वतंत्रता के पश्चात् विकास—माध्यमिक शिक्षा को गतिशील बनाने एवं उसको देश की परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिए कई समितियों एवं आयोगों का गठन किया गया। इसके सुझाव निम्नलिखित थे—

1. ताराचंद समिति— इस समिति ने माध्यमिक शिक्षा पर निम्न सुझाव दिए— **(रीवा 2022)**

(अ) माध्यमिक स्तर की शिक्षा अवधि 12 वर्ष हो जिसमें 5 वर्ष की जूनियर बेसिक शिक्षा, 3 वर्ष की उच्च बेसिक शिक्षा एवं 4 वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा हो।

(ब) माध्यमिक शिक्षा बहुउद्देश्यीय होनी चाहिए।

(स) माध्यमिक शिक्षा की जाँच हेतु एक आयोग की नियुक्ति की जानी चाहिए।

2. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग— इस आयोग ने विश्वविद्यालयी शिक्षा के साथ ही माध्यमिक शिक्षा के संबंध में सुझाव दिए। इस आयोग ने भारतीय शिक्षा प्रणाली में माध्यमिक शिक्षा को सबसे निर्बल कड़ी बताया एवं उसमें सुधार किए जाने पर बल दिया।

3. माध्यमिक शिक्षा आयोग— इस आयोग ने माध्यमिक शिक्षा की जाँच की तथा बताया कि माध्यमिक शिक्षा एक पक्षीय एवं उद्देश्यहीन है। माध्यमिक शिक्षा स्वयं में मात्र विश्वविद्यालय शिक्षा की पृष्ठभूमि के रूप में कार्य कर रही है जबकि इसे स्वयं में शिक्षा होना चाहिए।

4. शिक्षा आयोग— इस आयोग की नियुक्ति शिक्षा के सभी स्तरों की जाँच करने के लिए हुई थी। इसने माध्यमिक शिक्षा में सुधार करने हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)— 1986 में पूरे देश में समान शिक्षा संरचना 10+2+3 को लागू करने की घोषणा की गई जिसमें कक्षा 1 से 8 तक प्राथमिक तथा कक्षा 9 से 12 तक माध्यमिक शिक्षा के अन्तर्गत आती है। माध्यमिक विद्यालय राज्यों के शिक्षा विभागों तथा माध्यमिक शिक्षा परिषदों के द्वारा नियंत्रित होते हैं।

प्रश्न 3. माध्यमिक शिक्षा क्या है ? इसका विस्तार से वर्णन कीजिए।

***अथवा*, माध्यमिक शिक्षा का अर्थ एवं इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए। (रीवा 2018)**

***अथवा*, माध्यमिक शिक्षा का अर्थ बताते हुए इसकी प्रकृति का वर्णन कीजिए।**

उत्तर—माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा साधारण अर्थों में कह सकते हैं कि प्राथमिक शिक्षा के बाद दी जाती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि विश्वविद्यालयीन शिक्षा के पहले एवं प्राथमिक शिक्षा के बाद दी जाती है। परंतु कुछ स्थानों पर पहली से पाँचवी तक की शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा तथा कक्षा 6 वीं से 12 वीं तक की शिक्षा को माध्यमिक शिक्षा कहा जाता है। कुछ अन्य स्थानों या राज्यों में प्राथमिक शिक्षा कक्षा 8 वीं तक होती है और माध्यमिक शिक्षा कक्षा 9 से 12 वीं तक मानी जाती है।

माध्यमिक शिक्षा का स्तर भारत में समय–समय पर बदलता रहा है। उदाहरण के लिए, **मुदालियर कमीशन** ने माध्यमिक शिक्षा को उच्च माध्यमिक शिक्षा माना है और उसमें कक्षा 9 से 11 वीं को शामिल किया और कक्षा 12 वीं को पूर्व विश्वविद्यालयीन शिक्षा माना।

कोठारी कमीशन (1964-66) ने इण्टरमीडिएट (Intermediate) प्रणाली की सिफारिश की थी और तीन साल के डिग्री कोर्स (10+2+3) प्रारूप पर विशेष बल दिया था। संपूर्ण भारत में अब इसी प्रारूप को स्वीकार कर लागू किया गया हैं।

माध्यमिक शिक्षा की विशेषताएँ–माध्यमिक शिक्षा आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के निम्न विशेषताओं पर प्रकाश डाला है–

(1) माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन–माध्यमिक शिक्षा को दो वर्गों में विभक्त किया गया है–

(i) 3 वर्ष तक जूनियर शिक्षा।

(ii) 4 वर्ष तक उच्चतर माध्यमिक शिक्षा।

(iii) वर्तमान इण्टरमीडिएट को हटाकर उसका एक वर्ष माध्यमिक शिक्षा कक्षा के पाठ्यक्रम में और 1 वर्ष विश्वविद्यालय के डिग्री पाठ्यक्रम में मिला दिया जाए। डिग्री पाठ्यक्रम को 3 वर्ष का कर दिया जाये और इण्टर कॉलेजों से विश्वविद्यालयों में प्रवेश लेने वाले छात्रों के लिए एक वर्ष का पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम रखा जाए।

(iv) पर्याप्त संख्या में पॉलिटेक्निक स्कूल खोले जाए।

(v) बहुउद्देशीय (Multipurpose) विद्यालयों की स्थापना की जाए।

(vi) बालिकाओं के लिए गृह–विज्ञान के अध्ययन की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

(vii) टेक्निकल स्कूलों के छात्रों को व्यावहारिक शिक्षा दी जाए।

(viii) ग्रामीण विद्यालयों में कृषि शिक्षा का विशेषरूप से प्रबंध हो और उद्यान–कला, पशुपालन एवं कुटीर उद्योग की शिक्षा का भी प्रबंध होना चाहिए।

(2) भाषाओं का अध्ययन–(i) माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा होनी चाहिए।

(ii) पूर्व माध्यमिक स्तर पर कम–से–कम दो भाषाओं की शिक्षा प्रदान की जाए।

(iii) उच्चतर माध्यमिक स्तर पर दो भाषाओं का अध्ययन किया जाए, जिसमें एक मातृभाषा हो और दूसरी प्रादेशिक भाषा में हो।

(3) पाठ्यक्रम तथा विषय– पाठ्यक्रम बालकों की रुचि के अनुरूप होनी चाहिए तथा जो सामुदायिक जीवन में अत्यंत घनिष्ठ संबंध रखता हो। इसीलिए माध्यमिक शिक्षा आयोग ने पाठ्यक्रम में हस्तशिल्प तथा शारीरिक शिक्षण एवं ललित कलाओं को स्थान दिया है। पाठ्य–पुस्तकों का स्तर भी बढ़ाया जाये।

(4) शिक्षा पद्धति–क्रियात्मक विधि योजना पद्धति का प्रयोग करना चाहिए, ताकि उचित मूल्यों तथा दृष्टिकोणों को प्राप्त किया जा सके। उन्हें सामूहिक रूप से कार्य हेतु अवसर दिया जाए।

(5) चरित्र निर्माण एवं धार्मिक शिक्षा– (i) शाला के प्रत्येक कार्यक्रम में चरित्र निर्माण की शिक्षा दी जाए।

(ii) पाठ्यक्रम में भी चरित्र निर्माण की शिक्षा दी जाए।

(iii) पाठ्यसहगामी क्रियाओं को अनिवार्य बना दिया जाए। एन.सी.सी., स्काउट, जूनियर रेडक्रास के कार्यों को बढ़ावा दिया जाये।

(iv) स्व–शासन के प्रारूप को अपनाया जाये।

(6) विद्यालय, भवन एवं पुस्तकालय–(i) शाला में पर्याप्त नाप के कमरे हो, जिसमें 40 छात्र बैठ सके।

(ii) माध्यमिक विद्यालयों में पुस्तकालय की उचित सुविधा हो।

(iii) शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्ग–दर्शन की उचित व्यवस्था हो।

(7) परीक्षाएँ– (i) बाह्य परीक्षाएँ कम की जाये यथासंभव निबंधात्मक पद्धति की परीक्षाओं को कम करने का प्रयास किया जाए।

(ii) मूल्यांकन का कार्य आन्तरिक परीक्षाओं, नियतकालिक परीक्षाओं और शाला अभिलेखों के आधार पर किया जाए।

(8) शिक्षकों की प्रगति और प्रशिक्षण– (i) अध्यापकों के चयन का तरीका शासकीय एवं अर्द्ध–शासकीय दोनों विद्यालयों में एक–सा होना चाहिए।

(ii) सभी योग्यता एवं कार्य करने वाले अध्यापकों को एक समान वेतन मिलना चाहिए और उन्हें प्रॉविडेण्ट फण्ड तथा पेंशन आदि की सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए।

(iii) शिक्षकों को ट्यूशन की प्रथा को समाप्त करनी चाहिए।

(iv) शिक्षकों की कठिनाइयों पर विचार करने हेतु आर्बीट्रेटर (Arbitrator) की नियुक्ति की जाए।

(9) प्रशासन– (i) शिक्षा संबंधी समस्याओं पर विचार करने एवं योजना बनाने हेतु केन्द्र एवं राज्यों में एक समिति बनायी जाए।

(ii) शिक्षक प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना कर शिक्षकों के प्रशिक्षण को समुचित व्यवस्था का भार उसे सौंप दिया जाए।

(iii) शिक्षा संचालक की अध्यक्षता में 25 सदस्यों की एक माध्यमिक शिक्षा परिषद् स्थापित हो, जो कि माध्यमिक शिक्षा से संबंधित नीतियाँ निर्धारित करें।

(iv) शिक्षामंत्री को प्रशासन संबंधी सभी समस्याओं पर परामर्श देने का भार शिक्षा संचालक पर हो और उसे शिक्षा मंत्री तक पहुँचने का पूर्ण अधिकार हो।

कोठारी आयोग– सन् 1966 में माध्यमिक शिक्षा को शिक्षा के विकास की रीढ़ कहा गया है। आयोग की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित हैं–

(1) शिक्षा का भावी स्वरूप–आगामी 20 वर्षों में शिक्षा इस प्रकार हो–

(i) आगामी विद्यालयों की स्थापना का नियोजन उचित ढंग से करना।

(ii) उचित स्तर के निर्धारण के लिए सुविधाओं को देखते हुए प्रवेश निश्चित करना।

(iii) निम्न माध्यमिक स्तर पर आत्मचुनाव एवं माध्यमिक स्तर पर बाह्य परीक्षाफल एवं स्कूल रिकॉर्ड के आधार पर चुनाव किया जाए।

(2) अपव्यय एवं अवरोधन पर रोक– नवीन शिक्षण संस्थाओं को खोलने के लिए राष्ट्रीय नीति ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें अपव्यय एवं अवरोधन रोका जा सके। व्यावसायिक, औद्योगिक केन्द्रों के निकट औद्योगिक संस्थान खोले जाये।

प्रश्न 4. माध्यमिक शिक्षा में पाठ्यक्रम की अवधारणाओं का क्रम बताइये। माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा कोठारी आयोग के पाठ्यक्रम के क्षेत्र में हो रहे सुधारों पर प्रकाश डालिए।

***अथवा,* माध्यमिक शिक्षा की पाठ्यचर्या गत (बीते) दस वर्षों में कौन–कौन से सुधार हुए ? उनका सविस्तार वर्णन कीजिए।**

***अथवा,* क्या आप मानते हैं कि पाठ्यक्रम में परिवर्तन करने की आवश्यकता है ? यदि सही है तो किन–किन क्षेत्रों में परिवर्तन की आवश्यकता है ? और है तो क्यों ?**

उत्तर–पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया पाठ्यक्रम का निर्माण एक सहयोगी प्रयास है। इसमें राष्ट्रीय समितियों, क्षेत्रीय समितियों तथा स्थानीय समितियों, प्रधानाचार्य, शिक्षक वर्ग एवं समुदाय को सम्मिलित होना चाहिए। हमारे देश में जो माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम निर्माण में केन्द्रीय एजेन्सी मुख्य रूप से भाग लेती है, वह नेशनल कौंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग (National Council of Educational Research and Training; NCERT) है। यह पाठ्यक्रम निर्माण करके राज्यों के शिक्षा विभागों, परीक्षा बोर्डों इत्यादि को उसको अपनाने के लिए भेजती है। यह पाठ्यक्रम का निर्माण विशेषज्ञों, विषय के शिक्षकों एवं प्रधानाचार्यों के परामर्श से करती है। इसका कार्य ऐसे पाठ्यक्रम का निर्माण करना है, जो शिक्षा की राष्ट्रीय नीति के अनुकूल हो। जो पाठ्यक्रम की रूपरेखा यह परिषद् बनाती है, वह सुझाव के रूप में होता है यह राज्य सरकारों एवं परीक्षा मण्डलों पर निर्भर होता है, कि इसे अपनायें या न अपनायें।

प्रत्येक राज्य सरकार एक परीक्षा मण्डल माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक परीक्षाओं के लिए नियुक्त करती है। यह बोर्ड या मण्डल पाठ्यक्रम निर्धारित करता है, जो उन सब विद्यालयों द्वारा अनुसरण किया जाता है। जो कि अपने विद्यार्थियों को बोर्ड परीक्षा में प्रवेश देने के लिए मान्यता प्राप्त है। सभी बोर्ड में सभी विषय के लिए एक विषय समिति होती है, जो कि उस विषय संबंधी पाठ्यवस्तु का निर्धारण करती है। क्योंकि हमारे देश में माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम निर्माण का कार्य बहुत कुछ केन्द्रीय स्तर पर ही होता है। कुछ शिक्षक इस कार्य में भाग अवश्य लेते हैं किन्तु विभिन्न विद्यालयों के शिक्षकों को यह स्वतंत्रता नहीं है कि वह अपने विषय का पाठ्यक्रम स्वयं बनाये। शिक्षण देते समय शिक्षक कुछ स्वतंत्रता का अनुभव कर सकते हैं, किन्तु विषयों के चुनाव और पाठ्यक्रम बनाने पाठ्य–वस्तु के संबंध में निर्णय लेने में उनकी कोई विशेष भूमिका नहीं होती।

पाठ्यक्रम निर्माण प्रक्रिया की प्रारूप स्थिति वह है, जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी मिलकर पाठ्यक्रम का चुनाव करें, शिक्षक विद्यार्थियों के रुचियों, क्षमताओं तथा वातावरणीय स्थिति को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम निर्माण के मुख्य सिद्धांतों के आधार पर पाठ्यक्रम बनाये तो यह सबसे उत्तम विधि होती है। परंतु हमारे देश में ऐसा नहीं होता है, किन्तु अनेक विकसित देशों में यह प्रक्रिया अपनायी जाती है।

सन् 1985 में एन.सी.आर.टी. में एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का सन् 1988 में संशोधन कर सुधार किया। पाठ्यक्रम को संशोधन के लिए NCERT ने बहुत–सी गोष्ठियाँ, राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तरों पर सेमिनार चर्चाएँ की जिनको अनेक विशेषज्ञों से, शिक्षकों से, क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं से, प्रशासकों से उनके परामर्श लिये गये। जो संशोधित पाठ्यक्रम बना उसमें यह क्षेत्र सम्मिलित थे–

1. उभरती हुई रुचियाँ तथा आदेश, 2. पाठ्यक्रम रुचियाँ, 3. राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के आधार, 4. पाठ्यक्रम संगठन से संबंधित तत्व, 5. मूल्यांकन एवं परीक्षण, 6. विभिन्न क्षेत्रों को समय का आबंटन एवं 7. कार्यान्वित संबंधी युक्ति।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कार्य संबंधी कार्यक्रम में सुझाव दिया कि शिक्षा की विषय–सूची एवं प्रक्रिया के पुनर्निर्माण संबंधी संपूर्ण क्रियाकलाप की योजना NCERT तथा राज्यों की शिक्षा विभाग SCERT/SIE एवं परीक्षा परिषदों द्वारा सहयोग से बननी चाहिए। NCERT ने इस परिप्रेक्ष्य में पहल की और विद्यालयी शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार की जिसका वर्णन हमने ऊपर किया है। इस रूपरेखा के अंतर्गत राज्य सरकारों एवं परीक्षा परिषदों को यह स्वतंत्रता भी दी गयी कि वह

अपने क्षेत्र में शिक्षित हो रहे विद्यार्थियों के लिए अपना स्वयं का पाठ्यक्रम और विषय–सूची बना लें। इन सभी बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश में पाठ्यक्रम निर्माण का कार्य केन्द्रीय स्तर पर ही होता है। शिक्षक अपनी स्वयं की क्रियाओं की योजना बना सकते हैं और यह निर्धारित कर सकते हैं कि विषयों को कैसे पढ़ायें किन्तु वह पाठ्यक्रम की मूल रूपरेखा में आधारभूत परिवर्तन नहीं ला सकते।

प्रश्न 5. माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में परिवर्तन हेतु माध्यमिक शिक्षा आयोग एवं कोठारी आयोग के परामर्श को दर्शाइये।

***अथवा*, पाठ्यक्रम में सुधार हेतु परिवर्तन पर एक लेख लिखिए।**

***अथवा*, पाठ्यक्रम में संशोधन हेतु एक सुधारात्मक विवेचना कीजिए।**

उत्तर–पाठ्यक्रम विकास में शोध कार्य– 1. विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग प्रशिक्षण महाविद्यालयों, प्रांतीय शिक्षा संस्थानों और विद्यालयी शिक्षा बोर्डों द्वारा पाठ्यक्रम में शोध कार्य करना चाहिए और उसी आधार पर स्कूल पाठ्यक्रम को उन्नत करना चाहिए। पाठ्य–पुस्तकों की रचना और शिक्षा प्राप्ति के साधनों में भी शोध कार्य की आवश्यकता है।

2. सेवाकालीन शिक्षा–सेवाकालीन शिक्षा द्वारा नये पाठ्यक्रम के अनुसार अध्यापकों का नवीनीकरण करना चाहिए।

3. प्रयोगात्मक विद्यालय–विद्यालयों को स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्यक्रम की रचना करें और उसका प्रयोग करें। प्रशिक्षण महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों को चाहिए कि वे अपने प्रयोगात्मक विद्यालयों द्वारा उनका नेतृत्व करें।

4. विकसित पाठ्यक्रम–प्रांतीय स्कूल शिक्षा बोर्डों को चाहिए कि वे सभी विषयों के विकसित पाठ्यक्रम की रचना करें और उन्हें क्रमविधि से ऐसे स्कूलों में लागू करें जहाँ शिक्षकों की अच्छी स्थिति हो और अन्य सुविधाओं की व्यवस्था हो। पाठ्यक्रम के विषयों में तालमेल होना चाहिए।

5. सामान्य पाठ्यक्रम– सामान्य तथा अव्यावसायिक स्कूलों में सामान्य शिक्षा के लिए प्रथम दस वर्ष के एक सामान्य पाठ्यक्रम की व्यवस्था होनी चाहिए और विभिन्न विषयों की विशिष्ट शिक्षा केवल हायर सेकेण्डरी से ही प्रारंभ होनी चाहिए।

6. सफलता का स्तर–प्रत्येक उप–अवस्था के अंत पर सफलता के स्तर को स्पष्ट रूप से निश्चित करना चाहिए। विभिन्न उप–अवस्थाओं के लिए व्यापक पाठ्यक्रम की व्यवस्था निम्नलिखित हैं–

निम्न प्राथमिक अवस्था (कक्षा I से IV) –

(1) एक भाषा– (i) मातृ–भाषा अथवा प्रादेशिक भाषा, (ii) गणित, (iii) वातावरण का अध्ययन, (iv) रचनात्मक कार्य, (v) कार्य अनुभव और समाज सेवा एवं (vi) स्वास्थ्य शिक्षा।

उच्च प्राथमिक अवस्था (कक्षा V से VII) –

दो भाषाएँ–(i) मातृ–भाषा या प्रादेशिक भाषा एवं (ii) हिन्दी या अंग्रेजी।

(i) गणित, (ii) विज्ञान, (iii) सामाजिक अध्ययन–इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र तथा नागरिक शास्त्र, (iv) कला, (v) कार्य अनुभव और समाज सेवा से, (vi) शारीरिक शिक्षा एवं (vii) नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

निम्न सेकेण्डरी अवस्था (कक्षा VIII से X) –

भाषाएँ–अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में (i) मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा, उच्च अथवा निम्न स्तर की हिन्दी या अंग्रेजी।

हिन्दी भाषी क्षेत्रों में सामान्यतया ये भाषाएँ होनी चाहिए– (i) मातृ–भाषा या प्रादेशिक भाषा, (ii) अंग्रेजी या हिन्दी यदि अंग्रेजी मातृभाषा के रूप में ली गई हो। हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक भारतीय भाषा।

उच्च सेकेण्डरी कक्षाएँ (कक्षा XI तथा XII)–

1. भावी व्यवसाय और पाठ्यक्रम–दस वर्ष की स्कूल शिक्षा की पूर्ति पर हाईस्कूल परीक्षा में सफल होने के पश्चात् विद्यार्थियों की विशेष अभिरुचियों और योग्यताओं का सामान्यतः निर्माण हो जाता है और उचित मार्गदर्शन और अनुदेशन द्वारा अपना भावी व्यवसाय और शिक्षात्मक पाठ्यक्रम चुनने में सहायता दी जा सकती है।

2. व्यावसायिक एवं सामान्य शिक्षा– यह आशा की जाती है कि दसवीं श्रेणी के पश्चात् पढ़ने वाले 50% छात्र पूर्णकालिक या अंशकालिक व्यावसायिक पाठ्यक्रम अपनायेंगे और शेष छात्र सामान्य शिक्षा पाठ्यक्रमों की शिक्षा लेंगे।

3. सामान्य शिक्षा में विभिन्न पाठ्यक्रम–सामान्य शिक्षा में विभिन्न पाठ्यक्रमों की व्यवस्था होगी ताकि विद्यार्थी विशेष अध्ययन के लिए कोई तीन विषय चुन सकें, परंतु यह चुनाव निम्न सेकेण्डरी अवस्था में किए गए कार्य पर ही आधारित होगा।

4. विषयों का अध्ययन–प्रत्येक विद्यार्थी को निम्नलिखित विषयों का अध्ययन करना चाहिए–

(i) **कोई दो भाषाएँ**–जिनमें कोई आधुनिक भाषा, कोई आधुनिक विदेशी भाषा तथा कोई शास्त्रीय भाषा शामिल हो।

(ii) **निम्नलिखित विषयों में से कोई तीन विषय**– (1) एक अतिरिक्त भाषा, (2) इतिहास, (3) भूगोल, (4) अर्थशास्त्र, (5) तर्कशास्त्र, (6) मनोविज्ञान, (7) समाजशास्त्र, (8) कला, (9) भौतिकी, (10) रसायन विज्ञान, (11) गणित, (12) जीव विज्ञान, (13) भूगर्भ शास्त्र एवं (14) गृह विज्ञान।

(iii) नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

(iv) शारीरिक शिक्षा।

(v) आर्ट अथवा क्राफ्ट।

(vi) कार्य अनुभव तथा समाज सेवा।

5. विशेष व्यावसायिक संस्थाएँ– इस विभिन्नीकरण का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को स्कूल के अंतिम दो वर्षों में विशेष साहित्यिक रुचियों के विकास पर अवसर देना है। क्योंकि तकनीकी, वाणिज्य, कृषि, ललित कला और गृह विज्ञान से संबंधित पाठ्यक्रम की शिक्षा विशेष व्यावसायिक संस्थाओं में दी जायेगी। इसलिए ऐच्छिक विषयों के वर्तमान 7 वर्गों को कला और विज्ञान के हित में कम कर देना चाहिए।

6. विषयों का चुनाव–विज्ञान में विशेष रुचि लेने वाला विद्यार्थी सामान्यतः भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और गणित या भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और जीव विज्ञान आदि वैज्ञानिक विषय लेता है। उसे भौतिक विज्ञान और गणित के साथ मनोविज्ञान और तर्क शास्त्र जैसे विषय लेने को यदि वह चाहता है तो, वंचित नहीं करना चाहिए।

प्रश्न 6. माध्यमिक शिक्षा की संरचना स्पष्ट कीजिए।

***अथवा,* माध्यमिक शिक्षा की संरचना का महत्व स्पष्ट कीजिए।**

उत्तर–किसी भी शिक्षा प्रणाली का स्तर शिक्षा सूची स्तम्भ, विभिन्न स्तरों में विभाजन, विभिन्न स्तरों की अवधि और उपलब्ध सुविधाओं के उपयोग पर निर्भर है। विभिन्न स्तरों के विभाजन और अवधि को शिक्षा संरचना कहते हैं।

भारत में प्राथमिक शिक्षा से लेकर माध्यमिक शिक्षा तक की संरचना का प्रारूप निम्नलिखित है–

(i) पूर्व प्राथमिक (3 से 5 वर्ष तक)

(ii) प्राथमिक विद्यालय कक्षा 1-5 तक (6 से 10 वर्ष तक)

(iii) मिडिल विद्यालय कक्षा 6-8 तक (11 से 14 वर्ष तक)

(iv) माध्यमिक विद्यालय कक्षा 9-10 तक (14 से 16 वर्ष तक)

(v) उच्च माध्यमिक विद्यालय कक्षा 11-12 तक (16 से 18 वर्ष तक)।

1. उच्च प्राथमिक/मिडिल स्कूल–उच्च प्राथमिक/मिडिल स्कूल की समयावधि तीन वर्ष है तथा छात्रों के नामांकन की आयु 10 या 11 वर्ष सामान्यतः होती है जो अधिकतम 14 वर्ष तक होती है। इसमें छात्रों को एक साथ कई विषयों का अध्ययन कराया जाता है जिससे छात्र प्रत्येक विषय के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त कर सके तथा माध्यमिक स्तर पर विषयों के चयन को लेकर कोई समस्या न उत्पन्न हो।

2. माध्यमिक शिक्षा–माध्यमिक स्तर की विद्यालयी शिक्षा को दो भागों–पूर्व माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक में विभाजित किया जाता है। पूर्व माध्यमिक स्तर पर छात्रों के प्रवेश की आयु सामान्यतः 14 से 16 वर्ष रखी गई है। इसमें छात्रों को निश्चित विषयों को उनकी रुचि एवं चुने हुए माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाती है। जिसकी अवधि दो वर्ष होती है। छात्र इसमें विज्ञान वर्ग, कला वर्ग के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करते हैं।

3. उच्च माध्यमिक शिक्षा–उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा में छात्रों का प्रवेश सामान्यतः 16 वर्ष की आयु तक हो जाता है। इसमें छात्र अपनी रुचियों के अनुसार अपना वर्ग–कला वर्ग, विज्ञान वर्ग, वाणिज्य वर्ग या फिर व्यावसायिक शिक्षा आदि प्राप्त करते हैं। इसके लिए विभिन्न बोर्ड अपने संसाधन एवं सुविधाओं के अनुसार छात्रों को विषय वर्ग या व्यावसायिक शिक्षा की सुविधा प्रदान करते हैं। परंतु बोर्ड चाहे राज्य स्तर का हो या राष्ट्रीय स्तर का उनकी पाठ्यचर्या में बहुत अधिक अंतर नहीं पाया जाता है। उच्च माध्यमिक स्तर डिग्री कक्षाओं में प्रवेश के लिए एक बड़ी कड़ी का काम करता है।

इस प्रकार, भारत में माध्यमिक स्तर पर शिक्षा की संरचना का प्रारूप अत्यधिक व्यापक है तथा प्रत्येक राज्य एवं बोर्ड छात्रों के हितों को ध्यान में रखते हुए नए–नए पाठ्यक्रमों को प्रारंभ करता है। यद्यपि उसका ढाँचा 10 + 2 + 3 का ही रहता है जैसा कि 1986 की नई शिक्षा नीति द्वारा निर्धारित किया गया था। इसका प्रमुख उद्देश्य संपूर्ण देश में शिक्षा में एकरूपता लाना है।

शिक्षा संरचना का महत्व–

1. शिक्षा संरचना में एकरूपता लाना–भारत जैसे विशाल देश में राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के अनुसार 1964-66 के बाद से सभी राज्यों में समान शिक्षा पद्धति लागू की गई।

2. शैक्षिक स्तरों पर एकरूपता लाना–विविध राज्यों में शिक्षा की विविध संरचना के कारण पाठ्यक्रम में विभिन्नता हैं। परिणामस्वरूप एक ही स्तर के छात्रों के ज्ञानार्जन और बुद्धि लब्धि में अंतर होगा जिससे स्तर का पतन होना स्वाभाविक है।

3. भावात्मक एकता का विकास–भारत के विभिन्न राज्य भौगोलिक दृष्टि से काफी दूर–दूर भी है जहाँ की अपनी भाषा, संस्कृति और मान्यताएँ है। पास–पास के क्षेत्रों में एक–दूसरे का प्रभाव पड़ता है परंतु सभी में भावनात्मक एकता लाने के लिये शिक्षा ही सबसे सबल उपकरण है। केन्द्रीय कर्मचारियों के स्थानान्तरण के कारण शिक्षा में कोई व्यवधान नहीं होता बल्कि छात्र दूसरे राज्य की संस्कृति, रहन–सहन व रीति–रिवाज को अपनी भाषा के माध्यम से जानने का प्रयास करते हैं।

6. सह-शिक्षा के महत्त्व/औचित्य एवं समर्थन की प्रवृत्ति—भारत जैसे पितृसत्तात्मक देश में जहाँ पुरुषों और महिलाओं को समान अधिकार और अवसर नहीं है, स्त्रियों के लिए पृथक् विद्यालयों की व्यवस्था करना आर्थिक दृष्टि से संभव नहीं है। इस संरचना के अनुसार माध्यमिक स्तर पर 40% विद्यार्थियों को व्यावसायिक शिक्षा देने का प्रावधान है। इससे लगभग 60% विद्यार्थियों को सामान्य शिक्षा तथा शेष के लिए शिक्षा की व्यवस्था होगी और ये माध्यमिक शिक्षा में सहायक होंगे।

सह-शिक्षा के समर्थन की प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए भारत में विद्यालय माध्यमिक शिक्षा जैसे शैक्षिक ही स्तर पर सहशिक्षा लागू करने का प्रयास किया गया है।

इस प्रकार यह शिक्षा संरचना जहाँ एक ओर संपूर्ण देश में एक-सा पाठ्यक्रम लागू करने में सहायक है, वहीं इस देश की बेरोजगारी एवं बौद्धिकोन्मुखता की समस्या के समाधान की ओर बढ़ने को प्रेरित करती है। शिक्षा का आर्थिक विकास और उत्पादकता से जुड़ने पर यह विचार राष्ट्रीय स्तर पर विकास की दिशा में आगे बढ़ने में सहायक होगा।

प्रश्न 1. स्वतन्त्रता के पश्चात् शिक्षा के विकास के लिये गठित कमीशन की रिपोर्ट का संक्षेप करें।

अथवा, माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952) की सिफारिशों की विवेचना कीजिए।

(भागलपुर 2021; पीयू 22; सिंदरबाद 22)

अथवा, माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

(जबलपुर 2021; इंदौर 21)

अथवा, माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा दी गई संस्तुतियों निम्न आधार पर लिखिए—

(अ) पाठ्यक्रम (ब) शिक्षा का माध्यम

(स) पाठ्यक्रम के विषय (माध्यमिक स्तर पर) (द) परीक्षाएँ। (इंदौर 2022)

उत्तर—स्वतन्त्रता के उपरांत भारतीय शिक्षा व्यवस्था बहुत ही दयनीय थी। इस समय तक अंग्रेजों के शिक्षा संबंधी जो भी प्रयास किए गए हों उनका मूल उद्देश्य अपने व्यावसायिक तथा राजनैतिक उद्देश्यों को पाना था। भारतीय को शिक्षित करने का जो प्रयास किया गया उसके परिणाम भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में न के बराबर थे। इसलिए स्वतंत्रता के बाद सरकार ने देश की शिक्षा व्यवस्था के विकास पर बल दिया। शिक्षा में सुधार के लिए कई आयोगों एवं समितियों का गठन किया गया जिन्होंने अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

स्वतन्त्रता उपरांत शिक्षा को निम्नलिखित द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

(1) माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53)

(2) भारतीय शिक्षा आयोग (1964-1966)

(3) राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)

(4) कार्यसोपान (1992)।

माध्यमिक शिक्षा के विषय में 1882 में हंटर कमीशन ने विस्तार से विचार किया तथा अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये। 1913 में सैडलर कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा की संरचना में परिवर्तन के लिए सुझाव दिया, जिसके परिणामस्वरूप माध्यमिक शिक्षा परिषदों की स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त उसने टेक्नीकी तथा व्यावसायिक हाई स्कूल की स्थापना के सुझाव दिये। 1917 में माध्यमिक स्तर तक

बुनियादी शिक्षा योजना प्रस्तुत की। 1944 में सार्जेन्ट रिपोर्ट ने विस्तृत शिक्षा योजना प्रस्तुत की। स्वाधीनता के बाद मुदालियर कमीशन तथा कोठारी कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा पर विचार किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत जितना असंतोष जनता में उच्च शिक्षा के प्रति था उतना ही माध्यमिक शिक्षा के प्रति भी था। उच्च शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन करने तथा उन्हें दूर करने संबंधी सुझाव देने के लिए भारतीय विश्वविद्यालय आयोग का गठन किया गया। इसी प्रकार, माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन कर उसमें सुधार करने हेतु एक समिति गठित करने की आवश्यकता महसूस हुई। उस समय माध्यमिक शिक्षा एकमार्गी थी। इस शिक्षा को प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के सामने विश्वविद्यालयी शिक्षा में प्रवेश लेने तथा नौकरी करने के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं था। इस स्तर पर कोई ऐसी व्यवस्था नहीं थी जिससे विद्यार्थी अपनी रुचि तथा आवश्यकताओं का भी विकास कर सकें।

सन् 1948 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने सरकार को यह सुझाव दिया था कि माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन करने हेतु एक आयोग का गठन किया जाए जो माध्यमिक शिक्षा के विषय में अपने सुझाव दे। जनवरी 1951 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने अपने सुझाव को पुनः दोहराया।

बोर्ड ने सुझाव को मानकर सरकार ने 23 सितम्बर, 1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया। इसके अध्यक्ष मद्रास विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. लक्ष्मणस्वामी मुदालियर थे, जो विश्वविद्यालय आयोग के सदस्य भी रह चुके थे। इस आयोग के अध्यक्ष के नाम पर **माध्यमिक शिक्षा आयोग** को **मुदालियर आयोग** के नाम से भी जाना जाता है।

1. सदस्य— आयोग के अन्य सदस्यों में श्रीमती हंसा मेहता, डॉ कालू लाल, श्री के.जी. सैपदन, जॉन क्रिस्टी, डॉ. केनेथ रस्ट, श्री जे.ए. तारापुरवाला, डॉ.ए.एन. बसु, श्री एम.टी. व्यास आदि थे।

2. आयोग के संदर्भ कार्य— इस आयोग के संदर्भ कार्य इस प्रकार थे—

(1) भारत में माध्यमिक शिक्षा की वर्तमान परिस्थिति की जाँच करना।

(2) माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन तथा विकास के लिये—(i) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य, संगठन तथा पाठ्यक्रम का निर्माण।

(ii) प्राथमिक, बुनियादी तथा उच्चशिक्षा के संदर्भ में माध्यमिक शिक्षा।

(iii) विभिन्न प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों में सह–संबंध।

(iv) अन्य संबंधित समस्याओं का अध्ययन करना, जिससे देश की आवश्यकतानुसार सारे देश में माध्यमिक शिक्षा की समरूपता निश्चित हो सकें।

3. शिक्षा के उद्देश्य—माध्यमिक शिक्षा आयोग ने शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार निर्धारित किये हैं—

(i) प्रजातंत्रीय नागरिकता का विकास—इसके अंतर्गत अपने देश की सामाजिक और सांस्कृतिक सफलताओं की सराहना करना, अपने देश की दुर्बलताओं को दूर करना, अपने देश की योग्यताओं के अनुसार सेवा करने और निजी स्वार्थों और रुचियों को त्याग कर राष्ट्रीय हित के लिये कार्य करने का भाव उत्पन्न करना।

(ii) व्यावसायिक उन्नति—शिक्षा समाप्त करने तक बालकों को व्यावसायिक ज्ञान हो जाना चाहिए। ताकि माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करके छात्र अपने वास्तविक जीवन में प्रवेश कर सकें। इसके लिए छात्रों को औद्योगिक एवं व्यावसायिक विषयों की शिक्षा दी जाए जिससे छात्र सफल व्यवसायी बनकर देश का आर्थिक विकास करने में सहायक सिद्ध हो।

(iii) **व्यक्तित्व का विकास**–माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास करना होना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा की व्याख्या इस प्रकार हो जिससे छात्रों की वास्तविकता जीवन का ज्ञान' स्वास्थ्य, शिक्षा तथा नैतिक एवं चारित्रिक विकास संबंधी ज्ञान प्राप्त हो।

(iv) **नेतृत्व का प्रशिक्षण**–माध्यमिक शिक्षा आयोग ने जनतंत्र की सफलता के लिये नेतृत्व के प्रशिक्षण को भी शिक्षा के उद्देश्यों में रखा है ताकि छात्र भविष्य में सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में नेतृत्व ग्रहण करके उपयुक्त संचालन करने में सक्षम हो।

4. माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन–मुदालियर कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा एवं विश्वविद्यालय की शिक्षा के मध्य अलगाव की स्थिति को समाप्त करने के लिये माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन इस प्रकार संस्तुत किया था।

(i) **अवधि**–माध्यमिक शिक्षा की अवधि 11 से 17 वर्ष तक की आयु की है। माध्यमिक तथा प्राथमिक शिक्षा पद्धति में विरोध नहीं हो। इस अवधि में (1) मिडिल, जूनियर, सेकेण्डरी या सीनियर बेसिक स्तर की तीन वर्षीय शिक्षा, (2) उच्चतर माध्यमिक स्तर का चार वर्ष का पाठ्यक्रम सम्मिलित है।

(ii) **तीन वर्षीय डिग्री कोर्स**–आयोग ने इन्टरमीडिएट स्तर को समाप्त कर 11 वर्ष की हायर सेकेण्डरी तथा तीन वर्ष के डिग्री पाठ्यक्रम की व्यवस्था की है।

(iii) **पाठ्यक्रमों की विभिन्नतायें**–आयोग ने विभिन्न पाठ्यक्रमों का समावेश किया है, जिससे हर विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार विषयों का चुनाव कर सके। ये पाठ्यक्रम माध्यमिक स्तर के पहले वर्ष से ही आरंभ हो जाते हैं।

(iv) **आंतरिक मूल्यांकन**–आयोग में स्कूल के लेखों का मूल्यांकन में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इससे छात्रों का सही मूल्यांकन होगा और विद्यालयों में अनुशासन सुधरेगा।

(v) **टेक्निकल शिक्षा**–यद्यपि मुदालियर कमीशन ने माध्यमिक स्तर पर तकनीकी शिक्षा के विकास के लिये बहुमूल्य सुझाव दिये थे। इन्हीं सुझावों के अनुसार, बहुद्देशीय विद्यालयों की स्थापना हुई परंतु ये विद्यालय देश की आवश्यकता की पूर्ति न कर सके।

आयोग के सुझाव इस संबंध में निम्न प्रकार हैं–

(i) टेक्निकल स्कूल, बहुत अधिक संख्या में बहुद्देशीय स्कूल या उसके अंग के रूप में चलाये जाने चाहिये।

(ii) बड़े नगरों में सेन्ट्रल टेक्निकल स्कूलों की स्थापना होनी चाहिये। जिससे वे स्थानीय स्कूलों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

(iii) अप्रैंटिस प्रशिक्षण के नियम बनाये जायें।

(iv) टेक्निकल तथा टेक्नॉलाजीकल विद्यालयों की स्थापना शिक्षा शास्त्रियों की सलाह से होनी चाहिए।

(v) इण्डस्ट्रियल एजूकेशन कर लगाना चाहिये।

5. अन्य प्रकार के विद्यालय–इन विद्यालयों की स्थापना के पीछे उद्देश्य यह था कि विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु शिक्षा दी जाये। इस प्रकार के विद्यालयों के अंतर्गत ये विद्यालय खोलने की सिफारिश की गई–

(i) पब्लिक स्कूल जारी रहने चाहिए।

(ii) प्रतिभावान बालकों को राज्य तथा केन्द्र की सहायता मिलनी चाहिये।

(iii) रेसिडेन्शियल (आवासीय) स्कूलों की स्थापना होनी चाहिए।

(iv) बालकों की शिक्षा के लिये अधिक संख्या में विद्यालय होने चाहिए।

6. सहशिक्षा– मुदालियर कमीशन ने नारी तथा सहशिक्षा के विषय में कहा–लड़के–लड़कियों की शिक्षा में कोई अंतर नहीं है, फिर भी लड़कियों के लिये गृह विज्ञान के शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। इस संबंध में मुख्य सिफारिशें इस प्रकार हैं–

(i) सहशिक्षा वाले विद्यालयों को प्रमुखता दी जानी चाहिये।

(ii) जहाँ पर आवश्यकता है वहाँ लड़कियों के लिये अलग स्कूल खोले जायें।

(iii) मिश्रित अथवा सहशिक्षा वाले विद्यालयों में निश्चित शर्तें लगाई जाये।

7. भाषाओं का अध्ययन–मुदालियर कमीशन ने भाषाओं के पाँच वर्ग निर्धारित किये हैं–

(1) मातृभाषा, (2) क्षेत्रीय भाषा जबकि वह मातृभाषा न हो, (3) संघ की सरकारी भाषा के रूप में जानी जाये, (4) शास्त्रीय भाषा, (5) अंग्रेजी। इसलिये अध्ययन के संबंध में सिफारिशें ये हैं– (i) माध्यमिक स्तर पर मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा शिक्षा का अध्ययन होना चाहिये। उसमें भाषायी अल्पसंख्यकों को विशेष सुविधायें दी जानी चाहिये। (ii) मिडिल स्तर पर बालकों को दो भाषाएँ अवश्य आनी चाहिये। हिन्दी तथा अंग्रेजी जूनियर बेसिक स्तर पर लागू होना चाहिए। (iii) हाईस्कूल या हायर सेकेण्डरी स्तर पर कम–से–कम दो भाषाएँ अवश्य आनी चाहिए। जिनमें से एक मातृभाषा या क्षेत्रीय हो।

8. पाठ्यक्रम– आयोग ने दो स्तरों पर पाठ्यक्रम प्रस्तावित किया है–

मिडिल स्तर पर–(i) भाषा, (ii) सामाजिक अध्ययन, (iii) सामान्य विज्ञान, (iv) गणित, (v) कला तथा संगीत, (vi) उद्योग एवं (vii) शारीरिक शिक्षा।

हाई स्कूल तथा हायर सेकेण्डरी स्तर पर–

(क) मातृभाषा तथा क्षेत्रीय भाषा या मातृभाषा और शास्त्रीय भाषा का पूर्ण पाठ्यक्रम।

निम्नलिखित में से एक अन्य भाषा–

1. हिन्दी (अहिन्दी भाषियों के लिये),
2. आरम्भिक अंग्रेजी (जिन्होंने मिडिल में अंग्रेजी नहीं पढ़ी),
3. उच्च अंग्रेजी (अंग्रेजी जिन्होंने पहले पढ़ी),
4. आधुनिक भारतीय भाषा (हिन्दी के अतिरिक्त),
5. आधुनिक विदेशी भाषा (अंग्रेजी के अतिरिक्त),
6. शास्त्रीय भाषा।

(ख) 1. सामाजिक अध्ययन पहले दो साल तथा 2. सामान्य ज्ञान के लिये।

(ग) निम्नलिखित में से एक उद्योग– 1. कताई–बुनाई, 2. काष्ठ कला, 3. धातु का काम, 4. बागवानी, 5. सिलाई, 6. टाइपिंग, 7. कार्यशाला, 8. सिलाई, कढ़ाई, कशीदाकारी तथा 9. मॉडलिंग।

9. पाठ्य–पुस्तकें–आयोग ने पाठ्य–पुस्तकों में सुधार के लिये अपने सुझाव इस प्रकार दिये हैं–

1. हाई पॉवर टेक्स्ट–बुक कमेटी का गठन हो जिसमें हाईकोर्ट का एक जज, सेवा आयोग का सदस्य, कुलपति, हैडमास्टर, दो शिक्षाशास्त्री एवं शिक्षा संचालक हो और यह स्वतंत्र रूप से कार्य करे।

2. प्रकाशनों की बिक्री से एक कोष का निर्माण किया जाये जिससे छात्रवृत्तियाँ तथा पुस्तकीय सहायता आदि दी जाये।

3. कमेटी कतिपय स्तरों का निर्धारण करे।

4. केन्द्र सरकार पुस्तकों की तकनीक को विकसित करने के लिए आर्ट स्कूल खोले।

5. केन्द्र तथा राज्य सरकारों को ब्लॉक्स (Blocks) का संग्रह रखना चाहिये जिसे वह प्रकाशकों को उधार दे सकें।

6. किसी एक विशेष पर एक ही पाठ्य–पुस्तक नहीं लगानी चाहिए।

7. भाषाओं के अध्ययन के लिये निश्चित पाठ्य–पुस्तकें लगानी चाहिए।

8. ऐसी कोई भी पुस्तक पाठ्यक्रम में न लगाई जाये जो धार्मिक या सामाजिक भावना को ठेस पहुँचाती हो।

9. पाठ्य–पुस्तकों को जल्दी–जल्दी बदलने की नीति को हतोत्साहित करना चाहिये।

10. शिक्षण की गतिशील पद्धतियाँ–आयोग का ध्यान शिक्षण पद्धति की ओर भी रहा है। इस संदर्भ में आयोग की संस्तुतियाँ निम्न प्रकार हैं–

(1) शिक्षण विधि केवल ज्ञान देने वाली ही नहीं, अपितु, मूल्यों, मनोवृत्ति व आदत का निर्माण करने वाली होनी चाहिए।

(2) एक्टीविटी तथा प्रोजेक्ट विधियाँ अपनाई जायें। अभिव्यक्ति प्रकट करने वाला कार्य दिया जाये।

(3) सभी प्रकार के शिक्षण में स्पष्ट विचार तथा अभिव्यक्ति पर बल देना चाहिये।

(4) समूह में कार्य करने की प्रवृत्ति का विकास करना चाहिये।

(5) **प्रगतिशील शिक्षण**–पद्धतियों का प्रायोगिक एवं प्रदर्शनात्मक विद्यालयों में लागू किया जाना चाहिये।

11. अनुशासन– मुदालियर कमीशन ने अनुशासन की समस्या पर विचार करते हुए कहा है– "शिक्षा में विकास तथा पुनर्निर्माण उस समय तक लाभकारी नहीं है जब तक विद्यालयों में अनुशासन–हीनता है।"

इस आयोग ने कहा है–

(1) चरित्र निर्माण की शिक्षा विद्यालय के कार्यक्रम में न होना।

(2) अनुशासन के विकास के लिये विद्यालयी सरकार बनानी चाहिये।

(3) सामूहिक खेलों को प्रोत्साहन मिले।

(4) ऐसा अधिनियम पारित किया जाये जिससे विद्यार्थियों का उपयोग चुनावों के समय न किया जा सके।

12. धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा– धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा ऐच्छिक आधार पर ही विद्यालयों में दी जाये। यह शिक्षा केवल उसी धर्म पर आस्था रखने वालों के लिये होगी। **कमीशन** के शब्दों में– "कक्षा शिक्षण के आधार पर धार्मिक या नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिये। यह विद्यालय के प्रभाव एवं अध्यापकों के व्यवहार पर निर्भर होनी चाहिये। अत: ऐच्छिक आधार पर ही धार्मिक शिक्षा दी जानी चाहिये।"

13. सहगामी क्रियायें–पाठ्येत्तर क्रियाओं का बालक के व्यक्तित्व के विकास में अत्यंत महत्व है। इसलिये–

(1) सहगामी क्रियाओं को शिक्षण का अभिन्न अंग माना जाये।

(2) बालचर आंदोलन को राज्य सहायता दे।

(3) केन्द्र सरकार एन.सी.सी. का प्रसार करे।

(4) प्राथमिक चिकित्सा, रेडक्रॉस को सभी विद्यालयों में प्रोत्साहन दिया जाये।

14. मार्ग प्रदर्शन एवं परामर्श–मुदालियर कमीशन ने मार्ग प्रदर्शन कार्यक्रम की आवश्यकता अनुभव की है। इसलिये व्यावसायिक तथा बौद्धिक पाठ्यक्रमों का समावेश शिक्षा योजना में किया गया है। अतः इन पहलुओं पर विचार इस प्रकार हैं–

(1) माध्यमिक विद्यालयों में शैक्षिक मार्ग प्रदर्शन पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

(2) छात्रों के ज्ञान के प्रसार के लिये विभिन्न व्यावसायिक फिल्मों का प्रदर्शन।

(3) प्रशिक्षित मार्ग–प्रदर्शक अधिकारियों, कैरियर मास्टर्स की संख्या में वृद्धि होनी चाहिये।

(4) केन्द्र सरकार मार्ग प्रदर्शकों के प्रशिक्षण में योगदान दें।

15. छात्र कल्याण–आयोग ने छात्र कल्याण के अंतर्गत स्वास्थ्य एवं शरीर शिक्षा लागू करने की सिफारिश की है। ये सिफारिशें निम्न प्रकार हैं–

(1) स्कूल मेडिकल सर्विस सभी राज्यों में आरंभ हो। सभी विद्यालयों में छात्रों का स्वास्थ्य परीक्षण हो और उसकी चिकित्सा भी हो।

(2) आवासीय विद्यालयों तथा छात्रावासों में पोषक तत्व युक्त भोजन मिले।

(3) विद्यालय अपने वातावरण की सफाई रखें और छात्रों में श्रम–निष्ठा उत्पन्न करें।

(4) 40 वर्ष की आयु से कम सभी अध्यापकों को छात्रों की शारीरिक क्रियाओं में योगदान देना चाहिए। हर छात्र का लेखा रखा जाये।

16. मूल्यांकन– परीक्षा एवं मूल्यांकन ही शिक्षा का आधार है तो यह अत्युक्ति न होगी, अध्यापकों के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वे छात्रों द्वारा की गई प्रगति का पता लगायें। इसलिये आयोग ने ये सिफारिशें की हैं–

(1) बाह्य परीक्षाओं की संख्या कम की जाये। निबंधात्मक परीक्षाओं में वैयक्तिकता कम की जाये और परीक्षायें ली जायें।

(2) बालकों के भविष्य का निर्धारण करने के लिए उनके सर्वांगीण विकास का लेखा रखा जाये।

(3) अंतिम मूल्यांकन में आंतरिक मूल्यांकन व स्कूलों के लेखों पर भी ध्यान दिया जाये।

(4) अंकों के स्थान पर प्रतीक–चिन्ह पद्धति अपनायी जाये। माध्यमिक पाठ्यक्रम की समाप्ति पर केवल एक जन–परीक्षा हो।

(5) प्रमाण–पत्रों में विषय भी दिये जायें। पूरक–परीक्षा भी ली जाये।

17. प्रशिक्षण कौशल का विकास–मुदालियर कमीशन अध्यापकों के विकास के प्रति सचेत रहा है। सर्वेक्षण के मध्य उसने यह अनुभव किया–"हम इससे सहमत हो गये हैं, यदि अध्यापक की वर्तमान असंतुष्ट दशा एवं हताशा को दूर किया जाये और शिक्षा का वास्तविक निर्माण हो जाये तो इसके लिये आवश्यक है कि उनके स्तर तथा सेवा की दशा में सुधार किया जाये।"

(1) अध्यापकों के चुनाव में समरूपता हो।

(2) प्राइवेट स्कूलों में हैडमास्टर सहित अध्यापकों की नियुक्ति के लिये चयन समिति हो।

(3) प्रोबेशन पीरियड एक वर्ष का हो।

(4) हाई स्कूल को पढ़ाने वाले अध्यापक ट्रेन्ड–ग्रेजुऐट हों। हायर सेकेण्डरी के लिये इण्टरमीडिएट या यूनिवर्सिटी के अध्यापकों के समकक्ष योग्यता होनी चाहिये।

(5) त्रिलाभ (पेंशन, प्रोविडेन्ट फण्ड, इन्श्योरेन्स) योजना आरम्भ की जाये।

(6) स्कूल स्तर पर अध्यापकों के बालकों को निःशुल्क शिक्षा न दी जाये।

(7) सहकारिता के आधार पर अध्यापकों के लिये मकान बनाये जाये एवं सेमिनार, शिविर आदि में जाने के लिये उन्हें यात्रा–भत्ता भी दिया जाना चाहिये।

(8) अध्यापकों के पदों को अधिक आकर्षक बनाया जाये।

(9) दो प्रकार की प्रशिक्षण संस्थायें हों–(i) जो हाई, हायर सेकेण्डरी स्तर के समकक्ष व्यक्तियों को प्रशिक्षण दें।

(ii) जो स्नातकों को प्रशिक्षण दें। पहला कार्यक्रम दो वर्ष का और दूसरा एक वर्ष का हो।

(10) एम.एड. के प्रशिक्षण हेतु तीन वर्ष के अध्यापन अनुभव प्राप्त ट्रेन्ड ग्रेजुएट को प्रवेश मिलना चाहिये।

18. प्रशासन की समस्या– शिक्षा के उद्देश्यों की उपलब्धि उत्तम प्रशासन पर निर्भर करती है। अनेक मंत्रालयों का सहयोग भी इस कार्य हेतु आवश्यक हो जाता है। संगठन, प्रशासन, निरीक्षण, मान्यता एवं दशायें, भवन एवं साधन, काम के घण्टे तथा अवकाश, सार्वजनिक सेवा में भर्ती आदि पर इसी के अंतर्गत आयोग ने ये सिफारिशें की हैं–

(1) शिक्षा–निदेशक, शिक्षामंत्री को परामर्श देने के लिये उत्तरदायी हो। वह संयुक्त सचिव का कार्य भी करें।

(2) केन्द्र तथा प्रदेश के शिक्षा–मंत्रियों की एक समिति हो जो शिक्षा के विकास के लिये भी कार्य करें।

(3) 25 सदस्यों का एक बोर्ड हो। शिक्षा–निदेशक इनका सभापति हो। एक टीचर्स ट्रेनिंग बोर्ड भी हो।

(4) निरीक्षकों का कार्य सदस्यों का अध्ययन करना तथा सुझाव देना हो। गृहविज्ञान, कला तथा संगीत में मान्यता देने के लिये विशेष पैनल की नियुक्ति होनी चाहिये।

(5) निरीक्षकों की योग्यता ऊँची होनी चाहिये। 10 वर्ष के अनुभव प्राप्त अध्यापक हैडमास्टर, ट्रेनिंग कॉलेज में अध्यापक निरीक्षक पद पर नियुक्त होने चाहिये।

(6) नये विद्यालयों को मान्यता तभी दी जाये, जब वह सभी दशायें पूरी करते हो।

(7) विद्यालय की प्रबंध समिति में अध्यापकों के प्रतिनिधि एवं हैडमास्टर भी सदस्य हों। प्रबंध समिति का कोई भी सदस्य विद्यालय के काम में हस्तक्षेप न करे। हर समिति को निश्चित नियम बना लेने चाहिये। यह शिक्षा विभाग की नीति को अपनाये तथा अपने कार्य की रिपोर्ट दे।

(8) ग्रामों में विद्यालय की स्थापना हो। इन्हें भवन निर्माण की सहायता मिले। भविष्य में खुलने वाले विद्यालयों में विभिन्न पाठ्यक्रमों का ध्यान रखा जाये।

(9) विद्यालयों का कार्य इस प्रकार होना चाहिये जिससे समुदाय को परेशानी न हो। 200 दिन का कार्य–वर्ष हो। दो माह का ग्रीष्मावकाश तथा 10 एवं 15 दिन के अल्प–अवकाश वर्ष में दो बार हो।

(10) सरकारी क्षेत्रों में 16 से 18, 19 से 21, 22 से 24 वर्ष की आयु के व्यक्ति के लिये जायें 50% चुनाव सीधे हो।

19. वित्त की व्यवस्था–माध्यमिक आयोग ने शिक्षा के विकास के लिये आवश्यक धन की व्यवस्था के लिये सिफारिश की है। ये सिफारिशें इस प्रकार हैं–

(1) राज्य तथा केन्द्र के सहयोग से कार्य चले। व्यावसायिक शिक्षा के विकास के लिये बोर्ड ऑफ वोकेशनल एजूकेशन का निर्माण हो जिसमें संबंधित मंत्रालयों के प्रतिनिधि हों।

(2) इन्डस्ट्रीयल एजूकेशन कर (Cess) लगाया जाये।

(3) रेलवे, यातायात, डाक–तार पर कर लगाया जाये। शिक्षा में दिया गया दान इन्कम टैक्स से मुक्त हो, धार्मिक संस्थाओं तथा ट्रस्ट का पैसा शिक्षा संस्थाओं में लगाया जाये।

(4) शिक्षा संस्थाओं की संपत्ति तथा खेल के मैदानों पर संपत्ति कर नहीं लगाना चाहिये।

(5) प्रदेश तथा राज्य सरकारें विद्यालयों को भवन तथा खेल के लिये भूमि दें।

(6) केन्द्र सरकार माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन की कुछ जिम्मेदारी ले। माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिशों का उस समय स्वागत हुआ था। आज परिस्थिति बदल गई है और उसके अनुसार नया आयोग गठित हुआ है। उसने भी अपनी सिफारिशें दी हैं। जिनसे शिक्षा जगत में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। समाज में बदलाव आया है।

प्रश्न 8. शिक्षा के लिए संवैधानिक प्रावधान स्पष्ट कीजिए। (रीवा 2022; उज्जैन 21)

***अथवा,* भारतीय संविधान में शिक्षा के लिये कौन–कौन से प्रावधान है ? बताइये। (छतरपुर 2021)**

उत्तर–बहुत समय पहले अर्थात् प्राचीनकाल में कुछ देशों में रहने वाले अल्पसंख्यक लोगों को बहुसंख्यक लोगों की भाषा व लिपि को मजबूरी में अपनाना पड़ा। उनके साथ सही तरीके से व्यवहार भी नहीं किया गया तथा बहुसंख्यक के अत्याचार से बचने के लिए उन्हें धर्म भी परिवर्तित करना पड़ा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सबसे महत्वपूर्ण कार्य हमारे सामने था एक ऐसे संविधान की रचना करना जिसके माध्यम से हम उन उद्देश्यों को प्राप्त कर सके जिसके लिए हमने स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी थी। यह एक कठिन कार्य था।

भारत में लोकतंत्र के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति जनता को सजग करने के लिये शिक्षा को एक नवीन दिशा देने का निश्चय किया गया है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर जनवरी 1948 में भारत के शिक्षा मंत्री ने एक अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन का आयोजन किया।

इस अवसर पर भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री **पंडित जवाहरलाल नेहरू** ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा–"पराधीन भारत में जब कभी शिक्षा की योजना बनाने के लिये सम्मेलन होते थे तब उनमें सामान्य रूप से कुछ संशोधनों के बाद प्रचलित शिक्षा प्रणाली को स्वीकार करने की प्रकृति पाई जाती थी। किन्तु अब हमें इस प्रवृत्ति का त्याग कर देना चाहिए और शिक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन करके उसे देश की नवीन परिस्थितियों के अनुरूप ढालना चाहिए।"

पंडित नेहरू के इस भाषण से अनुप्रेरित होकर देश में शिक्षा को नई दिशा देने और उसकी बहुमुखी प्रगति के लिए जो चेष्टाएँ अब तक की गईं, उसमें स्वतंत्र भारत की शिक्षा नीति "भारत सरकार अधिनियम (1935)" के अंतर्गत शिक्षा का उत्तरदायित्व प्रांतीय सरकारों पर था, इसी प्रकार स्वतंत्र भारत में संविधान के अनुसार यह उत्तरदायित्व राज्य सरकारों का था। परंतु संविधान में संशोधन करके अब शिक्षा को समवर्ती सूची में स्थान दिया गया है जिस पर केन्द्र तथा राज्य दोनों सरकारों को कानून बनाने का अधिकार दिया गया है।

भारतीय संविधान तथा शिक्षा–भारतीय संविधान में ऐसी अनेक महत्वपूर्ण धाराएँ एवं उपबंध हैं जिनका शिक्षा से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संबंध है।

धारा (28)–राज्य द्वारा पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। अनुदान प्राप्त शिक्षा संस्था में जमीन मालिक की अनुमति से धार्मिक शिक्षा की मान्यता होगी।

धारा 29 (1)–भारत के राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासियों के किसी विभाग को अपने विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति बनाये रखने का अधिकार होगा।

धारा 29 (2)–राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता प्राप्त करने वाली शिक्षा संस्था में किसी नागरिक को धर्म, प्रजाति/जाति, भाषा या उनमें से किसी एक के आधार पर प्रवेश देने से नहीं रोका जायेगा।

धारा 30–धर्म या भाषा पर आधारित सब अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना तथा प्रशासन का अधिकार होगा।

उत्तम शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी विद्यालय के विरुद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धार्मिक या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रशासन में है।

(अ) संघ सूची– इस सूची के निम्नलिखित उपबंधों के केन्द्रीय या संघ सरकार को निम्नलिखित दायित्व प्रदान किये गये हैं–

संविधान ने समस्त विषयों को तीन सूचियों–संघ सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची में विभक्त किया। संविधान की सातवीं अनुसूची की प्रथम सूची (संघ सूची) के निम्नलिखित उपबंधों ने केन्द्रीय सरकार को कुछ शैक्षिक उत्तरदायित्व प्रदान किये हैं–

1. उपबंध 63 – इस संविधान के प्रारंभ पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएँ तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्थाएँ।

2. उपबंध 64 – भारत सरकार से पूर्णतः या अंशतः वित्त पोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित वैज्ञानिक या शिल्पिक शिक्षा संस्थाएँ।

3. उपबंध 65 – संघीय साधन तथा संस्थाएँ जो–

(क) वृत्तिक, व्यावसायिक या प्राविधिक प्रशिक्षण के लिए है। इनमें पुलिस पदाधिकारियों के प्रशिक्षण से संबंधित संस्थाएँ भी आती हैं।

(ख) विशेष अध्ययनों या अनुसंधान की उन्नति के लिए हो।

(ग) अपराध के अनुसंधान या पता चलाने में वैज्ञानिक या शिल्पिक सहायता के लिए है।

4. उपबंध 66 – उच्चतर शिक्षा या अनुसंधान की संस्थाओं में तथा वैज्ञानिक एवं शिल्पिक संस्थाओं में एक सूत्रता लाना और मानदण्डों का निर्धारण करना।

(ब) राज्य सूची–

उपबंध 11 – शिक्षा विश्वविद्यालयों सहित संघ–सूची के उपबंध 63, 64, 65 तथा 66 और समवर्ती सूची के उपबंध 25 के अतिरिक्त एक राजकीय विषय है।

(स) समवर्ती सूची–

उपबंध 25 – श्रमिकों का व्यावसायिक तथा प्रविधिक प्रशिक्षण।

मूलतः भारतीय संविधान में शिक्षा को एक राजकीय विषय माना गया है, परंतु 1976 में शिक्षा को समवर्ती सूची में स्थान प्रदान करने के लिए सफल प्रयास किया गया है। इस प्रावधान से केन्द्र सरकार भी शिक्षा पर कानून बनाने की अधिकारिणी हो गई है। अब केन्द्र एवं राज्य सरकारें दोनों शिक्षा के विषय में विधायन कर सकती हैं। यदि दोनों के द्वारा बनाये गए कानून में कोई विरोध है तो केन्द्र द्वारा बनाये गये कानून को लागू किया जायेगा। अतः शिक्षा को समवर्ती सूची में स्थान प्रदान करने से निम्न स्थिति हो गई है–

1. राज्य सरकारें शिक्षा पर अपने कानून बना सकती हैं।
2. केन्द्र सरकार की शिक्षा पर कानून बनाने की अधिकारिणी है।

3. यदि राज्य कानून तथा केन्द्रीय कानून में कोई विरोध है तो केन्द्रीय कानून लागू होगा।

उक्त स्थिति ने केन्द्र को शैक्षिक मामलों में अधिक दायित्व प्रदान कर दिया है। अब शिक्षा को अधिक धनराशि भी प्राप्त हो सकेगी। साथ ही दोनों की भागीदारी से शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता मिल सकेगी।

प्रश्न 9. माध्यमिक शिक्षा आयोग का मूल्यांकन कीजिए।

***अथवा*, माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1952-53 लिखिए।** **(ग्वालियर 2021)**

उत्तर—भारतीय शिक्षा जगत में माध्यमिक शिक्षा आयोग का स्थान महत्वपूर्ण है। इस आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के संबंध में मूल्यवान सुझाव दिए। इससे माध्यमिक शिक्षा में सुधार की शुरुआत हुई। कुछ विद्वान इस आयोग द्वारा प्रस्तुत सुझावों को विशेष उपयोगी मानते हैं जबकि कुछ विद्वान एवं शिक्षाविद् इन सुझावों को अपूर्ण मानते हैं। अतएव आयोग का मूल्यांकन करना अति आवश्यक है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के गुण—मुदालियर आयोग के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं—

1. अनुकूल उद्देश्यों का निर्माण—माध्यमिक शिक्षा आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किए उनमें छात्रों के शारीरिक, सामाजिक, नैतिक, मानसिक, चारित्रिक, व्यावसायिक तथा अच्छे नागरिक बनाने के सभी गुण विद्यमान थे।

2. शिक्षा का स्तर सुधारने संबंधी उपयुक्त सुझाव—आयोग ने शिक्षा का स्तर सुधारने के लिए प्रत्येक राज्य में प्रांतीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड तथा माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के गठन का सुझाव दिया। विद्यालयों का समय-समय पर निरीक्षण का भी सुझाव दिया। ये सभी सुझाव अत्यंत लाभदायी सिद्ध हुए।

3. पाठ्यक्रम के संबंध में उपयुक्त सुझाव—आयोग ने पाठ्यचर्या को व्यापक बना कर इसे सह-संबंध के सिद्धांत पर विकसित करने का सुझाव दिया। पाठ्यचर्या में सहचर क्रियाओं को शामिल करने का सुझाव दिया जो पाठ्यक्रम निर्माण में सहायक सिद्ध हुए।

4. रुचिकर शिक्षण विधियों का निर्माण—आयोग ने नीरस शिक्षण विधियों के स्थान पर रुचिकर शिक्षण विधियों के प्रयोग का सुझाव दिया जिससे छात्र शिक्षण में रुचि ले। इससे छात्रों में शिक्षण के प्रति रुचि का विकास हुआ।

5. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा—किसी भी देश में शिक्षा का माध्यम उस देश की मातृभाषा होनी चाहिए। आयोग ने माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को बनाने का सुझाव दिया जो एक महत्वपूर्ण कदम था।

6. शिक्षकों के संबंध में उचित सुझाव—आयोग ने अध्यापकों की योग्यता, वेतन तथा सेवा दशाओं में सुधार करने का सुझाव दिया जिससे वह समाज में सम्मान पा सके। साथ ही शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के विषय में भी ठोस सुझाव दिए जो आगे चलकर शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के लिए उपयोगी हुए।

7. अन्य उपयोगी सुझाव—आयोग ने छात्रों के अनुशासन, धार्मिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, स्त्री शिक्षा, निर्देशन व परामर्श के संबंध में भी उपयोगी सुझाव दिए।

8. उपयोगी पाठ्य-पुस्तकों के लिए सुझाव—आयोग ने पाठ्य-पुस्तकों के संबंध में जो सुझाव दिए उनसे अच्छी गुणवत्ता व उपयोगी पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण करने में सहायता मिली।

9. उपयुक्त परीक्षाएँ—आयोग ने परीक्षाओं को निबंधात्मक की जगह वस्तुनिष्ठ बनाने तथा योग्य परीक्षकों के द्वारा मूल्यांकन कराने का सुझाव दिया।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के दोष– 1. माध्यमिक शिक्षा के प्रशासन के संबंध में दिये गये सुझाव सर्वथा अपूर्ण है। व्यक्तिगत विद्यालयों की प्रबंधकारिणी समिति के सदस्यों की योग्यता के विषय में कुछ नहीं कहा गया है।

2. किसी भी राष्ट्र के उत्थान में सुशिक्षित स्त्रियों की अत्यधिक आवश्यकता होती है। आयोग ने स्त्री शिक्षा के विस्तार के संबंध में कोई भी महत्वपूर्ण सुझाव नहीं दिया है।

3. इण्टरमीडिएट कक्षा को तोड़ने का सुझाव उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है। जिस स्तर पर विश्वविद्यालयों तथा डिग्री कॉलेजों में इस कक्षा के विद्यार्थियों को शिक्षा दी जा रही है। उस स्तर पर माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा देना संभव नहीं होगा। इसके अतिरिक्त इस योजना को कार्यान्वित करने में एक बड़ी धनराशि की आवश्यकता होगी।

4. माध्यमिक स्तर पर प्रत्येक छात्र को तीन भाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक होगा– मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा, हिन्दी और अंग्रेजी। तीन भाषाओं के अतिरिक्त आंतरिक विषयों का भी अध्ययन अनिवार्य होगा। इन सबके साथ–साथ एक समूह के विषय और लेने पड़ेंगे। इस प्रकार छात्रों के लिए पाठ्यक्रम बहुत भारी हो जाता है।

5. बालकों तथा बालिकाओं के पाठ्यक्रम में भेद किया गया है।

आयोग का मूल्यांकन–माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में आयोग द्वारा प्रस्तावित सुझाव अत्यधिक उपयोगी और लाभप्रद थे। यदि उनके अनुसार हमारी माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संगठन किया जाए तो उसका रूप पूर्णत: परिवर्तित हो जाएगा और वह देश के नवयुवकों का हित करके देश का कल्याण करेगी।

प्रश्न 10. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए– **(ग्वालियर 2019; भोपाल 22)**

(1) C.B.S.E. (इंदौर 2023; छिंदवाड़ा 22), (2) I.C.S.E. (ग्वालियर 2022), (3) K.S.E.E.B. (ग्वालियर 2022), (4) परीक्षा प्रणाली (Examination system).

***अथवा*, माध्यमिक शिक्षा की निम्नलिखित धारणाओं को विस्तार से समझाइए।**

***अथवा*, K.S.E.E.B. पर टिप्पणी लिखिए।** **(छतरपुर 2021)**

***अथवा*, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।** **(भोपाल 2021)**

***अथवा*, माध्यमिक स्तर की वर्तमान परीक्षा प्रणाली के गुण एवं दोषों का वर्णन कीजिए।** **(इंदौर 2022)**

***अथवा*, C.B.S.E. एवं I.C.S.E. का तुलनात्मक अध्ययन।** **(जबलपुर 2021, 22)**

उत्तर–(1) केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (C.B.S.E.)– भारत सरकार द्वारा माध्यमिक शिक्षा के ढाँचे में एकरूपता या अनुरूपता लाने के लिये संपूर्ण भारत में शिक्षा व्यवस्था अनवरत व सुचारू रूप से चलाने के उद्देश्य से केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा मंडल की स्थापना सन् 1929 में की गई थी। इसका मुख्यालय दिल्ली में स्थित है। यह स्वायत्तशासी निकाय है जो मानव संसाधन विकास मंत्रालय में है। वर्तमान में केन्द्रीय माध्यमिक विद्यालय, नवोदय विद्यालय व अनेक प्रायवेट स्कूल इसी बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त हैं। भारत के 24 राज्यों में CBSE बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त स्कूल संचालित हैं। आज अधिकतर स्कूल व अभिभावक इसी बोर्ड के पाठ्यक्रम के अनुसार अपने बच्चों को शिक्षा दिलवाना पसंद करते हैं क्योंकि इसका पाठ्यक्रम सरल, सुनिश्चित व नियंत्रित है जो NCERT द्वारा मान्यता प्राप्त है। 1968-69 में 15 सैनिक स्कूलों को भी इस मंडल से जोड़ा गया। केन्द्रीय विद्यालयों के क्षेत्रीय कार्यालय हैं जो अपने क्षेत्र के केन्द्रीय विद्यालयों की व्यवस्था संभालते हैं। इस समय 899 केन्द्रीय विद्यालय हैं।

CBSE बोर्ड का पाठ्यक्रम हिन्दी व अंग्रेजी दोनों में है। यही कारण है कि इसका अध्ययन सरलता से कर लेते हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य छात्रों को गुणात्मक शिक्षा प्रदान कर बहुआयामी विकास करना होता है। विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में आने वाले प्रश्न भी CBSE बोर्ड के पाठ्यक्रमानुसार ही होते हैं। इस बोर्ड की सबसे बड़ी उपयोगिता उन माता–पिता के लिए है जो सरकारी नौकरी में हैं क्योंकि इनका एक शहर से दूसरे शहर में स्थानान्तरण होता रहता है और उन्हें अपने बच्चे को दूसरे शहर में शिक्षा दिलवाने में कोई परेशानी नहीं होती है। इसी कारण CBSE बोर्ड अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत में करोड़ों छात्र इस प्रणाली से अध्ययन करते हैं। कुछ अभिभावक व छात्रों का मत है कि यह उचित शिक्षा प्रणाली है क्योंकि पाठ्यक्रम परिवर्तन एक सतत् प्रक्रिया होती है। CBSE बोर्ड द्वारा प्रत्येक वर्ष पाठ्यक्रम में कुछ नये परिवर्तन अवश्य किए जाते हैं जो कि समाज को विकास की राह दिखाते हैं। यह परिवर्तन किताबों के कोर्स तथा पाठ्यक्रम से संबंधित होते हैं।

मंडल के उद्देश्य– 1. सर्वांगीण विकास के लिये आवश्यक संसाधन।

2. समान पाठ्यक्रम समान पुस्तकें।

3. व्यवस्था में क्रमबद्धता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास।

4. नवीन विद्यालयों को आवश्यकतानुसार मान्यता प्रदान करना।

5. केन्द्रीय विद्यालय में कक्षा 8 तक बालकों तथा कक्षा 12 तक बालिकाओं को शिक्षा शुल्क में छूट।

6. आरक्षित वर्ग को निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था।

CBSE के कार्य (इंदौर 2023)– 1. केन्द्रीय विद्यालयों में कक्षा 10 + 2 की परीक्षाएँ आयोजित करना व प्रमाण पत्र जारी करना।

2. पाठ्य–सहगामी क्रियाओं को माध्यमिक स्तर पर प्रमुख स्थान प्रदान करना।

3. आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था करना।

4. वर्तमान आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम के निर्माण की व्यवस्था करना। ये पुस्तकें राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् द्वारा निर्मित की जाती है।

5. केन्द्रीय कर्मचारियों के बच्चों को स्थानान्तरण के दौरान पढ़ाई में कोई व्यवधान न हो ऐसी व्यवस्था करना और उनकी मदद करना।

अतः CBSE शिक्षा प्रणाली विश्व में आए बदलाव के अनुसार शिक्षा प्रदान करने का एक उचित जरिया है। आज संपूर्ण विश्व वैश्वीकरण से प्रभावित है। विश्व तीव्रता से विकास कर रहा है। ऐसे में परम्परागत पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा नहीं दे सकते हैं। अतः यह प्रणाली प्रतिवर्ष पाठ्यक्रम में परिवर्तन कर ज्ञान के उचित मार्ग का चयन करती है। यह (CBSE) बोर्ड प्रणाली नई नीतियों व मॉडल को शिक्षा में प्रयोग करके छात्रों में शिक्षा के प्रति गहन–रुचि जाग्रत करने में अपना योगदान देता है।

(2) भारतीय माध्यमिक शिक्षा प्रमाण पत्र (I.C.S.E.) – ICSE के लिए एक काउन्सिल की शुरुआत वर्ष 1998 में यूनिवर्सिटी ऑफ केम्ब्रिज लोकस परीक्षा प्रणाली के द्वारा की गई। इस काउन्सिल के अनुसार ही देश की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति की गई। इस काउन्सिल का रजिस्ट्रेशन एक सोसायटी के रूप में सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट XXI के रूप में वर्ष 1860 में 19 दिसम्बर को हुआ। ICSE को भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में सर्टिफिकेट प्रदान किया गया। इस काउन्सिल ने भारत में दो प्रकार की परीक्षा प्रणाली शुरू की।

I. ICSE (Indian Certificate for Secondary Education)– जो कि कक्षा 10 के लिए थी।

II. ISC (Indian School Certificate)– जो कि कक्षा 12 के लिए थी।

बोर्ड के द्वारा प्रत्येक वर्ष फाइनल परीक्षा की शुरुआत की गई जिसे ऑल इंडिया सेकेण्डरी स्कूल एग्जामिनेशन (All Indian Secondary School Examination) (AISSE) का नाम दिया गया। यह परीक्षा कक्षा 10 हेतु थी तथा ऑल इंडिया सीनियर स्कूल सर्टिफिकेट एग्जामिनेशन (All India Senior School Certificate Examination) (AISSCE) की परीक्षा की शुरुआत कक्षा 12 हेतु की गई। इस बोर्ड के द्वारा अखिल भारतीय इंजीनियरिंग प्रवेश परीक्षा (AIEEE) परीक्षा की शुरुआत इन्जीनियरिंग व आर्किटेक्ट प्रणाली हेतु भारत के लेवल पर की गई। यह बोर्ड ISC गवर्नमेंट बोर्ड ऑफ एजूकेशन के अंतर्गत 3 नंवम्बर, 1962 में दिल्ली में स्थापित हुआ। इसके अंतर्गत मुख्यत: हिन्दी व अंग्रेजी भाषा में कार्य किया जाता है।

ICSE का अधिकार ढाँचा NCERT के नियमों के अनुसार है। यह बोर्ड आजकल नया प्रचलन में आया है क्योंकि आज भी भारत में ज्यादातर स्कूलों में CBSE बोर्ड को अपनाया गया है। इसका एक मुख्य कारण भी है कि उसका पाठ्यक्रम केवल अंग्रेजी में ही है, हिन्दी में नहीं है। जबकि CBSE बोर्ड का पाठ्यक्रम हमें हिन्दी व अंग्रेजी दोनों में मिलता है। ICSE बोर्ड द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम CBSE की अपेक्षाकृत विस्तृत और कठिन है। इसमें सभी विषयों पर विस्तृत रूप से व गहराई से अध्ययन पर बल दिया जाता है। इसमें बच्चे को स्वयं सीखने के लिये प्रेरित किया जाता है। इसके लिए छात्रों को विभिन्न प्रकार के प्रोजेक्ट व प्रयोगशाला कार्य दिये जाते हैं। शिक्षक इसमें केवल माध्यम होता है।

(3) पाठ्यक्रम के संबंध में के.एस.ई.ई.बी. (K.S.E.E.B) –कर्नाटक माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (Karnataka Secondary Education Examination Board) की स्थापना 1966 में सेकेण्डरी स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट (SSLC) के निर्देशन में हुई थी। इसका मुख्यालय बैंगलोर में है। बोर्ड SSLC अन्य परीक्षाओं को आयोजित करता आया है। सन् 2012 में SSLC की परीक्षा 8·38 लाख बच्चों ने इस बोर्ड से दी है। इसमें हर साल छात्रों की संख्या में भारी वृद्धि हो रही है। जून में लगभग 1·50 लाख छात्र SSLC की परीक्षा में बैठते हैं। इस बोर्ड का मुख्य उद्देश्य परीक्षा परिणामों में सुधार लाना है। इसका पाठ्यक्रम बच्चों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाया जाता है। यह बोर्ड कर्नाटक में 10th एवं 12th की परीक्षाओं का निर्देशन करता है।

KSEEB ने अपने मूल्यांकन प्रणाली और परिणामों में सुधार हेतु नई संभागीय कार्यालयों की स्थापना की है। इस विकेन्द्रीकरण से बोर्ड छात्रों की जरूरतों को सूक्ष्मता से पूरा कर पाता है। बोर्ड फोटोयुक्त परीक्षा प्रवेश–पत्र प्रदान करता है और दोबारा परीक्षा देने वालों को भी फोटोयुक्त परीक्षा प्रवेश पत्र ही प्रदान किया जाता है।

बोर्ड मार्च में आयोजित परीक्षा में अनुत्तीर्ण छात्रों के लिये जून में ही अनुपूरक परीक्षा आयोजित करता है। इसमें उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों के लिये उसी वर्ष में जुलाई में उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेने का रास्ता स्वत: ही खुल जाता है। बोर्ड इस सुविधा को प्रदान करने वाला देश का अग्रणी बोर्ड बन गया है।

(4) परीक्षा प्रणाली–भारतीय शिक्षा प्रणाली की तरह परीक्षा प्रणाली भी वर्तमान में दोषों से परिपूर्ण मानी जाती है। शिक्षा प्रणाली में मूल्यांकन पद्धति कई दोषों से पूर्ण पाई जाती है। इन दोषों का मूल्यांकन करने के बाद शिक्षा आयोग को 1949 में माननीय राधाकृष्णन के नेतृत्व में स्थापित किया गया था। इस आयोग ने विश्वासपूर्ण तरीके से कहा था "यदि विश्वविद्यालय शिक्षा में हमें किसी एक सुधार को प्रस्तावित करना है तो वह परीक्षा से ही संभव होगा।" परीक्षा प्रणाली में सुधार करने के लिये समय–समय पर अनेक सभाएँ, आयोगों एवं समितियों की नियुक्तियाँ की जाती रही हैं। अत:

परीक्षा प्रणाली में सुधार हेतु अनेक शोधों को भी गति प्रदान कर प्रणाली को सुधारने के लिये आवश्यक कदम उठाये गये हैं।

जिस प्रकार किसी भी देश की शिक्षा पद्धति उस देश के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक धरोहर एवं मूल्यों द्वारा निर्धारित की जाती है उसी को आधारशिला मानकर परीक्षा प्रणाली निर्मित एवं संचालित की जाती है। भारतीय शिक्षा प्रणाली संरचना में परिवर्तन लाने के साथ परीक्षा प्रणाली में वास्तविक परिवर्तन पूर्णतः नहीं ला पायी। वर्तमान परीक्षा प्रणाली सामाजिक परिवर्तन के साथ–साथ समस्यागत प्रणाली बनकर समाज में खड़ी हो गई। अगर शिक्षा प्रणाली का मूल्यांकन करते हैं तो शिक्षा प्रणाली और परीक्षा प्रणाली दोनों ही समाज को संतुलित वातावरण नहीं दे पाई।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षा को साधन एवं साध्य दोनों बना दिया गया है जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा, परीक्षा प्रणाली के ही इर्द–गिर्द संचालित होती है। छात्रों का उद्देश्य भी पाठ्यक्रम को समझना न रहकर सिर्फ पढ़कर परीक्षा में उत्तीर्ण होना रह गया है।

परीक्षा प्रणाली के मूल्यांकन में भी कई दोष पाये जाते हैं। विभिन्न विषय विद्यार्थी को पढ़ाकर फिर पाठ्यक्रम के कुल भाग का मूल्यांकन करना ही शिक्षा का उद्देश्य रह गया है। वास्तविक रूप में जो परीक्षा या शिक्षा का उद्देश्य है वह आज विलुप्त होता जा रहा है। परीक्षा में वास्तविक सुधार तभी संभव होगा जब शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य को प्रक्रियात्मक रूप से शिक्षा प्रणाली में स्थापित किया जाये। अर्थात् शिक्षा का मूल उद्देश्य मात्र परीक्षा में उत्तीर्ण होना ही नहीं है, वरन् वास्तविक रूप से ज्ञानार्जन होना चाहिए। जिसके हेतु परीक्षा मात्र एक साधन है, साध्य नहीं। छात्रों को शैक्षिक ज्ञान के साथ व्यावहारिक ज्ञान का अवसर प्रदान कर शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। परीक्षा प्रणाली ही सिर्फ शैक्षिक ज्ञान के मूल्यांकन का आधार नहीं होना चाहिए।

वर्षभर कक्षागत कार्यों को ध्यान में रखते हुए छात्रों के व्यवहार व रुचियों के अनुरूप छात्रों की हिस्सेदारी को ध्यान में रखते हुए मूल्यांकन या परिणाम घोषित होना चाहिये जिससे रट्टा लगाने की प्रकृति पर अंकुश लगाया जा सके और छात्रों की सही योग्यता व क्षमता के अनुरूप उपलब्धि का परिणाम दिया जा सके।

प्राचीनकाल में परीक्षा प्रणाली मौखिक हुआ करती थी। मौखिक परीक्षा प्रणाली की विश्वसनीयता, वैधता एवं उपयोगिता की चुनौती के परिणामस्वरूप अठारहवीं शताब्दी के मध्य से ही लिखित परीक्षा आरंभ हुई, परंतु वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रणाली का प्रादुर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही हुआ। अतः निबंधात्मक परीक्षा प्रणाली की विश्वसनीयता और वैधता के परिणामस्वरूप परीक्षा प्रणाली में दोष उत्पन्न हुए।

वर्तमान परीक्षा प्रणाली में न तो मौखिक परीक्षा का पूर्ण रूप से बहिष्कार हुआ और न ही निबंधात्मक परीक्षा प्रणाली का। परीक्षा में सुधार करने के कारण कुछ स्तर पर पूर्णतया मौखिक प्रणाली को रखा गया और कहीं संपूर्ण परीक्षा प्रणाली में मौखिक एवं निबंधात्मक परीक्षा के अतिरिक्त लघु प्रश्न एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्नों को परीक्षा प्रणाली में स्थान दिया गया।

शैक्षिक विषय के अध्ययन एवं अध्यापन कार्य से परीक्षा प्रणाली का प्रत्यक्ष संबंध होता है परंतु यदि हम शैक्षिक अध्ययन एवं अध्यापन प्रणाली का मूल्यांकन करें तो निष्कर्ष यही रहेगा कि वर्तमान में प्रचलित शिक्षा प्रणाली अनेक कमियों से परिपूर्ण है क्योंकि सही एवं वास्तविक परीक्षा प्रणाली वही होगी जो छात्रों के शैक्षिक ज्ञान की सही जानकारी देने में समर्थ हो। वर्तमान शिक्षा प्रणाली भी विद्यार्थी के शैक्षिक ज्ञान का सही मूल्यांकन करने में असमर्थ है। अतएव, इस दृष्टि से सही शिक्षा प्रणाली वही होगी जो शैक्षिक प्रणाली की वैधता, विश्वसनीयता और उपयोगिता से परिपूर्ण हो, परंतु हम देखते हैं

कि विषय–वस्तु में ही विभिन्नता पाई जाती है जिसके कारण किसी भी विशिष्ट प्रकार की परीक्षा प्रणाली के माध्यम से विषय–वस्तु में निहित उपलब्धि की जाँच निबंधात्मक परीक्षा प्रणाली से ही की जा सकती है, जिसमें छात्रों के शैक्षिक ज्ञान के साथ उनके विचार भी जानने को मिलते हैं। इसके साथ ही संप्रेषण कौशल मौखिक परीक्षा से ही पता चलता है, इसलिये शैक्षिक विषय–वस्तु के विभिन्न आयामों के वास्तविक मूल्यांकन एवं परीक्षण हेतु परीक्षा प्रणाली के विभिन्न प्रकार के प्रश्नों को शामिल करना आवश्यक है। इसलिये जरूरत है कि परीक्षा प्रणाली विश्वसनीय और वैध हो। समाज का परीक्षा प्रणाली में विश्वास स्थापित हो तथा परीक्षा द्वारा उन्हीं विषय वस्तुओं का मूल्यांकन हो, जिनके मूल्यांकन हेतु ही उन परीक्षाओं को संचालित किया गया है।

प्रश्न 11. भारतीय शिक्षा आयोग, 1964-66 पर एक विस्तृत लेख लिखिए।

***अथवा,* कोठारी आयोग कमीशन की विशेषताओं एवं कार्यों के क्षेत्र का उल्लेख कीजिए।** **(जबलपुर 2021)**

***अथवा,* कोठारी आयोग, 1964-66 के शिक्षा के उद्देश्य लिखिए।** **(इंदौर 2023)**

***अथवा,* शिक्षा आयोग, 1964-66 पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।** **(भोपाल 2022)**

***अथवा,* कोठारी आयोग का प्रतिवेदन भारतीय शिक्षा का आधार है ? इस कथन की समीक्षा कीजिए।** **(छतरपुर 2022)**

***अथवा,* कोठारी आयोग के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य बताइए तथा कोठारी आयोग के पाठ्यक्रम के क्षेत्र में सुझाव दीजिए।** **(ग्वालियर 2022)**

उत्तर–स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् गठित "विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग" तथा "माध्यमिक शिक्षा आयोग" ने उच्च शिक्षा तथा माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन करके उनमें सुधार तथा शिक्षण की अनेक समस्याओं को पुनर्गठन हेतु अनेक सुधारवादी सुझाव दिये। इनमें से कुछ सुझावों को सरकार ने क्रियान्वित किये जाने का आदेश तो दे दिया, परंतु इन सबसे उन्हें वह हासिल नहीं हो सका जो वह प्राप्त करना चाहते थे।

इसीलिए भारत सरकार ने संपूर्ण भारत में एक समान शिक्षा नीति तथा शिक्षा के विषय में सोचने–समझने के उद्देश्य से एक नये शिक्षा आयोग गठित करने का आदेश दिया।

इस विचार के बाद भारत सरकार ने 14 जुलाई, 1964 को 'भारतीय शिक्षा आयोग' का गठन किया। इस आयोग के अध्यक्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष **प्रो.डी.एस. कोठारी थे**। इसीलिए इस आयोग को **"कोठारी आयोग"** भी कहा जाता है।

आयोग के अन्य सदस्यों में श्री पी.एन. कृपाल, श्री एच.एल. एलविन, प्रो. सतदोशी इहारा, श्री आर.ए. गोपालस्वामी, डॉ. वी.एस. झा, डॉ. बी.पी. पाल, डॉ. टी. सेन, प्रो. एस.ए. सूमोवस्की, श्री एम. जॉन थॉमस, श्री जे.पी. नायक, श्री जे.एफ. मैक्डूगल आदि थे।

भारतीय शिक्षा आयोग के उद्देश्य एवं कार्य क्षेत्र–आयोग के कार्यक्षेत्र के विषय में सरकार ने स्पष्ट किया कि आयोग शिक्षा के सभी स्तरों–प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षा का अध्ययन करके उनके विकास की संभावनाओं पर अपने सुझाव दे। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए आयोग को पूरे देश की तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था का सर्वेक्षण कर उसमें सुधार हेतु सुझाव देने थे।

कार्य क्षेत्र–आयोग का कार्यक्षेत्र इस प्रकार है–

(1) प्रजातन्त्रात्मक नागरिकता का विकास–बालक–बालिकाओं में धर्मनिरपेक्ष प्रजातंत्रीय दृष्टिकोण विकसित करने के लिए हमारा मुख्य कार्य उनका चारित्रिक विकास है। चरित्र के निर्माण से ही वे प्रजातांत्रिक समाज की व्यवस्था में रचनात्मक योगदान दे सकेंगे।

(i) स्पष्ट विचार–स्पष्ट विचार में शक्ति का विकास करना और नये विचारों का आदर करना प्रजातन्त्रात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा देना है। इससे नागरिकों में पर्याप्त समझ एवं बौद्धिक स्थिरता का प्रादुर्भाव होता है।

(ii) वैज्ञानिक दृष्टिकोण–विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास किया जाना चाहिए, ताकि निष्पक्ष भाव से प्रमाणित आँकड़ों के द्वारा वे निष्कर्ष निकाल सकें। विज्ञान–शिक्षा स्कूल की शिक्षा का अभिन्न अंग होना चाहिए। अत: विश्वविद्यालय स्तर पर हम पाठ्यक्रम में विज्ञान–शिक्षा, शिक्षण का अंग बन जाये।

(iii) निष्पक्ष मन –उन्हें पुराने रीति–रिवाजों, परम्पराओं और अन्धविश्वासों की सीमा में अपने आपको नहीं बाँधना चाहिए, बल्कि विशाल मन से नये विचारों को ग्रहण करना चाहिए।

(iv) भाषण और लेखन में स्पष्टता–विचारों में स्पष्टता के साथ–साथ स्वतंत्र अभिव्यक्ति, प्रेरणा और शान्तिपूर्ण विचार–विनिमय के लिए भाषण और लेखन में स्पष्टता भी आवश्यक है।

(v) जीवन के लिए शिक्षा–व्यक्ति के लिए सर्वतोन्मुखी विकास के लिए शिक्षा को उसकी मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, भावनात्मक और व्यावहारिक आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना चाहिए।

(vi) सहनशक्ति का विकास–सहनशक्ति का विकास करना चाहिए, जिसके बिना न स्वास्थ्य की रक्षा हो सकती है और न ही प्रजातंत्र रह सकता है। यदि हमें अपने देश में प्रजातंत्र को जीवित रखना है तो एक ऐसा देश बनाना होगा जहाँ पर असंख्य विश्वासों, जातियों और सम्प्रदायों के लोग रहते हैं।

(vii) देश–भक्ति की भावना–बालकों में सच्ची देश–भक्ति की भावना का विकास करना चाहिए। इसके लिए अपने देश की सामाजिक और सांस्कृतिक सफलताओं की प्रशंसा करनी चाहिए।

(2) व्यावसायिक कुशलता का सुधार– हमें विद्यार्थियों की उत्पादक, तकनीकी और व्यावसायिक निपुणता के विकास पर ध्यान देना चाहिए। हमें उनके हृदय में काम के प्रति आस्था का भाव जाग्रत करना होगा, ताकि वे प्रत्येक प्रकार के छोटे–बड़े कार्य को बिना किसी भेद–भाव के स्वीकार करे।

उन्हें हमेशा इस बात का अनुभव कराना चाहिए कि आत्मनिर्भरता और राष्ट्रीय प्रगति तभी संभव हो सकती है जब प्रत्येक व्यक्ति काम करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही सेकेण्डरी शिक्षा स्तर पर बालकों को विभिन्न अभिरुचियों का प्रशिक्षण देना चाहिए। अत: माध्यमिक स्तर पर शिक्षा व्यावसायिक हो जानी चाहिए और इसका पर्याप्त प्रभाव कृषि तथा तकनीकी शिक्षा पर पड़ना चाहिये।

(3) व्यक्तित्व का विकास–हमें विद्यार्थियों की रचनात्मक शक्तियों का विकास करना चाहिए ताकि वे अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं की प्रशंसा कर सके। हमें उनके अंदर उचित रुचियों का समावेश करना चाहिए, ताकि वे अवकाश के समय उनका अनुकरण कर सके।

(4) नेतृत्व के लिए शिक्षा–अधिकतर सेकेण्डरी विद्यार्थियों की शिक्षा इस स्तर पर ही समाप्त हो जाती है। इसलिए माध्यमिक शिक्षा को अपने आप में एक संपूर्ण इकाई समझना चाहिए। जिसके अपने ही कुछ विशेष उद्देश्य हो, जो कॉलेजों या तकनीकी संस्थाओं में प्रवेश नहीं ले पाते, इस योग्य होने चाहिए कि वे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कुछ कर सकें।

(5) कार्य–अनुभव (Work Education)–कार्य द्वारा अनुभव को पाठ्यक्रम के साथ जोड़ देना चाहिए। अर्थात् सिद्धांत की अपेक्षा क्रिया पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। इसके अन्तर्गत् चार बातें अवश्य होनी चाहिये–

(a) साक्षरता या भाषा ज्ञान, मानव–ज्ञान (Humanities) तथा सामाजिक विज्ञान, (b) गणित तथा प्राकृतिक विज्ञान, (c) अभ्यास (d) समाज सेवा।

(6) औद्योगिक शिक्षा का प्रयत्न–औद्योगिक शिक्षा का हर प्रयत्न ऐसा हो जो तकनीकी, विज्ञान, तथा कृषि की प्रक्रिया पर प्रभाव डालता हो, तभी उत्पादकता के सिद्धान्त की पूर्ति होगी।

कमीशन द्वारा प्रस्तावित पाँच सूत्री कार्यक्रम इस प्रकार हैं–

1. शिक्षा को उत्पादन के साथ जोड़ना।
2. शैक्षणिक कार्यक्रमों के द्वारा सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता को बल देना।
3. शिक्षा के द्वारा प्रजातंत्र को संगठित (Consolidate) करना।
4. सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना।
5. जिज्ञासा, मनोवृत्ति (Attitude) और मूल्यों (Values) के द्वारा कौशल (Skill) का विकास करते हुए समाज करते हुए समाज का आधुनिकीकरण (Modernisation) करना।

कोठारी आयोग 1964-66 के शिक्षा के उद्देश्य–

(1) शिक्षा की उत्पादकता– शिक्षा का उद्देश्य है कि उत्पादन में वृद्धि होना चाहिए। विज्ञान और कार्यानुभव की शिक्षा, शिक्षा को एक अटूट अंग मानकर अपना लेना चाहिए और माध्यमिक शिक्षा को अधिक–से–अधिक व्यावहारिक रूप देना चाहिए।

(2) सामाजिक और राष्ट्रीय एकता–आयोग का विचार है–''एक शक्तिशाली एकता पूर्ण देश के निर्माण के लिये जो कि सभी प्रकार की उन्नति की पहली आवश्यक शर्त है, सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण का बड़ा महत्व है। उसमें कई बातें–आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक, शामिल हैं और उसके विभिन्न सांस्कृतिक और राजनीतिक पहलू भी शामिल हैं जो एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप में संबंधित हैं।

राष्ट्र का निर्माण उसी स्थिति में हो सकता है जब देश की व्यवस्था ठीक हो। ऐसी व्यवस्था के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम अपनाएँ जाने चाहिये–

(i) सामान्य स्कूल–जन शिक्षा की सामान्य स्कूल व्यवस्था को प्रभावपूर्ण तरीकों से 20 वर्ष के अन्दर ही राष्ट्रीय व सामाजिक एकता को प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार के विद्यालयों में धर्म, जाति, वर्ग–भेद के विचार के बिना हर बालक शिक्षा प्राप्त करेगा। किसी प्रकार का शिक्षण शुल्क नहीं लिया जायेगा। इससे अभिभावकों को राहत मिलेगी।

(ii) समाज तथा राष्ट्र सेवा–समाज तथा राष्ट्र सेवा के कार्यक्रम सामान्य रूप से हर स्कूल में होने चाहिए। ये कार्य शिक्षा के हर स्तर पर पाठ्यक्रम के अंग के रूप में हो। इनके अन्तर्गत् कुछ कार्य इस प्रकार किए जा सकते हैं–

(a) बेसिक शिक्षा के आधार पर समाज–सेवा के कार्यक्रम प्राथमिक स्तर पर चलाये जाये।

(b) माध्यमिक स्तर एवं निम्न स्तर पर 30 दिन, उच्च स्तर पर 20 दिन के लिये समाज सेवा कार्य हर विद्यार्थी के लिये संगठित किया जाना चाहिए।

(c) स्नातक स्तर या कम–से–कम 60 दिन का समाज सेवा का कार्य हर विद्यार्थी के लिये होना चाहिये।

(d) हर शिक्षण संस्था को यह प्रयत्न करना चाहिये कि वह समाज तथा समुदाय सेवा के कार्य विद्यार्थियों के लिये अपने ही क्षेत्र में आयोजित करे।

(e) श्रम तथा समाज सेवा शिविरों का आयोजन जिला स्तर पर होना चाहिये। इनमें वे विद्यार्थी भाग ले जो सेवा कार्य में काम नहीं ले सकें।

(f) एन.सी.सी. को वर्तमान स्थिति की तरह चलते ही रहना चाहिये। समाजसेवा तथा एन.सी.सी ऐच्छिक हो जाये।

(3) भाषा नीति—(i) क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्य–विज्ञान तथा तकनीकी पुस्तकों के सृजन में विश्वविद्याल; अनुदान आयोग की सहायता में गति लाई जाए।

(ii) अखिल भारतीय स्तर की संस्थाएँ अंग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम रखे। इसी मध्य हिन्दी का उचित विकास किया जा सकता है।

(iii) क्षेत्रीय भाषाओं को प्रशासन की भाषा की मान लिया जाये जिससे ऊँची नौकरियों में क्षेत्रीय भाषा वाले लाभ उठा सकें।

(iv) अंग्रेजी की शिक्षा आरम्भ से ही दी जाये। अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क के लिये अंग्रेजी का शिक्षण आवश्यक है। सभी भाषा पर विशेष ध्यान दिया जाये।

(v) विश्व की प्रमुख भाषाओं को पढ़ाने का प्रबन्ध स्कूलों, विश्वविद्यालयों एवं अलग संस्थाओं की स्थापना करके किया जाय।

(4) राष्ट्रीय चेतना की प्रगति—शिक्षा के माध्यम में हम राष्ट्रीय चेतना में निम्न प्रकार से प्रगति ला सकते हैं–

(i) साहित्य तथा भाषा, दर्शन, धर्म, भारत का इतिहास, भारत का स्थापत्य, शिल्प, चित्रकला, संगीत, नृत्य तथा नाटक आदि के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना लाई जा सकती है।

(ii) भविष्य के प्रति विश्वास उत्पन्न होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होगा तो विद्यार्थी नागरिकता के पाठ को हृदयंगम नहीं करेंगे।

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना तथा राष्ट्रीय चेतना के लक्ष्यों में कहीं भी संघर्ष नहीं है।

(5) शिक्षा और आधुनिकीकरण—आज का समाज तेजी से बदलता जा रहा है।

(i) आधुनिक समाज में ज्ञान का विकास तीव्र गति से हुआ है। इससे समाज में भारी परिवर्तन आया है। यह परिवर्तन शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन की अपेक्षा रखता है। जिज्ञासा की उत्पत्ति से रूचि, मनोवृत्ति, मूल्यों तथा कुशलता का उचित विकास होता है।

(ii) स्वयं को आधुनिक बनाने में समाज को स्वयं ही शिक्षा प्राप्त करनी होगी। शिक्षा के स्तर के साथ–साथ समाज में बुद्धिजीवी वर्ग का निर्माण भी होना चाहिये।

(6) सामाजिक, नैतिक तथा आध्याात्मिक मूल्य—आयोग ने सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के विकास की चर्चा करते हुए स्वयं कहा है–''यदि आधुनिकीकरण को एक जीवन्त शक्ति होना है,तो उसे आत्मा की शक्ति से अपनी शक्ति प्राप्त करना चाहिए।''

(i) केन्द्रीय तथा राज्य सरकार विश्वविद्यालय आयोग द्वारा प्रस्तावित सिफारिशों के शिक्षा में, सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए लागू करें।

(ii) प्राइवेट स्कूल तथा कॉलेजों को भी आयोग की सिफारिशों का पालन करना चाहिये।

(iii) स्कूलों तथा कॉलेजों में सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के विकास के लिये टाइम टेबल में विभिन्न अध्यापकों द्वारा अनेक कार्यक्रमों की व्यवस्था की जाय।

(7) शिक्षा और धर्म—भारत जैसे बहुधर्मी देश में इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि यहाँ धर्मों का सहिष्णु रूप से अध्ययन कराया जाय जिससे यहाँ के नागरिक एक–दूसरे को अच्छी तरह समझ लें। नागरिक–शास्त्र या सामान्य शिक्षा में धर्मों की चुनी हुई बातों को स्थान दिया जाय। यह प्रयत्न विश्व के आधारभूत धर्म की आधारभूत मान्यताओं और आदर्शों को समझने में सहायक सिद्ध होगा। अच्छा तो यह होगा कि इस दिशा में राष्ट्रीय स्तर पर एक पाठ्यपुस्तक का निर्माण धर्म-विशेषज्ञों में कराया जाये।

विश्वविद्यालयों में धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन विभाग में आध्यात्मिक मूल्यों के पोषण के लिये विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। छात्रों तथा अध्यापकों के लिए विशेष साहित्य तैयार कराया जाना चाहिये।

प्रश्न 12. नवीन शिक्षा नीति क्या है ? 1986 की शिक्षा नीति का उल्लेख कीजिए।
***अथवा*, नई राष्ट्रीय नीति (1986) की संस्तुतियों पर चर्चा कीजिए।**

(इंदौर 2022; छिंदवाड़ा 22; भोपाल 22; जबलपुर 22)

उत्तर–भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 पहली नीति है जिसमें नीति के साथ–साथ उसको पूरा करने की योजना भी प्रस्तुत की गई है। इसे कुल 12 भागों में बाँटा गया है–

खण्ड एक –प्रस्तावना –राष्ट्र में आर्थिक एवं तकनीकी विकास के लिए उपलब्ध संसाधनों से अधिक–से–अधिक लाभ सभी वर्गों तक पहुँचाने के लिए प्रयास किए जाने चाहिए, क्योंकि भारतीय शिक्षा एक ऐसी जगह आकर खड़ी है जहाँ पर देश की परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ है। इसके अलावा भविष्य में अनेक समस्याओं का सामना करना होगा।

खण्ड दो–शिक्षा का सार–भूमिका–शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य के अंदर शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, सांस्कृतिक, लोकतांत्रिक गुणों का विकास होता है। शिक्षा मनुष्य में स्वतंत्र सोच तथा चिंतन का विकास करती है। शिक्षा के द्वारा प्रजातंत्रीय लक्ष्य–समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व, धर्म निरपेक्षता, समाजवाद और न्याय की प्राप्ति कर सकते हैं।

खण्ड तीन –राष्ट्रीय प्रणाली–शिक्षा राष्ट्रीय महत्व का विषय है। इसलिए शिक्षा के द्वार सभी के लिए, जाति, धर्म व लिंग में भेद–भाव के बिना, समान रूप से खुले हैं। शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली से तात्पर्य एक समान शिक्षा संरचना से है। संपूर्ण देश में 10 + 2 + 3 शिक्षा संरचना को स्वीकार किया गया है। प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा में 5 वर्षीय प्राथमिक शिक्षा तथा 3 वर्षीय उच्च प्राथमिक शिक्षा, उसके बाद 2 वर्षीय हाईस्कूल की शिक्षा व्यवस्था होगी। + 2 पर इंटरमीडियट शिक्षा तथा + 3 पर स्नातक शिक्षा प्रदान की जायेगी।

प्रत्येक स्तर पर दी जाने वाली शिक्षा का न्यूनतम स्तर निर्धारित किया जायेगा। देश में संपर्क भाषा को बढ़ावा दिया जायेगा। शोध विकास विज्ञान एवं तकनीकी विषयों में देश की विभिन्न संस्थाओं के बीच संबंध स्थापित करने की व्यवस्था की जाएगी।

खण्ड चार–समानता के लिए शिक्षा–नई शिक्षा नीति में असमानताओं को दूर करके सभी के लिए शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराए जाएँगे। महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा का प्रयोग साधन के रूप में किया जायेगा। जिन कारणों से बालिकाएँ अशिक्षित रह जाती हैं सबसे पहले उन कारणों का समाधान किया जायेगा। निर्धन परिवारों के बच्चों को 14 वर्ष तक की अनिवार्य शिक्षा लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। शारीरिक रूप से विकलांग बच्चों के लिए विशेष स्कूल खोले जाएँगे एवं उनके व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जायेगी।

खण्ड पाँच–विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक पुनर्गठन–शिशुओं की देखभाल करने वाली संस्थाएँ तथा शिक्षा के केन्द्र पूरी तरह बाल–केन्द्रित होंगे। प्रारम्भिक शिक्षा में 14 वर्ष तक के सभी बच्चों का प्रवेश तथा विद्यालय में रुके रहना, शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार, शिक्षण विधियाँ, बाल केन्द्रित शारीरिक दण्ड न दिया जाना, आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था तथा "ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड" की योजना को लागू किया जायेगा। माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम में विविधता को बढ़ावा देने के लिए सरकार अपने स्तर पर प्रयास करेगी। व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का पुनः निरीक्षण नियमित रूप से किया जायेगा। उच्च शिक्षा का नियोजन व उच्च शिक्षण संस्थाओं में समन्वय स्थापित करने के लिए शिक्षा परिषदें बनाई जाएँगी। अनुसंधान करने के लिए सहायता दी जायेगी।

खण्ड छ :–तकनीकी तथा प्रबंध शिक्षा–तकनीकी तथा प्रबंध शिक्षा का पुनर्गठन करते समय वर्तमान तथा भविष्य की परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाए। ग्रामीण लोगों में तकनीकी शिक्षा की जरूरत है। अतः इस ओर सरकार को ध्यान देना चाहिए। तकनीकी तथा प्रबंध शिक्षा के कार्यक्रम, पॉलीटेक्निक विद्यालय आदि को प्रोत्साहित किया जाए।

खण्ड सात–शिक्षा व्यवस्था का कार्यान्वयन – शिक्षा व्यवस्था के कार्यान्वयन के लिए सभी अध्यापकों की जवाबदेही निश्चित की जाए। जैसे–अध्यापकों के लिए उत्तरदायित्व, छात्रों के लिए सही आचरण पर बल, शिक्षण संस्थाओं को अधिक सुविधाएँ देना।

खण्ड आठ–शिक्षा की विषय–वस्तु तथा प्रक्रिया को नया मोड़ देना–शिक्षा के पाठ्यक्रम तथा प्रक्रियाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए, पुस्तकों की गुणवत्ता सुधारने, छात्रों तक आसानी से पहुँचाने, स्वाध्ययन करने व रचनात्मक लेखन को प्रोत्साहित करने के उपाय किए जाएँगे। सूचनाओं के प्रसारण में कला एवं संस्कृति के प्रति जागरूक करने में, मूल्यों का विकास करने में, शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग किया जायेगा। कार्यानुभव को सभी स्तरों पर शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाया जायेगा। वातावरण के प्रति जागरूकता बढ़ाये जाने की आवश्यकता है। अतः इसके लिए विद्यालयों में उचित व्यवस्था करने के लिए कहा जायेगा। विज्ञान शिक्षा के द्वारा बालकों में जिज्ञासा, सृजनशीलता, वस्तुनिष्ठता आदि योग्यताएँ विकसित की जाए। शारीरिक शिक्षा, खेलकूद शिक्षा के अधिगम के अभिन्न अंग हैं। इनको भी मूल्यांकन में शामिल किया जाए।

खण्ड नौ–अध्यापक –अध्यापकों के वेतन तथा सेवा–शर्तों में सुधार किया जाए। जिससे प्रतिभाशाली तथा योग्य व्यक्ति इसकी ओर आकर्षित हों। संपूर्ण देश में एक समान वेतन तथा सेवा–शर्तों के प्रयास किया जाएँ। अध्यापक शिक्षा की उचित व्यवस्था की जाए।

खण्ड दस–शिक्षा का प्रबंध–शिक्षा की योजना एवं प्रबंध प्रणाली में परिवर्तन को प्राथमिकता दी जाएगी। दीर्घकालीन योजना बनाने, विकेन्द्रीकरण व शिक्षण संस्थाओं में स्वतंत्रता की भावना का विकास, योजना व प्रबंध में महिलाओं की भागीदारी, उद्देश्य व मानकों के संबंध में उत्तरदायित्व इस परिवर्तन में मुख्य बिन्दु होंगे।

खण्ड ग्यारह–संसाधन और समीक्षा–राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 को लागू करने तथा उसके क्रियान्वयन के लिए एक बहुत बड़ी धनराशि की आवश्यकता होगी। प्रत्येक प्रस्तावित कार्य के लिए अनुमानित धनराशि की व्यवस्था दान, उपहार, शुल्क आदि से की जाएगी।

खण्ड बारह–भविष्य–इसमें यह विश्वास किया गया कि भविष्य में हम शत्–प्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे तथा हमारे देश के उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति श्रेष्ठतम् व्यक्तियों में सम्मिलित होंगे।

प्रश्न 13. संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1992 क्या है ? यह शिक्षा नीति क्यों संशोधित शिक्षा नीति है ? वर्णन कीजिए। **(उज्जैन 2021)**

उत्तर–भारत सरकार ने सन् 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की। इस शिक्षा नीति में यह भी कहा गया है कि प्रत्येक 5 वर्ष बाद इस नीति के क्रियान्वयन और उसके परिणामों की समीक्षा की जाएगी। इसी क्रम में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा करने के लिए सरकार ने 7 मई, 1990 को श्री राममूर्ति की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसे (राममूर्ति शिक्षा समिति, 1990) के नाम से जाना जाता है।

आचार्य राममूर्ति शिक्षा समिति के प्रतिवेदन पर विचार भी नहीं शुरू हुआ था कि केन्द्र की नई सरकार ने शिक्षा नीति की समीक्षा हेतु 1992 में (जनार्दन रेड्डी समिति, 1992) का गठन कर दिया।

इन दोनों समितियों की रिपोर्टों के आधार पर सरकार ने 1992 में ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में कुछ संशोधन किए और इसे (संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986) के नाम से प्रकाशित किया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 का संशोधित प्रारूप–इसमें चार संशोधन किए गए–

1. समग्र साक्षरता अभियान पर अधिक जोर दिया जाए।

2. राष्ट्रीय साक्षरता मिशन को निर्धनता निवारण, राष्ट्रीय एकता, पर्यावरण संरक्षण, छोटा परिवार, नारी सम्मान को प्रोत्साहन, प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण और प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या से जोड़ने की बात कही गई।

3. नए साक्षरों के लिए साक्षरता के उपरांत सतत् शिक्षा के कार्यक्रम उपलब्ध कराया जाएगा।

4. व्यवसाय/स्वरोजगार केन्द्रित तथा आवश्यकता व रुचि पर आधारित व्यावसायिक व कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर जोर दिया जाएगा।

विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक पुनर्गठन–विभिन्न स्तर पर शैक्षिक पुनर्गठन के तथ्य–

1. ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड के अंतर्गत प्रत्येक प्राथमिक विद्यालय में तीन कमरों तथा तीन अध्यापकों की व्यवस्था की जाएगी।

2. भविष्य में 50% महिला अध्यापिकाओं की नियुक्ति की जाएगी।

3. उच्च प्राथमिक स्तर पर भी ब्लैक बोर्ड योजना को लागू किया जाएगा।

4. सन् 2000 तक अनिवार्य एवं निः शुल्क शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक राष्ट्रीय मिशन चलाया जाएगा।

5. मुक्त शिक्षण प्रणाली को सुदृढ़ किया जाएगा।

6. मूल्यांकन में सुधार हेतु राष्ट्रीय मूल्यांकन का निर्माण किया जाएगा।

तकनीकी तथा प्रबंध शिक्षा– संशोधन अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् को सुदृढ़ किया जाएगा।

शिक्षा की विषय–वस्तु तथा प्रक्रिया को नया मोड़ देना–1. जनसंख्या शिक्षा पर जोर दिया जाएगा।

2. परीक्षा संस्थाओं के दिशा–निर्देश के रूप में राष्ट्रीय परीक्षा सुधार प्रारूप तैयार किया जाएगा।

शिक्षा का प्रबंध–संशोधन–शिक्षा पर राष्ट्रीय आय का 6% से अधिक व्यय किया जाएगा।

प्रश्न 14. माध्यमिक शिक्षा के अंतर्गत अध्यापक की योग्यताओं पर प्रकाश डालिए एवं उनके कार्यों का उल्लेख कीजिए। **(रीवा 2022)**

***अथवा*, माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक में किन दक्षताओं का होना अनिवार्य है ? बताइए।** **(उज्जैन 2021)**

***अथवा*, माध्यमिक शिक्षक की योग्यताएँ स्पष्ट कीजिए।** **(जबलपुर 2021)**

***अथवा*, माध्यमिक विद्यालय के एक शिक्षक होने के नाते आप में किन गुणों की अपेक्षा की जा सकती है ?** **(छतरपुर 2021)**

उत्तर–एक माध्यमिक विद्यालय शिक्षक बालकों एवं समाज के बीच माध्यम का कार्य करता है। शिक्षक बालकों को शिक्षा प्रदान कर उन्हें समाज के योग्य एवं कुशल बनाता है। शिक्षक का उत्तरदायित्व यह भी होता है कि वह विद्यालय और समुदाय के मध्य संपर्क बनाए रखें। इसके साथ ही उसका एक व्यावसायिक आचार संहिता एवं रोजगार प्रारूप का होना भी आवश्यक होता है।

एक आदर्श शिक्षक के गुण–

1. सामाजिकता– विद्यालय की गणना एक सामाजिक संस्था के रूप में होती है, क्योंकि विद्यालय में समाज के भावी भाग्य निर्माता तैयार होते हैं। शिक्षक समाज का एक उपयोगी सदस्य तथा मान्य मार्गदर्शक होता है।

2. धैर्य व सहनशीलता–शिक्षक में धैर्य व सहनशीलता के गुण का होना आवश्यक है, क्योंकि कक्षा में विभिन्न मानसिक स्तर के छात्र होते हैं–कम बुद्धि, मध्यम बुद्धि और तीव्र बुद्धि। ऐसी दशा में उन सबकों साथ लेकर चलने में अत्यंत धैर्य और सहनशीलता की आवश्यकता होती है।

3. व्यावसायिक दक्षता–आदर्श व उत्तम शिक्षक में व्यावसायिक दक्षता का होना बहुत ही आवश्यक है क्योंकि व्यावसायिक रूप से दक्ष होने पर वह अपने विषय को प्रभावशाली ढंग से छात्रों तक पहुँचा सकता है।

4. अध्ययनशीलता–निरंतर अध्ययनशीलता बने रहना, शिक्षक के उत्तम व आदर्श होने के लिए आवश्यक है क्योंकि निरंतर अध्ययन करते रहने से शिक्षक को विषय की समझ गहरी व गूढ़ होती जाती है। ।

5. असाम्प्रदायिकता और जाति निरपेक्षता–वर्तमान में साम्प्रदायिकता एक बहुत व्यापक समस्या का रूप लेकर उभरी है। जातीयता का स्तर तो और भी भयानक स्थिति में है। इसलिए शिक्षक को इन सबसे ऊपर उठकर अपने छात्रों में इन अवगुणों को पनपने नहीं देना चाहिए।

6. मौलिकता–शिक्षक में अपनी बात को मौलिक ढंग से रखने व मौलिक विचार देने की क्षमता होनी चाहिए। ऐसा करने से शिक्षक सदैव नवीनता व आकर्षण का केन्द्र बना रहता है।

7. विनोदप्रियता– विनोदप्रिय शिक्षक का छात्रों व सहयोगियों के मध्य सदा स्वागत होता है। विनोदी स्वभाव होने पर शिक्षक अपने अध्ययन को रोचक व छात्रों को अभिप्रेरित करता है।

8. बाल मनोविज्ञान का ज्ञान– वर्तमान शिक्षा बालकेन्द्रित है व शिक्षक एक सहायक व पथ प्रदर्शक के रूप में होता है। अतः शिक्षक को बाल मनोविज्ञान का ज्ञान एक सफल अधिगम संचालक हेतु आवश्यक होता है।

9. आशावादी दृष्टिकोण–जो स्वयं आशावादी हो वह दूसरों में भी आशा का संचार करता है। अतः आशावादी शिक्षक रचनात्मक कार्यों को आरंभ कर सकता है।

10. नवीन तकनीकों का ज्ञान–नयी तकनीकियों का ज्ञान होने पर शिक्षक अपने शिक्षण में इन तकनीकों **जैसे**–स्मार्ट बोर्ड प्रेजेन्टेशन, एल.सी.डी. प्रोजेक्टर, इंटरनेट इत्यादि का प्रयोग कर सकता है।

11. संतुलित व्यक्तित्व–शिक्षक यदि अपने विषय का गहन जानकार है परंतु व्यक्तित्व प्रभावकारी व संतुलित नहीं है तो शिक्षक प्रभावोत्पादक शिक्षण नहीं कर सकता।

12. सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार–शिक्षक को अपने शिष्यों के प्रति प्रेम व सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। इस प्रकार के व्यवहार से वह छात्रों का विश्वास व सहयोग प्राप्त कर सकता है।

13. कुशल वक्ता–अध्यापक के कुशल वक्ता होने से वह अपने विचार छात्रों तक प्रभावशाली ढंग से पहुँचा सकता है।

14. राष्ट्र निर्माता–एक विद्वान के अनुसार, "आप मुझे थोड़े से उत्तम श्रेणी के शिक्षक दीजिए, मैं आपको एक अच्छा, शक्तिशाली व सुदृढ़ राष्ट्र दूँगा।" अतः शिक्षकों को राष्ट्र निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण योगदान होता है।

15. निष्पक्षता–शिक्षक को सभी छात्रों को समान दृष्टि से देखना चाहिए। कभी–कभी शिक्षक मेधावी छात्रों को कक्षा में अन्य छात्रों की अपेक्षा अधिक महत्व देकर अन्य बालकों में हीनभावना का विकास कर देता है। ऐसा करना शिक्षक के लिए अशोभनीय है।

16. समय पाबंद–शिक्षक अध्यापन कार्य करते हुए अपने समय पर आवश्यक रूप से नियंत्रण रखे। समय पर नियंत्रण न होने की स्थिति में शिक्षक समय के भीतर अपना पाठ समाप्त नहीं कर पाते, ऐसा होना बहुत ही दुखद व छात्रों के लिए अहितकर है।

एक आदर्श शिक्षक की योग्यता–जब हम माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक की बात करते हैं तो सबसे पहले बात आती है उनकी योग्यता की। एक माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक के लिए निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है–

1. माध्यमिक शिक्षक बनने के लिए कम से कम सर्वप्रथम स्नातक व किसी भी दो विषयों में स्नातकोत्तर की उपाधि होनी चाहिए।

2. इसके अतिरिक्त बी. एड., एम. एड., B.T.C., पी. एच. डी. का शिक्षक प्रशिक्षण सर्टिफिकेट होना चाहिए।

3. NCTE के द्वारा निर्धारित सभी योग्यताएँ व शर्तें अभ्यार्थी पूरी करें।

4. शिक्षक के पद की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए TET, CTET, RTET जैसी परीक्षाओं की शुरुआत कर दी गई है। जो B.Ed. की उपाधि धारक छात्रों के लिए शुरू की गई है। आज B.Ed हेतु जरूरी है।

प्रश्न 15. प्रगतिशील भारत के माध्यमिक विद्यालय के अध्यापक की भूमिका के महत्व को बताइये।

***अथवा,* उभरते भारत में माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक की भूमिका पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।** **(भोपाल 2021, 22; ग्वालियर 21; जबलपुर 22)**

उत्तर–आधुनिक युग में प्रतिस्पर्धा है। इसमें व्यक्ति को ज्ञान प्राप्ति के साथ–ही–साथ समाज में अपना विशिष्ट स्थान बनाने के लिए किसी–न–किसी क्षेत्र में दक्षता प्राप्त करनी होती है।

शिक्षक शिक्षण की प्रक्रिया में धूरी का कार्य करता है। शिक्षक पाठ्यचर्या की सहायता से विद्यार्थियों की सहायता करता है।

इस बात से यह स्पष्ट होता है कि विद्यालय अथवा माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा के विकास में शिक्षक की क्या भूमिका होती है ?

माध्यमिक विद्यालयी शिक्षक की भूमिका को निम्नलिखित बिन्दुओं से समझ सकते हैं–

1. अधिगम हेतु सुविधा प्रदान करना–अधिगम शिक्षक की सहायता से ही संभव होता है। शिक्षक छात्रों को अच्छा वातावरण प्रदान करता है। समस्त ज्ञान भण्डार उपलब्ध कराता है परंतु आवश्यकता होती है उसे ग्रहण करने की। इस ज्ञान को शिक्षक उपयुक्त विधि एवं कौशलों का प्रयोग कर छात्र को अधिगम कराता है।

एक माध्यमिक विद्यालय का शिक्षक शिक्षा के विकास में निम्नलिखित अधिगम सुविधाएँ प्रदान करता है–

(i) शिक्षक छात्रों को महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रदान कर विद्यार्थियों के ज्ञान में विस्तार करता है।

(ii) शिक्षक छात्रों को आत्म अध्ययन हेतु पुस्तकें, नक्शे, प्रयोगशाला सामग्री तथा अध्ययन सामग्री प्रदान करता है।

2. पाठ्यचर्या का सम्पादन करना–शिक्षक पाठ्यचर्या को छात्रों तक पहुँचाने एवं उसे पूर्ण करने का कार्य करता है। शिक्षक पाठ्यचर्या को आवश्यकतानुसार कठोरता अथवा लचीली नीति द्वारा पूर्णता प्रदान करता है। वह लचीली विधि का प्रयोग कर शिक्षा में नवीनता लाता है। वह शिक्षण पाठ्यचर्या को एक निश्चित अवधि में पूर्ण कर उन प्रकरणों को अधिक बल प्रदान करता है, जो महत्वपूर्ण होते हैं।

3. विद्यार्थियों को भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयार करना—विकास की गति वैज्ञानिक और तकनीकी परिस्थितियों के द्वारा ही संभव है। समाज के ढाँचे में परिवर्तन हो रहा है तथा दिन–प्रतिदिन नए–नए विकास हो रहे हैं जो व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित कर रहे हैं। परिवर्तन के फलस्वरूप समाज एवं व्यक्ति के सम्मुख नवीन चुनौतियाँ उभर कर आई हैं। इन चुनौतियों को शिक्षा द्वारा ही हल किया जा सकता है। इसलिए शिक्षक का एक महत्वपूर्ण दायित्व यह भी होता है कि वह छात्रों को इन चुनौतियों के लिए तैयार करें।

४. विद्यालय और समुदाय में मध्य की कड़ी—एक विद्यालय की स्थापना बालकों को शिक्षा प्रदान करने के लिए किया जाता है। बालक एक समाज तथा समुदाय से संबंधित होता है, जो शिक्षित होकर अपने समाज की सेवा करता है। शिक्षक शिक्षण के द्वारा उन्हें समुदाय की इच्छाओं एवं अपेक्षाओं के अनुसार ही बालकों को शिक्षा प्रदान करता है। इस प्रकार, शिक्षक समुदाय और विद्यालय के मध्य कार्य करके समन्वय स्थापित करता है।

5. माध्यमिक शिक्षकों की सामान्य भूमिकाएँ—माध्यमिक शिक्षक उपर्युक्त विशिष्ट भूमिकाओं के साथ कुछ सामान्य भूमिकाओं का भी निर्वहन करता है। शिक्षक बालकों के समाजीकरण, सामाजिक व्यवहार, व्यक्तिगत व्यवहार के संबंध में प्रशिक्षण प्रदान करता है। वह छात्रों में इनसे संबंधित मूल्यों, अभिवृत्तियों एवं कुशलताओं का विकास करता है।

प्रश्न 16. शैक्षिक अवसरों की समानता को स्पष्ट कीजिए। **(जबलपुर 2021)**

उत्तर—शैक्षिक अवसरों की समानता का सामान्य अर्थ है— सभी बच्चों को बिना किसी भेद–भाव के शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर और समान सुविधाएँ प्रदान करना। सामान्य शिक्षा तो सबके लिए समान हो सकती है और होती भी है परन्तु विशिष्ट शिक्षा तो बच्चों की रुचि, रुझान, योग्यता और क्षमता के आधार पर ही दी जा सकती है। कुछ विद्वान शैक्षिक अवसरों की समानता से अर्थ शिक्षा के किसी भी स्तर पर सभी बच्चों को प्रवेश की सुविधा प्रदान करने से लेते हैं। इनका तर्क है कि शिक्षा मनुष्य का मौलिक अधिकार है परन्तु अधिकार के साथ कर्त्तव्य जुड़ा होता है। समान अवसरों के पीछे समान योग्यता एवं समान क्षमता का भाव निहित है। जहाँ तक अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की बात है उसके अवसर तो सभी को सुलभ कराना आवश्यक है परन्तु उससे आगे की शिक्षा के अवसर योग्यता एवं क्षमता के आधार पर ही सुलभ कराना चाहिए।

शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ है, राज्य द्वारा देश के सभी बच्चों के लिए स्थान, जाति, धर्म अथवा लिंग आदि किसी भी आधार पर भेद किए बिना एक निश्चित स्तर तक की शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क रूप से सुलभ कराना और उनकी इस शिक्षा प्राप्त करने में आने वाली कठिनाइयों का निवारण करना। साथ ही देश के सभी बच्चों और युवकों को इससे आगे की शिक्षा उनकी रुचि, रुझान, योग्यता, क्षमता और आवश्यकतानुसार सुलभ कराना और उनकी इस शिक्षा प्राप्त करने में आने वाली कठिनाइयों का निवारण करना।

प्रश्न 17. शिक्षक का रोजगार प्रारूप। **(जबलपुर 2021, छतरपुर 21)**

उत्तर—वर्तमान युग में शिक्षकों का व्यवसायगत् या वृत्तिक विकास एक मुख्य विषय बन गया है। यह व्यवस्था शिक्षकों के प्रत्येक स्तर पर लागू है कि शिक्षक का वृत्तिकरण किया जाना चाहिए या शिक्षकों का व्यवसायगत् विकास होना चाहिए। प्रारंभिक शिक्षा से उच्च शिक्षा तक जुड़े सभी शिक्षकों से अपेक्षा है कि वे अपने कार्यों से वृत्ति भाव से जुड़े और उनमें दक्षता प्राप्त करें। यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि शिक्षक अपनी वृत्ति या व्यवसाय में प्रवेश से पूर्व एक लम्बी प्रक्रिया से गुजरते हुए विशिष्ट ज्ञान, प्रशिक्षण और कार्यानुभव की प्राप्ति करता है। तब वह समाज की नयी पीढ़ी को अज्ञान के

अंधकार से निकालकर सामाजिक आदर्शों एवं मूल्यों के प्रकाश के साँचे में ढालता है। वह व्यक्तिगत एवं सामाजिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति कर अपना दायित्व निभाता है। एक शिक्षक ज्ञान के हस्तांतरण के साथ–साथ नये ज्ञान–विज्ञान तथा कलात्मक विधि का सृजन एवं विस्तार कर कक्षा में पढ़ाता है। अध्यापन एवं मूल्यांकन सभी के नियम उसे बने बनाये मिलते हैं। वह अलग–अलग छात्रों को नहीं पढ़ाता अपितु कक्षाओं में विद्यार्थियों के साथ सामूहिक रूप में अन्तःक्रिया करता हैं। इस व्यवसाय में शिक्षक के शिक्षण की योग्यता एवं क्षमता का आकलन भी एक कठिन समस्या है।

शिक्षक पर विशिष्ट सामाजिक उत्तरदायित्व है। वह उस दायित्व को पूर्ण करने का प्रयास करता है। यद्यपि तकनीकीकरण, वैश्वीकरण एवं शिक्षा का निजीकरण इस बात का संकेत कर रहे हैं कि शिक्षण एक पूर्ण व्यवसाय बन जाये परन्तु व्यवसायीकरण की धारा के प्रवाह में शिक्षण के ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक पक्षों को दृष्टिगत रखना होगा। छात्रों का सर्वांगीण विकास ही शिक्षक का व्यवसाय है।

रोजगार प्रारूप अथवा कार्य प्रारूप का निर्माण रोजगार अथवा कार्य से संबंधित समस्त विवरणों को एक दृष्टि में अवलोकन करने के लिए होता है। इसके द्वारा यह ज्ञात होता है कि एक शिक्षक की क्या अर्हता है ? उसका कार्य, उससे संबंधित अतिरिक्त सूचनाएँ जैसे–संस्था का नाम, विभाग, पद, कार्य का प्रकार, सामान्य सूचनाएँ, अनुभव तथा वेतन आदि संक्षिप्त रूप में उल्लेखित होते हैं।

प्रश्न 18. माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की वृत्तिक नैतिकता का वर्णन कीजिए।

(इंदौर 2022; उज्जैन 22)

उत्तर–प्रत्येक विभाग, व्यवसाय एवं संस्था आदि की अपनी आचार–संहिता होती है जिसका अनुसरण करना व्यवसाय से संबंधित प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य होता है। इसके बिना कोई भी व्यवसाय या संस्था न तो पनप सकती है और न ही उत्तम रूप से विकास कर सकती है। किसी भी व्यवसाय के कार्यों को संचालित करने, नियंत्रित करने एवं संपन्न करने के लिए जिन नियम, विनियम एवं नैतिकता आदि का पालन करना होता है वह ही उस व्यवसाय की आचार–संहिता है। यह आचार–संहिता उस व्यवसाय विशेष के प्रति उसमें संलग्न व्यक्तियों की प्रतिबद्धता होती है। उस व्यवसाय से जुड़े व्यक्तियों को उस आचार–संहिता का अनुपालन करना अनिवार्य होता है। जिसका पालन एक शिक्षक को अवश्य करना चाहिए। इनका पालन करके शिक्षक स्वयं को एक आदर्श शिक्षक के रूप में प्रस्तुत करने में सफल हो सकता है।

इस आचार–नीति के माध्यम से शिक्षक अपने व्यवसाय (शिक्षण) को कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है। अध्यापकों की व्यावसायिक आचार–नीति में निम्नलिखित बातें सम्मिलित हैं–

1. व्यावसायिक प्रशिक्षण–अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह पूर्ण व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त किये हो। प्रभावशाली शिक्षण के लिए केवल विषय का ज्ञाता होना ही आवश्यक नहीं है, वरन् शिक्षण विधियों की जानकारी रखना भी आवश्यक है। अन्य व्यवसायों के समान अध्यापन भी एक प्रकार का व्यवसाय है जिसके लिए यथायोग्य प्रविधियों, कौशलों तथा प्रणालियों के ज्ञान की परम आवश्यकता है।

2. विषय का पूर्ण ज्ञाता–अध्यापक को उस विषय का ज्ञाता होना चाहिए, जिसका वह शिक्षण करता है। यदि वह अपने विषय का पूर्ण ज्ञाता नहीं है तो वह अपने छात्रों का ठीक प्रकार से ज्ञानात्मक विकास कर नहीं सकता वरन् कभी–कभी उनके सम्मुख उसे लज्जित भी होना पड़ सकता है।

3. व्यवसाय के प्रति निष्ठा—अध्यापक को अपने व्यवसाय या शिक्षण के प्रति निष्ठा और श्रद्धा की भावना रखनी चाहिए। उसका कर्त्तव्य है कि वह शिक्षण के कार्य को उदात्त व्यवसाय के रूप में स्वीकार करें तथा उसे व्यापार या मजदूरी मानकर न चले। प्रत्येक अध्यापक को अपने व्यवसाय के प्रति उत्साह और उमंग की भावना रखनी चाहिए।

4. प्रयोगात्मक दृष्टिकोण—आदर्श अध्यापक का दृष्टिकोण प्रयोगात्मक होता है। वह शिक्षण की परम्परागत विधियों से ही संतोष प्राप्त नहीं करता, वरन् स्वयं भी प्रयोग द्वारा शिक्षण की नवीन विधियों की खोज करता है।

5. पाठ्य–सहगामी क्रियाओं में रुचि—वर्तमान युग में अध्यापक से केवल यह आशा नहीं की जाती, वह केवल अध्यापन के कार्य में ही निपुणता प्राप्त करें, वरन् उससे यह आशा भी की जाती है कि वह विद्यालय में आयोजित होने वाली विभिन्न पाठ्य–सहगामी—नाटक, स्काउटिंग, रेडक्रॉस तथा वाद–विवाद आदि क्रियाओं में छात्रों का मार्गदर्शन करें, परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि उसकी स्वयं की भी रुचि इन क्रियाओं में होनी चाहिए।

6. शिक्षा के उद्देश्यों के प्रति जागरुक—आदर्श अध्यापक शिक्षा के यथार्थ उद्देश्यों के प्रति पूर्णतया जागरूक रहता है और उन्हें एक पल के लिए भी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देता। उसका उद्देश्य छात्रों को केवल पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करना मात्र नहीं होता, वरन् बालकों को शिक्षा के महानतम् लक्ष्यों की प्राप्ति में अधिक–से–अधिक सहयोग देना होता है।

अतः किसी भी व्यवसाय की प्रतिष्ठा, गौरव तथा मान–सम्मान बहुत सीमा तक इस बात पर निर्भर करता है कि उस व्यवसाय में कार्यरत् व्यक्ति व्यवसाय के उत्तरदायित्वों के प्रति कितने जागरूक तथा कर्त्तव्य पालन में निष्ठा रखने वाले हैं। शिक्षक व्यवसाय में इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। शिक्षक के उत्तरदायित्व में वर्तमान काल में बहुत वृद्धि हो गई है। उसे मनोविज्ञान का ज्ञाता भी होना चाहिए जिससे वह बालक की आवश्यकता, क्षमता, योग्यता को समझकर उसके अनुसार अर्थात् व्यक्तिगत भिन्नता के अनुसार शिक्षण कार्य करा सकें।

प्रश्न 19. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 की विस्तृत व्याख्या कीजिए। **(छतरपुर 2021)**

उत्तर—जैसे की हम जानते हैं कि 'शिक्षा' व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास के लिए बहुत आवश्यक है इसलिए ये जरूरी है कि शिक्षा की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए वक्त के साथ शिक्षा नीति में भी बदलाव किया जाता रहे। नई शिक्षा नीति में बदलाव 34 वर्ष बाद हुआ है। इससे पहले सन् 1968 और सन् 1986 के बाद ये तीसरी बार 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' में बदलाव हुआ है। नई शिक्षा नीति का मसौदा इसरो प्रमुख रह चुके **डॉ. के. कस्तूरीरंगन** की अध्यक्षता में तैयार किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को **प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी** की अध्यक्षता में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा मंजूरी मिलने पर इसे लागू कर दिया गया है। नई शिक्षा नीति का उद्देश्य भारत में स्कूल और उच्च शिक्षा प्रणालियों में परिवर्तनकारी सुधारों का मार्ग प्रशस्त करना है।

नई शिक्षा नीति, 2020 में 3 साल से 18 साल तक के बच्चों को शिक्षा का अधिकार कानून 2009 के तहत् रखा गया है। नई शिक्षा नीति, 2020 के तहत 2030 तक नई शैक्षिक प्रणाली को निश्चित किया गया है और वर्तमान में चल रही 10+2 के मॉडल के स्थान पर पाठ्यक्रम में 5+3+3+4 की शैक्षिक प्रणाली के आधार पर पाठ्यक्रम को विभाजित किया जाएगा। इस नीति के द्वारा शिक्षा में रटने के बजाए कॉन्सेप्ट समझने पर जोर दिया जाएगा। केवल ज्ञान की नहीं बल्कि उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को भी बेहतर बनाने की कोशिश रहेगी। अर्थात् हम कह सकते हैं कि पूरा ध्यान छात्रों के सर्वांगीण विकास पर होगा।

नई शिक्षा नीति के चरण– नई शिक्षा नीति को चार चरणों में विभाजित किया गया है जो निम्नानुसार हैं–

1. फाउंडेशन स्टेज–इस स्टेज के तहत् नई शिक्षा नीति के फाउंडेशन स्टेज में 3 से 8 साल तक के बच्चों को सम्मिलित किया जाएगा।

2. मिडिल स्टेज–इस स्टेज में छठवीं से आठवीं कक्षा तक के बच्चों को सम्मिलित किया जाएगा।

3. प्रीपेटरी स्टेज–इस स्टेज में 8 से 11 साल के बच्चों को सम्मिलित किया जाएगा।

4. सेकेंडरी स्टेज–इस स्टेज में आठवीं कक्षा से 12 वीं कक्षा तक के छात्रों को सम्मिलित किया जाएगा।

नई शिक्षा नीति, 2020 के लाभ– नई शिक्षा नीति, 2020 से होने वाले लाभों को निम्नानुसार दर्शाया गया है–

1. इसका सबसे पहला लाभ तो यही है, आज की शिक्षा व्यवस्था की पुरानी सभी खामियों को हटाने का प्रयास किया है। नई शिक्षा नीति के तहत् इसे उत्कृष्ट और सार्वभौमिक बनाने पर ध्यान दिया गया है।

2. नई शिक्षा नीति, 2020 में छात्रों के ज्ञान के साथ–साथ उनके स्वास्थ्य और कौशल विकास पर भी ध्यान दिया जाएगा।

3. नई शिक्षा नीति, 2020 को लागू करने के लिए केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा (GDP) जीडीपी का 6% हिस्सा व्यय किया जाएगा।

4. नई शिक्षा नीति के तहत् अब छात्रों को अपने विषय का चुनाव स्वयं करने का अधिकार होगा। छात्रों को पहले की तरह आर्ट्स, साइंस और कॉमर्स में से किसी एक को नहीं चुनना पड़ेगा। वो चाहे तो इन तीनों ही स्ट्रीम्स से विषय चुन सकते हैं।

5. इस नीति में बोर्ड परीक्षा का प्रारूप भी बदला गया है। अब से बोर्ड की परीक्षाएँ साल में एक की बजाए दो बार कराई जाने की बात कही गई है। इससे छात्रों पर पढ़ाई का बोझ खत्म होगा। साल भर की बजाए आखिरी के दो या तीन माह पढ़कर परीक्षा देने की प्रवृत्ति भी खत्म होगी।

6. नई शिक्षा नीति में अब छात्र अपनी भाषा में पढ़ पाएँगे और परीक्षा भी उसी भाषा में दे पाएँगे।

7. शैक्षिक सत्र में छात्रों को तकनीकी ज्ञान देने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। उन्हें कक्षा 6 से ही कोडिंग आदि सिखायी जाएंगी और इंटर्नशिप भी करायी जाएगी।

8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में विद्यार्थियों का बोझ कम करने और पढ़ाई में उनकी रुचि बढ़ाने के लिए 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस सॉफ्टवेयर' के माध्यम से शिक्षण प्रदान किया जाएगा, जिससे रटने की जगह उनकी समझ बढ़ाने पर ध्यान दिया जा सकेगा।

9. पाठ्यक्रम में पढ़ाई के साथ ही खेलकूद, कला इत्यादि 'एक्स्ट्रा करिकुलम एक्टिविटीज' को भी अनिवार्य किया है।

10. नई शिक्षा नीति, 2020 के अंतर्गत अब विद्यार्थी ऑफलाइन कक्षाओं के साथ–साथ ऑनलाइन भी पढ़ सकेंगे।

11. "मल्टीपल एंट्री और मल्टीपल एग्जिट" नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत् स्नातक (ग्रेजुएशन) की पढ़ाई को अब 4 और 3 साल के टाइम पीरियड में बाँटा गया है। जिसमें अब मल्टीपल एंट्री और मल्टीपल एग्जिट की सुविधा दी गई है।

शिक्षा, शिक्षार्थी और शिक्षक सभी का एक–दूसरे के साथ बहुत गहरा संबंध है, जहाँ शिक्षा विकास की एक प्रक्रिया है। सीखने वाला उस विकास का लाभार्थी है तो शिक्षक इस पूरी प्रक्रिया का

समन्वयक, निर्माता और प्रशासक है इसलिए शिक्षा की प्रक्रिया को गुणात्मक और प्रभावी बनाने के लिए इक्कीसवीं सदी की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तैयार की गई है जिसने शिक्षक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया है। यदि शिक्षा प्रक्रिया में शामिल सभी लोग पूरी ईमानदारी के साथ काम करते हैं तो चुनौतियों का हल ढूँढकर भारतीय शिक्षा प्रणाली को फिर से विश्वस्तरीय बनाया जा सकता है। इसके लिए सरकार, समाज, शिक्षक, प्रबंध समिति एवं विद्यार्थियों के प्रयासों की आवश्यकता है अर्थात् इक्कीसवीं सदी की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाई गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है, जो भारत की वर्तमान चुनौतियों, समस्याओं और भविष्य की जरूरतों की पूर्ति में सहायक होगा।

प्रश्न 20. कोठारी आयोग के उद्देश्य एवं सिफारिशों का उल्लेख कीजिए।

(जबलपुर 2021)

उत्तर–कोठारी आयोग के उद्देश्य–प्रश्न क्रमांक 11 का उत्तर देखें।

भारतीय शिक्षा आयोग 1964-66 (कोठारी आयोग) –''भारत में अभी तक जितने भी आयोगों की नियुक्ति हुई थी, उनमें से किसी ने भी शिक्षा से संबंधित सभी पक्षों की जाँच नहीं की थी। इन आयोगों का संबंध या तो विद्यालय शिक्षा से था फिर विश्वविद्यालय शिक्षा से। प्राथमिक शिक्षा का माध्यमिक शिक्षा से और माध्यमिक शिक्षा का विश्वविद्यालय शिक्षा से संबंध रहता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षा आयोग की नियुक्ति की गयी थी। भारत सरकार ने 14 जुलाई, 1964 को प्रो. डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। आयोग के उद्घाटन 2 अक्टूबर, 1964 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में किया गया। इस अवसर पर भारत के राष्ट्रपति डॉ. एस. राधाकृष्णन ने अपने उद्गार इस प्रकार प्रकट किए, "मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि आयोग शिक्षा के सब पहलुओं और प्राथमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालीय और प्राविधिक की जाँच करें तथा इस प्रकार के सुझाव दे जिनसे हमारी शिक्षा व्यवस्था की अपने सभी स्तरों पर उन्नति करने में सहायता मिले।"

इस आयोग का गठन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष प्रो. दौलतसिंह कोठारी द्वारा किया गया। प्रो. कोठारी के अलावा इसमें 14 अन्य सदस्य थे जिनमें 9 भारतीय थे तथा 5 विदेशी शिक्षा शास्त्री थे। श्री जे.पी. नायक इसके सचिव बने।

शिक्षा आयोग के सुझाव एवं सिफारिशें – शिक्षा आयोग के सुझाव एवं सिफारिशें निम्नलिखित थीं–

1. शिक्षा तथा राष्ट्रीय लक्ष्य – इसके संबंध में आयोग ने कहा है कि शिक्षा को लोगों के जीवन, आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के अनुरूप होना चाहिए जिससे उनका आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक विकास करके राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आयोग ने निम्न सुझाव दिये–

(i) शिक्षा द्वारा उत्पादन में वृद्धि की जाये। विज्ञान, कृषि में तकनीकी शिक्षा को महत्व दिया जाये।

(ii) राष्ट्र में सामाजिक व राष्ट्रीय एकता के विकास व दृढ़ीकरण के लिए विद्यालयों में विभिन्न आयोजन किये जाये।

(iii) आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता लायी जाए। शिक्षा के द्वारा सामाजिक, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा दी जाये।

2. शिक्षा संरचना–आयोग ने शिक्षा की निम्नलिखित संरचना प्रस्तावित की–

(i) 1 से 3 वर्ष तक– पूर्व विद्यालय शिक्षा।

(ii) 4 से 5 वर्ष तक– निम्न प्राथमिक शिक्षा।

(iii) 5 से 7 वर्ष तक– उच्च प्राथमिक शिक्षा।

(iv) 8 से 10 वर्ष तक– निम्न माध्यमिक शिक्षा।

(v) 11 से 13 वर्ष तक– माध्यमिक शिक्षा।

(vi) 13 से 15 वर्ष तक– उच्चतर माध्यमिक शिक्षा।

3. शिक्षा की स्थिति–इस संबंध में आयोग ने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये–

(i) शिक्षकों का न्यूनतम वेतन निर्धारित किया जाये।

(ii) प्रत्येक संस्था में शिक्षकों को कार्य सम्पादन संबंधी न्यूनतम सुविधाएँ प्रदान की जाये।

(iii) व्यक्तिगत विद्यालयों में शिक्षकों की सेवा दशायें सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की सेवा दशाओं के समान ही लागू की जाये।

(iv) शिक्षकों के लिए सरकारी गृह–निर्माण योजनाओं को प्रोत्साहन दिया जाये।

(v) शिक्षकों पर चुनावों में भाग लेने पर किसी प्रकार का प्रतिबंध न लगाया जाये।

4. शिक्षक प्रशिक्षण–अध्यापक शिक्षा के उन्नयन के आयोग में निम्नलिखित सुझाव दिए–

(i) प्रत्येक प्रशिक्षण कॉलेज में प्रसार सेवा विभाग स्थापित किये जाये।

(ii) एम.ए. तथा बी.ए. कक्षाओं में शिक्षा विषय पढ़ाया जाये।

(iii) प्रत्येक राज्य में स्टेट बोर्ड ऑफ टीचर–एजुकेशन स्थापित हो।

(iv) प्रत्येक राज्य में कुछ कम्प्रीहेन्सिव कॉलेजों की स्थापना की जाये।

(v) प्रशिक्षण कॉलेजों के पाठ्यक्रमों को सुधारा जाये।

(vi) प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों का प्रशिक्षण 2 वर्षीय तथा माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की प्रशिक्षण अवधि 1 वर्ष तथा एम.एड. के लिए प्रशिक्षण अवधि $1\frac{1}{2}$ वर्ष निश्चित कर दी जाये।

(vii) प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्राध्यापक एम.ए., एम.एड. हो।

(viii) ग्रीष्मकालीन संस्थाएँ प्रारंभ की जाये।

(ix) छात्राध्यापकों से किसी प्रकार का शुल्क न लिया जाये।

(x) प्रत्येक राज्य में अध्यापकों के प्रशिक्षण की योजनाएँ तैयार किया जाये।

(xi) पत्राचार पाठ्यक्रम से प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाये।

(xii) प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रवक्ताओं के लिए ओरियन्टेशन पाठ्यक्रम चलाये जाये।

5. छात्र संख्या तथा जन बल–आयोग ने सिफारिश की कि विश्वविद्यालयों को चाहिए कि वे उतने ही छात्रों को प्रवेश दे जितनी कि माँग है। आयोग ने कहा कि शिक्षा सुविधाएँ तथा जन बल की माँग में समन्वय तथा संबंध होना चाहिए।

6. शैक्षिक अवसरों की समानता–राष्ट्र में शिक्षा के अवसर बिना किसी वर्ग, जाति, भाषा, धर्म तथा अर्थ के भेदभाव के सबको समान रूप में प्रदान हो। इसके लिए आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिए–

(i) प्राथमिक स्तर पर शिक्षा निःशुल्क है।

(ii) अगले दस वर्षों में जरूरत मंद बालकों को निःशुल्क माध्यमिक शिक्षा दी जाये।

(iii) प्राथमिक स्तर पर पाठ्य–पुस्तकें तथा लेखन सामग्री निःशुल्क दी जाये।

(iv) माध्यमिक स्कूलों, कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में बुक–बैंक खोले जाये।

(v) पुस्तकालयों का विकास किया जाये।

(vi) माध्यमिक स्तर पर 15% प्रतिभाशाली बालकों को छात्रवृत्तियाँ दी जाये।

(vii) विश्वविद्यालय स्तर पर 25% छात्रवृत्तियाँ दी जाये।

(viii) व्यावसायिक शिक्षा के लिए 30% छात्रवृत्तियाँ हो।

(ix) ऋण छात्रवृत्तियाँ भी दी जाये।

(x) प्रत्येक 500 छात्रवृत्तियाँ विदेश जाने वाले प्रतिभाशाली छात्रों को दी जाये।

7. विद्यालय शिक्षा का विस्तार–आयोग ने सभी स्तरों की शिक्षा के विस्तार के लिए निम्नांकित सुझाव दिये–

(अ) पूर्व प्राथमिक–पूर्व प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए आयोग ने निम्नांकित सुझाव दिये–

(i) प्रत्येक राज्य के स्टेट–इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन स्थापित किये जाये।

(ब) प्राथमिक शिक्षा–(i) प्राथमिक शिक्षा को प्रभावशाली बनाया जाये।

(ii) अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था हो।

(iii) अध्ययन एवं अवरोधन रोका जाये।

(स) माध्यमिक शिक्षा–(i) माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण किया जाये।

(ii) स्त्री शिक्षा के विकास हेतु विशेष प्रयास हो।

(iii) आदिम तथा पिछड़े क्षेत्र की ओर अधिक ध्यान दिया जाये।

(iv) अवसरों की समानता की व्यवस्था की जाये।

8. विद्यालय पाठ्यक्रम–आयोग ने प्रत्येक स्तर पर पाठ्यक्रम के सुधार हेतु पृथक्–पृथक् पाठ्यक्रम निर्धारित किये। प्रत्येक स्तर पर कार्यानुभव, समाजसेवा, शाररीरिक शिक्षा, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा की व्यवस्था सामान्य शिक्षा के साथ–साथ करने की सिफारिश की।

त्रि–भाषा सूत्र को निम्नलिखित प्रकार से रखा गया–

(i) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा।

(ii) संघ की राजभाषा।

(iii) एक आधुनिक भारतीय या यूरोपियन भाषा।

आयोग ने हिन्दी, अंग्रेजी, शास्त्रीय भाषा तथा अन्य भारतीय भाषाओं के स्थान के बारे में विचार व्यक्त किये।

विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम निम्नलिखित प्रकार से रखा गया–

1. निम्न प्राथमिक– मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा, गणित, विज्ञान तथा सामाजिक अध्ययन, सृजनात्मक क्रियाएँ, कार्यानुभव, समाज सेवा तथा स्वास्थ्य सेवा।

2. उच्च प्राथमिक– दो भाषाएँ, विज्ञान, कला, सामाजिक अध्ययन कार्यानुभव, समाजसेवा, शारीरिक शिक्षा, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

3. निम्न माध्यमिक–तीन भाषाएँ, गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, कला, कार्यानुभव समाज सेवा, शारीरिक शिक्षा, नैतिक व आ ात्मिक शिक्षा।

4. उच्च माध्यमिक–दो भाषाएँ तथा निम्नलिखित में से कोई तीन विषय–एक अतिरिक्त भाषा, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान, मनोविज्ञान, कला, समाजशास्त्र, भौतिकशास्त्र तथा रसायनशास्त्र, जीव विज्ञान, गृह विज्ञान, भू–विज्ञान, कार्यानुभव समाज सेवा, शारीरिक शिक्षा, नैतिक व आध्यात्मिक शिक्षा।

9. विद्यालय प्रशासन–विद्यालय प्रशासन को सुधारने हेतु आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये–

(i) प्रशासन में मानवीय तत्व लाया जाये।

(ii) पंचवर्षीय योजना के अंत तक निम्न माध्यमिक शिक्षा निःशुल्क कर दी जाये।

(iii) कुसंचालित विद्यालयों को राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये।

(iv) प्रत्येक राज्य में कुछ कम्प्रीहेन्सिव कॉलेजों की स्थापना की जाये। प्रशासन को निरीक्षण से दूर रखा जाये।

(v) प्रत्येक राज्य में स्टेट बोर्ड ऑफ स्कूल एजूकेशन स्थापित किये जाये।

(vi) केन्द्र में मूक नेशनल बोर्ड ऑफ स्कूल एजूकेशन गणित हो।

(vii) नेबरहुड स्कूल स्थापित हो तथा स्कूल कॉम्प्लेक्स बनाए जाये।

10. शिक्षण विधियाँ, मार्गदर्शन एवं मूल्यांकन–

(i) शिक्षण विधियाँ–शिक्षण विधियाँ लचीली, गतिशील तथा आधुनिक हो। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में वाद–विवाद, सेमीनार व गोष्ठियाँ आदि का प्रयोग हो।

(ii) पाठ्य–पुस्तकें–राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्य–पुस्तकों की व्यापक योजना तैयार की जाये। पाठ्य–पुस्तकें लिखने के लिए प्रतिभाशाली लेखकों को प्रोत्साहन दिया जाये। प्रत्येक राज्य में पाठ्य–पुस्तक समिति बनायी जाये।

(iii) मार्ग–दर्शन–प्रत्येक दस माध्यमिक विद्यालयों में मार्ग–दर्शन तथा परामर्श के लिए एक परामर्शदाता नियुक्त किया जाये और सरकारें मार्ग–दर्शन से संबंधित साहित्य विद्यालयों को निःशुल्क दे।

11. उच्च शिक्षा–उच्च शिक्षा के सुधार के लिए आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं–

(i) उच्च शिक्षा एवं अनुसंधान कार्य के लिए छः वरिष्ठ विश्वविद्यालयों का विकास किया जाये जिनका व्यय यू.जी.सी. (UGC) वहन करें।

(ii) विश्वविद्यालयों तथा कॉलेजों में समन्वय स्थापित किया जाये।

(iii) उच्च शिक्षा का गुणात्मक विकास किया जाये।

(iv) यू.जी.सी. केन्द्रीय परीक्षा इकाई की स्थापना करे।

(v) शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा हो।

(vi) रूसी भाषा के शिक्षण की व्यवस्था की जाये।

(vii) उच्च शिक्षा के लिए प्रवेश नियम बनाये जाये जिनका कड़ाई से पालन हो।

(viii) नये विश्वविद्यालय की सावधानी से स्थापित किये जाये।

प्रश्न 21. कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (1917) द्वारा दिए गए सुझावों को लिखिए।

(इंदौर 2023)

उत्तर–भारत सरकार द्वारा कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग के सुझाव के अनुसार 1953 ई. में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की स्थापना की गई। संसद के अधिनियम द्वारा इसे वैधानिक संस्था (Statutory body) स्वीकार कर लिया गया। इस अधिनियम के अनुसार 'चेयरमैन' तथा 'सचिव' के अतिरिक्त 'कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग' के 9 सदस्य होंगे। इसके 9 सदस्यों में से 3 सदस्य विश्वविद्यालय के कुलपति, 4 सदस्य प्रसिद्ध भारतीय शिक्षा मर्मज्ञ एवं दो केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि होते हैं। आजकल डॉ. (मिसेज) आरमेती देसाई इसकी चेयरमैन हैं।

इस आयोग के निम्न कार्य हैं–

(1) विश्वविद्यालय शिक्षा में सुधार करने एवं शिक्षण स्तर को उच्च बनाने के लिए विश्वविद्यालयों को सलाह देना।

(2) भारतीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा के स्तर में समन्वय रखने तथा विश्वविद्यालय शिक्षा से संबंधित समस्याओं पर एक विशेषज्ञ संस्था के रूप में भारत सरकार को परामर्श देना।

(3) विश्वविद्यालयों को अपने कोष से दी जाने वाली धनराशि का वितरण करना तथा इस संबंध में अपनी नीति का निर्धारण करना।

(4) नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना एवं प्रचलित विश्वविद्यालयों के कार्य–क्षेत्र की वृद्धि के बारे में पूछे जाने पर अपना मत प्रकट करना।

(5) भारत सरकार एवं विश्वविद्यालयों द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देना तथा उनकी शंकाओं का समाधान करना।

(6) विश्वविद्यालयों की आर्थिक स्थितियों की जाँच करना और केन्द्रीय सरकार द्वारा उनको सहायता अनुदान में दी जाने वाली धनराशि के सम्बन्ध में सुझाव देना।

(7) विश्वविद्यालय शिक्षा के विस्तार एवं विकास से सम्बन्धित आवश्यक कार्यों को पूरा करना।

(8) विश्वविद्यालयों से उनकी परीक्षाओं, पाठ्यक्रमों, अनुसंधान कार्यों आदि के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त करना।

(9) विश्वविद्यालयों के लिए उपयुक्त समझी जाने वाली सूचनाओं को भारत तथा विदेशों में एकत्रित करके विश्वविद्यालयों को भेजना।

(10) विश्वविद्यालय द्वारा विविध सेवाओं के लिए प्रदान की गई उपाधियों के सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों को अपनी सलाह देना।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग आजकल उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित कार्यों को भी कर रहा है–

1. विकासात्मक परियोजनाओं का संचालन।
2. शिक्षकों के वेतनमानों में सुधार लाना।
3. विभिन्न विश्वविद्यालयों में 'अध्ययन केन्द्रों' की स्थापना करना।
4. छात्रावासों का निर्माण कार्य।
5. सेवा–निवृत्त शिक्षकों की सेवाओं का उपयोग।
6. शिक्षकों का आदान–प्रदान।
7. छात्रवृत्तियाँ एवं फैलोशिप आदि।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इस समय विज्ञान, इंजीनियरिंग एवं प्रौद्योगिकी के 62 विभागों तथा 19 उन्नत अध्ययन केन्द्रों को सहायता प्रदान कर रहा है। इसके अलावा मानव शास्त्र तथा समाज विज्ञान के 10 उन्नत अध्ययन केन्द्र तथा 25 विभागों को विशेष सहायता प्रदान कर रहा है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने प्रथम उपाधि के कोर्सों के पुननिर्माण की योजना प्रस्तावित की। इसके माध्यम से इसने इन कोर्सों को समुदाय की विकासशील आवश्यकताओं तथा पर्यावरण से संबंधित करने पर बल दिया है। साथ ही शिक्षा को कार्यक्षेत्र/व्यावहारिक अनुभव तथा उत्पादकता से संबंधित करने पर बल दिया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस योजना के तहत 9 विश्वविद्यालयों तथा 208 कॉलेजों में पुननिर्मित कोर्सों को लागू किया।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को उन्नत बनाने के लिए विश्वविद्यालय आयोग ने निम्नलिखित कार्यक्रमों को भी लागू किया है–

1. कॉलेज ह्यूमेनिटीज एण्ड सोशल साइंस इम्प्रूवमेंट प्रोग्राम (College Humanities and Social Science Improvement Programme - CHSSIP)
2. कॉलेज साइंस इम्प्रूवमेंट प्रोग्राम (College Science Improvement Programme - CSIP)
3. यूनिवर्सिटी लीडरशिप प्रोग्राम (University Leadership Programmes)
4. स्पेशल एसिस्टेंस प्रोग्राम (Special Assistance Programme - SAP)
5. करीक्यूलम डेवलपमेंट सेन्टर्स (Curriculum Development Centres)।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग प्रौढ़ शिक्षा तथा प्रसार, निरक्षरता को दूर करने तथा सतत् शिक्षा एवं जनसंख्या शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। आयोग ने नवम्बर, 1993 तक इन क्षेत्रों में विभिन्न कार्यक्रमों को विद्यालयों तथा कॉलेजों के माध्यम से संचालित किया। उनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं–

(i) प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की स्थापना, 1897, (ii) जन शिक्षा निलयन, 1836, (iii) सतत् शिक्षा कार्यक्रम, 1830।

आचार्य राममूर्ति समिति ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पुनर्गठन के लिए सुझाव दिया था। समिति का विचार था कि–

1. आयोग के पाँच सदस्य पूर्णकालिक होने चाहिए। ये सदस्य शिक्षण, अनुसंधान, प्रसार (Extension), प्रबंध (Management) तथा वित्त से संबंधित होने चाहिए।

2. इनके अतिरिक्त आयोग के चेयरमैन तथा वाइस चेयरमैन होने चाहिए।

3. आयोग के क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किए जाने चाहिए। जिससे समस्याओं का तत्काल निपटारा किया जा सके।

प्रश्न 22. माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण से आप क्या समझते हैं ? व्यावसायिक शिक्षा के विकास हेतु आप क्या सुझाव देंगे ? **(इंदौर 2023)**

उत्तर–जब से माध्यमिक शिक्षा पर गम्भीरता से विचार करना प्रारम्भ हुआ है तब से यह अनुभव किया जा रहा है कि माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम संकीर्ण है, एकमार्गीय है। यह बालक का सर्वांगीण विकास नहीं करता। इसमें पुस्तकीय ज्ञान पर ही अधिक बल दिया गया है। यह परीक्षा केन्द्रित है तथा इसमें प्राविधिक एवं व्यावसायिक विषयों का अभाव है अतः यह जीवन के लिए उपयोगी नहीं है। पाठ्यक्रम के ये दोष भारतीय शिक्षा के प्रथम आयोग हण्टर कमीशन (1882) ने भी अनुभव किए थे और अन्तिम आयोग कोठारी कमीशन (1966) ने भी अनुभव किए। इसलिए पाठ्यक्रम में अपेक्षित सुधार करने हेतु एक ओर तो पाठ्यक्रम में प्राविधिक एवं व्यावसायिक विषयों के समावेश का सुझाव दिया गया तथा दूसरी ओर पाठ्यक्रम के विशाखन का सुझाव भी दिया गया ताकि विभिन्न क्षमताओं के छात्रों की आवश्यकताओं को पूर्ण किया जा सके।

स्वाधीनता से पूर्व अंग्रेजी शासनकाल में ही हण्टर कमीशन (1882) ने माध्यमिक स्तर पर साहित्यिक और व्यावसायिक पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने की अनुशंसा की थी जिसमें पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को अपने पैरों पर खड़ा होने में समर्थ बना दे पर इस अनुशंसा की ओर न तो जनता ने ध्यान दिया न सरकार ने। हर्टाग समिति (Hartog commission) (1929) ने हण्टर कमीशन के इस सुझाव का समर्थन किया था और हाईस्कूल के पाठ्यक्रम में औद्योगिक तथा व्यावसायिक विषयों का समावेश करने की संस्तुति की। संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तरप्रदेश) सरकार द्वारा सर तेजबहादुर सप्रू की अध्यक्षता में गठित सप्रू समिति (1934) ने भी माध्यमिक पाठ्यक्रम का विशाखन (Diversification) करने की संस्तुति की थी। एबट–वुड रिपोर्ट (1936-37) ने जूनियर और सीनियर–दो प्रकार के व्यावसायिक विद्यालयों का प्रावधान करने की अनुशंसा की थी तथा वाणिज्य को भी माध्यमिक पाठ्यक्रम में वैकल्पिक विषय के रूप में रखने की अनुशंसा की थी। आचार्य नरेन्द्र देव समिति (प्रथम) (1936) ने (1) साहित्यिक, (2) कलात्मक, (3) वाणिज्य, (4) व्यावसायिक कृषि (5) टेक्नोलॉजी तथा (6) वैज्ञानिक पाठ्यक्रम। इन छः प्रकार के पाठ्यक्रमों के प्रावधान की अनुशंसा की थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अंग्रेज सरकार द्वारा तैयार की गयी सार्जेण्ट योजना (1944) में भी (1) साहित्यिक विषयों, कलाओं तथा विशुद्ध विज्ञान के लिए एकेडमिक हाईस्कूल और (2) प्रायोगिक विज्ञान, औद्योगिक तथा व्यापारिक विषयों के लिए टेक्निकल हाईस्कूल की स्थापना की अनुशंसा की गयी थी।

स्वाधीनता के पश्चात् स्वतंत्र भारत की शिक्षा विषयक प्रथम समिति ताराचन्द समिति (1948) ने भी माध्यमिक विद्यालयों को बहुमुखी बनाने की संस्तुति की थी। आचार्य नरेन्द्रदेव समिति (द्वितीय) सन् 1952-53 ने भी बहुउद्देशीय विद्यालय स्थापित करने का सुझाव दिया। इस परिप्रेक्ष्य में मुदलियार कमीशन (1953) ने पाठ्यक्रम पर विचार किया और पाठ्यक्रम विकास के लिए कुछ आधारभूत सिद्धान्त निश्चित किए जो इस प्रकार हैं–

(1) पाठ्यक्रम में विविधता तथा लचीलापन होना चाहिए जिससे उसे छात्रों की आवश्यकताओं तथा अभिरुचियों के अनुकूल बनाया जा सके।

(2) पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जिसमें छात्रों की विभिन्न योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकास किया जा सके।

(3) पाठ्यक्रम का सामाजिक जीवन में घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए।

(4) पाठ्यक्रम में ऐसे विषय नहीं होने चाहिए जिनका एक–दूसरे से कोई सम्बन्ध न हो, अपितु पाठ्यक्रम के समस्त विषयों में अन्तः सम्बन्ध होना चाहिए।

व्यावसायिक शिक्षा के विकास हेतु सुझाव/व्यावसायिक विकास कार्यक्रम–व्यवसाय के विकास को उद्देश्य, पहल और बेहतर व्यवसाय करने की दिशा में गतिविधियों के रूप में संक्षेपित किया जा सकता है। इसे आपूर्ति, माँग, कानूनी, मानव संसाधन, पूँजी और लेखा आदि सहित संचालन के सभी क्षेत्रों के एकीकृत रणनीतिक प्रबंधन के रूप में कहा जा सकता है। प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अपने करियर को बढ़ाने के लिए व्यावसायिक विकास महत्वपूर्ण है। लेकिन व्यावसायिक विकास का वास्तव में क्या मतलब है ? यह महत्वपूर्ण क्यों है ? और यह कितना प्रभावी है?–पता लगाने के लिए पढ़ें।

शिक्षा एक कभी न खत्म होने वाला, जीवन भर चलने वाला चक्र है। जो कई डिग्रियाँ पूरी करने और अपना करियर शुरू करने के बाद भी चलता रहता है। निरंतर सीखने से न केवल छात्रों को मदद मिलती है बल्कि एक गुरू या शिक्षक के कौशल और ज्ञान में भी सुधार होता है। इस प्रकार यह एक शिक्षक की जिम्मेदारी है कि वह समाज की भलाई के लिए निरंतर सीखने में लगे रहे।

यहीं पर विद्यार्थियों के व्यावसायिक विकास की भूमिका सामने आती है। इस प्रकार का विकास प्रत्येक शिक्षक एवं विद्यार्थी के लिए आवश्यक है और प्रतिदिन सैकड़ों छात्रों का मार्गदर्शन करने वाले शिक्षकों के विकास के लिए घंटों की एक निश्चित संख्या होनी चाहिए। शिक्षकों के विकास के साथ हम कक्षाओं में छात्रों के विकास को भी प्रोत्साहित करते हैं।

जैसा कि व्यावसायिक विकास (Professional development), जिसे संक्षेप में पीडी कहा जाता है, एक विद्यार्थी के रूप में अपने कौशल और गुणों को गहरा या विस्तारित करने के लिए विद्यार्थियों के निरंतर सीखने को सुनिश्चित करने की एक विधि है। इस शब्द का उपयोग आमतौर पर उन स्रोतों का वर्णन करने के लिए किया जाता है जिनका उपयोग शिक्षक अपनी एवं विद्यार्थी अपनी शिक्षण अवधारणाओं को विकसित करने और अपने शिक्षण कैरियर को आगे बढ़ाने के लिए कर सकते हैं।

व्यावसायिक शिक्षण के अंतर्गत आमतौर पर कार्यशालाएँ, प्रशिक्षण सत्र, सेमिनार और औपचारिक कक्षाएँ शामिल होती हैं जो एक विद्यार्थी की आवश्यकताओं पर आधारित होती है। ये सत्र और कक्षाएँ एक शिक्षक को हमारी शिक्षा प्रणाली की नई अवधारणाओं, जैसे संशोधित पाठ्यक्रम, ऑनलाइन शिक्षण और शिक्षा, शिक्षा नीति में बदलाव और यहाँ तक कि स्वतंत्र अध्ययन के बारे में जानने में सक्षम बनाती है।

व्यावसायिक विकास की प्रक्रिया कई चुनौतियाँ प्रस्तुत करती हैं, जैसे–समय, जुड़ाव, प्रभावशीलता, पैसा और कुछ अन्य। ऐसे विकास की प्रभावशीलता प्रत्येक आयोजक के लिए मुख्य चिंता का विषय है जो विकास कार्यक्रम प्रस्तुत करता है क्योंकि इन सत्रों की प्रभावशीलता का विश्लेषण करने के लिए कोई साधन नहीं है तो विकास प्रक्रिया को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए यहाँ कुछ समाधान दिए गए हैं, **जैसे**–

1. विद्यार्थियों को व्यस्त रखना।
2. विभिन्न शिक्षा कार्यक्रमों के विभिन्न भागों को प्रासंगिक बनाना।
3. निरंतर सहयोग प्रदान करना।
4. पीडी सत्र में भाग लेने वाले शिक्षकों से प्रतिक्रिया और सुझाव प्राप्त करना।

निष्कर्ष–ऐसे कई कारक हैं जो विकास की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। लेकिन अंततः शिक्षकों की बढ़ी हुई शिक्षा के प्रभावी परिणाम कक्षाओं में दिखाई देते हैं।

इस प्रकार, आयोजकों या प्रशासकों को शिक्षा प्रणाली की बेहतरी के लिए अपने शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के विकास के लिए विकास सत्र आयोजित करने पर अधिक जोर देना चाहिए।

प्रश्न 23. वर्तमान परिदृश्य में माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
(इंदौर 2023)

उत्तर–शिक्षक अपने सन्तुलित व्यक्तित्व द्वारा समाज को प्रभावित करता है। शिक्षक के धार्मिक विचारों, सिद्धांतों एवं राजनैतिक विचारधाराओं पर समाज के अन्य प्रबुद्धजन चलते हैं। शिक्षक समाज को कुशल नेतृत्व प्रदान करता है। सामाजिक विकास की प्रक्रिया में शिक्षक के महत्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता। वह इस प्रक्रिया को गति प्रदान करने के लिए कुछ विशिष्ट गुणों का प्रयोग करते हुए विशिष्ट (असाधारण) कार्य करने को उद्यत होता है। अतः उदीयमान भारत में माध्यमिक विद्यालयी शिक्षक की स्थिति या भूमिका निम्नलिखित है–

(1) शिक्षक एक सृजनशील नेता के रूप में राष्ट्रीय परिवर्तन की भूमिका निभाता है।

(2) शिक्षक अपनी जीवन–शैली जनतान्त्रिक सिद्धांतों पर लेकर चलता है। जन–साधारण भी उसी का अनुसरण करते हैं।

(3) शिक्षक बालकों तथा समाज के जन–साधारण को नवीनतम वैज्ञानिक आविष्कारों तथा उनके उपयोग का ज्ञान देता है। जिससे उन वैज्ञानिक तथ्यों को वे अपने जीवन में प्रयोग कर सकें।

(4) उसके द्वारा ऐसा शिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए जो बालकों में तर्क, चिन्तन, मनन विश्लेषण तथा संश्लेषण शक्ति का विकास कर सके।

(5) शिक्षक को छात्रों के संरक्षकों से सम्पर्क कर उनके भी संकुचित दृष्टिकोण में पर्याप्त परिवर्तन करना चाहिए।

(6) शिक्षक द्वारा प्रतिभावान छात्रों को सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

(7) शिक्षक को समाज की संस्कृति के शाश्वत् मूल्यों तथा नैतिक मान्यताओं का ज्ञान होना चाहिए, जिसमें वह उनका हस्तांतरण आगे आने वाली पीढ़ी को कर सके जो उनका शुद्धिकरण तथा समीक्षा कर उनमें से अच्छी बातों को ग्रहण कर सकें।

(8) शिक्षक द्वारा ऐसी शिक्षण–व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे कि वह संस्कृति का संरक्षण करते हुए अन्य संस्कृतियों का भी बोध करा सके।

(9) शिक्षक द्वारा समय–समय पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए।

(10) इसके द्वारा शैक्षिक एवं सह–शैक्षिक क्रियाओं (पद्धतियों) का आयोजन कर विभिन्न क्षेत्रों में छात्रों को सफल नेतृत्व प्रदान किया जाना चाहिए।

(11) अध्यापक को विद्यालय की सीमा में ही रहकर कार्य नहीं करना चाहिए अपितु समाज से संबंध स्थापित कर उसकी समस्याओं को सुनकर उनके समाधान हेतु भी प्रयास करना चाहिए।

शिक्षक राष्ट्र में प्रचलित शिक्षा का रक्षक भी होता है। कोई भी शिक्षा व्यवस्था शिक्षकों के स्तर से ऊपर नहीं जा सकती। जिस स्तर के शिक्षक होंगे, उसी स्तर की शिक्षा व्यवस्था होगी। शिक्षण की गुणात्मक स्थिति शिक्षकों की स्थिति तथा उसके गुणात्मक पहलू पर निर्भर है। इस प्रकार शिक्षक का महत्व, समाज तथा शिक्षा पद्धति दोनों में ही स्पष्ट है एवं शिक्षक उन भावी नागरिकों का निर्माण करता है, जिनके ऊपर राष्ट्र के उत्थान एवं पतन का भार है। शिक्षक अपने छात्रों पर अपने प्रभावों

की अमिट छाप छोड़ देता है। अध्यापक गौरवशाली पद का स्वामी होता है। अतीत काल में उसे ईश्वर के समान समझा जाता था। इस विषय में **एस. बालकृष्ण जोशी** का कथन उल्लेखनीय है, उन्होंने कहा है "एक सच्चा शिक्षक धन के अभाव में भी धनी होता है। उसकी सम्पत्ति का विचार बैंक में जमा धन से नहीं किया जाना चाहिए अपितु उस प्रेम और भक्ति से करना चाहिए जो उसने अपने छात्रों में उत्पन्न की है। वह सम्राट है जिसका साम्राज्य उसके शिष्यों के कृतज्ञ मस्तिष्कों में सीमा चिन्हों से अंकित है, जिसे संसार में कोई भी शक्ति नहीं हिला सकती और न ही कोई अणु बम नष्ट कर सकता है।"

प्रश्न 24. भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा पर टिप्पणी लिखिए। (उज्जैन 2022)

उत्तर—स्वतंत्रता के बाद भारत में शिक्षा का विकास तीव्र गति से हुआ है किन्तु इस विकास का संबंध केवल उसकी संख्यात्मक वृद्धि से है, गुणात्मक उन्नति से नहीं। समय–समय पर किए जाने वाले प्रयासों के बावजूद न तो उसकी संरचना में कोई विशेष परिवर्तन हुआ है और न ही उसकी उपयोगिता में कोई विशेष अभिवृद्धि हुई है। वह हमारी शिक्षा व्यवस्था की अब भी सबसे निर्बल कड़ी है। वह वास्तविक जीवन से असम्बद्ध है। वह उन मूलभूत आवश्यकताओं के प्रति कोई ध्यान नहीं देती है, जिनकी पूर्ति प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रौढ़ जीवन में चाहता है। इस प्रकार हमारी प्रचलित शिक्षा में अनेक दोषों और समस्याओं का समावेश हुआ है। हमें कुछ प्रमुख समस्याओं और उनके समाधानों पर निम्नलिखित पंक्तियों पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है—

(1) समस्या–उद्देश्यहीनता (Aimlessness)—हमारी शिक्षा की उद्देश्यहीनता एक स्वयं–सिद्ध सत्य है। वस्तुतः इस शिक्षा का जो उद्देश्य पराधीन भारत में था वही स्वाधीन भारत में भी है। शिक्षा ग्रहण करने वाले भारतीय छात्रों के केवल दो उद्देश्य होते हैं—उच्च शिक्षा की किसी संस्था में प्रवेश पाना या कोई छोटी–मोटी नौकरी प्राप्त करना।

उपर्युक्त दो उद्देश्यों में से किसी एक की प्राप्ति के लिए विद्यार्थीगण अपने सुख एवं स्वास्थ्य की आहुति देकर पुस्तकों की विषय–सामग्री को कंठस्थ करने में अपना समय व्यतीत करते हैं।

(2) समाधान–निश्चित उद्देश्य (Definite aims)—शिक्षा को सुलभ्य एवं गुणकारी बनाने के लिए उसके उद्देश्यों को सतर्कता से निश्चित किया जाना परम आवश्यक है। उपयुक्त उद्देश्यों के अभाव में उसका सफल और सार्थक होना असंभव है।

(3) समस्या–छात्र अनुशासनहीनता (Student indiscipline)—वर्तमान शिक्षा की एक नवीन जटिल समस्या देशव्यापी छात्र अनुशासनहीनता की है। इसके लिए छात्रों पर दोषारोपण करना, उनके प्रति असीम अन्याय करना है। इसका कारण यह है कि अनुशासनहीनता के लिए छात्र नहीं, वरन् अनेक शैक्षिक, आर्थिक एवं सामाजिक कारण उत्तरदायी हैं। इन कारणों में सबसे अधिक गंभीर है—अनुपयुक्त पाठ्यक्रम, दोषपूर्ण परीक्षा–प्रणाली, उद्देश्यहीन शिक्षा, सहशिक्षा का प्रचलन, जातीय पक्षपात, आर्थिक कठिनाइयाँ, सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन, छात्रों के प्रति अध्यापकों की उदासीनता आदि।

(4) समाधान–कुछ सुझाव (Some suggestions)—देश में सर्वत्र विद्यमान छात्र अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान करने के लिए छः उपायों का सुझाव दिया जा सकता है। पहला, शिक्षा को दोषमुक्त करके, समयानुकूल बनाया जाय, ताकि वह वयस्क–जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके। दूसरा, छात्रों को अनुशासन का महत्व बताकर उनके हृदय में अनुशासन के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा की भावना जाग्रत की जाए।

(4) समस्या–धन का अभाव (Dearth of money)–शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के मार्ग में धनाभाव ने प्रायः एक अज्ञेय अवरोध उपस्थित कर दिया है। भारत के अधिकांश स्कूल धनाभाव के कारण अपने छात्रों का शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास करने में पूर्णतया सफल नहीं होते हैं। धनाभाव का मुख्य कारण यह है कि ये स्कूल बहुत कुछ छात्रों से प्राप्त होने वाले शुल्क से चलते हैं। 25 प्रतिशत से अधिक व्यक्तिगत स्कूलों को सरकार से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं होती है।

(5) समाधान–निश्चित आर्थिक नीति (Definite financial policy)–स्कूलों की धनाभाव की समस्या का समाधान करने के लिए केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा निश्चित आर्थिक नीति का अनुसरण किया जाना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में 'अन्तर्राष्ट्रीय टीम' और 'माध्यमिक शिक्षा' आयोग के निम्नलिखित सुझाव लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं–

(i) केन्द्रीय सरकार और राज्य–सरकारों को पारस्परिक सहयोग से शिक्षा का पुनर्गठन तथा उसकी नीतियों का निर्माण करना चाहिए।

(ii) विद्यालयों को अपनी गुणात्मक उन्नति करने के लिए सरकार में समय–समय पर अतिरिक्त सहायता अनुदान मिलना चाहिए।

(6) समस्या–निर्देशन का अभाव (Absence of guidance)–भारत के अनेक माध्यमिक स्कूलों में निर्देशन कार्यक्रमों का अभाव है। इन स्कूलों में निर्देशन न केवल छात्रों की दृष्टि से, वरन् शिक्षकों एवं प्रधानाचार्यों की दृष्टि से भी आवश्यक है। छात्रों की दृष्टि से इसलिए आवश्यक है क्योंकि अपरिपक्व मस्तिष्क वाले होने के कारण वे अपनी क्षमताओं के अनुकूल पाठ्य–विषयों का चयन करने में असमर्थ होते हैं।

(7) समाधान–निर्देशन की व्यवस्था (Provision for guidance)–शिक्षा आयोग की सिफारिश के अनुसार भारत के 13 राज्यों में निर्देशन–सेवाओं (Guidance services) की व्याख्या कर दी गई है। जिनमें लगभग 3000 माध्यमिक स्कूलों के छात्र, शिक्षक एवं प्रधानाचार्य लाभान्वित हो रहे हैं। अतः हम कह सकते हैं कि अब तक छात्रों को निर्देशन प्रदान करने की दिशा में जो कार्य किया गया है, वह केवल नाममात्र के लिए ही है।

(8) समस्या–दोषपूर्ण पाठ्यक्रम (Defective curriculum)–लगभग एक शताब्दी पूर्व निर्मित किया जाने वाला पाठ्यक्रम अब भी सम्पूर्ण देश में लगभग कुछ परिवर्तन के साथ स्कूलों में प्रचलित है। समयानुकूल न होने के कारण उनकी उपयोगिता नष्ट हो गई है और उनमें अनेक गंभीर दोष प्रकट हो गए हैं।

1. पाठ्यक्रम – पुस्तकीय एवं सैद्धान्तिक है।
2. पाठ्यक्रम – नीरस, बोझिल एवं परम्परागत है।
3. पाठ्यक्रम – संकुचित एवं एकमार्गीय (Unilateral) है।
4. पाठ्यक्रम – किशोरों की विभिन्न रूचियों एवं आवश्यकता को पूर्ण नहीं करता है।
5. पाठ्यक्रम – पर परीक्षा का पूर्ण प्रभुत्व है।
6. पाठ्यक्रम – में प्राविधिक व्यावसायिक विषयों का अभाव है।
7. पाठ्यक्रम – का छात्रों के वातावरण और वास्तविक एवं सामाजिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(9) दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली (Defective system of examination)—भारत में प्रचलित परीक्षा प्रणाली कितनी दोषपूर्ण है। इसका अनुमान राधाकृष्णन कमीशन के निम्नांकित शब्दों से सहज ही लगाया जा सकता है।

"लगभग आधी शताब्दी से परीक्षा को भारतीय शिक्षा का एक निकृष्टतम तथ्य स्वीकार किया गया है। इन दोषों में सर्वप्रथम दोष यह है कि सम्पूर्ण शिक्षा पर मेट्रीकुलेशन परीक्षा का अखण्ड आधिपत्य है।"

(10) समस्या शिक्षण का निम्न स्तर (Low standard of teaching) — वर्तमान माध्यमिक शिक्षा की एक विकट समस्या शिक्षण का निम्न स्तर है। पिछले कुछ वर्षों से माध्यमिक शिक्षा की संरचना (Pattern) को नवीन स्वरूप प्रदान करने के लिए उसका पुनर्गठन किया जा रहा है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसके उद्देश्यों, पाठ्य विधियों एवं कार्यक्रमों में अनेक परिवर्तन किए गये हैं। परिणामतः आज के माध्यमिक स्कूल 10 या 10 वर्ष पहले के माध्यमिक स्कूल नहीं है, उनको अनेक नवीन कार्य एवं उत्तरदायित्व सौंपे गए हैं।

(11) समस्या तीन भाषाओं का अध्ययन (Study of three languages)—सरकार की भाषा सम्बन्धी नीति ने माध्यमिक शिक्षा में एक अवांछनीय समस्या उपस्थित कर दी है। कुछ मील तक इस नीति का सूत्रपात 'मुदलियार आयोग' ने किया। उसने यह सुझाव दिया कि निम्न और उच्च माध्यमिक स्तरों पर छात्रों द्वारा दो भाषाओं का अध्ययन किया जाय। 'कोठारी आयोग' ने इस सुझाव में संशोधन करके यह विचार प्रकट किया कि निम्न माध्यमिक स्तर पर 3 भाषाओं का और उच्च माध्यमिक स्तर पर 2 भाषाओं का अध्ययन किया जाय।

(क) हिन्दी–भाषी राज्यों में –हिन्दी, अंग्रेजी और एक आधुनिक भारतीय भाषा जिसमें दक्षिण की कोई भाषा होनी चाहिए।

(ख) अहिन्दी–भाषी राज्यों में–हिन्दी क्षेत्रीय भाषा और अंग्रेजी।

प्रश्न 25. मुदलियार आयोग द्वारा अनुशंसित माध्यमिक शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप पर प्रकाश डालिए। **(छतरपुर 2022)**

उत्तर–माध्यमिक शिक्षा राष्ट्र की शक्ति को वांछित दिशा प्रदान करती है। इस ओर देश की सरकार जागरुक रही है, इसलिए समय–समय पर आयोग तथा समितियों का गठन होता रहा है। हम यहाँ पर मुदलियार कमीशन आचार्य नरेन्द्र देव समिति (1953) एवं कोठारी कमीशन के सन्दर्भ मे माध्यमिक शिक्षा पर चर्चा कर रहे हैं।

माध्यमिक शिक्षा देश के सम्पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम की रीढ़ है। शरीर रचना में जो महत्व रीढ़ की हड्डी का है, वही स्थान देश के अर्थतंत्र में माध्यमिक शिक्षा का है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् यह आवश्यकता अनुभव की गई कि देश की माध्यमिक शिक्षा का अवश्य ही पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए।

(1) नियुक्ति तथा सदस्य–माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन, सरकार के प्रस्ताव संख्या F 9·5/52BI दिनांक 23 सितंबर, 1952 के अनुसार हुआ। इस आयोग में निम्न सदस्य थे–

(1) डॉक्टर ए. लक्ष्मणस्वामी मुदलियार – चेयरमैन, (2) जॉन क्राइस्ट – सदस्य, (3) डॉ. कैनिथ रास्ट विलियम्स – सदस्य, (4) श्रीमती हंसा मेहता – सदस्य, (5) श्री जे. ए तारापोरवाला – सदस्य, (6) डॉ. के. एल. श्री माली – सदस्य, (7) श्री एम. टी. व्यास – सदस्य, (8) श्री के. जी. सैयदेन - सदस्य, (9) श्री के. एन. बसु – सदस्य।

डॉ. एम. एम. चारी ने आयोग के लिए सहायक सचिव का कार्य किया।

(2) आयोग के सन्दर्भ कार्य–(i) भारत में माध्यमिक शिक्षा की वर्तमान परिस्थिति की जाँच करना। (ii) माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन तथा विकास के लिए–(a) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य, संगठन तथा पाठ्यक्रम का निर्माण, (b) प्राथमिक बुनियादी तथा उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में माध्यमिक शिक्षा। (c) विभिन्न प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों में सहसंबंध। (d) अन्य संबंधित समस्याओं का अध्ययन करना। जिससे देश की आवश्यकता के अनुसार सारे देश में माध्यमिक शिक्षा की समरूपता निश्चित हो सके।

(3) शिक्षा के उद्देश्य–माध्यमिक शिक्षा आयोग ने शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार निर्धारित किये हैं–

(i) प्रजातन्त्रीय नागरिकता का विकास–इसके अन्तर्गत अपने देश की सामाजिक और सांस्कृतिक सफलताओं की सराहना करना, अपने देश की दुर्बलताओं को दूर करना, अपने देश की योग्यताओं के अनुसार सेवा करने और निजी स्वार्थों और रुचियों को त्याग कर राष्ट्रीय हित के लिए कार्य करने का भाव उत्पन्न करना।

(ii) व्यावसायिक उन्नति–शिक्षा समाप्त करने तक बालकों को व्यावसायिक ज्ञान हो जाना चाहिए।

(iii) व्यक्तित्व का विकास–बालक के व्यक्तित्व के विकास की सभी सम्भावनाओं पर विचार करके तद्नुसार कार्य करना।

(4) नेतृत्व का प्रशिक्षण–माध्यमिक शिक्षा आयोग में जनतंत्र की सफलता के लिए नेतृत्व के प्रशिक्षण को भी शिक्षा के उद्देश्यों में रखा है।

(5) माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन–मुदलियार कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा एवं विश्वविद्यालय की शिक्षा के मध्य अलगाव की स्थिति को समाप्त करने के लिए माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन इस प्रकार प्रस्तुत किया था।

(i) अवधि–माध्यमिक शिक्षा की अवधि 11 से 17 तक की आयु की है। माध्यमिक तथा बेसिक शिक्षा पद्धति में विरोध नहीं हो। इस अवधि में (a) मिडिल, जूनियर, सेकेण्डरी या सीनियर बेसिक स्तर की तीन वर्षीय शिक्षा। (b) उच्चतर माध्यमिक स्तर का चार वर्ष का पाठ्यक्रम सम्मिलित है।

(ii) तीन वर्षीय डिग्री कोर्स–आयोग ने इण्टरमीडिएट स्तर को समाप्त कर 11 वर्ष की हायर सेकेण्डरी तथा तीन वर्ष के डिग्री पाठ्यक्रम की व्यवस्था की है।

(iii) पाठ्यक्रमों की विभिन्नताएँ–आयोग ने विभिन्न पाठ्यक्रमों का समावेश किया है जिसमें हर विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार विषयों का चुनाव कर सके। ये पाठ्यक्रम माध्यमिक स्तर के पहले वर्ष से ही आरम्भ हो जाते हैं।

(iv) आंतरिक मूल्यांकन–आयोग ने स्कूल के लेखों (Records) के मूल्यांकन में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इससे छात्रों का सही मूल्यांकन होगा और विद्यालयों में अनुशासन सुधरेगा।

(v) टेक्नीकल शिक्षा–यद्यपि मुदलियार कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा तकनीकी शिक्षा के विकास के लिए बहुमूल्य सुझाव दिए थे। इन्हीं सुझावों के अनुसार बहुद्देशीय विद्यालयों की स्थापना हुई परन्तु ये विद्यालय देश की आवश्यकता की पूर्ति न कर सके।

आयोग के सुझाव इस संबंध में निम्न प्रकार हैं–

(a) टेक्नीकल स्कूल बहुत अधिक संख्या में बहुद्देशीय स्कूल या उसके अंग के रूप में चलाए जाने चाहिए।

(b) बड़े नगरों में सेन्ट्रल टेक्नीकल स्कूलों की स्थापना होनी चाहिए। जिससे वे स्थानीय स्कूलों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

(c) अप्रैंटिस प्रशिक्षण के नियम बनाए जाएँ।

(d) टेक्नीकल तथा टेक्नालॉजीकल विद्यालयों की स्थापना शिक्षाशास्त्रियों की सलाह से होनी चाहिए।

(e) इण्डस्ट्रियल एजुकेशन कर (Cess) लगाना चाहिए।

(6) अन्य प्रकार के विद्यालय—इन विद्यालयों की स्थापना के पीछे उद्देश्य यह था कि विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु शिक्षा दी जाए। इस प्रकार के विद्यालयों के अन्तर्गत इन विद्यालय खोलने की सिफारिश की गई—(i) पब्लिक स्कूल जारी रहने चाहिए। (ii) प्रतिभावान बालकों को राज्य तथा केन्द्र की सहायता मिलनी चाहिए। (iii) रेसीडेन्शियल (आवासीय) स्कूलों की स्थापना होनी चाहिए।

(7) सहशिक्षा—मुदलियार कमीशन ने नारी तथा सहशिक्षा के विषय में कहा—'लड़के—लड़कियों की शिक्षा में कोई अन्तर नहीं है, फिर भी लड़कियों के लिए गृह विज्ञान के शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए।' इस संबंध में मुख्य सिफारिशें इस प्रकार हैं—(i) सहशिक्षा वाले विद्यालयों में प्रमुखता दी जानी चाहिए। (ii) जहाँ पर आवश्यकता है, वहाँ लड़कियों के लिए अलग स्कूल खोले जाएँ। (iii) मिश्रित अथवा सहशिक्षा वाले विद्यालयों में निश्चित शर्तें लगाई जाएँ।

(8) भाषाओं का अध्ययन—मुदलियार कमीशन ने भाषाओं के पाँच वर्ग निर्धारित किए—(i) मातृभाषा, (ii) क्षेत्रीय भाषा जबकि वह मातृभाषा न हो, (iii) संघ की सरकारी भाषा के रूप में जानी जाए। (iv) शास्त्रीय भाषा, (v) अंग्रेजी।

(9) पाठ्यक्रम—आयोग ने दो स्तरों पर पाठ्यक्रम प्रस्तावित किया है—

मिडिल स्तर पर—(i) भाषा, (ii) सामाजिक अध्ययन, (iii) सामान्य विज्ञान, (iv) गणित, (v) कला तथा संगीत, (vi) उद्योग, (vii) शारीरिक शिक्षा।

हाईस्कूल तथा हायर सेकेण्डरी स्तर पर—मातृभाषा तथा क्षेत्रीय भाषा या मातृभाषा और शास्त्रीय भाषा का पूर्ण पाठ्यक्रम।

निम्नलिखित में से एक अन्य भाषा—

(i) हिन्दी (अहिन्दी भाषियों के लिए)।

(ii) आरम्भिक अंग्रेजी (जिन्होंने मिडिल में अंग्रेजी नहीं पढ़ी)

(iii) उच्च अंग्रेजी (अंग्रेजी जिन्होंने पहले पढ़ी)

(iv) आधुनिक भारतीय भाषा (हिन्दी के अतिरिक्त)

(v) आधुनिक विदेशी भाषा (अंग्रेजी के अतिरिक्त)

(vi) शास्त्रीय भाषा।

(10) पाठ्य–पुस्तकें—आयोग ने पाठ्यपुस्तकों में सुधार के लिए अपने सुझाव इस प्रकार दिये हैं—

(i) हाई पावर टेक्स्ट–बुक कमेटी का गठन हो जिसमें हाइकोर्ट का एक जज, सेवा आयोग का सदस्य, कुलपति, हेडमास्टर, दो शिक्षाशास्त्री एवं शिक्षा संचालक हों और यह स्वतंत्र रूप से कार्य करें।

(ii) प्रकाशनों की बिक्री से एक कोष का निर्माण किया जाये जिससे छात्रवृत्तियाँ तथा पुस्तकीय सहायता आदि दी जाए।

(iii) कमेटी कतिपय स्तरों का निर्धारण करे।

(iv) केन्द्र सरकार पुस्तकों की टेकनीक को विकसित करने के लिए आर्ट स्कूल खोलें जाए।

(v) केन्द्र तथा राज्य सरकारों को ब्लॉक्स का संग्रह रखना चाहिए। जिसे वह प्रकाशकों को उधार दे सकें।

(11) अनुशासन–अनुशासन के संदर्भ में आयोग ने कहा है–

(i) चरित्र निर्माण की शिक्षा विद्यालय के कार्यक्रम में न होना।

(ii) अनुशासन के विकास के लिए विद्यालयों–सरकार बनानी चाहिए।

(iii) सामूहिक खेलों को प्रोत्साहन मिले।

(iv) ऐसा अधिनियम पारित किया जाए जिसमें विद्यार्थियों का उपयोग चुनावों के समय किया जा सके।

प्रश्न 26. उदीयमान भारत में शिक्षक की भूमिका पर प्रकाश डालिए। (छतरपुर 2022)

उत्तर–शिक्षक अपने संतुलित व्यक्तित्व द्वारा समाज को प्रभावितकरता है। शिक्षक के धार्मिक विचारों, सिद्धांतों एवं राजनैतिक विचारधाराओं पर समाज के अन्य प्रबुद्धजन चलते हैं। शिक्षक समाज के कुशल नेतृत्व प्रदान करता है। सामाजिक विकास की प्रक्रिया में शिक्षक के महत्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। वह इस प्रक्रिया को गति प्रदान करने के लिए कुछ विशिष्ट गुणों का प्रयोग करते हुए विशिष्ट (असाधारण) कार्य करने को उद्यत होता है। अतः उदीयमान भारत में शिक्षक की स्थिति या भूमिका निम्नलिखित प्रकार है–

(1) शिक्षक एक सृजनशील नेता के रूप में राष्ट्रीय परिवर्तन की भूमिका निभाता है।

(2) शिक्षक अपनी जीवन–शैली जनतान्त्रिक सिद्धांतों पर लेकर चलता है। जन–साधारण भी उसी का अनुसरण करते हैं।

(3) शिक्षक बालकों तथा समाज के जन–साधारण को नवीनतम वैज्ञानिक आविष्कारों तथा उनके उपयोग का ज्ञान देता है। जिसमें उन वैज्ञानिक तथ्यों को वह अपने जीवन में प्रयोग कर सके।

(4) उसके द्वारा ऐसा शिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए, जो बालकों में तर्क चिन्तन, मनन, विश्लेषण तथा संश्लेषण शक्ति का विकास कर सके।

(5) शिक्षक को छात्रों के संरक्षकों से सम्पर्क कर उनके भी संकुचित दृष्टिकोण में पर्याप्त परिवर्तन करना चाहिए।

(6) शिक्षक द्वारा प्रतिभावान छात्रों को सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

(7) शिक्षक को समाज की संस्कृति के शाश्वत् मूल्यों तथा नैतिक मान्यताओं का ज्ञान होना चाहिए, जिससे वह उनका हस्तान्तरण आगे आने वाली पीढ़ी को कर सके जो उनका शुद्धीकरण तथा समीक्षा कर उनमें से अच्छी बातों को ग्रहण कर सके।

(8) शिक्षक द्वारा ऐसी शिक्षण व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे कि वह संस्कृति का संरक्षण करते हुए अन्य संस्कृतियों का भी बोध करा सके।

(9) शिक्षक द्वारा समय–समय पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए।

(10) इसके द्वारा शैक्षिक एवं सह–शैक्षिक क्रियाओं (प्रवृत्तियों) का आयोजन कर विभिन्न क्षेत्रों में छात्रों से सफल नेतृत्व प्रदान किया जाना चाहिए।

(11) अध्यापक को विद्यालय की सीमा में ही रहकर कार्य नहीं करना चाहिए। अपितु समाज से संबंध स्थापित कर, उनकी समस्याओं को सुनकर, उनके समाधान हेतु भी प्रयास करना चाहिए।

शिक्षक राष्ट्र में प्रचलित शिक्षा का रक्षक भी होता है। कोई भी शिक्षा व्यवस्था शिक्षकों के स्तर से ऊपर नहीं जा सकती जिस स्तर के शिक्षक होंगे, उसी स्तर की शिक्षा व्यवस्था होगी। शिक्षण की गुणात्मक स्थिति, शिक्षकों की स्थिति तथा उसके गुणात्मक पहलू पर निर्भर है। इस प्रकार शिक्षक का महत्व समाज तथा शिक्षा पद्धति दोनों में ही स्पष्ट है एवं शिक्षक उन भावी नागरिकों का निर्माण करता है। जिनके ऊपर राष्ट्र के उत्थान एवं पतन का भार है। शिक्षक अपने छात्रों पर अपने प्रभावों की अमिट छाप छोड़ देता है। अध्यापक गौरवशाली पद का स्वामी होती है। अतीत काल में उसे ईश्वर के समान समझा जाता था।

प्रश्न 27. राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की प्रासंगिकता समझाइए। (छतरपुर 2022)

उत्तर—आर. एम. एस. ए. 15-16 वर्ष की आयु के सभी युवाओं के लिए अच्छी गुणवत्तायुक्त माध्यमिक शिक्षा उपलब्ध कराने, उसमें पहुँच बनाने 3 वहनीय बनाने के उद्देश्य से मार्च 2009 में प्रारंभ की गई मुख्य योजना है।

इस योजना का उद्देश्य गुणवत्ता को सुनिश्चित करते हुए माध्यमिक स्तर पर गुणवत्तायुक्त शिक्षा में पहुँच बढ़ाने और इसमें सुधार की योजना में सभी माध्यमिक स्कूलों के लिए निर्धारित मानकों का निर्धारण करके महिला–पुरूष, सामाजिक, आर्थिक भेदभाव और निःशक्त बाधा को हटाकर 2017 तक अर्थात् 12 वीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक और 2020 तक अंतर्राष्ट्रीय प्रतिधारण को प्राप्त करके माध्यमिक स्तर की शिक्षा में अन्तर्राष्ट्रीय पहुँच प्रदान करना और माध्यमिक स्तर पर दी जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करके कक्षा 9 के लिए नामांकन बढ़ाने की परिकल्पना की गई है।

वर्ष 2013-14 में केन्द्रीय प्रायोजित योजना अर्थात् स्कूलों में आईसीटी, बालिका छात्रावास माध्यमिक स्तर पर निःशक्तजनों के लिए समग्र शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा का आरम्भ एम. ए. के तहत समावेशन कर किया गया था। आर.एम.एस.ए. के तहत् इन योजनाओं में समावेशित योजनाओं के तहत् प्रावधानों का प्रशासनिक सुव्यवस्थितकरण और महत्वपूर्ण वित्तीय बचत हुई। एक तरफ आर.एम.एस.ए के तहत् निःशक्त उपलब्धि भी बढ़ी और दूसरी तरफ इन योजनाओं के तहत् किए गए हस्तक्षेप, सहायता प्राप्त स्कूलों तक पहुँचे जिसने उच्चतर शिक्षा को भी कवर किया इस योजना के आर.एम.एस.ए. के तहत् समावेशन से सहायता प्राप्त स्कूलों और उच्चतर माध्यमिक क्षेत्र के समावेशित आर.एम.एस.ए. का अभिसरण कर अभिसरण आधारित कार्यान्वयन भी हुआ।

तथापि अभी तक सहायता प्राप्त स्कूलों को दिए जाने वाले लाभ वर्तमान आर.एम.एस.ए. प्रावधानों के मुख्य घटकों के निषेध और योजनाओं के तहत् वर्तमान हस्तक्षेपों तक सीमित होंगे। राज्य स्तर पर अभिसरण में एकीकृत और समावेश (सहायता प्राप्त स्कूल उच्चतर माध्यमिक कक्षाएँ) योजना बन पाएगी और उसका कार्यान्वयन हो जाएगा।

प्रश्न 28. शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख संवैधानिक प्रावधानों को विस्तार से समझाइए।

(छतरपुर 2022)

उत्तर—भारत के शिक्षा के क्षेत्र में प्रमुख संवैधानिक प्रावधान—भारत के संविधान में शिक्षा के विषय में निम्नलिखित व्यवस्थायें निहित हैं–

(1) निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा—संविधान की 45 वीं धारा के अनुसार राज्य 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक सभी बालकों हेतु संविधान लागू होने में 10 वर्ष के भीतर निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान करने का प्रयत्न करेगा।

(2) धार्मिक शिक्षा—संविधान की 21 वीं धारा के अनुसार किसी धर्म विशेष के प्रचार के लिए कर या दान देने के लिए किसी व्यक्ति को मजबूर नहीं किया जा सकता। भाग 28(1) के अनुसार, पूरी तरह राज्य के धन से चलने वाली किसी शिक्षण संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी। धारा 22(2) के अनुसार, सहायता प्राप्त या राज्य से मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं के किसी सदस्य को उस संस्था द्वारा चलाए जाने वाले किसी धार्मिक अनुष्ठान में भाग लेने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। धारा 28 में कहा गया है कि अन्य धर्मों के अनुयायियों को उनकी सहमति लिए बिना धार्मिक अनुदेशन नहीं देना चाहिए।

(3) दृश्य सामग्री—धारा 49 के अनुसार, राज्य प्रत्येक स्मारक या संसद द्वारा राष्ट्रीय महत्व के घोषित स्थान व वस्तुओं का संरक्षण करें।

(4) अल्पसंख्यकों की शिक्षा—धारा 30 में कहा गया है कि अल्पसंख्यक समुदाय को अपनी इच्छानुसार शैक्षिक संस्थाएँ स्थापित करने व उनका प्रशासन करने का अधिकार है व अनुदान देते समय इन स्कूलों के साथ इस कारण भेदभाव नहीं किया जा सकता है कि वे धार्मिक समुदाय द्वारा संचालित किये जा रहे हैं।

(5) पिछड़े वर्गों की शिक्षा—पिछड़े वर्गों की शिक्षा संबंधी संवैधानिक धाराएँ व उनमें कही गयी बातें निम्नलिखित हैं–

(i) धारा 17—अस्पृश्यता निवारण व किसी भी रूप में अस्पृश्यता का प्रयोग निषिद्ध है।

(ii) धारा 24—14 वर्ष से कम आयु वाले किसी बालक को किसी कारखाने, खान या अन्य खतरनाक रोजगार में काम करने हेतु नियुक्त नहीं किया जा सकता है।

(iii) धारा 23—मनुष्यों को क्रय–विक्रय व बेगार पर प्रतिबन्ध लगा रहेगा।

(iv) धारा 15—हिन्दुओं के समस्त सार्वजनिक धार्मिक संस्थानों के द्वार पिछड़े वर्ग के लिये खुले रहेंगे।

(v) धारा 16 व 335—राज्यों को सार्वजनिक नौकरियों में स्थान आरक्षित करने की छूट रहेगी।

(vi) धारा 46 —पिछड़े वर्गों के शैक्षणिक व आर्थिक हितों के विस्तार तथा उन्हें सामाजिक अन्याय व सभी प्रकार के शोषण से सुरक्षा मिलेगी।

6. कृषि शिक्षा—अनुच्छेद 45 में कहा गया है कि यदि राज्य चाहे या वह यह उत्तरदायित्व उठाने के लिए सक्षम हो तो वह आधुनिक व वैज्ञानिक दृष्टि से कृषि व पशुपालन का संगठन करके, नस्लों का संरक्षण व सुधार करने के लिए कदम उठा सकता है।

7. भाषा अनुलेखन—संविधान की 350-A धारा के अनुसार, प्रत्येक राज्य तथा राज्य में प्रत्येक स्थानीय निकाय प्राथमिक स्तर पर अल्पसंख्यक समूहों के बालकों के लिये मातृभाषा में अनुदेशन के लिये पर्याप्त सुविधायें प्रदान करेगा। धारा 351 के अनुसार, यह संघ का कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा के प्रसार व विकास को प्रोत्साहित करे। ताकि वह भारत की संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।

8. केन्द्र व राज्य शैक्षिक दायित्व—भारत के संविधान में केन्द्र व राज्य सरकार के शैक्षणिक दायित्व स्पष्ट रूप से परिभाषित किये गए हैं। केन्द्र सरकार शिक्षा सुविधाओं के समन्वय, उच्च वैज्ञानिक व तकनीकी शिक्षा के स्तरों के निर्धारण तथा हिन्दी व अन्य समस्त भारतीय भाषाओं में शोध कार्य व उनकी प्रगति के लिये उत्तरदायी है। संघीय क्षेत्रों की शिक्षा व केन्द्रीय विश्वविद्यालयों पर केन्द्र का सीधा नियंत्रण है। देश के अन्य क्षेत्रों में शैक्षिक प्रशासन का उत्तरदायित्व राज्य पर है।

प्रश्न 29. भारतीय जीवन मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका बताइए। (ग्वालियर 2022)

उत्तर—भारतीय विचारकों ने विकास के आध्यात्मिक पक्ष पर विशेष बल दिया है। अतः भारतीय प्रसंग में शिक्षा द्वारा विकास में आध्यात्मिक पक्ष भी सम्मिलित होना चाहिए। व्यास वल्म्य के अनुसार, शिक्षा वही है जो मनुष्य को सच्चरित्र और संसार के लिए उपयोगी बनाये। शंकराचार्य ने शिक्षा की परिभाषा करते हुए लिखा है ' 'सा विद्या या विमुक्तये'' अर्थात् जिससे मुक्ति मिले, वही विद्या है।

1. विवेकानन्द के अनुसार ''मनुष्य की आन्तरिक पूर्णता को अभिव्यक्त करना शिक्षा है।''

2. रविन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार ''शिक्षा मस्तिष्क को अन्तिम सत्य खोजने के योग्य बनाती है जो सत्य हमें पार्थिव बन्धनों से मुक्त करता है और हमें वह धन देता है जो सांसारिक वस्तु नहीं है बल्कि आन्तरिक प्रकाश है, जो शक्ति नहीं है बल्कि प्रेम है और जिसके कारण मानव उस सत्य को अपना बना लेता है और उसे ढंग में प्रकट करता है।''

3. अरविन्द के अनुसार "जो शिक्षा केवल ज्ञान प्रदान करने तक ही सीमित है, वह शिक्षा नहीं है। सच्ची शिक्षा वह है जो मानव का आध्यात्मिक विकास करती है। व्यक्ति की चेतना का परम सत्ता में योग करती है।"

भारतीय जीवन मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका के निम्नलिखित बिन्दुओं में स्पष्ट किया जा सकता है–

1. व्यक्तित्व का विकास – व्यक्तित्व के विकास में ही वैयक्तिकता का विकास होता है। जो कि प्रत्येक पढ़े–लिखे व्यक्ति का अनिवार्य लक्षण है। बालक अपने चारों ओर के परिवेश में विभिन्न वस्तुओं और व्यक्तियों से समायोजन करने में व्यवहार के कौन–से प्रतिमान अपनाता है, यह उसके व्यक्तित्व पर निर्भर है। यूँ तो व्यक्तित्व का विकास बहुत कुछ अनौपचारिक साधनों, जैसे–परिवार, पास–पड़ोस, काम करने की परिस्थितियों आदि के माध्यम से होता है, किन्तु शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य व्यक्तित्व का विकास माना है। अस्तु विद्यालयों में बालक को नाना प्रकार के कार्यों को करने का अवसर देकर उसके व्यक्तित्व का विकास किया जाता है। व्यक्तित्व के विकास में खेलों का विशेष महत्व है।

2. योग्य नागरिकों का निर्माण–यद्यपि अनेक विचारकों ने राज्यविहीन समाज का स्वप्न देखा है, किन्तु संसार में शायद ही कहीं मानव जीवन राज्यविहीन हो। जिन लोगों को नागरिकता नहीं मिली होती या जिनकी नागरिकता छिन जाती है, वे भी अनेक प्रयास करके किसी–न–किसी राज्य की नागरिकता अवश्य प्राप्त करते हैं।

3. स्वाभाविक शक्तियों का विकास – बालक जन्म से ही अनेक प्रकार की स्वाभाविक शक्तियों को लेकर उत्पन्न होता है। अस्तु शिक्षा का सबसे पहला काम भिन्न–भिन्न प्रकार की उत्तेजनाएँ और अवसर उपस्थित करके बालक की विभिन्न जन्मजात शक्तियों जैसे–कल्पना शक्ति, चिन्तन शक्ति आदि का समुचित विकास करना है। शरीर की वृद्धि के साथ–साथ मस्तिष्क की भी वृद्धि होती है, किन्तु जन्मजात शक्तियों के विकास के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है।

4. मूल प्रवृत्तियों का नियंत्रण और मार्गान्तीकरण – प्रत्येक प्राणी जन्म से ही कुछ मूल प्रवृत्तियों को लेकर संसार में उत्पन्न होता है। मानव शिशु में कौन–कौन–सी मूल प्रवृत्तियाँ होती है। इस विषय में भले ही वाद–विवाद हो किन्तु शिशु के मस्तिष्क को कोरी पट्टी नहीं माना जा सकता। जिस पर चाहे जो कुछ भी लिखा जा सकता हो। मनोवैज्ञानिकों ने तो यह भी दिखाया है कि न केवल प्रत्येक मानव में अनेक मूल प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं बल्कि इसके विषय में व्यक्तिगत अन्तर भी देखा जाता है।

5. चरित्र निर्माण–मनुष्य के चरित्र की नींव उसके जीवन के प्रथम कुछ वर्षों में ही पड़ जाती है। शैशवावस्था में बालक के मन पर आचार व्यवहार के विषय में जो संस्कार पड़ जाते हैं वे ही आगे चलकर उसके चरित्र के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। चरित्र का मानव जीवन में कितना महत्व है, यह बतलाने का विषय नहीं है और चरित्र निर्माण शिक्षा के माध्यम से होता है। यह शिक्षा अधिकतर अनौपचारिक होती है। दूसरे शब्दों में, बालक का चरित्र निर्माण उपदेशों से इतना अधिक नहीं होता, जितना कि परिवार, विद्यालय, पास–पड़ोस समूह आदि में उसके सामने उपस्थित होने वाले उदाहरणों के द्वारा होता है।

6. संस्कृति और सभ्यता का संरक्षण और वृद्धि–पशुओं की तुलना में मनुष्य की प्रगति का एक मुख्य कारण यह है कि मानव समाज में सभ्यता और संस्कृति के रूप में ज्ञान और अनुभव का संचय किया गया है। वर्तमान काल में जन्म लेने वाला बालक हर दिशा में नये सिरे से नहीं सोचता। उसके सोचने, विचारने के ढंग और काम करने के तरीके, रीति–रिवाजों, परम्पराओं और सामाजिक संस्थाओं के रूप में संचित पूर्वजों के हजारों वर्षों के अनुभव में निर्देशित होते हैं।

7. वयस्क जीवन की तैयारी–शिक्षा का एक उद्देश्य जीविकोपार्जन भी माना गया है। आधुनिक युग में आर्थिक परिस्थितियाँ इतनी जटिल हो गयी है कि समुचित शिक्षा के बिना कोई भी व्यक्ति जीविकोपार्जन का कार्य भली प्रकार में नहीं कर सकता।

8. सामुदायिक भावना का विकास– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसका एक विशेष अर्थ यह कि वह समाज में ही रहता है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि मानव शिशु में जन्म से ही सामाजिक गुण पाए जाते है। ये सामाजिक गुण उसे सिखाये जाते हैं। अस्तु, शिक्षा का एक मुख्य कार्य बालक–बालिकाओं में सामुदायिक भावना का विकास है। यह सामुदायिक भावना ही उन्हें अपने संगी–साथियों के प्रति व्यवहार करने दूसरों के लिए त्याग करने और जाति वर्ग आदि की सीमाओं से ऊपर उठकर देश–प्रेम रखने का पाठ पढ़ाती है।

9. अवकाश का सदुपयोग–शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य अवकाश के समय का सदुपयोग है जो कि बच्चे विद्यालय के माध्यम से ही सीखते हैं। इस शिक्षित पठित पत्र–पत्रिकाओं, पुस्तकों, विभिन्न प्रकार की कलाओं की साधना आदि के द्वारा अपने समय का अधिक अच्छा उपयोग कर पाते हैं। उनके परस्पर विचार विमर्श और बातचीत तथा गपशप का मानदण्ड भी अशिक्षित व्यक्तियों में ऊँचा होता है।

10. राष्ट्रीय भाषा का विकास–यद्यपि किसी भी देश में अनेक भाषाओं को बोला जाना और विकसित होना राष्ट्रीय एकता में किसी भी प्रकार से बाधक नहीं है किन्तु एक सामान्य राष्ट्रीय भाषा का विकास किए बिना राष्ट्रीय एकता स्थापित करना काफी कठिन है। क्योंकि भाषा ही संवेगों और विचारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम है।

11. राष्ट्रीय भावना का विकास–मानव समाज के विकास के लिए विभिन्न राष्ट्र समूहों का सर्वांगीण विकास आवश्यक है और यह शिक्षा के समुचित प्रसार के बिना नहीं हो सकता। प्रत्येक देश में राष्ट्रीय भावना का विकास किया जाता है। इससे देशवासी राष्ट्र की प्रगति में सब प्रकार से योगदान देते हैं।

12. सभी धर्मों का सम्मान –भारत एक लोकतांत्रिक राष्ट्र है। इसमें सभी धर्मों का समान रूप से सम्मान किया जाता है। और धर्म के आधार पर नागरिकों में कोई भेद–भाव नहीं किया जाता, किन्तु संविधान में इस व्यवस्था के बावजूद साम्प्रदायिकता का विष सब कहीं–कहीं फैला हुआ है और विशेष प्रयत्नों के बिना उसको दूर नहीं किया जा सकता।

13. समाज सुधार को प्रोत्साहन – औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा विद्यालय के मनुष्य में समीक्षात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करती है। और वह प्रत्येक बात को ज्यों का त्यों न मानकर उसकी समीक्षा करता है तथा यदि उसमें कोई दोष पाता है, तो उसके रूप में परिवर्तन करने का प्रयास करता है।

14. सामुदायिक रुचियों और परम्पराओं को बनाये रखना–सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय शिक्षा योजना लागू करने का मुख्य प्रायोजन सभी नागरिकों में रुचियों और परम्पराओं की एकता बनाये रखना है। भारत के प्रसंग में यह बात और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ अनेक प्रजातियों और धर्मों के लोग पाए जाते हैं। यह कार्य शिक्षा में विशेष पाठ्यक्रम की व्यवस्था तथा नाना प्रकार के पाठ्यक्रमेत्तर कार्यक्रमों के द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

प्रश्न 30. वृत्तिक नैतिकता से आप क्या समझते हैं तथा नैतिकता के आयामों को बताइए।
(ग्वालियर 2022)

उत्तर–वृत्तिक नीतिशास्त्र का सम्बन्ध उन मानकों और नैतिक आचरण से है जो किसी वृत्ति और उसके सदस्यों को दिशा–निर्देश देते हैं। **कैम्ब्रिज डिक्शनरी ऑफ फिलॉसफी** के अनुसार, वृत्तिक नीतिशास्त्र उन न्यायोचित नैतिक मूल्यों को इंगित करता है जो वृत्तिकों के कार्यों का नियमन करते हैं। एक आदर्श वृत्तिवान बनने के लिए व्यक्ति को अच्छी शिक्षा, प्रशिक्षण तथा अनुभव अर्जित करने पड़ते हैं। इस बौद्धि कौशल पर आधारित सेवा प्रदान करना ही उसकी वृत्ति है।

वृत्ति– अतीत में वृत्ति शब्द जानवरों के व्यवहार के बारे में कई विशिष्ट अवधारणाओं के लिए इस्तेमाल किया गया है। वृत्ति और सहज शब्दों ने कई अलग–अलग संदर्भों में विभिन्न अर्थ पैदा किए हैं जिनमें उनका उपयोग किया गया है। रोजमर्रा की भाषा में उनके विविध अर्थ और भावार्थ सामने आते हैं। उदाहरण के लिए, वृत्ति का तात्पर्य प्रतिवर्ती या रूढ़िबद्ध व्यवहार से हो सकता है। सहज ज्ञान युक्त झुकाव में, जन्मजात की योग्यता या स्वभाव से गहरे आवेग (उदाहरण के लिए ''मातृ वृत्ति'') से अभिनय के उन तरीकों में हो सकता है। जिनमें शामिल होना प्रतीत नहीं होता है उनके विकास में सीखना या अनुभव या वह ज्ञान जो जन्मजात या अवचेतन रूप से अर्जित किया गया हो।

वृत्ति की अवधारणा इस तथ्य से जटिल है कि यह व्यावहारिक आनुवंशिक, विकासात्मक, प्रेरक, कार्यात्मक और संज्ञानात्मक इंद्रियों तक फैली हुई है। इस बात की भी संभावना है कि इनमें से एक इंद्रिय एक या अधिक को शामिल करने के लिए की जा सकती है। उदाहरण के लिए इस बात का सबूत है कि व्यवहार का एक पैटर्न आनुवंशिक आधार पर निर्भर करता है। अक्सर यह माना जाता है कि यह पैटर्न अनसीखा है। इस तर्क की क्रांति को सामान्य ज्ञान से धोखा दिया जाना चाहिए था।

नैतिकता– नैतिक सिद्धांतों, नियमों और आचरण की प्रणाली है। नैतिकता एक ''नैतिकता है'' नैतिकता शब्द लैटिन एथिकान या ग्रीक 'एथिकोस' से उभरा है।

इन दो शब्दों की उत्पत्ति 'लोकाचार' से है। जिनका अर्थ चरित्र है। व्यवहार के विपरीत चरित्र एक आंतरिक या बुनियादी कारक है जो सबसे भीतर से निकलता है। सरल शब्दों में नैतिकता, नैतिक सिद्धान्तों और सामाजिक आचरण नियमों का एक ग्रंथ या विज्ञान है।

नैतिकता के दायरे में केवल स्वैच्छिक मानवीय क्रियाएँ शामिल हैं। इसका अर्थ है मनुष्य द्वारा होशपूर्वक, जानबूझकर और परिणाम की दृष्टि से किये गए कार्य। यह मानव आचरण के इस हिस्से पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है जिसके लिये मनुष्य की कुछ व्यक्तिगत जिम्मेदारी है। नैतिकता अच्छे और बुरे, सही और गलत, गुण और दोष, न्याय और अपराध जैसे कुछ विषयों को परिभाषित करके मानव नैतिकता की चुनौतियों का समाधान करना चाहती है। नैतिक दर्शन बौद्धिक जाँच के विषय के रूप में नैतिक मनोविज्ञान, वर्णनात्मक नैतिकता, और मूल्य सिद्धान्त के विज्ञान से जुड़ा है। नैतिक दर्शन को नैतिकता भी कहा जाता है। जिसमें हमारे समाज में अच्छे और बुरे आचरण की अवधारणाओं को व्यवस्थित करना, बचाव करना, और बढ़ावा देना शामिल है।

अच्छे और बुरे की धारणाएँ परिप्रेक्ष्य का विषय है, और नियमित रूप से बदलती रहती है यह नैतिकता द्वारा किया गया अध्ययन है। जो एक सामान्य दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास करता है। जो यह निर्धारित करता है कि क्या सही और क्या गलत माना जाता है।

अच्छे और बुरे गुण और दोष, निष्पक्षता और अन्याय और अन्य संबंधित मुद्दों से संबंधित मानवीय नैतिकता के प्रश्नों को नैतिकता के चार प्राथमिक पहलुओं द्वारा संबोधित किया जाता है, जिन्हें नैतिकता के आयाम कहा जाता है।

नैतिकता के चार प्रमुख आयाम हैं–

(1) मानक या अनुदेशात्मक नैतिकता। (2) वर्णनात्मक नैतिकता। (3) मेटा–नैतिकता। (4) अनुप्रयुक्त नैतिकता।

(1) मानक या अनुदेशात्मक नैतिकता–यह नैतिक मान्यताओं का अध्ययन है जो यह नियंत्रित करता है कि व्यक्तियों को समाज में कैसे कार्य और व्यवहार करना चाहिए। इसके अलावा, यह आचरण की धार्मिकता और गलत मानदण्डों की जाँच करता है। यदि कोई निर्धारित मानदण्डों का उल्लंघन करता है, तो सजा के आधार के साथ–साथ ऐसा करने के लिए स्पष्टीकरण भी है।

(2) मेटा–नैतिकता–मेटा–एथिक्स उन समस्याओं से संबंधित है। जो यह निर्धारित करती है कि कोई दिया गया विषय या वस्तु नैतिक रूप से सही है या गलत है। यह हमारी समझ के बारे में पूछता है कि हम कैसे समझते हैं कोई निर्णय, कार्य या उद्देश्य अच्छा है या नकारात्मक।

(3) वर्णनात्मक नैतिकता–नैतिकता का यह आयाम नैतिक स्पेक्ट्रम के कम बौद्धिक छोर पर है। यह इस बारे में ज्ञान इकट्ठा करता है कि लोग कैसे रहते हैं उनकी परिवेश में होने वाली घटनाओं के पैटर्न का अवलोकन करता है और इन अवलोकनों के आधार पर व्यापक निर्णय लेता है।

(4) अनुप्रयुक्त नैतिकता–यह भी नैतिकता का विषय है, जिसका उपयोग रोजमर्रा की जिंदगी में काम और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है। इसका संबंध नैतिक निर्णयों सहित निजी और सार्वजनिक जीवन में विशिष्ट नैतिक दुविधाओं की दार्शनिक जाँच में है। यह गर्भपात, शिशुहत्या, पशु अधिकार, पर्यावरण संबंधी चिंताएँ समलैंगिकता, परमाणु हथियार आदि जैसे विशिष्ट कठिन विषयों की जाँच के लिए मेटा–एथिक्स और मानक नैतिकता के वैचारिक उपकरणों का उपयोग करता है।

प्रश्न 31. माध्यमिक शिक्षक किस प्रकार विद्यालय और समुदाय के बीच की कड़ी है ?

(उज्जैन 2022)

उत्तर–आदर्श शिक्षक को मनुष्यों का निर्माता, राष्ट्र निर्माता, शिक्षा पद्धति की आधारशिला तथा समाज को गति प्रदान करने वाला आदि सबकुछ माना गया है। साधारणत: माध्यमिक विद्यालयी शिक्षक में बालकों को समझने की शक्ति, उनके साथ उचित रूप में कार्य करने की क्षमता, शिक्षण–योग्यता कार्य करने की इच्छा शक्ति और सहकारिता आदि गुणों की अपेक्षा की जाती है। ऐसे गुण सामान्यत: न तो प्रत्येक शिक्षक में मिलते हैं और न शिक्षण प्रत्येक व्यक्ति का कार्य रही है। वस्तुत: यह कार्य वही व्यक्ति कर सकता है।

जब हम शिक्षक को समाज निर्माण का दायित्व सौंपते हैं तो शिक्षक को अपने व्यक्तित्व में इन गुणों का समावेश करना चाहिए। इन गुणों का व्यापक प्रभाव शिक्षक की स्वयं की पहचान, जीवन दशा एवं मूल्यों पर पड़ता है। अत: शिक्षक के व्यक्तित्व विकास संबंधी विविध गुणों एवं आयामों का वर्णन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है–

(1) आदर्शवादिता–एक शिक्षक के व्यक्तित्व का प्रमुख आयाम आदर्शवादिता होना चाहिए क्योंकि आदर्शवादी ज्ञान एवं व्यवस्था के अभाव में समाज को संतुलित रूप में विकसित नहीं किया जा सकता। एक आदर्शवादी शिक्षक ही समाज एवं मानवहित के लिए पूर्ण समर्पण भाव से कार्य कर सकता है। आदर्शवादी चिन्तन ही शिक्षक को समाज में भ्रष्टाचार एवं बुराइयों से लड़ने की शक्ति प्रदान करता है, जिससे शिक्षक अपने दायित्वों का भली प्रकार निर्वहन कर सकता है।

(2) सामाजिक कौशल–शिक्षक को अपना सम्पूर्ण कार्य सामाजिक क्षेत्र में करना होता है इसलिए शिक्षक को सर्वप्रथम सामाजिक कौशलों के बारे में व्यापक रूप से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए क्योंकि सामाजिक कौशलों के आधार पर ही समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त की जा सकती है। इसके उपरान्त एक शिक्षक को सामाजिक कौशलों का विकास अपने अन्तर्गत करना चाहिए जिससे वह समाज की आकांक्षाओं को समझ सके। शिक्षक को अपने व्यक्तित्व में सामाजिक कौशलों का

समावेश करने के बाद इनका ज्ञान अपने छात्रों को भी कराना चाहिए जिससे वे अपने जीवन में कुशल सामाजिक सदस्य बन सकें।

(3) एक शिक्षक व्यक्तित्व के माध्यम से समाज के लोगों को जागरुक करता है। सामाजिक सौहार्द के लिए भी शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके लिए उसको सर्वप्रथम जागरुकता के वास्तविक अर्थ का ज्ञान करना चाहिए। इसके उपरान्त जागरुकता के क्षेत्र निर्धारित करने चाहिए, जैसे–राजनीतिक जागरुकता, आर्थिक जागरुकता एवं शैक्षिक जागरुकता आदि। इन सभी प्रकार की जागरुकताओं को अपने व्यक्तित्व में समाहित करना चाहिए।

(4) एक शिक्षक विद्यालय एवं समुदाय की कड़ी है क्योंकि वह बच्चों को जीवन संघर्ष के लिए तैयार करता है। इसके पश्चात् प्रत्येक शिक्षक संघर्ष शक्तियों को अपने कार्य व्यवहार एवं व्यक्तित्व में स्थान देना चाहिए क्योंकि संघर्ष शक्ति ही व्यक्ति को समाज में उच्च स्थान प्रदान करती है और एक शिक्षक संघर्ष एवं परिश्रम की आदत का विकास अपने छात्रों में अनिवार्य रूप से करता ही है। जिससे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ सके।

(5) समर्पण की भावना–समर्पण की भावना से कार्य करने पर व्यक्ति प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है। एक शिक्षक को सर्वप्रथम यह समझना चाहिए कि उसके व्यक्तित्व के लिए समर्पण की भावना क्यों आवश्यक है ? तथा उसको किस प्रकार विकसित किया जा सकता है ? इसके उपरान्त शिक्षक को अपने व्यक्तित्व में पूर्ण मनोयोग से कार्य करने की भावना का विकास करना चाहिए। साथ ही उसे छात्रों को भी यह सिखाने का प्रयास करना चाहिए कि मनोयोग या समर्पण के साथ कार्य करने से कार्य की सफलता में वैधता एवं विश्वसनीयता उत्पन्न होती है।

(6) उचित सम्प्रेषण–शिक्षक को सर्वप्रथम सम्प्रेषण का महत्व समझना चाहिए और अपनी सम्प्रेषण प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन लाने चाहिए क्योंकि एक शिक्षक उस समय तक अपने कार्य को प्रभावी रूप में सम्पन्न नहीं कर सकता है जब तक कि वह अपने विचारों को क्रमबद्ध रूप में दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करने की योग्यता न रखता हो। इसके साथ–साथ शिक्षक को दूसरों के विचारों को भी समझना चाहिए। इस प्रकार उसको अपने व्यक्तित्व में सम्प्रेषण के गुण का समावेश करना चाहिए तथा छात्रों को भी सम्प्रेषण की योग्यता सिखानी चाहिए।

(7) स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मन–एक शिक्षक के माध्यम से यह ज्ञात होता है "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निवास होता है।" इस कहावत के बारे में शिक्षकों को पूर्ण विचार करना चाहिए। इसके उपरान्त अपने मन एवं शरीर को स्वस्थ रखने के उपायों के अनुरूप बनना चाहिए।

(8) वैज्ञानिक दृष्टिकोण–एक शिक्षक समाज को विद्यालय में जोड़ने की प्रक्रिया में अपने विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास कर समाज के हित में कार्य करने का प्रयास करता है।

सर्वप्रथम एक शिक्षक को वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अवधारणा को समझने का प्रयास करना चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उद्देश्य व्यक्ति को अन्धविश्वास एवं रूढ़िवादिता से दूर रखना होता है तथा उसके कार्य एवं व्यवहार में विवेकशीलता एवं तर्कशीलता का समावेश करना होता है, इसलिए एक शिक्षक को सर्वप्रथम अपने व्यक्तित्व एवं कार्य व्यवहार में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का व्यापक प्रचार–प्रसार करना चाहिए।

(9) आत्म–विश्वास–एक शिक्षक को अपने व्यक्तित्व में आत्म–विश्वास का विकास करना चाहिए तथा आत्मविश्वास की आवश्यकता एवं महत्व पर व्यापक विचार करना चाहिए। आत्मविश्वास के आधार पर ही शिक्षक अपने व्यापक दायित्वों का निर्वहन कर सकता है। आत्मविश्वास के अभाव में शिक्षक न तो अपने दायित्वों का पालन कर सकता है और न ही वह छात्रों का सर्वांगीण विकास कर सकता है। अतः शिक्षक को व्यक्तित्व के इस महत्वपूर्ण तथ्य को गम्भीरता से समझना चाहिए।

(10) व्यापक दृष्टिकोण –एक शिक्षक को व्यक्तित्व के प्रमुख तत्व व्यापक दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए। व्यापक दृष्टिकोण ही हमें पशु से मानव बनाता है अन्यथा हमारा जीवन भी पशुओं की तरह स्वार्थ एवं अपने पोषण से सम्बन्धित हो जाएगा। व्यापक दृष्टिकोण को समझने के उपरान्त शिक्षक को इस गुण को अपने व्यक्तित्व एवं कार्य व्यवहार में समाहित करना चाहिए। इसके पश्चात् छात्रों में भी व्यापक दृष्टिकोण सम्बन्धी कार्य प्रदान करने चाहिए। जिससे वे आगे चलकर समाज में उचित व्यवहार कर सकें।

प्रश्न 32. प्रचलित परीक्षा प्रणाली में सुधारों की चर्चा कीजिए। **(ग्वालियर 2022)**

उत्तर–हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति को सात आततायी या शत्रु बुरी तरह से जकड़े हुए हैं। शरीरिष्क, दण्ड, परीक्षा, कुरुप, भवन, अत्यधिक कार्य, स्वाभिमान रहित अध्यापक तथा संकुचित मनोवृत्ति के माता–पिता। बेचारे विद्यार्थी को इतनी अधिक पुस्तकें पढ़नी पड़ती है, इतने प्रकार के विषयों का अध्ययन करना पड़ता है कि उनका दिमाग, शरीर और मन सब कुछ बुरी तरह से पिस जाता है। भाँति–भाँति के दण्ड और हर समय प्रस्तुत परीक्षाओं का भय उसे खाये जाता है। सिवाय पढ़ने और पढ़कर परीक्षा पास करने के वह कुछ और सोच ही नही सकता। गन्दे और तंग मकानों में गन्दे टाटों या गन्दी और भद्दी मेज–कुर्सियों पर बैठकर उसे पढ़ना पड़ता है, अतः उसके लिए स्वच्छ वायुमण्डल एक दुर्लभ पदार्थ है। स्कूल में पढ़ाने वाले मास्टर विद्यार्थी को केवल इसलिए पढ़ाते हैं कि उसकी नौकरी बनी रहे। उसके भले–बुरे से उन्हें कोई मतलब नहीं। वे हमेशा अपने ट्यूशन की चिन्ता में लगे रहते हैं और धन कमाने के लालच में अपने स्वाभिमान, गुरुत्व और शिक्षक पदवी के महत्व को गँवा बैठते हैं।

आजकल हमारी शिक्षा की व्यवस्था वास्तव में बहुत दोषयुक्त हो गई है। इसको मिटाकर हमें ऐसी शिक्षा–दीक्षा का विधान करना होगा जो हमें स्वयं अपने ऊपर विजय प्राप्त कर सकने में समर्थ बना सके। ज्ञान का अन्तिम लक्ष्य चरित्र निर्माण ही होना चाहिए। इसलिये हमारी शिक्षा को तीन भागों में विभाजित किया जाना चाहिए–शारीरिक शिक्षा, मानसिक शिक्षा, और आध्यात्मिक शिक्षा। हम स्वस्थ्य हो, हमारे स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क हो और हमारा स्वस्थ मन जीवन के स्वास्थ्य पर विचार कर सकने में समर्थ हो।

मनुष्य में जब तक अपनी राष्ट्रीय, धार्मिक, जातीय, सामाजिक और पारिवारिक मान्यताओं अथवा परम्पराओं के प्रति समान शुद्धि नहीं होगी तब तक व्यक्तिगत अथवा सामूहिक उन्नति की आशा दुराशा मात्र है।

शिक्षा का यह भी प्रभाव होना चाहिए कि हम विश्व के प्रत्येक पदार्थ में अपने स्वरूप आदर्श न पावे तथा उसके प्रति प्रेम भाव रखें। प्रत्येक जाति, प्रत्येक समुदाय, प्रत्येक धर्म तथा प्रत्येक राष्ट्र के लिए हमारे हृदय में प्रेम का भाव हो। हम किसी को न तो बुरा समझे न किसी से घृणा करें। सबको अपने ही समान स्वाभिमानी समझें।

अध्यात्मिक शिक्षा का एक परिणाम यह भी होना चाहिए कि हमारे अन्दर संसार के सभी असहाय, निरूपाय, दलित, पीड़ित, शोषित, दुःखी, निर्धन व्यक्तियों के प्रति दया एवं करुणा के भाव हो। क्रोध और घृणा के पात्र न समझकर हम उनके प्रति दया रखें। निर्धन और दुःखी होना एक दुर्भाग्य है और उसके साथ हमारी उदारता का संयोग होना ही उचित है। इतना ही नहीं हम दीन–दुखियों पर दया करते ही रह जायें, वरन् परिस्थिति तथा अपनी शक्ति के अनुसार उनके दुःख–दर्द में हाथ बँटना भी आवश्यक है।

●●

इकाई 4

अध्यापक शिक्षा तथा माध्यमिक विद्यालय पाठ्यक्रम

लघु एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. शिक्षक शिक्षा की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए। **(इंदौर 2016)**

उत्तर—अध्यापक शिक्षा का अर्थ—अध्यापक या शिक्षक शिक्षा एक ऐसी शैक्षिक व्यवस्था है जिसमें अध्यापकों को इस प्रकार से शिक्षित करने का प्रयास किया जाता है कि उनके द्वारा ज्ञान तथा मूल्यों का एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक इस प्रकार हस्तांतरण किया जाये कि उसमें शैक्षणिक व विकासात्मक उत्तरदायित्वों का आरोपण किया जा सके और वो वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक दक्षता, प्रयोगधर्मी सोच तथा मानवीय प्रवृत्ति विकसित कर सके। क्योंकि अध्यापन को एक व्यवसाय मान लिया गया है। यह जरूरी है कि अध्यापक शिक्षा की व्यवस्था भी इस प्रकार हो कि उसकी व्यावसायिक दक्षता व संवेगात्मक पहलू की ओर भी ध्यान दिया जा सके।

यह एक व्यवस्था है जो लोगों को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षक की आधुनिक तथा बदलती हुई भूमिका का निर्वाह करने की योग्यता व दक्षता को ग्रहण करने के लिए शिक्षित करती है। इस अर्थ के अनुसार शिक्षक शिक्षा मात्र एक कार्यक्रम नहीं है, बल्कि एक मिशन है।

परिभाषाएँ— (1) प्रो.एस.एन. मुखर्जी के अनुसार—"विभिन्न शिक्षा केन्द्रों में सुधार की आवश्यकता है और इस उद्देश्य हेतु अध्यापक शिक्षा एक बेहतर शब्द है क्योंकि यह अध्यापक निर्माण संबंध क्षेत्र को विस्तृत बनाती है।"

(2) मुनरो के अनुसार—"अध्यापक शिक्षा का अर्थ है, संपूर्ण शिक्षापूर्ण अनुभव जो विद्यालयों में शिक्षण पद के लिए व्यक्ति को तैयार करती है परंतु यह शीर्षक शैक्षणिक संस्थानों द्वारा आयोजित विभिन्न कोर्स और अन्य अनुभवों संबंधी कार्यक्रमों पर लागू होता है जो शिक्षक और अन्य शैक्षणिक सेवाओं हेतु व्यक्ति को तैयार करने के उद्देश्य के लिए बनाए जाते हैं, ये कार्यक्रम अध्यापक महाविद्यालयों, सामान्य विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में लागू होते हैं।"

(3) गुड के शिक्षाकोष के अनुसार—"अध्यापक शिक्षा में वे सभी अनुभव तथा औपचारिक एवं अनौपचारिक क्रियाएँ सम्मिलित हैं जो किसी भी व्यक्ति को शिक्षण व्यवसाय का दायित्व संभालने की योग्यता प्रदान करती है।"

प्रश्न 2. अध्यापक शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।

उत्तर — वैदिक काल में अध्यापन कार्य को आध्यात्मिक कार्य माना जाता था तथा उस समय की सामाजिक व्यवस्था में सभी आदर्श यथा सामाजिक, व्यक्तिगत, राजनैतिक, नैतिक व धार्मिक आदर्श अध्यापक के चारों ओर केन्द्रित रहते थें। अध्यापक को सभी आदर्शों का जनक माना जाता था। इसलिए जहाँ एक ओर अध्यापक का ज्ञान के किसी एक विशिष्ट क्षेत्र अथवा अनेक क्षेत्रों में निपुण होने की अपेक्षा की जाती थी, वहीं दूसरी ओर उसे अत्यंत उच्च नैतिक चरित्र का स्वामी भी माना जाता था।

वैदिक काल के अन्तिम चरण में अध्यापन व्यवसाय पैतृक कार्य बनने लगा था तथा उसके बाद, वंश परम्परागत व्यवसाय के रूप में अनेक सदियों तक ब्राह्मण समुदाय अध्यापन कार्य करता रहा।

वैदिक काल एवं मध्यकाल तक अध्यापक शिक्षा या अध्यापक प्रशिक्षण उपेक्षित ही रहा।

ब्रिटिश काल में अध्यापन एक वृत्ति के रूप में विकसित होने लगा तथा शिक्षा के प्रसार के साथ योग्य अध्यापकों की माँग बढ़ने लगी तथा अध्यापन कार्य में संलग्न व्यक्तियों के प्रशिक्षण की आवश्यकता प्रतीत होने लगी।

(1) 1819 में कलकत्ता विद्यालय समाज ने प्राथमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण का कार्य प्रारंभ किया।

(2) इसके बाद 1824 में मुंबई में देशी विद्यालय समाज ने तथा 1826 में मद्रास शिक्षा समाज ने भी प्राथमिक अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की।

(3) सन् 1882 तक भारत में कुल 106 प्राथमिक अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्र तथा मद्रास एवं लाहौर में स्थित दो माध्यमिक अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्र थे।

(4) 1882 में **हन्टर आयोग** ने अध्यापक प्रशिक्षण के संबंध में अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये जिसके फलस्वरूप 19वीं सदी के अंतिम वर्षों में अनेक प्रशिक्षण विद्यालय तथा महाविद्यालय खुले।

(5) 1904 में **लार्ड कर्जन** ने अपने प्रस्ताव में अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या में वृद्धि करने, प्रशिक्षण की गुणवत्ता को बढ़ाने, स्नातक से कम योग्यता वाले प्रशिक्षणार्थियों के लिए दो वर्षीय तथा स्नातकों के लिए एक वर्ष का प्रशिक्षण प्रारंभ करने, प्रशिक्षण महाविद्यालयों के अभ्यासात्मक विद्यालय संबंधित करने तथा प्रशिक्षण के दौरान सैद्धांतिक व व्यावहारिक दोनों पक्षों का ज्ञान देने जैसे सुझाव भी रखे।

(6) सन् 1982 में भारतीय शिक्षकों एवं अध्यापक शिक्षा के संबंध में सदैव स्मरणीय रहेगा क्योंकि इस वर्ष 5 सितम्बर को भारत सरकार ने अध्यापक व्यवसाय के उद्देश्यों, अध्यापकों की भूमिका, अध्यापकों के प्रशिक्षण, अध्यापकों के कल्याण, अध्यापकों के लिए आचार–संहिता, अध्यापकों की स्थिति आदि के संबंध में अध्ययन के लिए तथा परामर्श देने के लिए दो आयोगों–अध्यापकों के लिए राष्ट्रीय आयोग प्रथम व द्वितीय का गठन किया। प्रथम आयोग के अध्यक्ष **डी.पी. चट्टोपाध्याय** थे तथा इन्हें स्कूल स्तर के अध्यापकों के संबंध में कार्य करना था। दूसरा आयोग उच्चशिक्षा स्तर के लिए था। इसके अध्यक्ष **प्रो. रईस अहमद** थे।

(7) भारत सरकार ने 1986 में घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत् प्रत्येक जिला में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान खोलने का प्रावधान किया गया।

(8) 1993 में पारित अधिनियम के आधार पर राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् का गठन किया गया है।

(9) वर्तमान में माध्यमिक स्तर के अध्यापकों की शिक्षा, प्रशिक्षण व अनुसंधान इस परिषद् के अधिकार क्षेत्र में आ गया है। निः संदेह स्वतंत्रता के उपरांत भारतवर्ष में अध्यापक प्रशिक्षण के क्षेत्र में काफी विकास हुआ है।

प्रश्न 3. अध्यापक शिक्षा आज विभिन्न दृष्टिकोण से विचार करने पर क्यों आवश्यक मानी जाती है ? स्पष्ट कीजिए। **(ग्वालियर 2021; उज्जैन 21)**

***अथवा*, शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था एवं शिक्षकों की भूमिका लिखिए।** **(ग्वालियर 2021)**

***अथवा*, शिक्षक शिक्षा की आवश्यकता और महत्व पर प्रकाश डालिए।** **(उज्जैन 2021)**

उत्तर–प्राचीन काल में अध्यापन योग्यता को एक जन्मजात प्रकृति प्रदत्त योग्यता स्वीकार किया जाता था। उस समय की मान्यता थी कि अध्यापक बनने वाला व्यक्ति जन्म से ही अध्यापन

संबंधी प्रतिभा से संपन्न होता है। उसे किसी भी प्रकार के औपचारिक अथवा अनौपचारिक प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है। इसके साथ यह भी कहा जाता है कि किसी प्रकार के प्रशिक्षण को देकर अच्छे अध्यापक तैयार करना संभव नहीं है अर्थात् अध्यापक पैदा होते हैं न कि तैयार किये जाते हैं, परंतु 19 वीं शताब्दी के अन्त तक विश्व के लगभग सभी देशों में अध्यापक के जन्मजात होने संबंधी मान्यता का खण्डन किया जाने लगा तथा धीरे–धीरे सभी देशों में स्वीकार किया जाने लगा कि प्रशिक्षण देकर श्रेष्ठ व सुयोग्य अध्यापक तैयार किये जा सकते हैं।

दूसरे शब्दों में, अध्यापकों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण की आवश्यकताओं पर जोर दिया जाने लगा। पहले विषय–वस्तु में निपुणता ही अध्यापक बनने के लिए आवश्यक थी, परंतु बाद में शिक्षण योग्यता को भी आवश्यक माना जाने लगा। वास्तव में बाल–मनोविज्ञान तथा अध्यापन विज्ञान के विकास में साथ–साथ अध्यापकों के संबंध में पुरानी धारणा परिवर्तित होने लगी तथा ज्ञानार्जन व ज्ञान प्रदान करने की योग्यता को भिन्न–भिन्न स्वीकार किया जाने लगा। अब यह स्वीकार करना गलत होगा कि विषय विशेष में निपुण व्यक्ति उस विषय का शिक्षण भी प्रभावशाली ढंग से कर सकता है। अब शिक्षण को ऐसा कार्य माना जाता है जिसको करने के लिए शिक्षण कला का सैद्धान्तिक ज्ञान तथा व्यावहारिक अभ्यास आवश्यक है।

किसी भी अध्यापक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उन बालकों को अच्छी तरह से समझता हो जिन्हें वह पढ़ा रहा है। शिक्षा को बाल केन्द्रित मानने के कारण यह आवश्यक है कि अध्यापक पाठ्य–वस्तु के साथ–साथ बालकों की प्रकृति को भी अच्छी तरह से समझे। विभिन्न आयु वर्गों के बालकों में विकास व वृद्धि किस प्रकार से होती है, बालकों की आवश्यकताएँ क्या हैं, बालक किस प्रकार सीखते हैं, बालकों को सीखने के लिए प्रोत्साहित कैसे किया जा सकता है, बालकों में वांछित अभिवृत्ति व मूल्यों को कैसे विकसित किये जा सकते हैं, बालकों के संवेग को कैसे नियंत्रित, परिवर्तित व संशोधित किये जा सकते हैं, बालकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कैसे किया जा सकता है–जैसे अनेकानेक प्रश्नों का उत्तर, बाल–मनोविज्ञान व शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन के उपरांत ही अध्यापक जान सकता है। एक शिक्षित व प्रशिक्षित अध्यापक इन प्रश्नों का उत्तर खोजकर बालक के विकास को सरलता व सुगमता से संभव करता है। जबकि एक अप्रशिक्षित अध्यापक मनोविज्ञान के अभाव में अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह भली–भाँति प्रकार से करने में स्वयं को असमर्थ पाता है।

शिक्षित व प्रशिक्षित अध्यापक कक्षा शिक्षण को रोचक, जीवन्त व प्रभावशाली बनाने में समर्थ होता है। वह मनोविज्ञान शिक्षण विधियों तथा शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग करके अपने छात्रों को सहजता, सरलता व सुगमता से स्थायी ज्ञान प्रदान कर सकता है। इसके विपरीत अप्रशिक्षित अध्यापक अपने शिक्षण को नीरस, कृत्रिम व अरुचिपूर्ण ढंग से सम्पन्न करके छात्रों को शिक्षा के प्रति विरक्त कर देता है।

एक अच्छे अध्यापक के लिए न केवल कक्षा शिक्षण में प्रवीण होना आवश्यक है वरन् उसे अध्यापक के रूप में अन्य अनेक दायित्वों का पालन करना होता है। परीक्षा व मूल्यांकन, अनुशासन, विद्यालय प्रशासन, पाठ्य–सहगामी क्रियाओं का संचालन, समाज में शिक्षा की महत्ता की स्थापना जैसे कार्य भी अध्यापक को करने होते हैं।

स्पष्ट है कि अध्यापकों के लिए सेवापूर्व व सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा की अति आवश्यकता है। अध्यापक शिक्षा प्राप्त करके ही वे अपने गुरुतर दायित्वों का निर्वाह करने में समर्थ हो सकेंगे।

प्रश्न 4. प्राथमिक स्तर पर कार्यरत अध्यापकों के अध्यापक शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए। **(ग्वालियर 2019)**

***अथवा*, सेवारत अध्यापक शिक्षा का अर्थ एवं भूमिका लिखिए।**

(जबलपुर 2021; छिंदवाड़ा 22; भोपाल 22)

उत्तर–प्राथमिक स्तर विकासात्मक अवस्था का द्वितीय चरण होता है जो पूर्व प्राथमिक के पश्चात् बच्चों में समाज, परिवार एवं समुदाय के प्रति एक अवधारणा प्रदान करते हुए मानवीय अपेक्षाओं से परिचित कराता है। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के द्वारा इस स्तर पर अध्यापक शिक्षा के लिए जिन विशिष्ट उद्देश्यों को निर्धारित किया जाता है वे निम्नानुसार हैं–

1. शिक्षा के प्राथमिक स्तर से संबंधित मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक आधारभूत तथ्यों के प्रति अवबोध भावी अध्यापक/अध्यापिकाओं में उत्पन्न करना।
2. बच्चों के लिए उपयोगी अधिगम अनुभवों को व्यवस्थित करने के लिए वांछित संसाधनों का प्रबंध करने की क्षमता उनमें उत्पन्न करना।
3. विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की देखभाल हेतु उपयुक्त विधि एवं तकनीकों से भावी अध्यापक/अध्यापिकाओं को परिचित कराना।
4. बच्चों में जानने की इच्छा, कल्पनाशक्ति और सृजनात्मकता को विकसित करने के लिए आवश्यक कौशलों को प्राप्त करने में भावी अध्यापकों की सहायता करना।
5. सामाजिक तथा संवेगात्मक समस्याओं को समझने तथा विश्लेषण करने की क्षमता भावी अध्यापक में विकसित करना।
6. उनमें सम्प्रेषण संबंधी कौशलों का विकास करना।
7. समुदाय के साथ अंतर्संबंध स्थापति करने की योग्यता का विकास करना।
8. अध्ययन अधिगम के क्षेत्र में शोधकार्यों की उपादेयता को समझते हुए उनमें क्रियात्मक शोध तथा नवाचारिक अभ्यास के प्रयोग में लाने की क्षमता का विकास कराना।
9. उन्हें पाठ्य–सहगामी क्रियाकलापों का आयोजन करने में सक्षम बनाना; जैसे–खेलकूद, स्पर्धा, शारीरिक व्यायाम आदि।

प्रश्न 5. माध्यमिक स्तर के अध्यापक शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

(ग्वालियर 2021)

***अथवा*, भारत में शिक्षक शिक्षा के स्तर उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।** **(रीवा 2022)**

उत्तर–माध्यमिक स्तर में कक्षा 6 से लेकर कक्षा 10 को स्वीकृत किया जाता है। इस स्तर पर अध्यापक शिक्षा के विशिष्ट उद्देश्य परिषद् के अनुसार निम्नानुसार हैं–

1. भावी अध्यापक/अध्यापिकाओं में माध्यमिक शिक्षा के दर्शन, प्रकृति तथा उद्देश्यों के बारे में अवबोध विकसित करना।
2. छात्रों की मानसिकता तथा मनोविज्ञान को समझने की शक्ति उनमें उत्पन्न करना।
3. उनमें समाजीकरण की प्रक्रिया के बारे में स्पष्ट अवधारणा उत्पन्न करना।
4. माध्यमिक स्तरोपयोगी कार्य, पाठ्यक्रम विकास, पाठ्यक्रम के अनुरूप अध्यापन तथा मूल्यांकन आदि में दक्षता को प्राप्त करने में भावी अध्यापक अध्यापिकाओं की सहायता करना।
5. माध्यमिक स्तर पर पढ़ायें जाने वाले विषयों (जिनसे वे संबंधित हों) के कार्य–विश्लेषण करने में भावी अध्यापक/अध्यापिकाओं को सक्षम बनाना।
6. छात्रों के मार्गदर्शन तथा परामर्श प्रदान करने का कौशल उनमें विकसित करना।

7. ज्ञान की पुनर्संरचना तथा सृजनशील चिंतन करने के लिए छात्रों को प्रेरित करने की क्षमता का विकास करना।

8. शैक्षिक प्रणाली तथा कक्षागत परिस्थितियों को प्रभावित करने वाले कारक तथा शक्तियों से उन्हें परिचित कराना।

9. विशिष्ट अधिगमकर्ता समूहों की आवश्यकताओं से भावी अध्यापक/अध्यापिकाओं को परिचित कराना।

10. उन्हें अदा के रूप में सामुदायिक संसाधनों के उपयोग करने में कुशल बनाना ताकि उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग संभव हो सके।

11. संप्रेषण कौशल को विकसित करते हुए उनमें आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी को उपयोग करने की दक्षता विकसित करना।

12. उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में किये जाने वाले शोधकार्यों से विशेषकर क्रियात्मक अनुसंधानों से परिचित कराना ताकि विभिन्न शैक्षिक समस्याओं का समाधान करना उनके लिए संभव हो सके।

इस स्तर पर यह आवश्यक माना जाता है कि अध्यापक अपने छात्रों को घर, समुदाय तथा विद्यालय में अपनी भूमिकाओं को सफलतापूर्वक निभाने के लिए सक्षम बना सके। अतः अध्यापक शिक्षा के माध्यम से भावी अध्यापक/अध्यापिकाओं को इस हेतु तैयार किये जाने की भी आवश्यकता है।

इस स्तर पर छात्रों में वैयक्तिक विभिन्नता से स्पष्ट विभेद परिलक्षित होता है। अतः भावी अध्यापक को इस अंतर को समझने और उसके अनुरूप ही अधिगम अनुभवों को संरचित करने के लिए अभ्यास हेतु अवसर प्रदान करना, माध्यमिक स्तरीय अध्यापक शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य हो सकता है।

प्रश्न 6. उच्चतर माध्यमिक स्तरीय अध्यापक शिक्षा के विशिष्ट उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
(जबलपुर 2021; छतरपुर 21)

उत्तर—विद्यालयी शिक्षा में यह सर्वोच्च स्तर होता है। जिसके अंतर्गत प्रायः कक्षा 11वीं तथा 12 वीं को शामिल किया गया है। इस स्तर पर छात्रों का शारीरिक और मानसिक विकास पूर्ण होने लगता है। उनमें अमूर्त चिन्तन शक्ति, तर्क विचार क्षमता, आत्म–चेतना और पहचान, आदर्श गठन, प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति, चुनौतियों को स्वीकार करने तथा प्रचलित प्रथाओं के विरुद्ध अभिमत प्रस्तुत करने, शैक्षिक तथा व्यावसायिक आग्रह को पहचानने एवं व्यक्त करने आदि की क्षमताएँ विकसित होने लगती है। उनमें बाल्य तथा परिपक्व दोनों ही मानसिकताएँ देखने को मिलती हैं। संवेगात्मक संतुलन और प्रदर्शन में साम्य संबंधी कठिनाइयों को उन्हें सहन एवं वहन करना पड़ता है।

अतः इस स्तर पर शिक्षकों का दायित्व और भी अधिक हो जाता है। कहा जाता है कि किशोरावस्था तनाव एवं संघर्ष का काल होता है। अतः इस स्तर के अधिगमकर्ताओं के अध्यापकों के लिए उनकी आवश्यकताओं रुचि एवं अभिक्षमताओं एवं प्रवृत्तियों से परिचित होने की आवश्यकता होती है।

परिषद् ने इस स्तर पर अध्यापक शिक्षा के लिए जिन विशिष्ट उद्देश्यों को तय किया है वे निम्नलिखित हैं–

(1) शैक्षिक धाराओं की प्रकृति, उद्देश्य तथा दर्शन के प्रति भावी अध्यापक/अध्यापिकाओं में अवबोध उत्पन्न करना है।

(2) पाठ्यक्रम विकास, हस्तान्तरण, मूल्यांकन आदि के लिए आवश्यक कौशल एवं दक्षताओं को विकसित करना।

(3) कठिन संकल्पनाओं तथा विचारों को सम्प्रेषित करने की क्षमता विकसित करना।

(4) छात्रों को उच्च तथा स्वतंत्र अध्ययन के लिए प्रेरित करते हुए उनमें ग्रंथालयीय एवं प्रयोगशालीय कौशलों को विकसित करने की क्षमता उत्पन्न करना।

(5) छात्रों में अमूर्त, सृजनात्मक तथा आलोचनात्मक चिंतन करने की प्रवृत्ति को विकसित करने की क्षमता उत्पन्न करना।

(6) ज्ञान एवं अनुभवों को पुनर्संरचित करने की क्षमता का छात्रों में विकास करने की कुशलता उत्पन्न करना।

(7) विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक तथा अन्य परीक्षणों का निर्माण तथा उपयोग करने की योग्यता का विकास करना।

(8) छात्रो में शैक्षिक रुचि तथा मूल्यों को समृद्ध करने की क्षमता का विकास करना आदि।

इन उद्देश्यों के साथ ही यह भी आवश्यक है कि इस स्तर के अध्यापकों को शिक्षण तथा सम्प्रेषण की आधुनिक तकनीक एवं तकनीकी साधनों से परिचय अध्यापक शिक्षा के माध्यम से अवश्य ही प्राप्त हो सके। क्योंकि इनके ज्ञान और अनुभव के अभाव में इस स्तर पर प्रभावी ढंग से शिक्षण कार्य को सम्पन्न करना कठिन हो जाता है।

इस स्तर पर मात्र शैक्षिक ही नहीं बल्कि अनेकानेक व्यावसायिक विषयों का शिक्षण करना भी जरूरी हो जाता है। स्तर एवं गुणवत्ता को बनाये रखते हुए इस कार्य को करने के लिए विशेष दक्षताओं की आवश्यकता होती है। अध्यापक शिक्षा के माध्यम से इस दृष्टि से भावी अध्यापक को सम्पन्न बनाये जाने की आवश्यकता होती है।

सामाजिक विकास एवं समाजीकरण के पक्ष को प्रोन्नत करने का कार्य इस स्तर पर अध्यापक के लिए एक कर्त्तव्य हो जाता है जिसके अभाव में संकीर्णता, हीनमान्यता आदि जटिल एवं नकारात्मक भावनाएँ छात्रों में विकसित होने का भय बना रहता है। अत: अध्यापक शिक्षा का एक यह भी उद्देश्य इस स्तर पर हो जाता है कि मानसिक प्रक्रिया एवं कौशल को सीखने में वे सक्षम हो सके, जो भावी अध्यापक के रूप में इस स्तर पर सेवा देने वाले हैं।

प्रश्न 7. एन.सी.ई.आर.टी. (NCERT) के अनुसार अध्यापक शिक्षा के उद्देश्य का वर्णन कीजिए। **(जबलपुर 2016; उज्जैन 21; इंदौर 22)**

***अथवा*, एन.सी.ई.आर.टी. के कार्यों की विवेचना कीजिए।**

उत्तर—राष्ट्रीय शैक्षिक शोध तथा प्रशिक्षण संस्थान (NCERT) ने अध्यापक शिक्षा के सामान्य उद्देश्य ये निर्धारित किये हैं—

(1) प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे अध्यापकों में आधुनिक ज्ञान तथा अधिगम के सिद्धांतों के संदर्भ में शिक्षण की दक्षताओं का विकास करना।

(2) शिष्यों के प्रति उनके संपूर्ण विकास के दृष्टिकोण से निर्देशन प्रदान करने के लिए उनके अंदर बोध, रुचियाँ, अभिवृत्तियाँ तथा कौशलों का विकास करना।

(3) विद्यालय में होने वाली क्रियाओं, जीवन से संबंधित गतिविधियों व समाज के बीच अंतर्संबंधों को समझने की क्षमता का विकास करना।

(4) लोकतांन्त्रिक सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में शैक्षिक उद्देश्यों तथा भारतीय पृष्ठभूमि में प्रयोजनों को समझना ताकि वे इस दिशा में अध्यापकों की भूमिका को भली प्रकार से समझ सकें।

(5) प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे शिक्षकों में एक व्यावसायिक चेतना उत्पन्न करना, जिससे वे संबंधित जिम्मेदारियों व अपेक्षाओं को पूरा कर सकें।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने अध्यापक शिक्षा के विशिष्ट लक्ष्य या प्रयोजन भी गिनाए हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के माध्यम से भावी अध्यापकों में अधिगमार्थी, अधिगम क्रिया, व्यक्तिगत व अधिगम संबंधी समस्याएँ, सामाजिक अंतर्क्रिया आदि के विषय में ज्ञान तथा अवबोध विकसित करना।

2. कौशलपूर्ण तथा प्रभावशाली संचार का संगठन करने की दक्षताओं, पाठ्य–सहगामी क्रियाओं, माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु समुचित कार्यक्रमों तथा पाठ्यक्रमों से संबंधित क्रियाओं के अतिरिक्त विभिन्न शिक्षण विधियों का प्रयोग करने के लिए कौशलों का विकास करना।

3. उनमें स्वस्थ तथा सकारात्मक व्यावसायिक अभिवृत्ति, लोकतांन्त्रिक व राष्ट्रीय अभिवृत्ति तथा वैज्ञानिक व समस्या समाधान की प्रवृत्ति का विकास करना।

प्रश्न 8. अध्यापक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (N.C.T.E.) द्वारा निर्धारित उद्देश्यों का वर्णन कीजिए। **(इन्दौर 2016)**

***अथवा*, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् लिखिए।** **(ग्वालियर 2021)**

***अथवा*, NCTE की भूमिका पर टिप्पणी लिखिए।** **(छतरपुर 2022)**

***अथवा*, राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।** **(उज्जैन 2022)**

***अथवा*, शिक्षक शिक्षा के राष्ट्रीय परिषद के मानदंडों और कार्यों पर चर्चा करें।**

(भोपाल 2022)

***अथवा*, NCTE की स्थापना क्यों कि गई ? उसके कार्यों को लिखिए।**

(इंदौर 2022, 23; छिंदवाड़ा 22)

उत्तर–राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (एन.सी.टी.ई.) ने अध्यापक शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किये हैं जो निम्नलिखित हैं-

1. भारतीय संविधान द्वारा निर्देशित राष्ट्रीय मूल्यों और उद्देश्यों के विकास की क्षमता में वृद्धि करना।

2. अध्यापकों को इतना सक्षम बनाना कि वे सामाजिक परिवर्तन तथा आधुनिकीकरण के माध्यम या एजेन्ट बनने की क्षमता का विकास कर सकें।

3. अध्यापकों को सामाजिक सौहार्द्र की सुरक्षा व वृद्धि, मानव अधिकार व बाल अधिकारों के प्रति संवेदनशील बनाना।

4. भावी अध्यापकों को पूर्व–निर्धारित कार्य संपन्न करने के लिए सक्षम व व्यवसायरत् व्यक्ति बनाने के लिए तैयार करना।

5. भावी अध्यापकों को पर्यावरण, पारिस्थितिकी जनसंख्या, विधि साक्षरता जैसी अवधारणाओं के प्रति संवेदनशील बनाना।

6. अध्यापकों में ऐसी क्षमता पैदा करना जिससे वे विद्यार्थियों में तार्किक सोच तथा वैज्ञानिक प्रकृति का विकास कर सकें।

7. सामाजिक वास्तविकताओं के प्रति तार्किक जागरूकता उत्पन्न करना।

8. उसमें संगठन तथा व्यवस्थापन के कौशलों का विकास करना।

इनके अतिरिक्त कुछ सामान्य उद्देश्य भी शामिल किए गए हैं, जैसे–

1. भावी अध्यापकों को संचार के माध्यम के रूप में कार्य करने योग्य बनाना।

2. उसे शारीरिक शिक्षा प्रदान करने के योग्य बनाना।

3. जीवनपर्यन्त अनवरत अधिगम की प्रवृत्ति का विकास करना।

4. शैक्षणिक तथा खोज के सामर्थ्य का विकास करना।

5. सहयोगी शैक्षणिक गतिविधियों का संगठन करने की क्षमता प्रदान करना।
6. सकारात्मक अभिवृत्तियों के अनुभव तथा विकास की पुनर्रचना करना।
7. मूल्यों का अवबोध और उनका संचार तथा उनके लिए प्रतिबद्धता हेतु संवेदनशीलता का विकास करना।

प्रश्न 9. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) के कार्यों का वर्णन कीजिए। (उज्जैन 2022)

उत्तर–भारत में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना 1953 में राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर विश्वविद्यालयों की समुचित कार्य प्रणाली तथा उनकी आवश्यकताओं की व्यवस्था करने के लिए की गयी। शीघ्र ही 1956 में इसे स्वायत्तता प्रदान कर दी गयी। यूजीसी का प्रमुख कार्य विश्वविद्यालयों तथा उच्च शिक्षण संस्थाओं को अनुदान देना है। यद्यपि इसका सीधा संबंध शिक्षा महाविद्यालयों से नहीं है, किन्तु उन्हें अपने वित्तीय सहायता प्रदान करने के अधिकार के अंतर्गत प्रायः उनको भी आर्थिक सहायता उपलब्ध कराती रहती है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कार्य– विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उच्च शिक्षण संस्थाओं के संपूर्ण गुणात्मक प्रबंधन के लिए ये निम्नलिखित कार्य संपन्न करता है–

1. UGC का सबसे मुख्य कार्य योग्य महाविद्यालयों को अनुदान स्वीकृत करना है।
2. यह विश्वविद्यालय स्तर की अच्छी शिक्षण संस्थाओं के स्तरोन्नयन के लिए कार्य योजना तैयार करता है तथा उनको इन योजनाओं को कार्यरूप में परिणित करने में सहायता करता है।
3. यह अभिकरण इस प्रकार की शिक्षण संस्थाओं के विकास तथा रख–रखाव के लिए व्यवस्था में आने वाले व्यय के अतिरिक्त भी अनुदान स्वीकृत करता है।
4. यह केन्द्र व राज्य सरकारों को उनके कार्यक्षेत्र में आने वाले विश्वविद्यालयों के लिए अनुदान हेतु दिशा–निर्देश प्रदान करने का कार्य भी करता है।
5. यह किसी राज्य सरकार की एक विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिए पाँच वर्ष के लिए अनुदान स्वीकृत करता है।
6. यह अभिकरण शिक्षण तथा शोध कार्य के लिए टीचर फैलोशिप (Teacher fellowship) कार्यक्रमों तथा शोध अनुदान के रूप में धनराशि स्वीकृत करता है।
7. ये संस्थागत स्तर के अतिरिक्त प्रोजेक्ट्स आदि संचालित करने के लिए अवकाश प्राप्त प्रोफेसर्स को भी अनुदान देने का काम करता है।
8. यह शिक्षण संस्थानों को अपने स्तर में सुधार लाने के लिए कार्य योजना तैयार करने में तथा उनकों कार्यरूप में परिणित करने में उच्च शिक्षण संस्थाओं को सलाह देता है।
9. UGC का एक मुख्य कार्य और उत्तरदायित्व यह है कि वह केन्द्र एवं राज्य सरकारों को अपने बजट में से प्रतिवर्ष उच्च शिक्षा के विभिन्न मदों के लिए धनराशि निर्धारित करने में सहायता करता है।
10. इस आयोग का एक कार्य विभिन्न राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्त्रोतों से उच्च शिक्षा के विषय में सूचनाएँ एकत्रित करके उनका निम्नतर स्तर पर वितरण करने का कार्य भी करना है।

इसी प्रकार, महाविद्यालय विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत UGC उनको स्वायत्तता प्रदान करता है, उन्हें विज्ञान, सामाजिक विज्ञानों तथा मानविकी में स्नातकोत्तर पाठ्याचारों का प्रबंध करने में सहायता करता है, पाठ्यक्रम विकास व उन्नयन और महाविद्यालयों में भौतिक सुविधाओं का प्रबंध व उनको बनाए रखने का कार्य करता है।

उसके संकाय उन्नयन (Faculty improvment) कार्यक्रमों में बैठकों, संगोष्ठियों (Seminars) का आयोजन, ग्रीष्मावकाश के पाठ्यक्रम (Summer courses) आदि शामिल हैं।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय छात्रवृत्तियों का आयोजन, विजिटिंग प्रोफेसर्स आदि की नियुक्ति, राष्ट्रीय व्याख्यानों का आयोजन करने में सहायता करना। अवकाश प्राप्त प्रोफेसर्स के लिए व्यवस्थाएँ करना, अध्ययन भ्रमणों के लिए अनुदान स्वीकृत करना, विशिष्ट विद्यार्थियों तथा युवा वैज्ञानिकों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था करना इत्यादि भी इसके कार्यक्रमों में शामिल है।

शोध कार्यक्रमों में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है, जैसे इसके द्वारा छोटी व लम्बी अवधि की शोध प्रयोजनाओं हेतु अनुदान प्रदान करना, अध्यापकों को क्रियात्मक अनुसंधान संचालित करने के लिए अनुदान की व्यवस्था करना, शोध प्रतिवेदनों के प्रकाशन के लिए अनुदान स्वीकृत करना इत्यादि।

शिक्षा शोध (Research)—अध्यापकों की शिक्षा का विस्तार तथा उसमें सुधार प्रमुख महत्व का विषय न केवल यू.जी.सी. के लिए है वरन् अन्य किसी भी संस्था के लिए है जो उनकी शिक्षा से दूर से भी सम्बन्धित है। अध्यापक शिक्षा की दिशा में शोधकार्य में विघ्न पड़ने की सम्भावना इसकी व्यावसायिक प्रकृति (Professional nature) के कारण भी है और इससे संबंधित एक सवाल यह है कि शिक्षा में सर्वेक्षण व प्रयोगात्मक शोध के लिए प्राय: धनराशि उपलब्ध नहीं होती है।

प्रश्न 10. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) के उद्देश्यों एवं कार्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिए। **(ग्वालियर 2021; उज्जैन 22; छतरपुर 22)**

***अथवा*, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् पर टिप्पणी लिखिए।**

(उज्जैन 2021; रीवा 22; भोपाल 22; छिंदवाड़ा 22)

उत्तर—इसकी स्थापना नई दिल्ली में 1 सितम्बर, 1961 को स्वायत्तशासी संस्थान रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1860 के अन्तर्गत की गई थी। NCERT को तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-66) में एक केन्द्रीय अभिकरण को व्यावहारिक रूप देने के विचार से स्थापित की गई थी। इसके अंतर्गत चार क्षेत्रीय महाविद्यालय कार्यरत् हैं।

हिन्दुस्तान के विभिन्न राज्यों में इस परिषद् के 17 क्षेत्रीय कार्यालय हैं। शिक्षा एवं मानव संसाधन विकास मंत्री इसके अध्यक्ष के रूप में बारह अन्य सदस्यों के साथ इसका नियंत्रण अधिकारी होता है।

(1) इसके नैमित्तिक कार्यों के संचालन और प्रबंधन का कार्य निदेशक के द्वारा संयुक्त निदेशक और सचिव की सहायता से किया जाता है।

(2) यह परिषद् नीतियों, कार्यक्रमों, पाठ्यक्रम आदि का निर्माण विद्यालयों की शिक्षा के गुणात्मक सुधार हेतु करता है तथा उनको क्रियात्मक रूप देता है।

(3) इसके साथ ही यह शैक्षिक शोध के उन्नयन को भी प्रोत्साहित करता है।

(4) NCERT राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों, उच्च अध्ययन केन्द्रों के साथ समन्वय स्थापित करता है तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से संबंध बनाता है।

राष्ट्रीय शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् के उद्देश्य—ये निम्न हैं—

(1) शिक्षा महाविद्यालयों में विशेषकर क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों में अध्यापन के स्तर का उन्नयन करना।

(2) शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान करना तथा उसे क्रियान्वित करना।

(3) राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान की स्थापना करना तथा शैक्षिक प्रशासन में प्रशिक्षण देना व शिक्षकों के लिए अच्छे प्रशिक्षण तथा अनुसंधान कार्यक्रमों का आयोजन करना।

(4) उच्च स्तर के सेवा पूर्व और सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन करना।

(5) अध्यापक शिक्षा महाविद्यालयों में विस्तार सेवा कार्यक्रमों का आयोजन करना तथा नवीनतम शिक्षण विधियों व प्रविधियों का उपयोग करना।

(6) केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की आवश्यकता के अनुसार माध्यमिक स्तर हेतु पाठ्य–पुस्तकों व शिक्षा शोध पत्रिका जैसे साहित्य का प्रकाशन करना।

(7) मंत्रालय के साथ मिलकर विभिन्न इकाइयों को निर्देशन तथा परामर्श सेवाएँ प्रदान करना।

राष्ट्रीय शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् के कार्य– विभिन्न योजनाओं के माध्यम से परिषद् के द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि अध्यापक शिक्षा और विशेषकर माध्यमिक शिक्षा स्तर पर उन्नयन कार्य करना सम्भव हो सके। पाठ्यक्रम को विकसित और आधुनिक बनाए रखने के लिए शिक्षकीय निर्देशन पुस्तिका, छात्र कार्य पुस्तिका (वर्क बुक) और उपयुक्त श्रव्य–दृश्य शिक्षण सामग्री का विकास करना, अध्यापक शिक्षा में उन्नयन हेतु विस्तार कार्यक्रम और क्षेत्रीय सेवा का विस्तार करना, परीक्षा प्रणाली में सुधार के लिए ठोस प्रयास करते हुए उसे अधिकाधिक तौर पर वस्तुनिष्ठ रूप प्रदान करना, विभिन्न विद्यालयीन विषयों में अध्यापकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करना, विज्ञान तथा गणित शिक्षा के क्षेत्रों में अभिनव कार्यक्रमों का निर्माण और क्रियान्वयन करना जो देश में औद्योगिक और तकनीकी विकास की दिशा में सार्थक सिद्ध हो सके आदि परिषद् के द्वारा किए गए एवं आगामी दिनों में किए जाने वाले मूलभूत एवं ठोस कार्यकलाप हैं। इस हेतु निम्न कार्यक्रमों का आयोजन परिषद् के द्वारा किया जाता है–

(1) अध्यापक शिक्षा, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ व प्रविधियों इत्यादि को व्यावहारिक रूप प्रदान करना।

(2) सेवाकालीन प्रशिक्षण, शैक्षिक नियोजन व प्रशासन में सम्भावित कठिनाइयों के विषय में सूचना एकत्रित करना।

(3) मानचित्र, चार्ट्स, मॉडल्स जैसी शिक्षण सामग्री तैयार करना जिनका उपयोग सामाजिक विज्ञानों, भौतिक विज्ञानों तथा अन्य विषयों के अध्यापन में किया जाए।

(4) विज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान आदि विषयों के पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, अध्यापन व सहायक सामग्री का उन्नयन करना।

(5) क्षेत्रीय शैक्षिक संस्थानों के तत्वावधान में ग्रीष्मकालीन तथा सेवाकालीन कार्यक्रमों का आयोजन करना।

(6) विद्यालय भवनों के समुचित निर्माण के लिए शैक्षिक सर्वेक्षण व अनुसंधान कराना तथा सामाजिक विज्ञानों में वैज्ञानिक शब्दावली की सूची का निर्माण कराना।

(7) अनुसंधान तथा प्रतिभा की खोज के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करना। विज्ञान तथा गणित के अध्यापकों के लिए U.G.C. तथा अन्तर्राष्ट्रीय तकनीकी विकास अभिकरण की सहायता से ग्रीष्मकालीन पाठ्याचार का आयोजन करना।

(8) प्रौढ़ शिक्षा, साक्षरता कार्यक्रम और बुनियादी शिक्षा को प्रोत्साहित करना व बढ़ावा देना।

(9) NCERT के अंतर्गत बहुत–सी अन्य गतिविधियाँ संचालित होती है। वह अध्यापक शिक्षा, विशेषकर माध्यमिक स्तर की शिक्षा के सुधार तथा उन्नयन के लिए कार्य करती है।

(10) अध्यापकों के लिए दिशा–निर्देश व छात्रों के लिए वर्कबुक (Workbook) तैयार करती है, जिससे पाठ्यक्रम का विकास तथा आधुनिकीकरण हो सके। अध्यापक शिक्षा के सुधार और विस्तार के तथा परीक्षा प्रणाली को जहाँ तक हो सके वस्तुनिष्ठ बनाकर उसमें सुधार के लिए नये तरीके खोजने का हर संभव प्रयास किया जाता है।

(11) विस्तार सेवा विभागों को प्रत्येक राज्य में स्थापित किया गया है। जिसके संयोजक अनेकानेक शैक्षिक विकास कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं और मूलतः ग्रन्थालय सेवा श्रव्य–दृश्य सामग्री प्रदर्शन कार्यक्रम तथा प्रकाशन कार्य की देखभाल करते हैं। इसके अलावा शैक्षिक संगोष्ठियों, सभाओं, कार्यशाला, प्रदर्शनी, निबंध लेखन प्रतियोगिता आदि का आयोजन करना। मूल्यांकन और

परीक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रयोग करना, पाठ्यक्रम निर्माण के लिए प्रयास करना, अध्ययन वृत्त (अध्यापकीय) निर्माण करना ताकि विचारों का विनिमय करना सम्भव हो सके आदि भी उनके कार्यक्षेत्रों के अन्तर्गत आता है। सेवाकालीन शैक्षिक कार्यक्रमों में दिशा–निर्देशन एवं पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों का आयोजन, अल्पकालीन गहन अध्ययन पाठ्यक्रम, संगोष्ठी कार्यशाला सभा, आदि के द्वारा व्यावसायिक दक्षता में वृद्धि के लिए प्रयास, ग्रीष्मकालीन पाठ्यक्रम एवं कार्यक्रम, अध्यापक–अध्ययन केन्द्र और क्लब आदि का संगठन एवं संचालन करना सम्मिलित होता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि NCERT ऐसी गतिविधियों में संलग्न है जो विद्यालयी शिक्षा के स्तर में सुधार करने तथा उन्हें बनाए रखने के लिए आवश्यक हो।

प्रश्न 11. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) के संगठन एवं कार्यों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। **(रीवा 2022; इंदौर 22; जबलपुर 22; ग्वालियर 22)**

***अथवा*, राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् के उत्तरदायित्वों का वर्णन कीजिए।** **(रीवा 2022)**

***अथवा*, NCTE की स्थापना क्यों की गई ? उसके कार्यों को लिखिए।** **(इंदौर 2022)**

उत्तर–राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् पहले NCERT का ही एक भाग था। इसकी स्थापना कोठारी आयोग की सिफारिश पर 1973 में केन्द्र व राज्य सरकारों को इस पर सलाह देने के लिए हुई थी कि अध्यापक, शिक्षा के सामने आने वाली समस्याओं व कठिनाइयों का सामना किस प्रकार किया जाए। वर्ष 1995 में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् को संसद के एक अधिनियम द्वारा NCTE अधिनियम के माध्यम से स्वतंत्र स्तर दे दिया गया और यह NCERT की तरह एक स्वायत्त अभिकरण बन गया।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् का संगठन–प्रारंभ में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् में 41 सदस्य होते थे जिसका अध्यक्ष केन्द्रीय शिक्षा मंत्री होता था तथा राज्य शिक्षा विभागों के 21 प्रतिनिधि, एक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) का सदस्य, एक–एक प्रतिनिधि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् (NCERT), अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् (AICTE), सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑफ एजुकेशन (CABE) व योजना आयोग (Planning commission) के, केन्द्र सरकार द्वारा नामजद प्रतिनिधि, एक–एक प्रतिनिधि पूर्व–प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक, टैक्निकल तथा लोकेशनल अध्यापक शिक्षा, दो शिक्षा सचिव, एक परिषद् के अध्यक्ष द्वारा नामित सदस्य तथा एक मैम्बर सैक्रेटरी सम्मिलित होते थे। किन्तु बाद में परिषद् का संगठन राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) की तरह किया गया तथा उसमें अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सैक्रेटरी, कार्यकारिणी समिति के सदस्य तथा कार्यालय कर्मचारी होते थे।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के कार्य–इनके निम्नलिखित कार्य हैं–

1. परामर्श में भूमिका – NCTE राष्ट्रीय एवं राज्य सरकारों को अपने प्रारंभ से ही सेवा पूर्व तथा सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा के संगठन के क्षेत्र में उसके प्रत्येक विषय में समितियों के गठन से संबंधित सलाह देती है।

2. मूल्यांकन एवं पाठ्यक्रम में सुधार — अपनी स्थापना के समय से ही परिषद् जो एक ओर महत्वपूर्ण कार्य करती रही वह है अध्यापक शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर पाठ्यक्रमों का मूल्यांकन करना। एवं उनमें सुधार व उन्नयन के लिए योजनाएँ प्रस्तावित करना।

3. योजनाओं का पुनः निरीक्षण– परिषद् को राज्य सरकारों द्वारा अध्यापक शिक्षा में सुधार तथा परिवर्तन के किसी भी पहलू पर लागू की जा रही योजनाओं के पुनः निरीक्षण करने का भी अधिकार है।

4. मान्यता प्रदान करना– प्रत्येक विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग तथा शिक्षा महाविद्यालयों के लिए यह अनिवार्य है कि वो अध्यापक शिक्षा के विभिन्न स्तर के पाठ्यक्रमों के संचालन के लिए एन.सी.टी.ई. से मान्यता प्राप्त करें। पाठ्यक्रम को प्रामाणिक तब ही माना जा सकता है। NCTE संस्था का निरीक्षण यह सुनिश्चित करने के लिए करती है कि वहाँ आवश्यक सुविधाएँ व संसाधन उपलब्ध है या नहीं। उसके बाद ही पूर्णतः संतुष्ट होने पर उसे मान्यता प्रदान की जाती है।

5. संस्था का प्रमाणीकरण– संस्थाओं को मान्यता देने के लिए परिषद् निरीक्षण समितियों का गठन करती है तथा सुनिश्चित करती है कि अमुक संस्था उसके द्वारा निर्धारित मानदण्डों पर खरा उतरती है तो उस पाठ्यक्रम को प्रमाणिकता का प्रमाण पत्र दिया जा सकता है।

6. अध्यापन का अधिकार स्वीकृति करना– किसी शिक्षा महाविद्यालय में अध्यापन करने के लिए व्यक्ति में आवश्यक योग्यताएँ होना आवश्यक है। परिषद् यह अधिकार केवल उन लोगों को देता है जिनके पास इस प्रकार के महाविद्यालयों में अध्यापन करने के लिए आवश्यक डिग्री हो।

7. विषयवार सर्वेक्षण–यह परिषद् अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न विषयों के सर्वेक्षण का संचालन करती है तथा प्राप्त परिणामों को प्रकाशित करती है। ये प्रतिवेदन शिक्षा महाविद्यालय के लिए उपयोगी होते हैं।

8. समन्वय– अध्यापक शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमों के समन्वय तथा उन पर निगरानी रखने का कार्य भी इस परिषद् द्वारा किया जाता है।

9. योग्यता निर्धारण– शिक्षा महाविद्यालयों में नियुक्ति हेतु व्याख्याताओं की निम्नतम शैक्षणिक योग्यताओं, अनुभव तथा विशेषज्ञता का निर्धारण भी इस परिषद् के कार्य है।

10. नवीन पाठ्यक्रम संबंधी कार्य– NCTE अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में नवीन पाठ्यक्रम और गतिविधियों के समावेश के लिए आवश्यक निर्देश जारी करती है।

11. अनुसंधान संबंधी गतिविधियाँ–NCTE से यह अपेक्षा भी की जाती है कि वो अध्यापक शिक्षा में प्रयोगात्मक तथा नवाचारी गतिविधियाँ नियमित तथा व्यवस्थित आधार पर संचालित करें। यह इस क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग विकसित करने का प्रयास भी करती है।

12. सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम–अध्यापक शिक्षा के सेवाकालीन कार्यक्रमों को तैयार और कार्यान्वित करना आवश्यक माना जाता है, जिससे सेवान्तर्गत अध्यापकों को अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में किये जा रहे नवीनतम अनुसंधान के विषय में जानकारी प्रदान की जा सके।

प्रश्न 12. शिक्षक–शिक्षा कॉलेज (College of Teacher Education — CTE) पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। **(छिंदवाड़ा 2022)**

उत्तर– शिक्षक–शिक्षा कॉलेज–माध्यमिक अध्यापक शिक्षा संस्थानों को शिक्षक–शिक्षा कॉलेजों में परिवर्तित किया गया। 31 मार्च, 1999 तक 76 शिक्षक–शिक्षा कॉलेज स्थापित हो चुके हैं। ये कॉलेज माध्यमिक शिक्षकों के लिए सेवापूर्व तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन कर रहे हैं। साथ ही इनके द्वारा माध्यमिक स्कूलों के विस्तार तथा संसाधन समर्थन सेवायें उपलब्ध करायी जा रही है।

शिक्षक–शिक्षा कॉलेजों के कार्य– 1. माध्यमिक शिक्षकों को तैयार करने के लिए सेवा पूर्व प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

2. माध्यमिक शिक्षकों के लिए अल्पावधि के सेवाकालीन कोर्स चलाना। जैसे–

(i) विषय–केन्द्रित कोर्स (3-4 सप्ताह के कोर्स)।

(ii) विशेष प्रसंगों पर आधारित कोर्स (3-10 दिनों के कोर्स)।

3. माध्यमिक विद्यालयों, विद्यालय संकुलों तथा व्यक्ति विशेष शिक्षकों को प्रसार तथा संसाधन संबंधी सहायता प्रदान करना।

4. विद्यालयी शिक्षा में नवाचार तथा प्रयोगों का संचालन।

5. शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों; जैसे–मूल्यपरक शिक्षा, कार्यानुभव, पर्यावरणीय शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा, शैक्षिक तकनीकी, कम्प्यूटर साक्षरता, व्यावसायिक तथा विज्ञान शिक्षा में प्रशिक्षण तथा संसाधन सहायता प्रदान करना।

6. वृत्तिक निकायों को सहायता देना।

7. शिक्षकों की तैयारी के लिए कार्यक्रमों में समुदाय की भागीदारी को प्रोत्साहित करना।

8. राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के प्रयासों में सहयोग देना।

9. शिक्षक–शिक्षा के पाठ्यक्रम को भारतीय संस्कृति, राष्ट्रीय एकता एवं अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना, शारीरिक शिक्षा, कार्यानुभव, नियोजन एवं प्रबंधन आदि के संदर्भ में पुनर्गठित करना।

प्रश्न 13. उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान (Institute of Advanced Studies in Education; IASE) पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। **(ग्वालियर 2016; भोपाल 22)**

उत्तर–शिक्षक–शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए देश के कुछ चयनित शिक्षक–शिक्षा संस्थानों को प्रोन्नत किया गया। इनमें से कुछ को शिक्षक–शिक्षा कॉलेज (CTE) तथा कुछ को उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान (IASE) की संज्ञा दी गई। उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान शिक्षक–शिक्षा कॉलेजों के उक्त कार्यों के साथ–साथ निम्न कार्य भी करेंगें। जो इस प्रकार हैं–

1. प्रारंभिक शिक्षक शिक्षा के लिए प्रशिक्षकों को तैयार करने के लिए कार्यक्रमों का आयोजन करना।

2. एम.एड (M.Ed), एम.फिल. (M.Phil) तथा पी.एच.डी. (Ph.D) कोर्सों का संचालन।

3. कुछ आई.ए.एस.ई. (IASE) माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों के लिए चार वर्षीय एकीकृत कोर्स चलाएंगे।

4. निम्न के लिए सेवाकालीन कोर्स चलाना–

(i) प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षकों के लिए।

(ii) माध्यमिक विद्यालयों के प्राचार्यों के लिए।

(iii) माध्यमिक विद्यालयों के पर्यवेक्षण से संबंधित कर्मचारियों के लिए।

5. शिक्षक–शिक्षा में अग्रिम (Pilot) कार्यक्रमों की व्यवस्था करना।

6. शिक्षा में व्यावहारिक तथा प्रायोगिक अनुसंधान करना।

7. शैक्षिक तकनीकी के प्रयोग तथा सॉफ्टवेयर तैयारी के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन करना।

8. जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET) तथा सी.टी.ई. (CTE) को अकादमिक निर्देशन तथा संसाधन सहायता प्रदान करना।

9. शैक्षिक सामग्री–शिक्षक मार्गदर्शिकाएँ, संसाधन सामग्री, शिक्षण सामग्री, शैक्षणिक पैकेजों आदि का विकास करना।

प्रश्न 14. राज्य शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान (DSERT) पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। **(ग्वालियर 2019; भोपाल 22; छिंदवाड़ा 22)**

उत्तर–राज्य शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान को DSERT के नाम से जाना जाता है। यह सामान्य जनता को शैक्षिक निर्देशन देने वाला संस्थान है। इसका मुख्य लक्ष्य राज्यस्तरीय माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्कूलों की शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना है। DSERT की स्थापना एक बहुत ही छोटी यूनिट के रूप में हुई थी, जिसे बाद में SIE के नाम से जाना जाने लगा। इसका शुभारम्भ 1964 में धारवार जिले से हुआ था।

1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने शिक्षा पर विशेष जोर दिया जिसके परिणामस्वरूप 1993 में राज्य में 8 राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना हुई। यह संस्थान अपने प्रशिक्षण उद्देश्य टी.वी., रेडियो द्वारा भी जनता तक पहुँचाते हैं। यह 1 दिन में दो बार प्रसारित किये जाते हैं।

DSERT के उद्देश्य– ये निम्नलिखित हैं–

1. राज्य स्तरीय स्कूलों को शिक्षा से संबंधित नेतृत्व प्रदान करना।
2. अध्यापक प्रशिक्षण द्वारा विद्यालय शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाना।
3. अध्यापक शिक्षण को बढ़ावा देने के लिए उन्हें सुविधाएँ प्रदान करना।
4. यह विभिन्न योजनाओं द्वारा राज्य, राष्ट्र व विभिन्न बाहरी संस्थाओं के बीच संबंध व समायोजन स्थापित करना, जैसे–NCERT, NIEPA, UNICEF, SSA, RIE आदि।
5. शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न योजनाओं को आरंभ करना।
6. राज्य में शिक्षक प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
7. छात्र व शिक्षकों के लिए विभिन्न प्रकार की पुस्तकें तैयार करना।

DSERT के विभिन्न संस्थान– इस प्रकार हैं–

(1) शिक्षक शिक्षा यूनिट (TEU), (2) राज्य शैक्षिक मूल्यांकन यूनिट (State Education Evaluation Unit-SEEU), (3) राज्य विज्ञान संस्थान (State Institution of Science-SIS), (4) शैक्षिक तकनीकी सेल (Education Technology Cell), (5) SSA प्रशिक्षण सेल, (6) किशोर शिक्षा सेल, (7) NSS.

DSERT के प्रमुख कार्य– (1) राज्य स्तर पर प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाना।

(2) प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के लिए राज्य स्तर पर शिक्षक शिक्षा की व्यवस्था करना।

(3) सरकारी कॉलेजों में शिक्षक–शिक्षा की व्यवस्था करना।

(4) विद्यालय शिक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों को तैयार करना।

(5) 1 से 10 तक की कक्षाओं व विभिन्न शैक्षिक कोर्सों; जैसे–नृत्य, नाटक, पेंटिंग आदि के लिए पुस्तक तैयार करना व वितरित करना।

(6) विज्ञान शिक्षा को राज्य में बढ़ावा देना।

(7) टेली कान्फ्रेंसिंग व वीडियो कान्फ्रेंसिंग द्वारा प्रशिक्षण प्रोग्रामों का प्रबंध करना।

(8) टेलीविजन ब्रॉडकास्ट द्वारा सीधे छात्र व शिक्षक तक पहुँचाना।

प्रश्न 15. राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (R.M.S.A.) का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
(ग्वालियर 2016; उज्जैन 21; इंदौर 22; जबलपुर 22)

***अथवा*, रा.मा.शि.अ. के गठन के उद्देश्य एवं कार्य लिखिए।** **(छतरपुर 2021)**

उत्तर–1986 की नई शिक्षा नीति और योजना कार्यक्रम और 1992 की सिफारिशों के अनुक्रम में भारत सरकार ने अलग–अलग समय में माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के बच्चों की सहायता के लिए विभिन्न योजनाएँ आरंभ की।

2009 में राज्य सरकार एवं स्थानीय स्वशासन की भागीदारी में आरंभ राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान मौजूदा चारों योजनाओं का अत्याधुनिक संस्करण है।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (R.M.S.A.)–यह भारत सरकार की एक फ्लैगशिप (Flagship) योजना है, जो मार्च 2009 में माध्यमिक शिक्षा तक पहुँच बढ़ाने और इसकी गुणवत्ता में सुधार के लिए शुरू की गई। इस योजना का कार्यान्वयन 2009-2010 में मानव जनशक्ति सृजित करने तथा वृद्धि और विकास तथा समानता को तेज करने हेतु पर्याप्त स्थितियाँ उपलब्ध कराने के साथ–साथ भारत में सभी को गुणवत्तायुक्त जीवन देने के लिए आरंभ हुआ। (S.S.A.) की व्यापक सफलता को

देखते हुए और एस. एस. ए. की तरह RMSA बहुपक्षीय संगठनों, गैर–सरकारी संगठनों, सलाहकारों तथा परामर्शदाताओं, अनुसंधान एजेन्सियों तथा संस्थाओं सहित अधिकांश हितधारक (Stoke holder) से लाभप्रद सहायता लेता है।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के उद्देश्य– इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

(1) इस योजना में 2005-2006 में 52·26% की तुलना में अपने कार्यान्वयन के पाँच वर्ष के भीतर किसी भी बस्ती से उपयुक्त दूरी पर एक माध्यमिक स्कूल उपलब्ध कराकर कक्षा IX-X के लिए 75% का सफल नामांकन अनुपात प्राप्त करने पर ध्यान दिया गया है।

(2) सभी माध्यमिक स्कूलों को निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप बनाकर माध्यमिक स्तर पर दी जा रही शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करना।

(3) लैंगिक, सामाजिक–आर्थिक तथा निःशक्तता बाधाएँ हटाना।

(4) वर्ष 2017 अर्थात् 12 वीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक माध्यमिक स्तर शिक्षा तक व्यापक पहुँच।

(5) वर्ष 2020 तक छात्रों को स्कूल में बनाएँ रखने में वृद्धि और उसका सर्वसुलभीकरण।

R.M.S.A. द्वारा उपलब्ध करवाई जाने वाली वास्तविक सुविधाएँ–

(i) अतिरिक्त कक्षा–कक्ष, (ii) प्रयोगशालाएँ, (iii) पुस्तकालय, (iv) कला और शिल्प कक्ष, (v) प्रशासन ब्लॉक, (vi) पेयजल व्यवस्था, (vii) सुदूरवर्ती क्षेत्रों के अध्यापकों के लिए आवासीय छात्रावास।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान योजना के लिए कार्यान्वयन तंत्र– ये निम्न हैं–

(1) प्रत्येक राज्य में RMSA राज्य कार्यान्वयन सोसाइटियों की मदद से RMSA का समन्वय करने के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय केन्द्र सरकार का नोडल मंत्रालय है।

(2) हालाँकि RMSA के बेहतर कार्यान्वयन के लिए अनेक सहयोगी व्यवस्थाएँ तथा संस्थाएँ उपलब्ध है। एक राष्ट्रीय संसाधन दल शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं, पाठ्यचर्या, शिक्षण, अधिगम सामग्री, आई.सी.टी. (ICT) शिक्षा निगरानी और मूल्याकंन के तंत्रों में सुधार के लिए मार्गदर्शन देता है।

(3) मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा समर्थित तकनीकी सहयोग दल राष्ट्रीय संसाधन दल का संघटक है तथा मंत्रालय से इसका सीधा संबंध है।

तकनीकी सहयोग दल राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरीय टीमों को तकनीकी और प्रचालन संबंधी सहयोग तथा विशेषता उपलब्ध कराता है।

नोट–विस्तृत उत्तर के लिए प्रश्न क्रमांक 24 देखें।

प्रश्न 16. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना (2005) की रूपरेखा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(ग्वालियर 2016)

उत्तर– राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना का विषय शिक्षा व्यवस्था के लिए हमेशा से ही महत्वपूर्ण और अनिवार्य रहा है। प्रत्येक देश की तरह भारत में भी एक ऐसे पाठ्यक्रम की परिकल्पना की जा रही है जो कि शिक्षा प्रणाली में गुणात्मक एवं क्रान्तिकारी बदलाव ला सके। इसी धारणा को कार्य रूप में परिवर्तित करते हुए तत्कालीन एन.सी.ई.आर.टी. (NCERT) के अध्यक्ष ने राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना सन् 2005 को प्रस्तुत किया, जिससे राष्ट्रीय पाठ्यक्रम सन् 1988 एवं राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना सन् 2005 के विषयों को परिमार्जित, क्रमबद्ध एवं सुसंगठित रूप में प्रस्तुत किया। इसके साथ–साथ इसमें नवीन विषयों को भी शामिल किया गया। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम सन् 2005 में समाहित बिन्दु निम्नलिखित हैं–

1. भाषायी शिक्षा का समावेश—भाषायी शिक्षा की दृष्टि पाठ्यक्रम में समन्वित स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। मातृभाषा, राष्ट्रीय भाषा एवं विदेशी भाषाओं को उनकी जरूरत के अनुसार महत्व प्रदान किया गया है। पूर्व प्राथमिक स्तर पर अनुदेशन की भाषा को मातृभाषा के रूप में स्वीकार किया है, यानि पूर्व–प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों को मातृभाषा में निपुण होना चाहिए। यह शिक्षणकाल दो वर्ष तक का होगा। इसके पश्चात् आवश्यकतानुसार अन्य दूसरी भाषाओं के सीखने का प्रावधान है।

2. अभिभावकों की सहभागिता—पाठ्यक्रम बनाने में अभिभावकों के मत भी जाने गये क्योंकि अभिभावक बच्चों को उन स्कूलों में भेजना पसंद करते हैं, जहाँ का पाठ्यक्रम एवं शिक्षण प्रणाली उनकी आकांक्षाओं की कसौटी पर खरी होती है। अतः पाठ्यक्रम निर्माण करते समय अभिभावकों की इच्छाओं का ध्यान रखा गया है, जैसे प्राथमिक स्तर पर अंग्रेजी भाषा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करना इस सोपान में शामिल होता है।

3. रुचिकर शिक्षा प्रणाली—राष्ट्रीय पाठ्यक्रम को बनाते समय इस तथ्य का विशेष ध्यान रखा गया है कि पाठ्यक्रम विद्यार्थियों में नीरसता की भावना जागृत न करें। पाठ्यक्रम विद्यार्थियों में पढ़ाई के प्रति रुचि उत्पन्न करने वाला हो, जिससे संपूर्ण शिक्षा प्रणाली रुचिपूर्ण हो। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रम एवं निर्धारित शिक्षण विधियाँ है।

4. सामाजिक भावनाओं का समावेश—राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना सन् 2005 में सामाजिक भावनाओं का समावेश करके सामाजिक विकास को अभिप्रेरित किया है जो प्रत्येक समाज शिक्षा एवं विद्यार्थियों द्वारा ही अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

5. मानवीय मूल्यों का समावेश—भारतीय संस्कृति में मानवता एवं नैतिकता की महत्वपूर्ण जगह है। अतः यह असंभव है कि भारतीय शिक्षा के पाठ्यक्रम में मानवीय मूल्यों का समावेश न हो। इस बिन्दु का दर्शन हमें प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रम से ही होता है। अतः स्पष्ट है कि राष्ट्रीय पाठ्यक्रम सन् 2005 को संरचना में मानवीय मूल्यों का विकास करने वाली विषयवस्तु को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

6. राष्ट्रीय एकता का समावेश—राष्ट्रीय पाठ्यक्रम 2005 में राष्ट्रीय एकता के यथासंभव प्रयासों को किया गया है, क्योंकि राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता प्रत्येक दृष्टि से आवश्यक स्थान रखती है। इसकी कमी में देश का विकास संभव नहीं है।

7. समावेश—राष्ट्रीय कार्यक्रम सन् 2005 में इससे पूर्व में प्रस्तुत कार्यक्रम सन् 1988 का राष्ट्रीय पाठ्यक्रम, सन् 2000 का राष्ट्रीय पाठ्यक्रम एवं सन् 1993 की बिना बोझ के अधिगम कार्यक्रम के महत्वपूर्ण तथ्यों का समावेश किया गया है। इसके साथ–साथ तथ्यों को, जो कि उपरोक्त कार्यक्रमों में रह गये थे, को शामिल किया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि राष्ट्रीय कार्यक्रम सन् 2005 एक समग्र एवं पूर्ण विकसित कार्यक्रम है।

8. सामान्य पाठशालाओं की व्यवस्था—इस राष्ट्रीय पाठ्यक्रम को क्रियान्वित करने हेतु सामान्य स्कूलों की व्यवस्था की जानी चाहिए, जो कि एक नियत, एक रूप तथा एक व्यवस्था पर आधारित हो। स्कूलों का समान स्वरूप ही राष्ट्रीय पाठ्यक्रमों का उत्तम माध्यम है, इसलिए इस कार्यक्रम में स्कूलों की एकरूपता पर विशेष जोर दिया जाता है।

9. पूर्व कार्यक्रमों की असफलता पर विचार—राष्ट्रीय कार्यक्रम 2005 को निर्मित करने से पूर्व इन तथ्यों पर पूर्ण रूप से विचार किया गया कि इससे पूर्व के कार्यक्रमों एवं आयोगों द्वारा दिये गये सुझाव, ठण्डे बस्ते में क्यों चले गये ? आयोग एवं राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन "कागजी कार्यवाही" बनकर क्यों रह गये ? इन सभी तथ्यों पर विचार करने के बाद इस पाठ्यक्रम का स्वरूप प्रस्तुत किया जिससे कि इसे प्रभावी रूप में क्रियान्वित किया जा सके।

10. अध्यापक सशक्तिकरण का समावेश—अध्यापक की स्थिति सुदृढ़ होने की व्यवस्था के अंतर्गत ही अध्यापन कार्य प्रभावी एवं रुचिपूर्ण होता है। अध्यापक वह आधारशिला है, जो अध्यापन व्यवस्था को विकसित एवं प्रभावी आधार प्रदान करती है।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम सन् 2005 की संरचना में एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा पूर्णतः सावधानी से प्रयोग किया गया है, इस पाठ्यक्रम में उन सभी बातों को दूर किया गया है, जिनके कारण पाठ्यक्रम क्रियान्वयन में कठिनाई होती है तथा उन बातों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है, जो पाठ्यक्रम के प्रभावी क्रियान्वयन में योगदान देते हैं।

प्रश्न 17. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना (2005) का महत्व एवं आवश्यकता का वर्णन कीजिए।
(इंदौर 2018; रीवा 22)

***अथवा*, नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क (NCF-2005) के महत्व को स्पष्ट कीजिए।**
(जबलपुर 2021; इंदौर 23)

***अथवा*, NCF-2005 के बारे में आप क्या जानते हैं ? लिखिए।**
(रीवा 2022; भोपाल 22; छिंदवाड़ा 22)

उत्तर—राष्ट्रीय पाठ्यक्रम (2005) की संरचना की आवश्यकता या महत्व को निर्धारित करने वाले तथ्यों पर विचार करने से पहले यह जानना परमआवश्यक है कि पाठ्यक्रम एक ऐसी संरचना है, जो पूर्णतः विकासशील अवस्था में रहती है। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना सन् 2005 की आवश्यकता अथवा महत्व को स्पष्ट करने वाले प्रमुख बिन्दुओं का वर्णन निम्नलिखित हैं—

1. बालक की सन्तुष्टि के लिए—विद्यार्थी की जरूरते एवं रुचियों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम को बनाना चाहिए। छात्र की रुचियाँ एवं इच्छाएँ भी समय एवं परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है। इस क्रम में यह महसूस किया गया है कि विद्यार्थी की आवश्यकता एवं रुचि को ध्यान में रखकर एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम तैयार किया जाये। इस हेतु राष्ट्रीय पाठ्यक्रम सन् 2005 की रचना की गयी।

2. अध्यापकों की संतुष्टि के लिए—अध्यापकों की संतुष्टि के लिए यह आवश्यकता महसूस की जाती है कि पाठ्यक्रम निर्माण के दौरान उनकी मदद ली जायें एवं उनके समक्ष पाठ्यक्रम, क्रियान्वयन के दौरान आने वाली कठिनाइयों को ध्यान में रखा जायें। यदि इन सभी बातों को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है तो अध्यापक को उस पाठ्यक्रम से पूर्ण संतुष्टि प्राप्त होती है।

3. शिक्षण विधियों के विकास के लिए—पाठ्यक्रम का निर्धारण शिक्षण विधियों, शिक्षण सहायक सामग्री के प्रयोग एवं शिक्षण में प्रयुक्त संसाधनों को ध्यान में रखकर किया जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षण विधियों का उपयोग पाठ्यक्रम के द्वारा ही होता है। इस प्रयोग में आने वाली समस्याओं को दूर करके इन विधियों में आवश्यक सुधार किये जाते हैं।

4. अभिभावक संतुष्टि के लिए—अभिभावक उस पाठ्यक्रम से संतोष एवं सुख का अनुभव करता है, जो उसके बालक के सर्वांगीण विकास और उसकी आकांक्षा के अनुसार होता है, जिस पाठ्यक्रम निर्माण में अभिभावकों के विचार एवं आकांक्षा स्तर पर ध्यान दिया जाता है, वह पाठ्यक्रम अभिभावकों को संतुष्ट करता है।

5. नवीन तथ्यों के समावेश के लिए—पाठ्यक्रम शोधकार्यों के निष्कर्षों के द्वारा अनेक नवीन तथ्यों का समावेश करना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि इन तथ्यों की कमी से पाठ्यक्रम के माध्यम से शिक्षण के लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। जैसे शोध में यह ज्ञात हुआ कि पाठ्यक्रम में प्राथमिक स्तर की कक्षाओं में खेल विधि का समावेश होना चाहिए।

6. कक्षा-कक्ष शिक्षण के लिए—कक्षा-कक्ष शिक्षण में पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण स्थान होता है। पाठ्यक्रम के प्रभाव का मूल्यांकन कक्षा-कक्ष शिक्षण के दौरान ही होता है। पाठ्यक्रम विद्यार्थी के

अनुसार अर्थात् मानसिक स्तर के अनुसार होगा तो वह प्रभावी एवं सफल माना जायेगा। इसके विपरीत स्थिति में पाठ्यक्रम में सुधार या परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की जाती है।

7. शोध परिणामों के प्रयोग हेतु–शोध परिणामों के व्यावहारिक प्रयोग को संभव बनाने हेतु एक समन्वित एवं संगठित पाठ्यक्रम की आवश्यकता महसूस की जा रही थी, क्योंकि 2000 के बाद शैक्षिक क्षेत्र में अनेक शोध कार्य हुए उनका व्यावहारिक उपयोग पाठ्यक्रम में बदलाव के द्वारा ही संभव था। इस आवश्यकता की पूर्ति राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना द्वारा नवीन शोध कार्यों को समाहित करते हुए की गयी।

8. शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु–शैक्षिक लक्ष्यों में होने वाला बदलाव सामाजिक दर्शन एवं व्यवस्था में होने वाले बदलाव का ही परिणाम होता है। परिवर्तित लक्ष्यों के लिए पाठ्यक्रम के बदलाव एवं सुसंगठित करने की आवश्यकता महसूस होती है।

उपरोक्त बिन्दुओं से यह ज्ञात होता है कि राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना सन् 2005 की आवश्यकता संपूर्ण शैक्षिक प्रणाली के विकास के लिए महसूस की जा रही थी। इसके द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व सुधार हुआ है।

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि वर्तमान परिस्थितियों में राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना सन् 2005 भारतीय शिक्षा व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण एवं उपयोगी उपलब्धि है।

प्रश्न 18. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना (2005) के लक्ष्य स्पष्ट कीजिए। (जबलपुर 2018)

***अथवा*, राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना, 2005 के सिद्धांतों एवं उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।**

(ग्वालियर 2021; जबलपुर 22)

उत्तर–प्रत्येक योजना प्रणाली एवं पाठ्यक्रम से पूर्व लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है, जिससे कि पाठ्यक्रमों का मूल्यांकन किया जा सके। इसी क्रम में राष्ट्रीय पाठ्यक्रम सन् 2005 की संरचना से पहले इसके उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का निर्धारण किया गया। इस प्रकार पाठ्यक्रम के प्रमुख लक्ष्यों को निम्नलिखित रूप में बाँटा जा सकता है–

1. अभिभावकों की आकांक्षाओं की पूर्ति–अभिभावक शिक्षा के माध्यम से अपनी आकांक्षा पूर्ति विद्यार्थी के माध्यम से करना चाहते हैं, यानि प्रत्येक अभिभावक अपने बच्चे को स्कूल में भेजने के बाद उससे कुछ अपेक्षाएँ रखता है। इन अपेक्षाओं की पूर्ति स्कूल व्यवस्था एवं स्कूल पाठ्यक्रम पर आधारित है। अतः अभिभावकों की आकांक्षा को ध्यान में रखकर इस पाठ्यक्रम का निर्माण किया गया है। अतः अभिभावकों की आकांक्षा पूर्ति राष्ट्रीय पाठ्यक्रम सन् 2005 का मुख्य लक्ष्य है।

2. संस्कृति का संरक्षण–भारतीय संस्कृति विश्व के लिए अनुकरणीय संस्कृति एवं आदर्श संस्कृति के रूप में देखी जाती है। विश्व स्तर पर भारतीय संस्कृति की प्रशंसा होती है, उस अक्षुण्ण संस्कृति का संरक्षण राष्ट्रीय पाठ्यक्रम सन् 2005 का प्रमुख लक्ष्य रहा है।

3. शिक्षण साधनों में समन्वय स्थापित करना–राष्ट्रीय पाठ्यक्रम सन् 2005 की संरचना का प्रमुख लक्ष्य शिक्षण के मानवीय एवं भौतिक संसाधनों में समन्वय स्थापित करना है, क्योंकि पाठ्यक्रम के निर्माण से पहले उपलब्ध शैक्षिक संसाधनों पर विचार किया जाता है। पाठ्यक्रम में उन सभी संसाधनों के उचित एवं समन्वयपूर्ण प्रयोग को वरीयता दी गयी है, जिससे कि पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन में कोई रुकावट उपस्थित न हो। अतः शिक्षण साधनों में समन्वय स्थापित करना राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का प्रमुख लक्ष्य है।

4. अध्यापकों में आत्म–विश्वास का विकास–अध्यापक पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन एवं उसे सफल बनाने का प्रमुख साधन है। पाठ्यक्रम को सफल रूप से क्रियान्वित करने वाला अध्यापक ही होता है। अध्यापकों में आत्मविश्वास के विकास को स्वीकार करते हुए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में इस बात पर विस्तृत विचार–विमर्श किया गया कि अध्यापकों में आत्मविश्वास की भावना को सुदृढ़ किया जाये जिससे कि पाठ्यक्रम को उचित ढंग से क्रियान्वित किया जा सके।

5. शारीरिक एवं मानसिक विकास में समन्वयन—छात्र के विकास के दो प्रमुख पक्ष होते हैं, जिसका संबंध शारीरिक एवं मानसिक विकास से होता है। इस पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों के मानसिक विकास के लिए सैद्धान्तिक विकास को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है तथा शारीरिक विकास के लिए खेलकूद एवं अन्य प्रायोगिक कार्यों को पाठ्यक्रम में स्थान प्रदान किया गया है।

इस प्रकार पाठ्यक्रम को मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से विद्यार्थियों के अनुकूल बनाकर मानसिक एवं शारीरिक विकास के उद्देश्य को पूर्ण किया है।

6. विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास—राष्ट्रीय पाठ्यक्रम 2005 का प्रमुख लक्ष्य विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना है। इस पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों को क्रियाशील रखने के लिए प्रायोगिक एवं सैद्धान्तिक पक्षों का समन्वय किया गया है। प्रायोगिक कार्यों का प्रत्येक स्तर पर स्वरूप अलग-अलग होता है। जैसे प्राथमिक स्तर पर सृजनात्मक स्तर को कार्यानुभव का नाम दिया गया है तथा माध्यमिक स्तर पर इसको प्रायोगिक कार्य के नाम से जाना जाता है। अतः छात्र को क्रियात्मक एवं सैद्धान्तिक पक्ष दोनों दृष्टिकोण से सुदृढ़ बनाया जाता है।

7. सामाजिक एकता—सामाजिक एकता का अभिप्राय उस व्यवस्था के विकास से है, जहाँ प्रत्येक मानव अपने अधिकार, कर्त्तव्य एवं स्वस्थ सामाजिक परम्पराओं का पालन एवं संरक्षण करता हो। भारतीय समाज में एक पक्ष दहेज के महत्व को स्वीकार करता है तथा दूसरे पक्ष दहेज को नकारता है। समाज में इस तरह की विचारधारा विघटन पैदा करती है। पाठ्यक्रम के माध्यम से विद्यार्थी में शुरू से ही दहेज प्रथा से होने वाली हानियों का ज्ञान कराने से विद्यार्थी दहेज प्रथा को नकार देगा तथा समाज में समानता स्थापित होगी। पाठ्यक्रम में इस प्रकार की विषयवस्तु को समाहित कर राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की संरचना ने सामाजिक एकता के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया है।

8. भाषा समस्या का निदान—NCF-2005 में भाषा समस्या का निदान भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। भारतीय समाज में विभिन्न प्रांतों में भाषा का स्वरूप अलग-अलग पाया जाता है। इससे राष्ट्रीय पाठ्यक्रम निर्माण में भाषा की समस्या शुरू से रही है कि किस भाषा को राष्ट्रीय भाषा माना जाये ? राष्ट्रीय पाठ्यक्रम 2005 में विभिन्न भाषाओं एवं मातृभाषा को उचित स्थान प्रदान कर भाषायी समस्या का निदान किया है। अतः भारतीय समाज में भाषा समस्या के निदान का लक्ष्य राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का प्रमुख लक्ष्य है।

अतः उपरोक्त बिन्दुओं से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय पाठ्यक्रम 2005 लक्ष्यों की दृष्टि से धनी एवं प्रभावशाली पाठ्यक्रम माना जा सकता है, क्योंकि इसमें विद्यार्थियों के विकास संबंधी उन सभी बातों को समाहित किया गया है जो सर्वांगीण विकास के लिए अति आवश्यक होते हैं। इसलिए इस पाठ्यक्रम के लक्ष्य राष्ट्र, समाज, विद्यार्थी एवं अध्यापक के हितार्थ निर्धारित किये गए हैं।

प्रश्न 19. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना, 2005 की मुख्य बाधाओं का वर्णन कीजिए।

(ग्वालियर 2019)

उत्तर—राष्ट्रीय पाठ्यक्रम सन् 2005 की संरचना एवं क्रियान्वयन संबंधी प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं—

1. परम्पराओं की समस्या— समाज एवं देश को सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्पराएँ पाठ्यक्रम बनाने में प्रमुख समस्या उत्पन्न करती है। यौन शिक्षा की आवश्यकता आज के समय में उत्तम स्वास्थ्य तथा एड्स जैसी घातक बीमारी से बचाव की दृष्टि से है, परंतु भारतीय परम्पराओं के कारण यौन शिक्षा को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना, 2005 में प्रभावी रूप से प्रस्तुत नहीं किया जा सका।

अतः कहा जा सकता है कि सामाजिक परम्पराएँ एवं रूढ़िवादिता पाठ्यक्रम निर्माण की प्रमुख समस्याएँ है।

2. राजनीति संबंधी समस्याएँ—लोकतंत्र में सरकारों के परिवर्तन का क्रम चलता रहता है। सरकार के पदासीन व्यक्ति की मनोदशा का पाठ्यक्रम को बनाने में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। परंतु सत्ता के विरोधी पार्टी कई बार बिना सोचे सरकार के समर्थित पाठ्यक्रम का केवल इसलिए विरोध करती है, क्योंकि वो विपक्षी दल में हैं।

3. धन की कमी संबंधी बाधा—राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की संरचना बनाते समय धन की सीमितता को ध्यान में रखना पड़ता है। इसके फलस्वरूप पाठ्यक्रम में उन विषयों का समावेश नहीं हो पाता है जिसकी आवश्यकता महसूस की जाती है। जैसे तकनीकी शिक्षा जैसे कम्प्यूटर आदि का ज्ञान स्कूलों में प्राथमिक स्तर से देना चाहिए, परंतु धन की कमी के कारण सभी विद्यालय में सभी बच्चों के लिए इसकी पूर्ति कर पाना मुश्किल है। अतः पाठ्यक्रम संरचना का निर्माण करने एवं उन्हें क्रियान्वित करने मे धन की कमी एक बाधा के रूप में सामने आती है।

4. भाषा संबंधी समस्या या बाधा—भारतीय समाज में कई प्रकार की भाषाएँ बोली जाती है। भारत में कुछ ही दूरी पर ही भाषा बदल जाती है। भारत में बोली जाने वाली कई भाषाओं ने विवाद की स्थिति बना दी है। हर एक राज्य अपनी भाषा की उपेक्षा का दोष लगाना प्रारंभ कर देता है उसकी भाषा को पाठ्यक्रम में उचित स्थान नहीं दिया गया है। यह परेशानी राष्ट्रीय पाठ्यक्रम, 2005 के समय भी पैदा हुई कि अध्यापन का माध्यम कौन–सी भाषा हो ?

5. अध्यापक संबंधी समस्याएँ—पाठ्यक्रम में दिये गए बिन्दुओं को क्रियान्वित करने में शिक्षकों की संख्या अभाव बाधा उत्पन्न करता है; जैसे NCF-2005 में विद्यालय को शुरुआती दो वर्षों में मातृभाषा में शिक्षा दी जाने की बात कही, परंतु अध्यापकों की उपलब्धता जो कि भिन्न–भिन्न भाषाओं का ज्ञान रखते हो, संभव नहीं है, क्योंकि एक स्कूल में भोजपुरी, हिन्दी एवं उर्दू मातृभाषा के विद्यार्थी पाये जा सकते हैं।

इस प्रकार कुछ बाधाएँ है जो मुख्य रूप से राष्ट्रीय पाठ्यक्रम-2005 को लागू करवाने में सामने आई।

प्रश्न 20. अध्यापक शिक्षा की मुख्य समस्याएँ क्या है ? विस्तृत वर्णन कीजिए। (इंदौर 2016)

उत्तर—वर्तमान समय में शिक्षक शिक्षा (अध्यापक शिक्षा) की स्थिति काफी दयनीय है। शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्रों का वर्तमान में केवल एक उद्देश्य रह गया कि जरूरी औपचारिकताओं को पूर्ण करके छात्राध्यापकों को प्रमाणपत्र प्रदान करना।

छात्राध्यापक जो शिक्षक बनने के लिए प्रशिक्षण लेने आते हैं, उनका मकसद भी केवल डिग्री प्राप्त करना होता है। इस गिरती स्तर के पीछे कई कारण एवं समस्याएँ है, जिसका वर्णन निम्नलिखित हैं–

1. शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रवेश की समस्या—वर्तमान शिक्षक शिक्षा के विभिन्न पाठ्यक्रमों में प्रवेश एक विकट समस्या के रूप में उभर कर सामने आई है। अध्यापन व्यवसाय को इस समय समाज में सम्मानजनक स्थान व धनार्जन में अनुपयुक्त होने के कारण प्रतिभाशाली व योग्य व्यक्तियों की कमी रहती है।

प्रशिक्षण संस्था में प्रवेश की प्रक्रिया काफी जटिल होती है एवं प्रशिक्षण हेतु फीस भी काफी अधिक लिया जाता है जिससे प्रवेश में समस्या आती है।

2. गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण का अभाव— प्रशिक्षण केन्द्र में कार्य संतुष्टि के अभाव में कई बार प्रशिक्षण देने वाले अध्यापक अपना उत्तम कार्य नहीं दे पाते जिससे प्रशिक्षण का स्तर गिर रहा है। यह भी पाया जाता है कि जिनको भविष्य में कोई व्यवसाय समझ में नहीं आता वो अंतिम विकल्प के रूप में शिक्षण को चुनकर प्रशिक्षण लेने आते हैं, ऐसे छात्राध्यापक केवल डिग्री पाने के ही इच्छुक होते हैं इसलिए वे गुणवत्ता से समझौता करते हैं।

3. सिद्धांत एवं व्यवहार में असंतुलन– प्रशिक्षण महाविद्यालयों में शिक्षण के सिद्धांत पर बल दिया जाता है। परंतु स्कूलों में इस सिद्धांतों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। जैसे प्रशिक्षण के दौरान छात्राध्यापकों को विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण एवं व्यक्तिगत भिन्नता का सिद्धांत पढ़ाया जाता है, परंतु जब ये ही छात्राध्यापक शिक्षक बनकर विद्यालय जाता है तो उसे समय पर पाठ्यक्रम पूर्ण करने का दबाव झेलना पड़ता है। इस प्रकार सिद्धांत एवं व्यवहार में असंतुलन एक मुख्य समस्या है।

4. दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली–अध्यापक शिक्षा एक प्रशिक्षण कार्यक्रम है जिसमें प्रायोगिक कार्यों की बहुलता होती है, परन्तु अध्यापक शिक्षा का मूल्यांकन का अधिक भाग लिखित परीक्षा द्वारा किया जाता है। इस प्रकार छात्राध्यापकों का उचित मूल्यांकन संभव नहीं है।

5. शोधकार्य का अभाव–शिक्षक शिक्षा का उद्देश्य केवल शिक्षकों को प्रशिक्षित करना ही नहीं वरन् अध्यापन संबंधी अनुसंधान कार्य की व्यवस्था करना भी है। अतः उस स्तर पर शोध कार्य की नितान्त आवश्यकता है।

शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम को गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए उन समस्याओं का समाधान करना अनिवार्य है जिससे अध्यापक शिक्षा अपने उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त कर सके।

प्रश्न 21. भारत में अध्यापक शिक्षा लक्ष्य का वर्णन कीजिए। **(जबलपुर 2021)**

उत्तर–शिक्षक शिक्षा के लक्ष्य– (1) शिक्षक शिक्षा के द्वारा शिक्षक को भिन्न–भिन्न प्रचलित तथा आधुनिकतम विधियों से अवगत कराना।

(2) शिक्षक शिक्षा के द्वारा मनोविज्ञान का ज्ञान प्रदान कर शिक्षकों को छात्रों के शिक्षण हेतु प्रभावी बनाना।

(3) शिक्षकों को पाठ के शिक्षण संबंधी विषय–वस्तु की योजना बनाने का ज्ञान देना।

(4) छात्र की व्यक्तिगत विभिन्नताओं तथा आवश्यकताओं की जानकारी प्राप्त करना तथा उनके अनुसार शैक्षिक प्रक्रिया की समायोजना पर काम करना।

(5) भिन्न–भिन्न शैक्षिक साधनों, उपकरणों, दृश्य–श्रव्य साधनों तथा शैक्षिक सामग्री के विकास और उनका प्रयोग करने में अध्यापकों की सहायता करना।

(6) अध्यापक को अपने दर्शन निर्माण के साथ–साथ भिन्न–भिन्न दर्शनों का ज्ञान देना।

(7) छात्रों की प्रकृति के प्रति सूझ–बूझ का विकास करने के लिए अध्यापकों की सहायता करना।

(8) शिक्षक शिक्षा द्वारा शिक्षकों को शैक्षिक सामग्री का सही प्रयोग करना सिखाना।

(9) विद्यालय में अध्यापकों को किन–किन कर्त्तव्यों को निभाना है, इसका ज्ञान देना।

(10) कक्षा प्रबंधन तथा शिक्षण सिद्धांतों की सही जानकारी उपलब्ध करना।

प्रश्न 22. शिक्षक शिक्षा के प्रकार क्या है ? भारत में शिक्षक शिक्षा की वर्तमान स्थिति पर चर्चा कीजिए। **(भोपाल 2021)**

***अथवा*, सेवारत् अध्यापक शिक्षा का अर्थ एवं भूमिका लिखिए।**

(जबलपुर 2021; छिंदवाड़ा 22)

उत्तर–अवधारणात्मक एवं विषय सामग्री का ज्ञान प्रभावी शिक्षण के महत्वपूर्ण होता है। इसके द्वारा शिक्षकों की सम्मति एवं कार्यक्षमता में वृद्धि की जाती है। सभी शिक्षक में कौशलों एवं योग्यता इत्यादि को बढ़ाने की आवश्यकता होती है। शिक्षकों की एक बड़ी संख्या अपने व्यावसायिक कौशलों, ज्ञान एवं शक्ति में वृद्धि हेतु प्रयासरत रहता है। आधुनिक युग में शिक्षक का व्यावसायिक विकास एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है। यह विषय शिक्षकों के प्रत्येक स्तर पर लागू होती है। प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक जुड़े सभी शिक्षकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने कार्य से व्यावसायिक रूप से जुड़े और अपने व्यवसाय में दक्षता प्राप्त करें। व्यवसाय जीवकोपार्जन का साधन होता है इसके अंतर्गत कृषि, उद्योग, नौकरी आदि आते हैं। अपने व्यावसायिक कार्यों में निपुणता हेतु व्यावसायिक शिक्षण की आवश्यकता होती है और शिक्षा के लिए संगठन की।

वर्तमान में देश में दो प्रकार के शिक्षक शिक्षा संगठन है–

(अ) सेवा पूर्व शिक्षक शिक्षा

(ब) सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा।

(अ) सेवा पूर्व शिक्षक शिक्षा–भारत में विभिन्न स्तर के सेवापूर्ण शिक्षकों के लिए बहुत–सी संस्थाएँ चलायी जा रही है–

1. पूर्व प्राथमिक शिक्षक शिक्षा संस्थाएँ– (i) पूर्व प्राथमिक शिक्षक शिक्षा प्रशिक्षण संस्थाएँ। (ii) नर्सरी टीचर एजुकेशन डिप्लोमा डिपार्टमेन्ट्स।

2. प्राथमिक शिक्षक शिक्षा संस्थाएँ– (i) सामान्य विद्यालय। (ii) जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थाएँ। (iii) पत्राचार पाठ्यक्रम विभाग।

3. माध्यमिक शिक्षक शिक्षा संस्थाएँ–(i) शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय। (ii) शिक्षक शिक्षा विभाग। (iii) केन्द्रीय शिक्षा संस्थान। (iv) पत्राचार पाठ्यक्रम विभाग। (v) राज्य शिक्षा संस्थान। (vi) क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान।

4. विशिष्ट छात्रों के शिक्षकों की शिक्षा संस्थाएँ– (i) मूक–बधिर को शिक्षकों की प्रशिक्षण संस्थाएँ। (ii) दृष्टिबाधित छात्रों के शिक्षकों की प्रशिक्षण संस्थाएँ।

5. विशिष्ट पाठ्य–विषयों एवं क्रियाओं की प्रशिक्षण संस्थाएँ–

(i) शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षण महाविद्यालय एवं विभाग। (ii) कला शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय एवं विभाग। (iii) भाषा शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय एवं विभाग। (iv) गृह विज्ञान शिक्षण महाविद्यालय एवं विभाग।

(ब) सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा–सेवा के दौरान शिक्षकों के लिए शिक्षक शिक्षा की व्यवस्था को ही सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा कहते हैं। इसके दो भागों में बाँटा जा सकता है। सेवारत अशिक्षित शिक्षकों का प्रशिक्षण एवं सेवारत प्रशिक्षित शिक्षकों का प्रशिक्षण।

1. सेवारत अप्रशिक्षित शिक्षकों का प्रशिक्षण–प्रारंभ में देश के प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में अशिक्षित शिक्षकों की संख्या अत्यधिक थी। अत: उन्हें प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु कई प्रकार की पाठ्यचर्या चलायी गई जो निम्न हैं–

(i) पूर्णकालिक शिक्षक शिक्षा पाठ्यचर्या। (ii) अल्पकालिक शिक्षक शिक्षा पाठ्यचर्या। (iii) ग्रीष्म–कालिक शिक्षक शिक्षा पाठ्यचर्या। (iv) पत्राचार पाठ्यक्रम।

2. सेवारत प्रशिक्षित शिक्षकों का प्रशिक्षण–प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों में अप्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या बहुत कम हो गई है, परन्तु शिक्षक शिक्षा के विकास के साथ अद्यतन ज्ञान के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों का प्रशिक्षण आवश्यक है। इसके द्वारा शिक्षकों के नवीन शिक्षण विधियों–प्रविधियों का ज्ञान कराना तथा शिक्षण तकनीकी एवं सहायक सामग्री के प्रदर्शन एवं उपयोग का ज्ञान कराना है। सेवारत शिक्षकों को निम्नलिखित प्रकार से प्रशिक्षण दिया जा सकता हैं–

(i) विचार गोष्ठियाँ। (ii) पुनश्चर्या पाठ्यक्रम। (iii) कार्यशालाएँ। (iv) मुद्रित सामग्री वितरण। (v) जनसंचार के साधन।

प्रश्न 23. विद्यालय शिक्षक की दक्षता एवं उत्पादकता को बढ़ाने के लिए किन्हीं दो कार्यक्रमों पर चर्चा कीजिए। **(उज्जैन 2021; इंदौर 22)**

उत्तर–सेवाकालीन अध्यापक प्रशिक्षण का अर्थ उस शिक्षा से है जो प्रशिक्षण कार्यों में संलग्न शिक्षकों के लिए होता है। इस प्रक्रिया में एक शिक्षक जीवनपर्यंत विद्यार्थी ही रहता है। वह शिक्षा में हुए नए परिवर्तन शोधों तथा नवप्रवर्तनों को सीखकर अपने विद्यार्थियों को हस्तांतरित करता है। केवल वही व्यक्ति अध्यापन कार्य कर सकता है जो स्वयं पढ़ने एवं सीखने में रुचि रखता हो इसलिए शिक्षण व्यवस्था में प्रवेश कर चुके शिक्षकों का सुनियोजित कार्यक्रमों द्वारा प्रशिक्षण ही **सेवारत प्रशिक्षण** कहलाता है। इनके प्रशिक्षण के लिए जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न कार्यक्रम चलाए जाते हैं।

शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए समय–समय पर राज्य एवं राष्ट्रीय शैक्षिक संस्थाओं द्वारा विभिन्न कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इनके माध्यम से शिक्षकों की कार्यक्षमता एवं उत्पादकता में वृद्धि की जाती है। शिक्षकों की कार्यक्षमता एवं उत्पादकता में वृद्धि हेतु निम्नलिखित प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाते हैं–

1. संगोष्ठी–संगोष्ठी के अंतर्गत शिक्षण से संबंधित प्रत्येक प्रकार की समस्याओं पर सामूहिक विचार किया जाता है। शिक्षकों को प्रशिक्षण के लिए संगोष्ठी के आयोजन हेतु पहले से ही कार्यक्रम तैयार कर लिए जाते हैं तथा संबंधित प्रकरण को प्रत्येक प्रतिभागी को भेज दिए जाते हैं। एक निश्चित तिथि को सभी प्रतिभागियों द्वारा एक निश्चित स्थान पर खुले अधिवेशन का आयोजन कर विचार–विमर्श किया जाता है। विभिन्न समस्याओं पर विचार करने के लिए अनेक कमीटियों का गठन किया जाता है तथा उनके द्वारा प्रदान रिपोर्ट को खुले सदन में पढ़ा जाता है तथा सुधार हेतु सुझाव आमंत्रित किए जाते हैं। इसके द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों के पुनःनिर्धारण, नई शिक्षण विधियाँ, पर्यवेक्षण, पाठ्यक्रम सुधार एवं शिक्षा के अन्य बहुत से पक्षों पर संगोष्ठी का आयोजन कर उनकी समस्याओं का समाधान प्राप्त किया जाता है।

2. कार्यशालाएँ–सेवाकालीन अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए कार्यशालाएँ आयोजित की जाती है। इन कार्यशालाओं में क्रियात्मक तरीकों को अपनाया जाता है। सभी प्रतिभागी अध्यापक सक्रिय रहकर अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इसके अंतर्गत प्रयोगात्मक शिक्षा को अधिक महत्व दिया जाता है तथा सैद्धांतिक को कम। इसके द्वारा अध्यापकों को अभ्यासात्मक कार्यों में निपुणता प्राप्त होती है तथा वे अंतिम निष्कर्षों पर पहुँचकर उसका विश्लेषण करते हैं। कार्यशाला के कार्यों द्वारा शिक्षकों के अन्तर्दृष्टि का निर्माण होता है।

प्रश्न 24. राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के मुख्य बिंदुओं का उल्लेख कीजिए।

(इंदौर 2023)

***अथवा,* राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा के कार्यों का वर्णन कीजिए।** **(ग्वालियर 2022)**

उत्तर–राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान भारत सरकार द्वारा संचालित शैक्षिक अभियान है। इसका प्रारम्भ मार्च 2009 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर माध्यमिक शिक्षा में सुधार के लिए किया गया था। केन्द्र सरकार का मानना था कि एक अभियान के रूप में अर्थात् एक आन्दोलन के रूप में केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों के सहयोग से माध्यमिक शिक्षा में सुधार लाया जा सकता है। इसलिए केन्द्र सरकार ने 75% अनुदान अपनी ओर से तथा 25% राज्य सरकारों की ओर से मिलाकर इस अभियान को प्रारम्भ किया। कुछ राज्यों में ये अनुदान 90 : 10 का था अर्थात् 90% धन केन्द्र सरकार व्यय करेगी तथा 10% धन राज्य सरकार द्वारा व्यय किया जाएगा। इसके लिए लगभग 2012 करोड़ रुपये का बजट केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित किया गया।

माध्यमिक शिक्षा योजना का उद्देश्य किसी बस्ती से तर्कसंगत दूरी के अन्दर माध्यमिक विद्यालय प्रदान कर माध्यमिक स्तर पर नामांकन दर को शत्–प्रतिशत् करने की परिकल्पना है। इसके अन्य उद्देश्यों में सभी माध्यमिक विद्यालयों को निर्धारित मापदण्डों का पालन करने वाला बनाकर माध्यमिक स्तर पर प्रदान की जा रही शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करना है। लैंगिक, सामाजिक–आर्थिक एवं अपंगता की अड़चनों को दूर करना, वर्ष 2017 तक माध्यमिक स्तर की शिक्षा को सर्वसुलभ बनाना तथा वर्ष 2020 तक सभी बालकों को विद्यालय में भर्ती का लक्ष्य प्राप्त करना है।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के उद्देश्य, आवश्यकता, महत्व एवं स्वरूप को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

(1) माध्यमिक शिक्षा के स्तर में सुधार (Reform in level of secondary education)—माध्यमिक शिक्षा के स्तर में सुधार के लिए केन्द्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान का प्रारम्भ किया गया। इस अभियान का प्रमुख उद्देश्य कक्षा 10 तक की शिक्षा को अनिवार्य बनाने की व्यवस्था करना था। अर्थात् जिस प्रकार 6 से 8 तक की शिक्षा स्तर में सुधार किया गया ठीक इसी प्रकार 9 से 10 तक की शिक्षा के स्तर में सुधार किया जाय तथा इस क्रम को आगे बढ़ाया जाय। विद्यालयी व्यवस्था रूचिपूर्ण एवं उपयोगी होनी चाहिए जिससे प्रत्येक छात्र एवं छात्रा माध्यमिक विद्यालयों में प्रवेश प्राप्त कर सके तथा अभिभावक छात्रों को विद्यालय भेजने में रुचि रख सके।

(2) विज्ञान, गणित एवं अंग्रेजी की शिक्षा पर विशेष ध्यान (Specific attention on education of Science, Mathematics and English)—वर्तमान समय में विज्ञान एवं गणित प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक है। विज्ञान एवं गणित के सहयोग से ही विविध क्षेत्रों का विकास सम्भव होता है। अंग्रेजी की आवश्यकता वैश्विक स्तर पर सम्प्रेषण के लिए होती है। आज अंग्रेजी के ज्ञान के अभाव में वैश्विक स्तर पर विचारों का आदान–प्रदान सम्भव नहीं है। इसलिए वैश्वीकरण की प्रक्रिया में अंग्रेजी का ज्ञान होना भी आवश्यक है। इस प्रकार इन तीनों विषयों के लिए इस अभियान में योग्य शिक्षकों की नियुक्ति तथा सर्वोत्तम शिक्षा व्यवस्था उपलब्ध कराने का उद्देश्य रखा गया।

(3) लैंगिक भेदभाव की समाप्ति (Abolition of sex discrimination)—अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में यह देखा गया है कि बालिकाओं को कक्षा 8 तक शिक्षा ग्रहण करने के बाद माध्यमिक विद्यालयों में नहीं भेजा जाता। यह मान लिया जाता है कि उनकी शिक्षा पूर्ण हो गयी। इस अभियान में इस स्थिति को समाप्त करने की पूर्ण योजना थी।

(4) सामाजिक एवं क्षेत्रीय भेदभाव की समाप्ति (Abolition of social and regional discrimination)—सामाजिक एवं क्षेत्रीय भेदभाव की समाप्ति करने का प्रण भी इस अभियान में लिया गया। जहाँ पर शिक्षित समाज है वहाँ पर माध्यमिक विद्यालयों की संख्या अधिक देखी जाती है। इस अभियान में उस आदिवासी एवं पिछड़े समाज को प्राथमिकता दी गयी। जहाँ पर विद्यालयों का अभाव था।

(5) ड्रॉप आउट समस्या का समाधान (Solution of dropout problems)—प्राय: यह देखा जाता है कि बालक कक्षा नौ में प्रवेश लेकर चार या पाँच महीने पढ़ता है। इसके बाद विद्यालय छोड़ देता है। इस प्रकार की स्थिति हमारी सामाजिक एवं शैक्षिक व्यवस्था की प्रभावहीनता को स्पष्ट करती है। सरकार द्वारा राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के माध्यम से यह प्रयास किया गया कि इस प्रकार के छात्रों द्वारा विद्यालय छोड़ने के कारणों के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जाए।

(6) अतिरिक्त कक्षा–कक्षाओं का निर्माण (Construction of additional classrooms)—अनेक माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति भीड़युक्त थी। छात्रों के बैठने के लिए कक्षा–कक्ष उपलब्ध नहीं थे। इस समस्या का समाधान करने के लिए सरकार द्वारा अतिरिक्त कक्षा–कक्षों के निर्माण हेतु धनराशि स्वीकृत की गयी जिसमें अधिक–से–अधिक छात्र माध्यमिक विद्यालयों में प्रवेश पा सकें।

(7) विज्ञान प्रयोगशालाओं का निर्माण (Construction of science laboratories)—राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा के अभियान के अन्तर्गत विज्ञान शिक्षा के उन्नयन हेतु प्रयोगशालाओं का निर्माण कराया गया। अनेक माध्यमिक विद्यालयों में प्रयोगशालाएँ उपलब्ध नहीं थी जिसमें छात्र मात्र सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त कर पाते थे तथा प्रयोग सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाते थे।

(8) पुस्तकालयों की स्थापना (Establishment of libraries)—माध्यमिक स्तर पर विद्यालयों में पुस्तकालयों का अभाव देखा गया। इस अभियान में यह सुनिश्चित किया गया कि प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय में पुस्तकालय की व्यवस्था होगी तथा पुस्तकालय को उचित, उपयोगी एवं विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों से सुसज्जित कराया जाएगा। जिससे छात्र अतिरिक्त समय का उपयोग पुस्तकालय में पुस्तकों के अध्ययन के रूप में कर सकें।

(9) कम्प्यूटरों की व्यवस्था (Arrangement of computers)—इस अभियान के अन्तर्गत यह निश्चित किया गया कि माध्यमिक स्तर पर प्रत्येक विद्यालय में कम्प्यूटर कक्ष का निर्माण किया जाए जिसमें कम्प्यूटरों की व्यवस्था की जाए। वर्तमान समय तकनीकी शिक्षा का है इसलिए कम्प्यूटर शिक्षा प्रत्येक छात्र के लिए अनिवार्य है।

(10) शिल्पकला एवं कलाकक्ष का निर्माण (Construction of craftroom and artroom)—कला ही जीवन है। छात्रों को प्राथमिक स्तर से ही कला एवं हस्तकला के बारे में ज्ञान प्रदान किया जाता है। इस तथ्य को माध्यमिक स्तर पर भी स्वीकार किया गया तथा यह ध्यान रखा गया कि प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय में एक कलाकक्ष भी होना चाहिए जिसमें विविध प्रकार की कलाकृतियों एवं शिल्पकला सम्बन्धी वस्तुओं को रखने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

(11) सांस्कृतिक कक्षों का निर्माण (Construction of cultural classrooms)—राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान में भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं विकास का विशेष ध्यान रखा गया। इसी सन्दर्भ में प्रत्येक विद्यालय में सांस्कृतिक कक्ष के निर्माण की व्यवस्था की गयी। इस प्रकार का कक्ष हॉल की तरह होगा, जिसमें मंच की व्यवस्था होगी।

(12) शौचालयों का निर्माण (Construction of toilets)—विद्यालयी स्वच्छता एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा व्यवस्था को ध्यान में रखकर माध्यमिक विद्यालयों में शौचालयों की व्यवस्था की गयी। जिससे छात्र एवं छात्राओं को खुले में शौच न जाना पड़े। शौचालयों की व्यवस्था छात्रों एवं छात्राओं के लिए पृथक्-पृथक् रूप में की गयी।

(13) पीने के पानी की सुविधा (Facility of drinking water)—प्रायः विद्यालयों में यह देखा गया कि आदिवासी एवं पिछड़े क्षेत्र में पीने के पानी की समुचित व्यवस्था नहीं है। छात्र बाहर से पानी पीते हैं या विद्यालय का हैण्ड–पम्प खराब पड़ा है, और यदि हैण्ड पम्प चालू हालत में है तो उसका पानी खारा है।

(14) सेवारत प्रशिक्षण की व्यवस्था (Arrangement of inservice training)—राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के अन्तर्गत शिक्षकों के लिए सेवाकाल में प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी। इसके प्रमुख रूप से दो लाभ हैं। प्रथम शिक्षकों को शिक्षण सामग्री तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया सम्बन्धी उन सभी तथ्यों का ज्ञान उपलब्ध होता है जो आधुनिक शैक्षिक अनुसंधानों के निष्कर्ष के रूप में प्राप्त होते हैं तथा दूसरा, उन्हें शिक्षण तकनीकी एवं सहायक सामग्रियों के प्रदर्शन एवं उपयोग का ज्ञान प्राप्त होता है।

प्रश्न 25. अध्यापक शिक्षा की दार्शनिक आवश्यकताएँ बताइए। (उज्जैन 2022)

उत्तर–अध्यापक के महत्व की चर्चा करते हुए डॉ. राधाकृष्णन (Dr. Radhakrishnan) ने लिखा है–"समाज में अध्यापक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्पराएँ और तकनीकी कौशल पहुँचाने का केन्द्र है और सभ्यता के प्रकाश को प्रज्जवलित रखने में सहायता देता है।" (The teacher's place in society is of vital importance. He acts as the pivot for the transmission of intellectual traditions and technical skill from one generation to other generation and help to keep the lamp of civilization burning)

वास्तव में इसलिए किसी भी राष्ट्र का हित उस राष्ट्र के शिक्षकों के हित पर निर्भर है। एक शिक्षक अपने जीवन काल में हजारों विद्यार्थियों को शिक्षित करता है। अतः शिक्षक ही हमारे भविष्य के संरक्षक हैं और इसलिए शिक्षक की ओर प्रत्येक दृष्टि से ध्यान देना है। यह निर्विवाद है कि शिक्षा के स्तर और राष्ट्रीय विकास में शिक्षा के योगदान को जितनी बातें प्रभावित करती हैं, उनमें शिक्षकों के गुण, उनकी क्षमता और उनका चरित्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। अतः आवश्यक है कि अध्ययन–व्यवसाय में पर्याप्त संख्या में योग्य शिक्षक नियुक्त किये जायें। उन्हें सर्वोत्तम व्यावसायिक साधन उपलब्ध कराये जायें और ऐसी सन्तोषप्रद स्थितियाँ बनायी जायें जिनमें वे पूर्ण प्रभावी ढंग से कार्य कर सकें।

अध्यापक शिक्षा द्वारा बाल–मनोविज्ञान का ज्ञान होता है। बालक के व्यक्तित्व के विकास में अनुभव और पर्यावरण का क्या स्थान है? इन पर कितना नियन्त्रण सम्भव है?, कैसे संभव है?, बालक कैसे सीखता है? सीखने की प्रक्रिया को प्रभावी किस प्रकार बनाया जा सकता है ? मूल्यांकन क्या है ? क्यों करना चाहिए ? कैसे करना चाहिए ? आदि बहुत सी बातों का ज्ञान हो जाता है और इस प्रकार अध्यापक के रूप में एक सामान्य व्यक्ति की भी योग्यता बढ़ जाती है। बाल–मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान हो जाने से बालकों के प्रति अच्छी अभिवृत्ति के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि बनती है। बालकों के प्रति जिस प्रकार का क्रूर अमानवीय व्यवहार कुछ पुराने अध्यापक करते रहे हैं, उसके प्रति घृणा उत्पन्न होती है। बालकों के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसकी जानकारी होती है। अनुशासन क्या है ? कक्षा में अनुशासन कैसे स्थापित किया जाए ?, अनुशासनहीनता किन कारणों से उत्पन्न होती है ? आदि का ज्ञान हो जाने से अनुशासन संबंधी समस्याओं का निराकरण करने में सहायता मिलती है। दार्शनिक, समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक आधारों में पृष्ठ शिक्षण विधियों का ज्ञान हो जाने से किसी विषय के शिक्षण को अधिक सार्थक बनाया जा सकता है। अधिगम की प्रक्रिया में छात्रों को निष्क्रिय श्रोता बनाने के स्थान पर सक्रिय सहभागी बनाना चाहिए। इससे ज्ञान और इसकी विधि का ज्ञान होता है। सामान्य रूप से प्रत्येक स्तर पर तथा विशेष रूप से प्राथमिक–माध्यमिक स्तर पर अध्यापक शिक्षा की अधिक आवश्यकता होती है। छोटे बालकों को पढ़ाना कठिन होता है। उन्हें पढ़ाने के लिए समय, समझ और शक्ति की विशेष आवश्यकता होती है। शिक्षाविदों ने अनुसंधान द्वारा ऐसी विधियाँ खोज निकाली हैं, जिनका प्रयोग करने से कम समय में और कम शक्ति में मात्रा एवं प्रभाव दोनों दृष्टियों से अधिक शिक्षण एवं अधिगम सम्भव है।

भारत सरकार की शिक्षा संबंधी प्रबन्ध सन् 1913 में भी अध्यापक प्रशिक्षण के महत्व पर विशेष बल दिया गया। यह घोषित किया गया कि "शिक्षा की आधुनिक व्यवस्था में किसी भी शिक्षक को कम समय तक अध्यापन कार्य न सौंपा जाय, जब तक कि उसके पास अपेक्षित योग्यता प्रमाण–पत्र न हो।" अध्यापक–प्रशिक्षण से जो यह सरकारी संरक्षण प्रदान किया गया। इसमें अध्यापक–प्रशिक्षण का जहाँ संख्यात्मक प्रसार हुआ वहाँ उसका गुणात्मक विकास अवरूद्ध हो गया। इसे केवल नौकरी प्राप्त करने का एक अनिवार्य शर्त मान लिया गया। उसके शैक्षिक पक्ष की उपेक्षा की जाने लगी। सन् 1919 में कोलकाता विश्वविद्यालय आयोग ने अनुसंधान कार्य को विधिपूर्ण बनाने और प्रत्येक विश्वविद्यालय में शिक्षा विभाग स्थापित करने की आवश्यकता पर विशेष बल दिया। साथ ही अनुशंसाएँ की कि प्रत्येक प्रशिक्षण महाविद्यालय में संलग्न एक प्रदर्शन विद्यालय (डिमॉन्स्ट्रेशन स्कूल) हो, जिसमें प्रायोगिक कार्य किया जा सके। सन् 1929 में हर्टाग समिति ने प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों के प्रशिक्षण से संबंधित सुझाव दिए–

(1) सामान्य शिक्षा के स्तर को ऊँचा किया जाए।

(2) प्रशिक्षण काल की अवधि को बढ़ाया जाए।

(3) सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए।

(4) अभिनवन पाठ्यक्रम (रिफ्रेशर कोर्स) की भी व्यवस्था की जाए।

उपर्युक्त सुझावों के कारण अनेक विश्वविद्यालयों में अलग से शिक्षा विभाग स्थापित हुए प्रशिक्षण अनुसंधान डिग्री आरम्भ हुई और प्रशिक्षण संस्थाओं की गुणात्मक उन्नति हुई।

प्रश्न 26. राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन को संक्षेप में समझाइए। **(उज्जैन 2022)**

उत्तर–राष्ट्रीय मूल्यांकन संगठन–अपने देश में राष्ट्रीय स्तर के कुछ ऐसे अभिकरणों का अस्तित्व है जो सम्पूर्ण देश में अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रमों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में देखरेख करते हैं। शिक्षा के वांछनीय स्तर बनाए रखने के लिए वे सुविधाएँ प्रदान करते हैं तथा आवश्यकतानुसार इन पर नियन्त्रण रखते हैं। ये अभिकरण इस प्रकार है–

(1) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission)–प्रश्न क्रमांक 9 का उत्तर देखें।

(2) अध्यापक शिक्षा समिति (Teacher Education Committee)–अध्यापक शिक्षा के लिए किसी समिति का गठन किया जाना अध्यापकों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों के उन्नयन हेतु आयोग का एक महत्वपूर्ण निर्णय होता है। इस समिति का प्रमुख कार्य यह है कि वो अध्यापक शिक्षा में नवाचारों तथा नवीन शोधों के विषय में जागरुकता का निर्माण करें तथा राष्ट्रीय शिक्षक फैलोशिप्स (National teacher fellowships) स्वीकृत करे। अवकाश प्राप्त विश्वविद्यालय शिक्षकों के बीच में विजिटिंग प्रोफेसर्स व एमेरीटस प्रोफेसर्स (Emeritus professor) का चयन तथा नियुक्तियाँ इस समिति की सिफारिशों के आधार पर की जाती है। वरिष्ठ तथा स्थापित प्रोफेसर्स को समिति दूसरे देशों के उच्च अध्ययन केन्द्रों (Centres of advanced studies) में विद्वतापूर्ण व्याख्यान देने तथा शिक्षा में अपना योगदान देने के लिए भेजती है। यह अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में शोध व शोधोत्तर फैलोशिप (Research and post research fellowships) के लिए अनुशंसा करती है।

(3) उच्च अध्ययन केन्द्र (Centres of advanced studies)–विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कार्यक्षेत्र में यह भी आता है कि वो शिक्षा में अध्ययन के क्षेत्र में उच्च अध्ययन योजनाओं को हाथ में ले तथा उनके लिए अनुदान की व्यवस्था करें। वड़ोदरा में बड़ोदा विश्वविद्यालय (Baroda university) के अन्तर्गत वहाँ का शिक्षा व मनोविज्ञान विभाग इस कार्य का एक प्रमुख उदाहरण है जिसे सेन्टर फॉर एडवांस्ड स्टडीज इन एजुकेशन (CASE) नाम देकर उच्च अध्ययन के केन्द्र का स्तर प्रदान कर दिया गया है।

(4) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् (NCERT)–इसकी स्थापना नई दिल्ली में 1 सितम्बर, 1966 के दिन एक स्वायत्त संस्था (Voluntary organization) के रूप में हुई थी। यह तृतीय पंचवर्षीय योजना (III Five year plan, 1961-66) में एक केन्द्रीय अभिकरण को व्यावहारिक रूप देने के विचार से स्थापित की गई थी। इसके अन्तर्गत चार क्षेत्रीय महाविद्यालय (पाँचवाँ उत्तर–पूर्व में प्रस्तावित है) कार्यरत है। हिन्दुस्तान के विभिन्न राज्यों में इस परिषद् के 17 क्षेत्रीय कार्यालय हैं। शिक्षा एवं मानव संसाधन विकास मंत्री इसके अध्यक्ष (Chairman) के रूप में बारह अन्य सदस्यों के साथ इसका नियन्त्रण अधिकारी होता है। इसके कार्यक्रम प्रबन्धन तथा संचालन कार्यकारी निदेशक द्वारा अतिरिक्त निदेशक व सचिव की सहायता से किया जाता है।

(5) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE)–प्रारम्भ में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) में 41 सदस्य होते थे। जिसका अध्यक्ष केन्द्रीय शिक्षा मंत्री होता था तथा राज्य शिक्षा विभागों के इक्कीस प्रतिनिधि, एक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) का सदस्य, एक–एक प्रतिनिधि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) ऑल इंडिया काउंसिल फॉर टेक्निकल एजुकेशन (AICTE), सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑफ एजुकेशन (CABE) व योजना आयोग के केन्द्र सरकार द्वारा नामजद प्रतिनिधि, एक–एक प्रतिनिधि पूर्व–प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक, टेक्निकल होते थे।

प्रश्न 27. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) द्वारा पूर्व सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा के लिए कौन–कौन से गुण होने चाहिए ? लिखिए। **(उज्जैन 2022)**

उत्तर–राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) द्वारा पूर्व सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा के लिए विभिन्न गुणों को चिन्हित किया गया है–

(1) सामाजिकता–शिक्षक में सामाजिकता का गुण अवश्य होना चाहिए। समाज से अलग रहकर वह न तो अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न ही छात्रों को नागरिकता की शिक्षा प्रदान कर सकता है। अतः प्रत्येक शिक्षक स्वयं को समाज के निकट रखे।

(2) उत्तम स्वास्थ्य–आदर्श शिक्षक शारीरिक रूप से पूर्णतया स्वस्थ होता है। अच्छे स्वास्थ्य के बिना कोई भी शिक्षक न तो अपने कर्त्तव्यों का उचित प्रकार से पालन कर सकेगा और न ही अपने उत्तरदायित्वों को निभा पायेगा।

(3) बुद्धिमान और अध्ययन प्रेमी–शिक्षक को बुद्धिमान तथा अध्ययन प्रेमी होना चाहिए। बुद्धि एक जन्मजात गुण है जो आदर्श शिक्षक में होना अनिवार्य है।

(4) संवेगात्मक स्थिरता–छात्रों का भावात्मक विकास करने के लिए शिक्षक में संवेगात्मक स्थिरता का होना आवश्यक है। प्रायः आर्थिक अभाव, व्यावसायिक कार्याधिकता तथा परिवार का व्यापक उत्तरदायित्व शिक्षक के लिए मानसिक अशान्ति का कारण होता है।

(5) विनोदप्रियता—शिक्षक को हँसमुख तथा विनोदप्रिय होना चाहिए। कक्षा में आवश्यकता से अधिक गम्भीरता वातावरण में नीरसता उत्पन्न कर देती है। एक तानाशाह और कठोरता की मूर्ति बनकर कक्षा में पढ़ाना अनुचित है। भयभीत छात्र अपनी शंकाओं का समाधान करने में भी हिचकते हैं। अतः शिक्षक को पर्याप्त विनोदप्रिय होना चाहिए।

(6) नेतृत्व की योग्यता—शिक्षक में नेतृत्व की योग्यता भी होनी चाहिए परन्तु उसका नेतृत्व राजनीतिक नेतृत्व नहीं, वरन् उसका नेतृत्व उसके चरित्र, प्रभावपूर्ण वाणी, अनुशासनप्रियता, सामाजिकता तथा दूसरों में प्राप्त श्रद्धा और आदर पर निर्भर हो।

(7) शिक्षा के उद्देश्यों के प्रति जागरुक—आदर्श शिक्षक शिक्षा के यथार्थ उद्देश्यों के प्रति पूर्णतया जागरुक रहता है और उन्हें एक पल के लिए भी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देता। इसका उद्देश्य छात्रों को केवल पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करना मात्र नहीं होता, वरन् बालकों की शिक्षा के महानतम् लक्ष्यों की प्राप्ति में अधिक से अधिक सहयोग देना होता है।

(8) विषय का पूर्ण ज्ञाता—शिक्षक को उस विषय का पूर्ण ज्ञाता होना चाहिए जिसका वह शिक्षण कराता है। यदि उसे अपने विषय का पूर्ण ज्ञान न हो, तो वह अपने छात्रों का ठीक प्रकार से ज्ञानात्मक विकास नहीं कर सकता है।

(9) प्रयोगात्मक दृष्टिकोण—आदर्श शिक्षक का प्रयोगात्मक दृष्टिकोण होता है। वह शिक्षण की परम्परागत विधियों से ही सन्तोष प्राप्त नहीं करता वरन् स्वयं भी प्रयोग द्वारा शिक्षण की नवीन विधियों की खोज करता है।

(10) व्यावसायिक प्रशिक्षण—शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह पूर्ण व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त किए हो। प्रभावशाली शिक्षा के लिए केवल विषय का ज्ञाता होना आवश्यक नहीं, वरन् शिक्षण विधियों की जानकारी भी आवश्यक है। समस्त व्यवसायों के समान अध्यापन भी एक प्रकार का व्यवसाय है, जिसके लिए यथायोग्य प्रविधियों एवं कौशल और प्रणालियों के ज्ञान की आवश्यकता है।

प्रश्न 28. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के लक्ष्य एवं उद्देश्य क्या हैं ? (छिंदवाड़ा 2022)

उत्तर—विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की नियुक्ति के उद्देश्य स्वयं आयोग के शब्दों में, भारतीय विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में रिपोर्ट प्रस्तुत करना तथा देश की तत्कालीन एवं भावी आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त उच्च शिक्षा के निर्माण एवं विस्तार के सम्बन्ध में सुझाव देना था।

आयोग के संस्तुतियाँ—आयोग ने अपने प्रतिवेदन में उच्च शिक्षा के स्तर को उन्नति बनाने हेतु—

लगभग सभी पहलुओं पर बहुमूल्य सुझाव दिए जो निम्न हैं—

(1) विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्य—आयोग ने भारतीय वातावरण के अतीत व वर्तमान परिस्थितियों की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किए वे निम्न हैं—

(i) विश्वविद्यालय शिक्षा का उद्देश्य देश की संस्कृति और सभ्यता का विकास करना होना चाहिए।

(ii) इस शिक्षा द्वारा उन गुणों का विकास किया जाना चाहिए जिसमें कि छात्र भविष्य में उत्तम नागरिक बनकर देश में प्रजातंत्रात्मक शासन को सफल बनाने में योगदान दे सकें।

(iii) विश्वविद्यालय शिक्षा का उद्देश्य न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बन्धुता व दूरदर्शिता की भावना का विकास करना व आदर्शों का संरक्षण करना होना चाहिए।

(2) विश्वविद्यालयी शिक्षा का प्रशासन व वित्तीय प्रबन्ध–(i) उच्च शिक्षा की व्यवस्था का उत्तरदायित्व केन्द्र व राज्य सरकार दोनों का होना चाहिए। अतः उच्च शिक्षा को समवर्ती सूची में रखा जाए।

(ii) महाविद्यालय के प्रशासन का दायित्व कॉलेज की प्रबन्ध समितियों को सौंपा जाये।

(iii) विश्वविद्यालय और महाविद्यालय को विभिन्न मदों की व्यवस्था के लिए अनुदान दिया जाये।

(iv) उच्च शिक्षा का वित्तीय भार केन्द्र व प्रान्तीय सरकारें संयुक्त रूप से वहन करें।

(3) उच्च शिक्षा का संरचनात्मक संगठन–(i) उच्च शिक्षा का संगठन स्नातक, स्नातकोत्तर और अनुसंधान के स्तरों पर किया जाये।

(ii) स्नातक स्तर पर पाठ्यक्रम 3 वर्ष, परास्नातक पाठ्यक्रम 2 वर्ष का हो और शोध कार्य के लिए न्यूनतम अवधि दो वर्ष की हो।

(iii) कृषि की उच्च शिक्षा व शोध कार्यों के लिए कृषि विश्वविद्यालय स्थापित किये जाये।

(4) उच्च शिक्षा व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए महाविद्यालय और विश्वविद्यालय के शिक्षकों के लिए भिन्न–भिन्न पदनामों के साथ भिन्न–भिन्न वेतनमान निश्चित किया जाना चाहिए।

शिक्षा का माध्यम–**(1)** उच्च शिक्षा स्तर पर हिन्दी को समृद्ध बनाने व उसका विकास करने हेतु स्वीकृत क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम बनाने का प्रयास होना चाहिए।

(2) देवनागरी लिपि के दोषों को दूर करके सभी संघीय भाषाओं को देवनागरी लिपि में लिखा जाये।

(3) उच्च शिक्षा के शिक्षण के माध्यम के लिए यथाशीघ्र अंग्रेजी के स्थान पर किसी भारतीय भाषा को प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए।

(4) इस प्रकार उच्चतर माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तर पर छात्रों को तीन भाषाएँ प्रादेशिक, संघीय और अंग्रेजी भाषा पढ़ाई जानी चाहिए।

(5) शिक्षा का पाठ्यक्रम–(i) स्नातक पाठ्यक्रम 3 वर्ष का हो और इसमें कक्षा 12 उत्तीर्ण या कोई समकक्ष परीक्षा उत्तीर्ण छात्रों को ही प्रवेश दिया जाए।

(ii) स्नातक स्तर पर कला विज्ञान और व्यावसायिक सभी वर्गों का पाठ्यक्रम विस्तृत किया जाय तथा छात्रों को अपनी रुचि एवं आवश्यकता के अनुसार विषयों के चयन की पर्याप्त स्वतंत्रता हो।

(iii) स्नातकोत्तर स्तर के पाठ्यक्रम में किसी एक विषय का गहन अध्ययन कराया जाये जिसमें विषय की शोध विधियों का ज्ञान व प्रशिक्षण अनिवार्य हो।

(6) शिक्षा के स्तर के संबंध में–(i) केवल इण्टरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण छात्रों को ही विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने का अधिकार हो। इसमें कम योग्यता वाले छात्रों को कदापि प्रवेश न दिया जाए।

(ii) परीक्षा दिवसों को छोड़कर कम–से–कम एक सत्र में 180 दिन डिग्री कॉलेजों में शिक्षण कार्य होना चाहिए।

(iii) शिक्षकों को अपने व्याख्यान ध्यानपूर्वक परिश्रम व सतर्कता से तैयार करनी चाहिए। इसी प्रकार विज्ञान के छात्रों के लिए सुसम्पन्न प्रयोगशाला उपलब्ध होनी चाहिए।

(iv) छात्रों के लिए पुस्तकालयों की व्यवस्था करनी चाहिए तथा ट्यूटोरियल कार्य में विशेष रुचि लेनी चाहिए।

(7) शिक्षक वर्ग के संदर्भ में—(i) पदोन्नति का आधार शिक्षक की योग्यता होनी चाहिये।

(ii) प्रोफेसर व रीडर तथा लेक्चरर एवं इंस्ट्रक्टर में अनुपात साधारणतया 1 : 2 का होना चाहिए।

(iii) शिक्षकों को एक सप्ताह में अधिक–से–अधिक 18 घण्टे का शिक्षण कार्य दिया जाना चाहिए।

(iv) मास्टर डिग्री कक्षाओं और शोध छात्रों के निर्देशक के लिए यह अवधि 12-15 घण्टे हो।

(v) प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण संस्थाओं में पर्याप्त अनुभवी अध्यापकों को नियुक्त किया जाये।

(8) छात्र कल्याण के सन्दर्भ में—छात्रों के संबंध में आयोग का विचार था कि केवल योग्य छात्रों को ही उच्च शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश का एकमात्र आधार योग्यता होनी चाहिए। निर्धन किन्तु प्रतिभाशाली छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विश्वविद्यालय में छात्र कल्याण सलाहकार बोर्ड की स्थापना की जाए। जो छात्र कल्याण संबंधी योजनाओं को बनाने और उसके क्रियान्वयन का कार्य करे इसके साथ ही छात्रों में व्याप्त अनुशासनहीनता से निपटने के लिए प्राक्टोरियल बोर्ड की स्थापना की जाए, जो छात्रों को अनुशासन में रहने के लिए प्रशिक्षित करे।

प्रश्न 29. अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। **(छिंदवाड़ा 2022)**

उत्तर—अध्यापक शिक्षा का क्षेत्र मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक फैला हुआ है। जन्म के समय से ही बालक का प्रथम शिक्षक उसकी माता होती है। जो उसके भोजन एवं सुरक्षा से लेकर जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, उसके विकास में सहयोगी होती है, उसे संस्कार वान बनाती है तथा परिवार वातावरण, एवं समाज में सामंजस्य सिखाती है तथा नैतिकता सहित सभी अच्छे गुणों को बालक में भर देती है।

शिक्षा जन्म से मृत्यु तक लगातार चलती रहने वाली प्रक्रिया है। अतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका दखल है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समस्याएँ हैं। उन समस्याओं को हल करने के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है। जो व्यवहार परिवर्तन कर हमें सुमार्ग पर ले जाकर प्रकृति, वातावरण, मकान तथा परिवार में सामंजस्य स्थापित कर हमारी समस्याओं को सुलझाने में मदद देती है।

अध्यापक शिक्षा के निम्नलिखित क्षेत्र हैं—(i) ज्ञानार्जन में, (ii) समस्या सुलझाने में, (iii) शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति करने में, (iv) चरित्र निर्माण में, (v) व्यक्तित्व निर्माण में, (vi) अच्छा नागरिक बनाने में, (vii) रूढ़िवादिता एवं परम्पराओं से अवगत कराने में (viii) सामाजिक चेतना जाग्रत करने में, (ix) सद्गुणों को संचारित करने में, (x) संस्कृति को पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित करने में, (xi) मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में, (xii) समाजशास्त्रीय क्षेत्र में, (xiii) कला, विज्ञान, तकनीकी शिक्षा के ज्ञानार्जन में, (xiv) शोध कार्यों में, (xv) व्यक्तियों, समाज, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीयता को समझने में, (xvi) मानवीय गुणों के बारे में, (xvii) दर्शन एवं नैतिकता में, (xviii) भौतिक, व्यावहारिक, मूर्त एवं अमूर्त विषयों के संबंध के क्षेत्र में।

प्रश्न 30. अध्यापक शिक्षा से आप क्या समझते हैं ? नई शिक्षा–नीति में अध्यापक–शिक्षा के सशक्तिकरण के लिए कौन–से कदम उठाए गए हैं ? **(छतरपुर 2022)**

उत्तर–शिक्षक/अध्यापक शिक्षा–अध्यापक के महत्व की चर्चा करते हुए डॉ. राधाकृष्णन् ने लिखा है–समाज में अध्यापक का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्पराएँ और तकनीकी कौशल पहुँचाने का केन्द्र है और सभ्यता के प्रकाश को प्रज्जवलित रखने में सहायता देता है। वास्तव में इसीलिए किसी भी राष्ट्र का हित उस राष्ट्र के शिक्षकों के हित पर निर्भर है। एक शिक्षक अपने जीवनकाल में हजारों विद्यार्थियों को शिक्षित करता है। अतः शिक्षक ही हमारे भविष्य का संरक्षक है और इसीलिए शिक्षक की ओर प्रत्येक दृष्टि से ध्यान देना है। यह निर्विवाद है कि शिक्षा के स्तर और राष्ट्रीय विकास में शिक्षा के योगदान को जितनी बातें प्रभावित करती हैं उनमें शिक्षकों के गुण, उनकी क्षमता और उनका चरित्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। अतः आवश्यक है कि अध्ययन–व्यवसाय में पर्याप्त संख्या में योग्य शिक्षक नियुक्त किये जायें, उन्हें सर्वोत्तम व्यावसायिक साधन उपलब्ध कराये जाएँ और ऐसी सन्तोषप्रद स्थितियाँ बनायी जाएँ जिनमें वे पूर्ण प्रभावी ढंग से कार्य कर सकें।

शिक्षक शिक्षा द्वारा बाल मनोविज्ञान का ज्ञान होता है। बालक के व्यक्तित्व के विकास में अनुवेश और पर्यावरण का क्या स्थान है, इन पर कितना नियन्त्रण सम्भव है ? कैसे सम्भव है ? बालक कैसे सीखता है ? सीखने की प्रक्रिया को प्रभावी किस प्रकार बनाया जा सकता है ? मूल्यांकन क्या है ? क्यों करना चाहिए ? कैसे करना चाहिए ? आदि, बहुत–सी बातों का ज्ञान हो जाता है और इस प्रकार अध्यापक के रूप में एक सामान्य व्यक्ति की भी योग्यता बढ़ जाती है। बाल मनोविज्ञान तथा शिक्षा–मनोविज्ञान का ज्ञान हो जाने से बालकों के प्रति अच्छी अभिवृत्ति के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि बनती है। बालकों के प्रति जिस प्रकार का क्रूर, अमानवीय व्यवहार कुछ पुराने अध्यापक करते रहते हैं, उसके प्रति घृणा उत्पन्न होती है। बालकों के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिये ? इसकी जानकारी होनी चाहिए। अनुशासन क्या है ? कक्षा में अनुशासन कैसे स्थापित किया जाये अनुशासनहीनता किन कारणों से उत्पन्न होती है ? आदि का ज्ञान हो जाने से अनुशासन सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण करने में सहायता मिलती है। दार्शनिक, समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक आधारों से पृष्ठ शिक्षण विधियों का ज्ञान हो जाने से किसी भी विषय के शिक्षण को अधिक सार्थक बनाया जा सकता है। अधिगम की प्रक्रिया में छात्रों को निष्क्रिय श्रोता बनाने के स्थान पर सक्रिय सहभागी बनाना चाहिये। शिक्षकों को व्यक्तिगत शिक्षण वातावरण प्रदान करने के लिए अपनी क्षमताओं, रुचियों और जरूरतों में इन अंतरों की पहचान करनी चाहिए, जो उन्हें अपने लक्ष्यों तक पहुँचने में मदद कर सके। नई नीति के अनुसार, शिक्षकों को प्रत्येक व्यक्ति के विकास की आवश्यकताओं की पहचान करने और उसके अनुसार उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाएगा।

नेशनल एजुकेशन पॉलिसी के अन्तर्गत स्कूलों तथा कॉलेजों में होने वाली शिक्षा की नीति तैयार की जाती है। भारत सरकार ने नई नेशनल एजुकेशन पॉलिसी 2020 आरंभ की है। जिसके अंतर्गत सरकार ने एजुकेशन पॉलिसी में काफी सारे मुख्य बदलाव किए हैं। National Education Policy के माध्यम से भारत को वैश्विक ज्ञान, महाशक्ति बनाना है। अब मानव संसाधन प्रबंधन मंत्रालय शिक्षा मंत्रालय के नाम से जाना जाएगा। नेशनल एजुकेशन पॉलिसी के अंतर्गत 2020 तक

स्कूली शिक्षा में 100% बी. ई. आर. के साथ पूर्व विद्यालय से माध्यमिक विद्यालय तक शिक्षा का सार्वभौमीकरण किया जाएगा। पहले 10+2 का पैटर्न फॉलो किया जाता था परन्तु अब नई शिक्षा नीति के अंतर्गत 5 + 3 + 3 +4 का पैटर्न फॉलो किया जाएगा।

समग्र अध्यापक शिक्षा शिक्षकों और स्कूल प्रमुखों के सेवाकालीन प्रशिक्षण, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध सर्वेक्षणों का संचालन अनुकूल शिक्षण वातावरण प्रदान करने के लिए प्रत्येक स्कूल को समग्र स्कूल अनुदान जैसे विभिन्न हस्तक्षेपों के लिए सहायता प्रदान करके शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार पर ध्यान केंद्रित करती है।

प्रश्न 31. भारत में अध्यापक शिक्षा की कुछ प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए और उसके समाधान के लिए सुझाव दीजिए। **(जबलपुर 2022)**

उत्तर—स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में अध्यापक–प्रशिक्षण काफी बड़े पैमाने पर सम्पन्न किया गया। वर्तमान समय में देश में 2,100 अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाएँ हैं, जैसे—शिक्षा की राज्य स्तरीय संस्थाए, माध्यमिक प्रशिक्षण संस्थाएँ एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा विभाग। इस प्रकार की सभी संस्थाओं में अध्यापकों को पर्याप्त रूप से तैयार किया जाता है। माध्यमिक विद्यालयों में 5% शिक्षक की डॉक्टरेट की उपाधि से विभूषित होते हैं।

शिक्षक शिक्षा की समस्याएँ—शिक्षक प्रशिक्षण की प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं—

1. सैद्धांतिक एवं प्रयोगात्मक अध्ययन के पाठ्यक्रम में कृत्रिमता—विभिन्न स्तरों पर अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम का आदर्श पूर्व शताब्दी के समान है। प्रभावशाली अध्यापक निर्मित करने के लिये उचित विषय–वस्तु का अभाव है। उसमें विशेष विषय में सैद्धांतिक पाठ्य विषयों का प्रयोगात्मक कार्य से कोई स्पष्ट जोड़ नहीं हैं।

2. अप्रभावी शिक्षण विधियाँ—भारत में अध्यापन–शिक्षण विधियों में अन्वेषण एवं प्रयोग बहुत कम है। अध्यापक परम्परागत शिक्षण–विधियों जैसे—नोट्स का व्याख्यान एवं श्रुतिलेख के प्रति अपनी निष्ठा रखते हैं। उन्हें आधुनिक कक्षा व्यवहार तरीकों की पहचान नहीं हैं। इसके फलस्वरूप छात्राध्यापक शिक्षण विधियों का सरलता एवं दक्षता से प्रयोग नहीं कर सकते।

3. व्यावसायिक अभिवृत्ति के विकास पर कम बल—सम्पूर्ण अध्यापक, शिक्षा कार्यक्रम इस प्रकार नियोजित किया गया है, जिसमें व्यावसायिक अभिवृत्ति के विकास पर कम ध्यान दिया गया है, जो कि अध्यापक–शिक्षा के स्वस्थ कार्यक्रम के लिए महत्वपूर्ण है।

4. विद्यालय अभ्यास पर प्रभाव नहीं—शिक्षा आयोग के अनुसार, अध्यापक–शिक्षा प्राथमिक एवं माध्यमिक दोनों स्तरों पर विद्यालय एवं विद्यालयी शिक्षा के नवीन विकास से अलग हो गई है। विद्यालयों में अपनायी जाने वाली शिक्षण की विधियाँ, पाठ्यक्रम एवं विभिन्न अन्य आवश्यकताएँ, अध्यापक शिक्षा विभागों द्वारा समर्पित एवं वास्तविक रूप में कार्यानुरूपित विधियों, पाठ्यक्रमों एवं आवश्यकताओं से भिन्न हैं।

5. छात्र अध्यापकों की दुर्बल शैक्षिक पृष्ठभूमि—अधिकांश संस्थाओं में सही नामांकन प्रक्रिया का ध्यान नहीं रखा जाता। अध्यापक महाविद्यालयों में एक सीट पाने के लिये छात्राध्यापक को जन दबाव एवं अन्य विधियों का प्रयोग करना पड़ता है। बहुत से अध्यापक शिक्षा विभागों में नामाकंन हेतु आवेदन करने वालों में वांछनीय प्रेरणा एवं शैक्षिक पृष्ठभूमि का अभाव होता है।

6. समुचित शिक्षण सुविधाओं का अभाव–अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम से अधिकांश सामान्य कक्षा महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयी, विभागों ने सौतेला व्यवहार किया है। लगभग 20% अध्यापक–शिक्षण संस्थाएँ किराए के भवनों में चल रही है। अच्छे अध्यापकों हेतु आवश्यक प्रायोगिक विद्यालय, प्रयोगशाला, पुस्तकालय एवं अन्य उपकरणों की कोई सुविधा नहीं है।

7. विभिन्न विषय–अध्यापकों की आवश्कताओं के अनुसार माँग एवं पूर्ति को नियंत्रित करने का कोई प्रयास नहीं। प्रत्येक प्रादेशिक शिक्षा विभाग पोस्ट–ग्रेजुएट अध्यापक–शिक्षा विभागों के पास कोई आँकड़े नहीं है। जिनके आधार पर वे वांछनीय संख्या में अपनी संस्थाओं में प्रवेश कर सके।

8. विश्वविद्यालय की मुख्य शैक्षिक धारा के साथ कम या अन्त : क्रिया नहीं–प्रदेश में अध्यापक शिक्षा विभाग अलग–अलग है। वर्तमान स्थिति में ऐसी कोई बात नहीं हैं। जिसके आधार पर वे विश्वविद्यालय–विभागों के लिये प्रतिरूप की भाँति कार्य कर सके।

9. अध्यापक–शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोगात्मक अनुसंधान के अपर्याप्त आधार–शिक्षा में अनुसंधान अपेक्षित है और जो कुछ अनुसंधान इस क्षेत्र में होते हैं, उनका स्तर निम्न होता है।

10. अध्यापक प्रशिक्षकों के व्यावसायिक निकाय हेतु कोई उचित प्रबंध नहीं–अध्यापक प्रशिक्षकों को व्यावसायिक विकास के लिये बहुत कम प्रेरणा प्रदान की जाती है। ग्रीष्मकालीन संस्थाएँ जो यू.जी.सी. एवं एन.सी.ई. आर.टी की सहायता के द्वारा नियोजित की जाती हैं।

प्रश्न 32. अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय के उद्देश्यों की विवेचना कीजिए। (ग्वालियर 2022)

उत्तर–अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय के अंतर्गत कोठारी आयोग ने कहा कि 'योग्यता' एवं 'गुण' शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्राण है। इसकी कमी से अध्यापक शिक्षा न केवल एक वित्तीय बर्बादी होगी, वरन् यह शैक्षिक स्तर में गिरावट का कारण बन जायेगा। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए आयोग ने अध्यापक शिष्य कार्यक्रम के गुणात्मक विकास के लिये निम्नलिखित आवश्यक निर्देश दिये हैं–

1. विषय का पूर्ण नियोजित समायोजन अथवा विश्वविद्यालयों का स्नातकोत्तर महाविद्यालयों के सहयोग में शिक्षण के मूल तत्वों के बारे में गहन अध्ययन करना।
2. विश्वविद्यालयों में सामान्य तथा व्यावसायिक शिक्षा पाठ्यक्रमों को आरंभ करना।
3. शिक्षा में अनुसन्धान के विकास द्वारा व्यावसायिक शिक्षा को भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप बनाना।
4. शिक्षा की तकनीक में ऐसा सुधार करना, जिससे कि स्वतंत्र अध्ययन तथा वाद–विवाद को पूरा स्थान मिल सके। मूल्यांकन के तरीकों में सुधार, जिससे कि आन्तरिक प्रयोगात्मक कार्य का सही तरीके से मूल्यांकन किया जा सके।
5. शिक्षण अभ्यास में सुधार और इसे व्यापक कार्यक्रम बनाना।
6. विशेष पाठ्यक्रम तथा कार्यक्रमों का विकास।
7. विकासशील शिक्षा पद्धति में शिक्षक के बहुमुखी उत्तरदायित्वों को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक स्तर पर शिक्षा पाठ्यक्रम तथा कार्यक्रम में सुधार करना।

आयोग के उपरोक्त विचारों में अधिकतर बातें या तो दोहरायी गयी है या फिर उनमें विरोधाभास है। यह कोई भी ऐसा निर्देश नहीं देता, जो कि भारत में अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के लिए कोई ठोस आधार बन सके।

माध्यमिक स्तर की प्रशिक्षण संस्थाओं को उठाने की दृष्टि से दो प्रकार के अभिकरणों की संकल्पना प्रोग्राम ऑफ एक्शन (1986) के तहत की गई है।

(अ) शिक्षक शिक्षा के कॉलेज, (ब) शिक्षा में उच्च अध्ययन संस्थान।

प्रत्येक राज्य में सरकारी/गैर सरकारी शिक्षक शिक्षा संस्थान/महाविद्यालयों की स्थापना की गई है। जिनमें पूर्व सेवा (Pre-service) शिक्षक शिक्षा प्रशिक्षण (बी.एड.) की व्यवस्था होती है तथा सेवाकालीन (In-service) शिक्षकों के लिए विषय सम्बन्धी अभिनवन (Orientation) प्रशिक्षण करने का अवसर भी प्रदान किया जाता है। ऐसे महाविद्यालयों में मूल्य आधारित शिक्षा शैक्षिक तकनीकी, कम्प्यूटर शिक्षा व्यावसायीकरण व विज्ञान शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा आदि शैक्षिक नवाचारों व प्रयोगों सम्बन्धी प्रशिक्षण भी प्रदान किए जाते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में इस प्रकार के शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय (सी. टी. ई.) को प्रारम्भ किए जाने हेतु सुझाव दिए गए थे।

प्रश्न 33. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) को समझाते हुए भारत में व्यावसायिक संस्थानों का शिक्षण क्षेत्र में महत्व लिखिए। **(उज्जैन 2022)**

उत्तर—राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) की स्थापना स्वायत्तशासी संस्थान रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1860 के अन्तर्गत् 1 सितम्बर, 1961 को की गई थी। जिसका मुख्यालय नई दिल्ली में है तथा राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान नई दिल्ली को इसके साथ सम्बन्धित किया गया। NCERT के अन्तर्गत् पाँच क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान भी अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् काफी दिनों तक राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के लिए भी मुख्यालय के रूप में कार्य करती रही और बाद में जब इसे वैधानिक दर्जा मिला तो यह संस्था अलग कार्यालय में कार्य करने लगी। **कोठारी आयोग** (1964-66) के द्वारा अपनी संस्तुति में शिक्षा के स्तरोन्नयन का दायित्व पर्याप्त मात्रा में भारत सरकार पर है, यह कहे जाने के बाद 1973 में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् का गठन लिया गया था। जब केन्द्रीय शिक्षा परामर्श दात्री समिति (1972) ने इस आशय से एक प्रस्ताव पारित किया। एन.सी.ई.आर.टी. के समान ही स्वायत्तशासी होने का अधिकार भी मिल पाया। नई दिल्ली में आज इस परिषद् का भी अपना पृथक् कार्यालय है। संवैधानिक दर्जा दिये जाने के पहले इस परिषद् के कार्यक्षेत्र में जिन पहलुओं को महत्व दिया गया था, उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

सन् 1995 के एन.सी.टी.ई. अधिनियम के तहत् इस परिषद् के कार्यक्षेत्र में विस्तारण हो पाया जिन्हें निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(1) मान्यता प्रदान करना—अध्यापक शिक्षा के विभिन्न स्तरीय पाठ्यक्रमों के संचालन के लिए विश्वविद्यालय, महाविद्यालय या संस्थाओं के शिक्षा विभागों के परिषद् के द्वारा मान्यता प्राप्त करना आवश्यक माना गया और संसाधन एवं सुविधाओं की उचित जाँच करने के बाद जो कि सम्बन्धित विभाग में उपलब्ध हों, परिषद् का कार्य उन्हें मान्यता प्रदान करना है।

(2) प्रमाणीकरण करना–अध्यापक शिक्षा हेतु निर्धारित मानकों को ध्यान में रखते हुए परिषद् कार्य अध्यापक शिक्षा संस्थानों की निरीक्षण की समितियों के माध्यम से जाँच करने के बाद उनका प्रमाणीकरण करना भी है। मान्यता में जहाँ उपाधि को वैध करार दिया जाता है, वहीं पर प्रमाणीकरण में संस्थान को अध्यापक शिक्षा के किसी भी स्तरीय पाठ्यक्रम को संचालित करने के लिए योग्य करार दिया जाता है।

(3) अधिकार–पत्र प्रदान करना–यह भी इस परिषद् के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य माना गया जिसके तहत परिषद् को उपयुक्त उपाधिकारी किसी व्यक्ति को शिक्षण कार्य को करने के लिए, अधिकार–पत्र, प्रदान करना आता है। पहले इसे दो वर्ष तक के लिए और पुनः बाद में 5 या 10 वर्ष की अवधि हेतु और अन्ततः आजीवन के लिए वैध अधिकार प्रदान किये जाने का प्रावधान किया गया है।

(4) अन्य कार्य–इन प्रमुख कार्यों के अतिरिक्त जिन अन्य कार्यों को परिषद् के लिए निर्दिष्ट किया गया है उनमें से अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न वैषयिक सर्वेक्षण को कराना और प्राप्त परिणामों का प्रकाशन करना, अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के लिए समन्वयन और नियमन (को आर्डीनेटिंग–मॉनीटरिंग) करना, अध्यापक–शिक्षकों के लिए, न्यूनतम योग्यता सम्बन्धी दिशा–निर्देश तैयार करना एवं किसी स्तर पर अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए मानक (न्यूनतम, शैक्षिक, योग्यता, कुशालता, दक्षता आदि)

नियमित रूप से नवाचारिक और शोध सम्बन्धी गतिविधियों को अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में संचालित करना समस्त अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों का निरीक्षण एवं अनुदान हेतु प्रबन्ध करना। अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को विकसित करना। सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा योजना निर्माण और उनका क्रियान्वयन करना ताकि सेवारत अध्यापक/अध्यापिकाओं को नवीनतम अनुसंधान और सूचनाओं के बारे में अभिज्ञता प्राप्त हो सके, अन्य संगठनों की सहभागिता को अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में सुनिश्चित करना ताकि व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण हो सके, अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में वाणिज्यिक को रोकते हुए गुणवत्ता स्तर के उन्नयन एवं नियन्त्रण को सुनिश्चित करना।

प्रश्न 34. शिक्षक शिक्षा का अर्थ बताइए तथा शिक्षक शिक्षा के उद्देश्यों को समझाइए।

(उज्जैन 2022)

उत्तर–शिक्षक शिक्षा का अर्थ–प्रश्न क्रमांक 1 का उत्तर देखें।

शिक्षक शिक्षा के उद्देश्य–सामान्य रूप से प्रत्येक स्तर पर तथा विशेष रूप से प्राथमिक–माध्यमिक स्तर पर अध्यापक शिक्षा की अधिक आवश्यकता होती है। छोटे बालकों को पढ़ाना कठिन होता है। उन्हें पढ़ाने के लिये समय, समझ और शक्ति की विशेष आवश्यकता होती है। शिक्षाविदों ने अनुसन्धान द्वारा ऐसी विधियाँ खोज निकाली है जिनका प्रयोग करने से कम समय में और कम शक्ति में मात्रा एवं प्रभाव दोनों दृष्टियों से अधिक शिक्षण एवं अधिगम सम्भव है।

सन् 1854 के **वुड** के घोषणा पत्र (Wood despatch) द्वारा कम्पनी के संचालकों ने यह इच्छा व्यक्त की है कि इंग्लैण्ड के समान भारत के प्रत्येक प्रान्त में अतिशीघ्र प्रशिक्षण–विद्यालय स्थापित किये जायें। (We desire to see the establishment with as little delay as possible of training schools and classes for masters in each presidency in India)

प्रशिक्षण के दौरान छात्रवृत्तियाँ दी जाये तथा प्रशिक्षित अध्यापकों को अधिक वेतन दिया जाये। योग्य व्यक्तियों को अध्यापन, व्यवसाय की ओर तथा अध्यापक प्रशिक्षण की ओर आकृष्ट करने का यह अच्छा उपाय था। परन्तु सन् 1857 में भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम छिड़ गया और वुड के घोषणा–पत्र पर कोई विशेष कार्य नहीं हो पाया। सन् 1857 के स्वंत्रता संग्राम के पश्चात् नियुक्त प्रथम भारत मंत्री **लॉर्ड स्टैनले** (Lord Stanley) ने अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था पर बल दिया। उन्होंने अपने घोषणा–पत्र 1859 में लिखा–"प्रशिक्षण विद्यालयों की संस्था ने अध्यापक शिक्षा के कार्य को उस सीमा तक पूर्ण नहीं किया, जो कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स द्वारा निर्दिष्ट की गई थी।" (The institution of training schools does not seem to have carried out of the extent contemplated by the court of directors) इस घोषणा–पत्र की उपेक्षा नहीं की जा सकी। परिणामस्वरूप सन् 1882 तक भारत में 106 नॉर्मल स्कूल खुल चुके थे। जिनमें 3,886 प्रशिक्षणार्थियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था थी। इनमें वर्नाक्युलर स्कूलों के लिए अध्यापक प्रशिक्षित किये जाते थे। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को भी इन विद्यालयों में प्रवेश दिया जाता था। एक रोचक बात यह है कि यदि पढ़ी–लिखी स्त्रियाँ नहीं मिलती थीं तो समझदार और अनपढ़ स्त्रियों को नॉर्मल स्कूल में प्रविष्ट कर लिया जाता था। इस समय तक देश में केवल दो ही ट्रेनिंग कॉलेज थे–एक मद्रास में, दूसरा लाहौर में।

सन् 1882 में हण्टर कमीशन ने अध्यापक–प्रशिक्षण के कार्य को व्यवस्थित करने का सुझाव दिया। इस समय अध्यापक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में इतनी विविधता थी कि उनमें कोई साम्य खोज पाना भी कठिन था। मद्रास के प्रशिक्षण विद्यालय में 'यूरोप का इतिहास' भी एक पृथक् विषय था। हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए पृथक्–पृथक् पाठ्यक्रम थे। देश के अन्य प्रशिक्षण विद्यालयों में (संभवतः लाहौर) में 'लकड़ी का काम' भी अध्यापक–प्रशिक्षण का अनिवार्य विषय था। हण्टर कमीशन की अनुसंशाओं के आधार पर अध्यापक–प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम व्यवस्थित किया गया।

इस आयोग के सुझावों का देश में स्वागत किया गया। परिणाम यह हुआ कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक देश में पुरुषों के लिए 133 तथा महिलाओं के लिए 46 नॉर्मल स्कूल चल रहे थे। जिसमें क्रमशः लगभग 4400 और 1300 शिक्षक–प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। इलाहाबाद एवं जबलपुर आदि स्थानों पर प्रशिक्षण महाविद्यालय इसी समय प्रारंभ हुए। भारत सरकार के शिक्षा संबंधी सरकारी प्रस्ताव (Government Resolution on Educational Policy, 1904) में अध्यापक–प्रशिक्षण पर बल देते हुए निम्नलिखित सुझाव दिये गये–

(1) भारतीय शिक्षा सेवा विभाग के लिए योग्य तथा अनुभवी शिक्षकों के उच्च प्रशिक्षण का प्रबंध किया जाये।

(2) स्नातकों के लिए प्रशिक्षण की अवधि एक वर्ष हो, पूर्व स्नातकों के लिए दो वर्ष।

(3) सैद्धांतिक प्रशिक्षण तथा प्रयोगात्मक प्रशिक्षण परस्पर संबंधित हो एवं प्रत्येक प्रशिक्षण महाविद्यालय के साथ एक अभ्यासात्मक विद्यालय संलग्न हो।

(4) प्रशिक्षण महाविद्यालयों के संबंध साधारण महाविद्यालयों में होने चाहिए जिससे अध्यापक प्रशिक्षण के समय सीखी हुई विधियों को कार्यान्वित कर सकें।

भारत सरकार को शिक्षा सम्बन्धी प्रबन्ध सन् 1913 में भी अध्यापक प्रशिक्षण के महत्व पर विशेष बल दिया गया। यह घोषित किया गया कि "शिक्षा की आधुनिक व्यवस्था में किसी भी शिक्षक को उस समय तक अध्यापक कार्य न सौंपा जाये, जब तक कि उसके पास अपेक्षित योग्यता, प्रमाण–पत्र न हो।" अध्यापक–प्रशिक्षण को जो यह सरकारी संरक्षण प्रदान किया गया इससे अध्यापक–प्रशिक्षण का जहाँ संख्यात्मक प्रसार हुआ, वहीं उसका गुणात्मक विकास अवरुद्ध हो गया। इसे केवल नौकरी प्राप्त करने का एक अनिवार्य शर्त मान लिया गया।

प्रश्न 35. शिक्षक शिक्षा के सन्दर्भ में स्थिति निर्धारण और विषयवस्तु सम्वर्द्धन कार्यक्रमों के बारे में चर्चा कीजिए।

***अथवा,* विषयवस्तु संवर्धन कार्यक्रम की आवश्यकता विद्यालय शिक्षकों के लिए क्यों है ? सोदाहरण लिखिए।** **(इंदौर 2023)**

उत्तर–स्थिति निर्धारण और विषयवस्तु सम्वर्द्धन कार्यक्रम के सन्दर्भ में शिक्षक शिक्षा को अधिकतम प्रभावी बनाने हेतु इसमें निम्नलिखित अवधारणाओं के अनुसार परिवर्तन की आवश्यकता वांछनीय है–

1. अध्यापक–शिक्षण की अवधारणा में परिवर्तन–एच. बी. मजूमदार के अनुसार, "वर्तमान समय में हमारी प्रवृत्ति 'अध्यापक–प्रशिक्षण' को छोड़ अध्यापक शिक्षा की ओर बढ़ी है, जिसके फलस्वरूप प्रशिक्षण संस्थाओं में हम शिक्षकों को शिक्षण का अधिक ज्ञान एवं कौशल देने से सन्तुष्ट नहीं हैं। इस विचारधारा में परिवर्तन आया है कि शिक्षक एक पूरी तरह शिक्षित तथा पूर्ण विकसित मनुष्य हो, योग्य नागरिक हो और साथ ही व्यावसायिक हो। इसको प्रशिक्षण संस्थाओं के कार्यक्रम में जोड़ा जा रहा है। अध्यापकीय शिक्षा के क्षेत्र में जो अत्यधिक ज्ञान का विस्तार हुआ है, इसकी भी अधिक माँग बढ़ रही है। अवयव–विधि की अवस्था अध्यापकीय शिक्षा के क्षेत्र में नये आयाम लायी है। शिक्षण की अवधारणा बदल रही है। आज शिक्षा केवल ज्ञान देने तथा सूचना प्रदान करने तक ही सीमित नहीं है। वह सीखने वालों की इस प्रकार से सहायता कर रही है कि वे स्वयं ही बदलते हुए समाज में अपना कौशल विकसित कर सकें।"

इस सम्पूर्ण आधुनिक प्रवृत्ति का प्रभाव अध्यापकीय पाठ्यक्रम पर पड़ना स्वाभाविक है। अध्यापक–शिक्षण कार्यक्रम पारित करते समय निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना होगा–

(1) मूलभूत परिज्ञान को विकसित किये और समझे बिना शिक्षक अपने कक्षा–कार्य को प्रारम्भ नहीं कर सकता।

(2) शिक्षक में विकास प्रक्रिया को समझने की क्षमता का विकास करना तथा किसी आयु वर्ग के व्यवहार को समझने में जो कठिनाई आती है तो उसे समझना।

(3) प्राथमिक शिक्षक में मूलभूत कौशल तथा प्रवृत्तियों का विकास करना।

(4) प्राथमिक शिक्षक में शिक्षण व्यवसाय के प्रति प्रथम संस्कार तथा शिक्षण सेवा के प्रति अपनत्व की भावना विकसित करना क्योंकि केवल प्रशिक्षण मात्र से ही कोई पूर्ण विकसित अध्यापक नहीं बन सकता।

(5) अध्यापक में प्रतियोगी भावनाओं का विकास करना, जो पाठ्यक्रम के अनुसार व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुसार है।

(6) शिक्षक में वैज्ञानिक भावनाओं का विकास करना ताकि शिक्षण में परीक्षण एवं नयापन लाया जा सके।

(7) मुक्त समाज में सभ्य नागरिक बनने की अभिवृत्तियों का विकास करना।

2. अध्यापक की भागीदारी में परिवर्तन—अध्यापक की भागीदारी की अवधारणाओं में भी परिवर्तन हुआ है। आज अधिगम परिणाम का व्यवहार के रूप में मूल्यांकन किया जा रहा है। आज के शिक्षक को कल का आचार्य बनना पड़ेगा। वह केवल ज्ञान प्रदान करने वाला ही नहीं है, उसे अधिगम का निर्देशक तथा संस्कृति का प्रचारक भी बनना है। वह एक ऐसा व्यक्ति है, जो उस प्रकार का व्यवहार करता है, जैसा कि वह अपने शिष्यों से चाहता है। यदि शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन के एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में बनना होगा तो उसको इस परिवर्तन का कार्यकर्त्ता, सामाजिक अभियन्ता तथा भविष्य के समाज का शिल्पी बनना पड़ेगा। अतः उसका कार्य केवल कक्षा तथा विषय तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसे सम्पूर्ण मानव समाज तथा सांस्कृतिक परिवर्तन का मार्गदर्शक बनना पड़ेगा।

3. विद्यालय की अवधारणा में परिवर्तन— आज विद्यालयी अवधारणाएँ बदलती जा रही हैं। इसे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से विद्यालय को अपने तथा आम समुदाय के बीच अन्तः प्रक्रिया बनाये रखनी होगी ताकि वह आस–पास के वातावरण तथा स्थिति में परिवर्तन ला सके।

4. माध्यमिक शिक्षा में परिवर्तन—भारत में माध्यमिक शिक्षकों की शिक्षा एक शतक से भी अधिक पुरानी है। इस अवधि में शिक्षा की अवधारणा में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन लाया गया है। पहले शिक्षा का क्षेत्र सीमित था। कक्षा प्रबन्धन, श्यामपट्ट कार्य जैसी पद्धति से अध्यापन–कार्य चलता था। स्वतन्त्रता के बाद अध्यापकों की शिक्षा में अधिक परिवर्तन आया। वर्तमान शैक्षिक कार्यक्रमों पर शिक्षा मनोविज्ञान का पूरा प्रभाव है। कक्षा के अन्दर तथा कक्षा और विद्यालय के बाहर शिक्षक के सभी कार्यों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। शिक्षा के प्रसार तथा बालकों की चिन्ता के कारण गुणात्मक सुधार आवश्यक हो गया है। देश में जनतन्त्र होने के कारण शिक्षकों की तैयारी में नये आयाम जुड़ गये हैं। भारतीय बहुभाषीय तथा बहुधर्मी समाज में रहते हैं, अस्तु विद्यालयों में धर्म को शिक्षा से दूर रखना अनिवार्य हो जाता है। दूसरी ओर शिक्षकों को राष्ट्रीय शक्ति को बलशाली बनाना होगा, जिससे कि एक धर्मनिरपेक्ष जनतन्त्र का निर्माण हो सके, जिसमें व्यक्ति के गुण ही उसकी प्रगति एवं विकास का आधार बन सकें। अस्तु, अध्यापक शिक्षक कार्यक्रम को विशेषकर दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र तथा शिक्षा की विभिन्न समस्याओं को शैक्षिक क्षेत्र में सुदृढ़ करना आवश्यक हो जाता है।

●●

नवबोध

प्रकाशन की अन्य उत्कृष्ट पुस्तकें...

बी. एड. सरल अध्ययन

प्रथम सेमेस्टर

- पाठ्यक्रम विकास एवं विद्यालय
- बाल्यावस्था एवं विकास
- भारत में शिक्षा–स्थिति, समस्या एवं मुद्दे
- पाठ्यक्रम में भाषा (भाग-1)

द्वितीय सेमेस्टर

- पाठ्यक्रम में भाषा (भाग-2)
- अधिगम एवं शिक्षण
- सामाजिक विज्ञान शिक्षण
- गणित शिक्षण
- जीव विज्ञान शिक्षण
- रसायन शिक्षण
- वाणिज्य शिक्षण
- अर्थशास्त्र शिक्षण
- भौतिक विज्ञान
- Pedagogy of English Language
- हिन्दी शिक्षण
- इतिहास शिक्षण
- नागरिक शास्त्र शिक्षण
- भूगोल शिक्षण

तृतीय सेमेस्टर

- विद्यालय विषयों का शिक्षणशास्त्र, भाग-2

चतुर्थ सेमेस्टर

- शैक्षिक तकनीकी तथा सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी
- लिंग, विद्यालय और समाज
- पर्यावरण शिक्षण
- समावेशी विद्यालय का सृजन
- स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा
- विद्यालयों में निर्देशन एवं परामर्श
- क्रियात्मक अनुसंधान
- मूल्य शिक्षण
- स्वयं को समझना
- ICT को समझना
- भविष्यात्मक शिक्षण

Navbodh

नवबोध प्रकाशन

7, समता कॉलोनी, रायपुर (छ.ग.)
फोन : 0771-2533603, 4200905
ई-मेल : prakashan@navbodh.com

Customer Helpline : 7471145005 | fb.com/navbodh | www.navbodhprakashan.com